गरुड़
पुराण

गरुड पुराण

[प्रथम खण्ड]

[मूल एवं सरल हिन्दी भावार्थ सहित
जनोपयोगी संस्करण]

❀

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
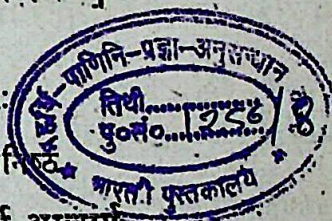
चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्मृतियाँ
योग वासिष्ठ एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध
भाष्यकार और लगभग १५० हिन्दी-ग्रन्थों
के रचयिता।

❀

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेद नगर) बरेली—२४३००३ (उ०प्र०)
फोन नं ४७४२४२

प्रकाशक :
डॉ० चमन लाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)
फोन : ४७४२४२

●

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

संशोधित संस्करण
सन् १९९५

●

●

मुद्रक
शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी
नवज्योति प्रेस
सेठ भीक चन्द मार्ग,
मथुरा (उ० प्र०)

●

मूल्य :
तीस रुपये मात्र

भूमिका

धार्मिक और विवेकवान् व्यक्तियों के सम्मुख मानव जीवन की जो समस्याएँ प्रायः उपस्थित होंती हैं उनमें मरणोत्तर जीवन की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। संसार का कोई देश या जाति ऐसी नहीं, जहाँ इस सम्बन्ध में विचार न किया गया हो। जङ्गली कहलाने वाली जातियों में भी इस सम्बन्ध में कुछ धारणायें पाई जाती हैं, चाहे वे कैसी ही विचित्र अथवा असङ्गत क्यों न हों। इसके विपरीत ज्ञानी और अध्यात्म क्षेत्र के ज्ञाताओं की धारणायें बहुत कुछ बुद्धि और तर्क संगत होती हैं। कुछ भी हो, मरनें के बाद हमारी स्थिति क्या होगी, यह प्रश्न प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में कभी न कभी उत्पन्न होता ही है, और प्रत्येक व्यक्ति अपनी विद्या, बुद्धि अथवा जानकारी के अनुसार उसका समाधान भी किया करता है।

यद्यपि संसार के अन्य-धर्मों—जैसे पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम में भी मरणोत्तर जीवन का उल्लेख पाया जाता है, पर वह इतना संक्षिप्त और गौण रूपमें वर्णित है कि उससे उसके अनुयायियों के आचार विचारों तथा मनोभावों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसकें विपरीत हिन्दू-धर्म में विशेषतः उसके पौराणिक—साहित्य में इसका इतना अधिक विवेचन और विस्तार किया गया है कि भारतवासियों के प्रत्येक कार्य में इसका प्रभाव देखने में आता है। यहाँ करोड़ों अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति ऐसें हैं जो मृत्यु के उपरान्त पुनर्जन्म के होने और इस जन्म के प्रत्येक कार्य का फल पाने में अटल विश्वास रखते हैं। ऐसे लोग अपने सुख दुःख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, भलाई-बुराई आदि सब बातों का कारण पूर्व-जन्म के कर्मों को ही मानते हैं। इसके सिवाय धार्मिक ग्रन्थों के ऐसे वर्णनों के परिणाम स्वरूप जन-साधारण में स्वर्ग और नरक सम्बन्धीं विश्वास भी इतना अधिक पाया जाता है कि वे हर समय उसका जिक्र करते हैं और उनके दान, पुण्य, परोपकार, कर्म-काण्ड आदि का आधार इन्हीं विचारों पर रहता है।

मरणोत्तर-जीवन की इस विचार धारा का सबसे अधिक विस्तार गरुड-पुराण में किया गया है। यद्यपि इसमें और भी अनेक जीवनोपयोगी विषयों का वर्णन पाया जाता है, पर यमलोक तथा नरकों का वर्णन और मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले कर्म काण्डों का विधि-विधान ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता मानी गई है। इस कारण अनेक हिन्दू घरों में किसी व्यक्ति का देहान्त होने के अवसर पर इस पुराण का पारायण किया जाता है और इसके अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में दान-दक्षिणा भी किसी पुरोहित या 'महाब्राह्मण' आदि को दी जाती है। इसमें यमपुर के मार्ग तथा नरकों के कष्टों का वर्णन ऐसे भयंकर और वीभत्स रूप में किया गया है कि सुनने वाले का हृदय काँपने लगता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सब लोगों पर इसका प्रभाव स्थायी होता है, पर भारतीय-समाज में 'नरक' का जिक्र होना एक सामान्य बात है और किसी के दुष्कर्म करने पर उसके 'नरक-वास' की सम्भावना भी प्रकट कर दी जाती है। यह बात दूसरी है कि कहने ओर सुनने वालों को इस पर कितना विश्वास होता है।

'गरुड-पुराण की शिक्षायें--

'गरुड-पुराण' के 'प्रेत खण्ड' में ३५ अध्याय हैं। इनमें दान का फल बतलाकर उसके द्वारा मृतात्मा की सद्गति का वर्णन किया गया है। यमलोक के भयङ्कर कष्टों का वर्णन करके यह बतलाया गया है कि सम्बन्धियों के दान आदि के द्वारा परलोक में मृतात्मा के कष्टों में किस प्रकार कमी हो सकती है। इसके लिये 'वृषोत्सर्ग' (विजार या सांड़ छोड़ना) का बड़ा महत्व दर्शाया है। यमराज के न्यायालय और उनके कार्याध्यक्ष चित्र गुप्त के स्थानों का वर्णन भी कई जगह विस्तार पूर्वक किया गया है। इसका उद्देश्य यही हो सकता है कि जन-साधारण उन पाप कर्मों से यथा सम्भव बचकर रहें, जिनसे यमलोक में कष्ट पाने की सम्भावना हो। आगे चलकर अपमृत्यु प्रेत वाले व्यक्तियों के होने का और प्रेतयोनि में जीव की घोर दुर्दशा का वर्णन किया

गया है क्योंकि इस बात का कोई निश्चय नहीं होता है कि कौन व्यक्ति प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ है और वह कब तक उसमें पड़ा रहेगा, इसलिये प्रत्येक जीवित व्यक्ति का यह कर्तव्य बतलाया गया है कि अपने किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर किसी कर्म-काण्ड के ज्ञाता द्वारा उन क्रियाओं को करावे, जिनसे मनुष्य प्रेतयोनि से छुटकारा पा सकता है।

प्रेत होने के कारण बतलाते हुए पुराणकारने अकाल मृत्यु के अतिरिक्त उन अनैतिक और चरित्र-हीनता की बातों का ही वर्णन किया है, जिससे व्यक्ति और समाज का अनिष्ट और पतन होता है। उदाहरण के लिये 'संतृप्तक' नामक तपस्वी ब्राह्मण से अपनी दुर्दशा बतलाते हुये प्रेतों ने कहा कि 'दूसरों की धरोहरा का अपहरण करने वाला, अपने मित्रों से द्रोह करने वाला, विश्वासघात करने वाला और कूट पुरुष प्रेतत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार ब्राह्मण, देव-मन्दिर और गुरु की सम्पत्ति हरण करने वाला, कन्या विक्रय करने वाला, अपनी माता, भगिनी, भार्या, पुत्र, वधू तथा पुत्री को कोई दोष न होने पर त्याग देने वाला भी प्रेत हो जाता है। जो सदा मिथ्याकर्म और भाषण में रुचि रखता है और दूसरों की भूमि तथा स्वर्ण का अपहरण करता है वह अवश्य ही प्रेत होता है।" इससे प्रकट होता है कि जो व्यक्ति ऊपर से धर्म-कर्म का ढोंग करते हुये भी वास्तविक धर्म का पालन नहीं करते, जो सत्य, न्याय, प्रतिज्ञापालन, आपत्ति-ग्रस्तों की सहायता आदि जैसे सत्कर्मों से विमुख रहते हैं वे मरणोपरान्त दुर्दशा को प्राप्त होते हैं और निष्कृष्ट प्रेत-योनि को प्राप्त होकर तरह-तरह के कष्ट सहन करते हैं।

इसी प्रकार राजा बभ्रुवाहन की कथा में बतलाया गया है कि 'लोग देवोत्तर सम्पत्ति (सार्वजनिक हित के कार्यों का धन) स्त्रियों का धन, बालकों का धन हरण किया करता है वे प्रेत योनि को प्राप्त होते हैं। जो किसी तापसी नारी, सगोत्र स्त्री, गमन करने के अयोग्य

नारी के साथ दुराचार करते हैं वे महाप्रेत हो जाते हैं। जो किये हुए उपकार के प्रति कृतघ्न हों, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करें, रौद्र, दुस्साहसी, शठतापूर्ण स्वभाव के हों वे भी प्रेत बना करते हैं।" निस्सन्देह अनुचित लालच के वशीभूत होकर किसी असहाय अथवा निर्बल का सम्बल छल-बल से हड़प जाना संसार में बहुत बड़ा पाप है। ऐसे अर्थ-पिशाच इस जीवन में ही भीतर ही भीतर लालसा से व्याकुल हुआ करते हैं और जिनका अधिक धन पाते जाते हैं उतना अधिक तृष्णा के जाल में फँस कर अधः पतन की ओर अग्रसर होते जाते हैं। जो लोग इस संसार में जीवित अवस्था में ही धन ही तृष्णा से दग्ध हुआ करते हैं वे यदि मरने के पश्चात् भी अशान्ति और अभाव का अनुभव करते रहें तो इसमें क्या आश्चर्य है?

अकाल मृत्यु का कारण–

इसमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि जब भगवान् ने मनुष्य की स्वाभाविक आयु सौ वर्ष की नियत कर दी है तब वह अकाल मृत्यु का ग्रास बनकर प्रेत-योनि को क्यों प्राप्त होता है? इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में संसार में जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों की उम्र सौ वर्ष की नियत होती है, पर मनुष्य अपने दुष्कर्मों दुराचरणों अथवा पूर्व जन्म के पापों से स्वय ही अपनी आयु को क्षीण करने का कारण बनता है। इस प्रसङ्ग से इस बात का स्पष्ट रूप से खंडन हो जाता है कि 'ब्रह्मा ने मनुष्य की जो आयु नियत कर दी है उसमें एक क्षण का भी अन्तर नहीं हो सकता।' जो लोग भाग्यवाद के सिद्धान्त का वास्तविक तात्पर्य न समझ कर 'राई घटे न तिल बढ़े रह रे जीव निशङ्क' की उक्ति का प्रमाण माना करते हैं वे विचार-शक्ति से शून्य ही होते हैं। गरुड की शङ्का का समाधान करते हुए कृष्ण भगवान् कहते हैं—

"हे पक्षीन्द्र! मनुष्य वास्तव में सौ वर्ष जीवित रहने वाला

प्राणी है, जैसा कि वेद-भगवान् ने 'जीवन शरदःशतात्' आदि वाक्यों से सुस्पष्ट कर दिया है। पर अपने ही अपकर्मों के प्रभाव से वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य वेदों का अभ्यास नहीं करता और वंशपरम्परा से चले आये धर्मानुकूल कर्तव्यों का भी पालन नहीं करता। जिसमें बहुत अधिक आलस्य भर गया है, जिससे यह श्रेष्ठ कर्मों से विमुख होकर नीच मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है, यह जहाँ-तहाँ खा लेता है, चाहे जहाँ रति करने लगता है। इस प्रकार भोजन और भोग में उच्छृङ्खल हो जाने और इसी प्रकार के अन्य खोटे कर्मों से यह अपनी आयु का क्षय करता रहता है।"
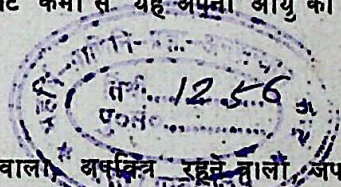
"जो ब्राह्मण श्रद्धा न रखने वाला, अपवित्र रहने वाला, जप-तप से पराङ्मुख, मङ्गल कार्यों को त्याग देने वाला, मदिरापान आदि दुष्कर्मों में आसक्त होगा वह शीघ्र ही यमराज द्वारा क्यों न दण्डित किया जायगा? इसी प्रकार जो क्षत्रिय राजा प्रजा की रक्षा न करके उसका उत्पीड़न करता है और अपना सब समय तथा राज्य-कोष दुर्व्यसनों में खर्च करता रहता है, अथवा जो पापों के भय से युद्ध में कायरता दिखाता है, इसे यमराज की अदालत में क्यों न दोषी बनना पड़ेगा? वैश्य-वर्ण जो व्यक्ति समाजोपयोगी कार्यों को त्याग कर झूंठे व्यवहार से केवल मनुष्यों को ठगने और धन बटोरने में लगा रहेगा उसे भी दण्ड स्वरूप यम-यातना सहन करनी ही पड़ेगी। समाज-सेवा के कार्यों से विमुख होकर हानिकारक मार्ग पर चलने वाला शूद्र भी यमराज द्वारा दण्डनीय होता है। सब बातों का सार यही है कि जो मनुष्य नित्यप्रति स्नान, ध्यान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि धर्मविहित कर्मों को त्याग कर आलस्य और प्रमाद में पड़ा रहता है उसका वह दिन व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने जीवन के उपयोगी दिनों को नष्ट करता रहता है उसकी आयु भी चाहे जब नष्ट हो जाती है।

मानव-जीवन की श्रेष्ठता—

वास्तव में मानव-जीवन और मानव-देह का प्राप्त होना सृष्टि का सबसे बड़ा अनुदान है। चाहे हम धर्म की दृष्टि से देखें और चाहे विज्ञान की दृष्टि से, संसार में जितने भी चराचर प्राणी पाये जाते हैं मनुष्य उनमें सर्वोच्च है। उसे जो विवेक बुद्धि, सूक्ष्म विषयों को समझ सकने योग्य मस्तिष्क और आश्चर्य जनक क्षमता युक्त कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की गई हैं, उनकी तुलना और कहीं दिखाई नहीं पड़ती। मनुष्य को संसार में जो अपार सुविधायें और उपयोगी कर्म करने के अवसर प्राप्त हुए हैं वे ऐसे महान् और अलभ्य हैं कि 'देवगण' भी उनकी अभिलाषा किया करते हैं। इसी तथ्य को समझ कर 'विष्णु-पुराण' में कहा गया है—

गायन्ति देवाः किलगीतिकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात्॥

अर्थात् यह कर्मभूमि भारतवर्ष अत्यन्त धन्य है, जिसकी महिमा देवगण भी गाते रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष जैसी सर्वोच्च गतियों को यहाँ पर सत्कार्य करके ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वर्ग कहे जाने वाले लोक में चाहे भोगों की कितनी भी अधिकता क्यों न हों, चाहे वहाँ के प्राणी बिना परिश्रम किये अपनी सब मनोभिलषाओं की पूर्ति क्यों न कर लेते हों, पर उनको इस बात का अवसर कभी नहीं मिलता कि त्याग, तपस्या, परोपकार के मार्ग पर चलकर दूषित कर्म-बन्धनों को काट सकें और आत्म-शक्ति की वृद्धि करते हुए स्वावलम्बन पूर्वक 'ब्रह्म-निर्माण' की ओर अग्रसर हो सकें।

इस प्रकार 'गरुड-पुराण' का मुख्य उद्देश्य मृतक कर्म काण्ड के रूप में दान दक्षिणा का विधि-विज्ञान बतलाना होने पर भी उसमें स्थान-स्थान पर यही कहा गया है कि परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शुभकर्म करना अनिवार्य है। 'गरुडपुराण' के विभिन्न अध्यायों में सामान्य तथा विशेष नैतिक तथा धार्मिक नियमों के पालन करने के रूप में यही उपदेश दिया गया है—

"किसी भी श्रेष्ठ उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये सदा सत्पुरुषों का संग करना चाहिये। असत्पुरुषों की संगति से इस लोक और परलोक में कहीं भी हित नहीं हो सकता। पराया व्यक्ति भी हित-सम्पादन करने वाला होता है और अपना बन्धु भी परम शत्रु बन सकता है। इसलिये जो अपना सच्चा हित करे उसी को बन्धु समझना चाहिये। उसी मनुष्य को वास्तवमें जीवित मानना चाहिये जिसमें अच्छे गुण और विचार पाये जायं और जो धर्म की भावना रखता है। दुष्टों के संग की अपेक्षा नरक-वास अच्छा है। क्योंकि नरक में रहने से तो क्रमशः पापों का क्षय होता है पर दुष्ट-गृह में रहने से पाप उल्टा बढ़ता जाता है। जिसका धन नष्ट हो जाता है वह घर बार त्याग कर तीर्थ-सेवन के लिये चला जाता है, पर जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है उसे तो रौरव नरक में ही जाना पड़ता है। जो किसी को वचन को देकर उसका पालन नहीं करते, जो चुगली किया करते हैं, झूठी गवाही देते हैं, मद्यपान करते हैं वे सब नरक की घोर कष्टदायक वैतरणी नदी में निवास करते हैं। किसी घर में अग्नि लगाने वाला, स्वयं विष देने वाला, स्वयं दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला, खेत, पुल आदि सार्वजनिक स्थानों को नष्ट करने वाला, पराई स्त्री से दुराचार करने वाला आदि व्यक्ति भी वैतरणी में महाकष्ट पाते हैं। जो कृपण है, नास्तिक है, क्षुद्र स्वभाव वाले हैं, सदा क्रोध करते रहते हैं, स्वयं अपनी ही बात को प्रमाण बतलाने वाले हैं, अत्यन्त अहंकारी हैं, कृतघ्नी, विश्वासघाती हैं, वे सब वैतरणी नदी में दीर्घ-काल तक नारकीय स्थिति में पड़ें रहते है।"

जो लोग केवल शारीरिक या अर्थ सम्बन्धी दुष्कर्मों को ही नरकवास का कारण समझते हैं वे वास्तविकता से परे ही समझे जायेंगे। मानसिक दुर्भाव और अहङ्कार 'जनित दोष प्रत्यक्ष पापों से भी बढ़कर नरक-वास के कारण होते हैं, क्योंकि भावना रूप पाप ही आगे चलकर स्थूल पापों के रूप में प्रकट होते हैं। जिस व्यक्ति की मनोभूमि शुद्ध है और विचार-धारा पवित्रता की ओर प्रेरित रहती है,

उसकी अभिरुचि पापकर्मों की तरफ होगी ही नहीं इस लिए यदि 'गरुड-पुराण के कर्त्ता ने अहङ्कार, नास्तिकता, क्षुद्रता, कृपणता, क्रोध आदि को नरक कारण लिखा है तो उसमें कोई भूत की बात नहीं हैं।

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

यद्यपि इस पुराण में मृत्यु के उपरान्त प्रेत बनने वाला और यमपुर की यात्रा करने वालों का जो वर्णन किया गया है उसके पढ़ने से वही प्रतीत होता है कि मरणोपरान्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर निसदेह: किसी देवी प्रदेशकी यात्रा करता है और वहाँ चित्रगुप्त नगर, यमपुरी आदि में उसका विचार उसी प्रकार किया जाता है जैसा कि हम लौकिक न्यायालयों में होता देखते है। पर कई स्थानों पर प्रेतों के स्वरूप और कार्यों का वर्णन पाया जाता है उससे यह भी प्रकट होता है कि नरकों और यमपुरी का जो वर्णन किया गया है वह बहुत अंशों में आलङ्कारिक है और पाठकों के चित्त पर अनुकूल प्रभाव डालने के उद्देश्य से किया गया है। ऐसा न होता तो स्वयं पुराणकार यह न लिखता कि प्रेतत्व को प्राप्त होना और प्रेतों द्वारा संसार के मनुष्य को पीड़ा पहुँचाया जाना कलियुग में ही होता है, त्रेता द्वापर आदि में ऐसा नहीं होता था। वे लिखते हैं—

कलौ प्रेतत्वमाप्नोति ताक्ष्यांशुद्ध क्रिया परः।
कृतादौ द्वापरं यायन्न प्रेतो नैव पीडनम्।

(प्रेतकल्प १०–१)

अर्थात् कलियुग में मनुष्य के रहन-सहन के अशुद्ध हो जाने से वे प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं। सतयुग, द्वापर, आदिमें न कोई प्रेत बनता था न किसी को प्रेत सम्बन्धी पीड़ा होती थी।"

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यमराज, उनकी यमपुरी, नरक आदि तो अनादि काल से हैं, तब क्या ये सब द्वापर तक निकम्मे बैठे रहते थे ? फिर मार्कण्डेय पुराण आदि विभिन्न ग्रन्थों में मृतात्माओं के आवागमन की जो कथायें दी गई हैं, उनमें नरकों का वर्णन बड़े

विस्तार से किया गया है। धर्मराज युधिष्ठिर जब एक असत्य-भाषण के लिये थोड़ी देर के लिए नरक में ले जाये गये तो उन्होंने देखा कि नरक पापियों से भरे हुये हैं। इससे हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रेतत्व और नरकों का जो वर्णन पुराणों में लिखा गया है उसे अक्षरशः ज्यों का त्यों मानने के बजाय उसका अर्थ रूपक अलङ्कारकी दृष्टि में ही समझना उचित हैं। उपनिषदों में महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरता-पूर्वक जो विवेचन किया है उससे भी पुनर्जन्म और नरकों का ऐसा ही स्वरूप सिद्ध होता है। 'कठोपनिषद्' में जब नचिकेतान यमराज से यह प्रश्न किया कि मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है तो उसने यही उत्तर दिया—

न प्राणेनापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता बुपाश्रुतम्॥

"कोई भी प्राण अथवा अपान वायु के आधार पर ही जीवित नहीं रह सकता, वरन् प्राण और अपान जिस शक्ति के आश्रित है प्रत्येक प्राणी उसी के आधार पर जीवित रहता है।" मृतात्मा देहान्त के पश्चात् कैसे रहता है उसके सम्बन्ध में कहा गया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्ये ऽनुसर्पन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

"जिसने श्रवण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है उसी के आधार पर अपने-अपने कर्मों के अनुसार कितने कितने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्ष, लता, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लेते हैं।"

इससे विदित होता है कि दुष्कर्मों के फल से मनुष्य जो पशु पक्षियों, कीड़े मकोड़े को योनियों में जाते हैं अथवा वृक्ष, लता आदि स्थावर पदार्थों के रूप को प्राप्त हो जाते हैं वही उनके लिए एक तरह का नरकवास माना गया है। मनुष्य के मुकावले में इन जीवों को अनेक असुविधायें और कष्ट सहने पड़ते हैं। "गरुड पुराण' में नरकों की संख्या ८४ लाख बतलाई गई है। अन्य स्थानों में योनियों की संख्या भी ८४

लाख मानी गई है। इससे वह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि संभवतः 'गरुड पुराण' ने ८४ लाख योनियों में जीव के भ्रमण करने का ही ८४ लाख नरकों के रूप में वर्णन किया है।

गीता में 'नरक' का स्वरूप—

'भगवद्गीता' में दुष्कर्मों से जीवन की अधोगति और शुभ कर्मों से उच्च गति पाने का वर्णन किया है, पर उसमें 'गरुड-पुराण' की तरह किसी रहस्यपूर्ण यमराजपुरी और उसके महाभयङ्कर कारागारों का वर्णन नहीं है। उसमें यही बताया गया है कि जो लोग पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी, अज्ञान आदि आसुरी लक्षणों से युक्त होते हैं, वे मृत्यु के बाद अवांछनीय गति को प्राप्त होते हैं। 'गीता' में 'नरक' का शब्द भी आया है पर उसका आशय जीव की नीच और कष्ट पूर्ण स्थिति से ही जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में १६ वें अध्याय में कहा गया है—

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रम शुभानासुरीष्वेव योनिषु ।१६
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्येव कौन्येय ततोयान्त्यधमां गतिम् ।२०
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।२१

अर्थात्—'इस प्रकार के इन द्वेष रखने वाले दुष्कर्मों में लिप्त योनियों में ही गिराया करता हूँ।१६। हे अर्जुन! वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनियों को प्राप्त होकर मुझसे (परमात्मा से) दूर होते जाते हैं और पहले की अपेक्षा भी नीच गति को प्राप्त होते हैं।२०। काम क्रोध, तथा लोभ—ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं आत्म-कल्याण के इच्छुक को उन्हें त्याग देना चाहिए।"

गीताकार ने कुछ योनियाँ मनुष्य से नीची और कुछ ऊँची बत-

लाई है और स्पष्ट कह दिया है आसुरी प्रकृति वाले लोग अधोगति को तथा देवी प्रकृति वाले उच्च गति को प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य मृत्यु के उपरान्त नीचे योनियों में जाकर कष्ट पाता है तो उसका कारण अहङ्कार, पाखंड, क्रोध, परपीड़न आदि ही हैं। आसुरी अथवा निन्दनीय प्रवृत्तियाँ होती है। जब तक मनुष्य इनको त्याग कर अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अद्रोह, क्षमा आदि दैवी अथवा सत् प्रवृत्तियों को नहीं अपनाता तब तक उसका आत्म-कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त हो सकना ही असम्भव होता है। 'गीता' में यह नहीं कहा है कि मरते समय 'गौदान करने से मनुष्य नरक-प्रदेश की वैतरणी नदी से पार हो जायेगा अथवा पुत्र या सम्बन्धियों द्वारा मासिक पिण्डदान करने से यमलोक के मार्ग में उसकी भूख शान्त होती रहेगी। वरन् महाभारत का ही यह आदेश है—

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुत्र दत्तानां पिण्डानां नैव-कांक्षिणः ॥

अर्थात् "ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप को समझ कर और तदनुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनको पुत्रों द्वारा दिये गये पिण्डों की आकाँक्षा कभी नहीं होती।"

'वृहदारण्यक उपनिषद्' की सम्मति से भी यही सिद्ध होता हैं कि आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्व गामी है और जब तक मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर चलता हुआ सत्कर्मों में संलग्न रहता है तब तक वह उच्च गति को हीं प्राप्त होता है—उसके चौथे ब्राह्मण में कहा गया है—

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा मादालन्नन् नवतरं कल्याणतरं रूपं तनु एंवमेवायमात्मेदं शरीरंनिहत्य विद्यांगमयित्वा अन्यन्नवरं कल्याणतरं रूपं कुरुते षिश्यं वा गन्धर्वं वा देव वा प्राजापत्यं वा ब्राह्म वा अन्येषां वा भूतानाम्।

अर्थात् 'जैसे कोई स्वर्णकार (सुनार) थोड़े से पुराने सोने को लेकर उससे नया और सुन्दर आभूषण बना देता है उसी प्रकार आत्मा इस जीर्ण शरीर को नष्ट करके और अज्ञान से पार होकर दूसरे नये

और कल्याणकारी (श्रेष्ठ) रूप को धारण करती है। वह रूप चाहे पितृलोक में हो, चाहे गन्धर्व लोक या देवलोक में, चाहे प्रजापति लोक अथवा ब्रह्मलोक में या किसी अन्य भौतिक लोक में।"

'ईशावास्योपनिषद्' में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा गया हैं कि—

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।

अर्थात्—"असुरों के जो लोक हैं वे अज्ञान और अन्धकार से ढँके हुए हैं। जो मनुष्य आत्म-हत्या करते हैं अथवा जो आत्मा के पतन कराने वाले कर्म किया करते हैं वे कष्टपूर्ण लोकों को प्राप्त होते हैं।'

ज्ञान का महत्व सर्वोपरि है–

'गरुड पुराण' में भी सिद्धान्त रूप से यही कहा गया है कि जो मनुष्य ज्ञानी और सदाचारी होता है उसकी सदैव सद्गति होती और वह मरने के उपरान्त स्वयं ही उत्तम लोकों में जाता है। सांसारिक माया, और स्वार्थ में फँसे हुए व्यक्तियों की दुर्दशा का वर्णन करने के साथ ही उसमें यह भी कहा गया है–

आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस्तथैव च ।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ।।
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां मति जीवनाः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु घृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ।।

अर्थात्—"आहार करना, मैथुन, निद्रा, भय, क्रोध आदि प्रवृत्तियाँ तो सभी प्राणियों में पाई जाती है, पर विवेज (ज्ञान) का होना बड़ा दुर्लभ है। भौतिक जगत् में प्राणी श्रेष्ठ माने गये हैं, प्राणियों में बुद्धियुक्त श्रेष्ठ होते हैं, बुद्धियुक्तों में मनुष्यों को सबसे बड़ा कहा गया है, मनुष्यों में ब्राह्मण उत्तम होता है। ब्राह्मणों में भी विद्वान् प्रशंसा के योग्य होता है। विद्वानों में कृत-बुद्धि (व्यावहारिक बुद्धि वाला)

और कृत बुद्धियों में भी तदनुसार आचरण करने वाला और उसमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं।

नाभेस्तु मूर्द्धपर्य्यन्तमूर्द्धच्छिद्राणि च ष्ट वै।
सन्ता: सुकृतिनो मर्त्या उर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते।
अधश्छिद्रेण ये यान्ति ते यान्ति विगति नरा: ॥

अर्थात्--"मानव देह में नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक जो आठ छिद्र हैं, सन्त पुण्यात्मा लोगों की आत्मा इन्हीं मार्गों से निकल कर ऊर्ध्व गति को प्राप्त करती है पर जो लोग इसके विपरीत होते हैं उनके प्राण नाभि के नीचे के छिद्रों से निकला करते हैं और उसकी निकृष्ट गति प्राप्त होती है।"

पर उपनिषदों तथा गीता आदि में जहाँ केवल ज्ञान मार्ग की श्रेष्ठता का निरूपण करके मनुष्यों को कर्म करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है वहाँ 'गरुड-पुराण' में लौकिक व्यवहार का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है और लोग उन कर्मों के करने में लापरवाही न करें, इसलिए उनको यमपुरी तथा नरकों के कष्टों का हर तरह से भय दिखाया गया है। वेद और उपनिषदों आदि में मरणोपरान्त 'पितृयान' और देवयान दो विभिन्न मार्गों की चर्चा की गई और अध्यात्मवादियों ने भी मरने के बाद जीवात्मा के कुछ समय तक चन्द्रमा अथवा किसी सूक्ष्मलोक (ऐस्ट्रल वर्ल्ड) में रहने की सम्भावना को स्वीकार किया है। इसलिये हम 'गरुड-पुराण' के नरकों के वर्णन को सर्वथा अग्राह्य नहीं कह सकते।

कर्मकाण्ड का अत्यधिक विस्तार–

जीवात्मा के पुनर्जन्म और कर्मानुसार विभिन्न योनियों को प्राप्त कर सुख-दुःख भोगने के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर भी अनेक विद्वान् 'गरुड-पुराण' में वर्णित पिण्डदान तथा मृतक सम्बन्धी अन्य कर्मकाण्डों के अति विस्तार को व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी नहीं मानते। कहते हैं कि वहाँ की अपेक्षित जनता

जो विभिन्न रोगों का कारण भूत-प्रेतों का प्रभाव मानती है उसके फल स्वरूप वे अपना उचित इलाज करने के बजाय टोना-टोटका और स्याने (ओझा) लोगों के चक्कर में फँस जाते हैं। इससे उनका पैसा व्यर्थ में वर्बाद होता है और वे शारीरिक कष्ट भी उठाते हैं। इस धारणा का मूल 'गरुड-पुराण' में पाया जाता है। उसके दसवें अध्याय में प्रेत-पीड़ा' का वर्णन करते हुए कहा है—

"ये पराये धन' परायी, पत्नी और और अपने ही सम्बन्धियों को कष्ट देने वाले महा पापिष्ठ प्रेतगण नरकवास के पश्चात् बिना शरीर के भूख प्यास से पीड़ित होकर सर्वत्र विचरण किया करते हैं। वे अपने घर में फिर आकर वे मूत्रोत्सर्ग में प्रवेशकर जाते हैं और वहाँ स्थित होकर स्वजनों को रोग-शोक दिया करते हैं। वे ज्वर और इकतरा के रूप में लोगों को कष्ट देते है। ये जीवित अवस्था में अपने कुल के जिन लोगों से स्नेह करते हैं, प्रेत बनने पर उन्हीं को पीड़ा देने लगते हैं। जिसको प्रेत-पीड़ा होती है वह नित्य कर्म, मन्त्र-जप, होम सब छोड़ देता है, तीर्थों में जाकर भी परम आसक्त हो जाता है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य का ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष में भी कृषि का नाश हो जाता है और जितना भी सद्व्यवहार होता है वह सब विनष्ट हो जाता है। उसका दूसरों से कलह होने लगता है। अनेक बार मार्ग में गमन करते हुए ही पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य हीन कर्म करने लगता है और उसका सम्पर्क हीन श्रेणी के व्यक्ति से ही होने लगता है।"

'प्रेत के प्रभाव से ऐसे बहुत से व्यसन लग जाते हैं जिनमें अपनी समस्त सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है। चोर, अग्नि, राजा द्वारा हानि होती है। किसी महान् रोग की उत्पत्ति, शरीर में पीड़ा, स्त्री का सताया जाना-ये बातें प्रेत-पीड़ा के कारण होती हैं। स्त्रियों के गर्भ का विनाश हो जाता है, उनका रजोदर्श नहीं होता।

ये सब उपद्रव प्रेत-पीड़ा के कारण होते हैं। जिसके यहाँ प्रेत पीड़ा देती है वहाँ रात-दिन कलह रहता है, अथवा पुत्र ही शत्रु के समान घात करने वाला हो जाता है। जिस घर में दाँता-किटकिट हो, भोजन के समय कोप का आवेश होता हो, सदा दूसरों के साथ द्रोह करने बुद्धि रहे—तो ये सभी दुष्परिणाम प्रेत द्वारा दी गई पीड़ा के समझने चाहिए। जिस पर प्रेत का असर होता है वह अपने माता-पिता के वचनों का पालन नहीं करता, अपनी स्त्री से प्रेम नहीं करता, वरन् पराई स्त्रियों पर कुदृष्टि किया करता है। दुष्ट मृत्यु के होने से भी प्रेत योनि मिलती है और मृत शरीर का दाह-संस्कार न होनेसे भी प्रेतत्व प्राप्त होता है। खाट पर ही जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझना चाहिए।"

इस अध्यायमें प्रेत-पीड़ा के जो लक्षण बतलाये गयेहैं अगर विचार पूर्वक देखा जाय तो वे मनुष्य की दुष्ट बुद्धि और विकृत मस्तिष्क के परिणाम होते हैं। माता-पिता की आज्ञा न मानना आवारागर्दी का लक्षण है और पराई स्त्रियों से दुराचार की भावना व्यभिचारी मनो-वृत्ति का स्वाभाविक परिणाम हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि ईश्वरने मनुष्य को विवेक बुद्धि देकर कर्म करने में स्वतन्त्र बनाया है। इस सिध्दान्त के अनुसार ही ज्ञानीजन मनुष्यके प्रत्येक सुख-दुःख का कारण उसके कर्तव्य-कर्मो को मानते हैं।

इसलिए जब हम 'गरुड-पुराण के प्रेत सम्बन्धी विधि-विधानों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका कारण अनार्य जातियो में प्रचलित अवैदिक प्रथाओं का परम्परागत आया प्रभाव है। वैदिक अध्यात्मवाद के अनुसार आत्मा की अमरता और मृत्यु के पश्चात् उसका अन्य शरीर में जाना तो निश्चित ही है।

वासांसि जीर्णाति यथा विहाय नवानिगृह्णाति नरो ऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यानि संयाति नवानि देही॥

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसेही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है ।"

भारतीय अध्यात्मवादी मनीषियों को पुनर्जन्म के विषय में कभी किसी तरह का सन्देह नहीं रहा, उनके विचार तर्क और विज्ञान के अनुकूल थे । आज वैज्ञानिक भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और आत्मा के स्वामी संस्कारों को कुछ-कुछ मानते जाते हैं । 'गीताकार' ने इन शब्दों में इनकी बहुत स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी है–

जातस्य हि ध्रुवोमृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

इसी सिध्दान्त को 'गरुण पुराण' ने अविकसित और अल्प बुध्दि वालों को समझाने के उद्देश्यसे कथा का रूप दे दिया है और जीवात्मा की सद्गति के लिए कर्म-काण्ड के विधि विधानों को अनिवार्य बतला दिया है । ऐसी पौराणिक कथाओं का भी अशिक्षित जनता को समझाने के लिए उपयोग स्वीकार किया जा सकता है । इस दृष्टि से 'गरुड़ पुराण' का अध्ययन करना और उसकी उपयोगी बातों को विवेकसम्मत रूप में जनता को समझाना लाभदायक हो सकता है ।

'गरुड़ पुराण' की एक विशेषता यह हैकि इसके प्रथम खण्डमें जिन जीवनोपयोगी विद्याओं की जानकारी संग्रह की गई है, उनको ऐसे साररूप में दिया गया है कि पाठक थोड़े समयमें ही अधिक लाभ उठा सकता है । इसमें विभिन्न देवताओ की उपासना तथा पूजा की जो विधियाँ दी गई हैं वे निष्पक्ष भाव से एकत्रित की गई है और पूजा-पाठ करने वाले मनुष्योंके लिए विशेष उपयोगी सिद्धहो सकतीहैं । इसी प्रकार औषधियों के विषय में जो कुछ लिखा गया है वह प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर और अनुभूत है । तीर्थ, व्रत,दैनिक धर्मकृत्य आदि का वर्णन ऐसे ढङ्ग से किया गया है जिसे सामान्य पाठक भी सहज में समझ सकता है 'रामायण' 'महाभारत' हरिवंश' भगवद्गीता' । यम-गीता, आदि प्रसिद्ध धार्मिक रचनाओं का सारांश भी दे दिया गया है ।

हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि रत्नों का वर्णन और गुण-दोष बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरोदय, अष्टाङ्ग-योग की विधियों का उत्तम रीति से संग्रह किया गया है। इस प्रकार यह प्रथम खण्ड 'अग्निपुराण' के नमूने पर भारतीय विद्याओं का 'सार संग्रह' या 'विश्वकोष' माना जा सकता है।

सर्वश्रेष्ठ योगमार्ग—

विभिन्न देवताओं की नाना प्रकारसे पुजा और उपासनाके विधान बतला कर अन्तमें यही बतलाया गया है कि मनुष्यों के कल्याणके लिए सबसे श्रेष्ठ साधन-विधि यही है। सब प्रकार की उपासनाओं के साथ परमात्मा का ध्यान अवश्य कर लिया जाय। "वह परमात्मा ही सब पापों को नष्ट करने वाले, सबके रचयिता और सच्चे ईश्वर हैं। वे ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हैं जो सब देहधारियों की देहमें सदैव रहते हैं पर उनके बन्धन में कभी नहीं पड़ते। आत्मा रूप से देह के भीतर रहने वाला यह ईश्वरांश इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं। वह मन का सञ्चालन करता है पर मनके धर्मोंसे रहित है। वे ही ज्ञान-विज्ञान स्वरूप वाले और सबके साक्षी है। वह बुद्धि से भी विवर्जित हैं अर्थात् बुद्धि के जो लक्षण हैं उनसे परे हैं। वे ही प्राणियों के प्राण, महान शान्त स्वरूप, भय से विवर्जित और अहङ्कार आदि से रहित हैं। वे सबके साक्षी, नियन्ता, परम आनन्द रूप वाले हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों दशाओं में स्थित उनके साथी, पर उससे विवर्जित हैं। तुरीय (चतुर्थ स्थिति) परम धाता, द्रव्य के रूप वाले गुणों से रहित, मुक्त, बोधयुक्त, जरा से रहित, व्यापक, सत्य और शिव आत्मा वे ही है। जो विज्ञ मानव इस प्रकार से परब्रह्म का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उसके रूप को प्राप्त किया करते हैं।

संसार में जितने प्रकारके ज्ञानहैं उनमें आत्मज्ञान का दर्जा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति अपनी आत्माऔर उसकी अपार शक्तियोंको नहीं जानता

में पाई जाने वाली आधि-व्याधि और जीवन-मरण के चक्र से सर्वथा मुक्त हो सकता हैं। इसलिए पुराणकार की सम्मति है—

'जो आत्म-ज्ञान की इच्छा रखता है, उसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत, तन्मात्र, गुण, जन्म आदि से पृथक् स्वयंप्रकाश, निराकार, सदानन्द स्वरूप, अनादि, नित्य,शुद्ध-बुद्ध, सत्य,अद्वय, तुरीय, अक्षर ब्रह्म का ध्यान इस प्रकार करना चाहिएकि 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ।'

इसप्रकार 'गरुड़-पुराण' में संग्रहीत सामग्री और उसका वर्णन शैली में उसकी तक निंजी विशेषताहै। उसने सामान्य जनता के एक विशेष भाग के उपयोग की दृष्टि से विविध प्रकार की जानकारियों और आवश्यक विषयों का संक्षिप्त रूपमें संग्रह किया है। संभवतः प्राचीन समय मे प्रचलित वहुसंख्यक विभिन्न बिषयक ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। तो भी सबको अपने उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए एक विशेष रूप दिया गया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

'गरुड़ पुराण' का 'प्रेत खण्ड' ही जनता में अधिक प्रचलित है, और सामान्य पाठक उतने को ही 'गरुड़ पुराण' समझते हैं। कितने ही प्रकाशकों ने उसी अंश को गरुड़ पुराण के नाम से छापा भी है। पर इसके प्रथम खण्ड में जो विविध विषयक उपयोगी सामग्री एकत्रित की गई है वह भी कम आकर्षक नहीं हैं। जैसा हम लिख चुके हैं इसका सबसे महत्वपूर्ण अंग 'प्रेतखण्ड' में दिये 'यमराजपुरी' के वर्णन और नरकों की भयङ्करता को समझकर पाप-कर्मो से बचे रहने का प्रयत्न करना ही है। जो पाठक इसको ऐसी भावना से पढ़ेंगे वे अवश्य इससे लाभान्वित होंगे।

विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)

श्री गरुड महापुराणम्

पूर्वार्द्धम्

१—नैमिषारण्य में शौनकादिक ऋषियों का प्रश्न

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं
शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम् ।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं
हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥१

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा ॥२
सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥३
तीर्थयात्राप्रसंगेन उपनिष्ठ शुभासने ।
ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्यास्तुवन् कविम् ॥४
शौनकाद्या महाभागा नैमिषेयास्तपोधनाः ।
मुनयो रविसङ्काशाः शान्ता यज्ञपरायणाः ॥५

आरम्भ में मङ्गलाचरण करते हुए देव वन्दना की जाती है । मैं जन्म और माया से रहित—सर्वत्र गमन करने वाले भगवान् हरि की वन्दना करता हूँ जो आजन्मा—अजर अनन्त, और ज्ञानके स्वरूपके वाले महान्-अमल-अनादि-भूत देहादि से हीनहै । जो समस्त कारणोंसे रहित और सम्पूर्ण भूतों में वर्तमान हैं ।१। मैं भगवान् हरि-रुद्र-ब्रह्मा-गणों के स्वामीं (गणेश) देवी सरस्वती इन सब देवगणों को मन, वाणी और

कर्म के द्वारा सदा नमन करता हूँ।२। सम्पूर्ण शास्त्रों के महामनीषी—परमशांत स्वरूप वाले, पुराणों के विद्वान् एवं प्रवक्ता विष्णु के भक्त, महान आत्मा वाले और तीर्थों की यात्रा के प्रसङ्ग में नैमिषारण्य में आते हुए, शुभ आसन पर संस्थित भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले और अघरहित सूतजी की अभ्यर्चना करके उन कवि का स्तवन किया था।३-४। तपश्चर्यारूपी धन वाले, नैमिष नामक महारण्य के निवासी महान भाग्य से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी, शान्त रूप और निरन्तर यज्ञादि में परायण रहने वाले शौनक आदि महर्षिगण थे।५।

सूत जानासि सर्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयम्।
देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव कः ॥६
को ध्येयः को जगत्स्रष्टा जगत्पति च हन्ति कः।
कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः ॥७
तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः।
कैर्व्रतैः स तु तुष्टः स्यात् केन योगेन वाप्यते ॥८
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादिसम्भवः।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता कः प्रवर्त्तकः ॥९
एतत्सर्वंतथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते।
नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकमुत्तमा ॥१०

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! आप सभी कुछ जानते हैं। इसीकारण से हम लोग आपसे पूछते हैं। आप हम लोगोंको यह बताइये कि देवों का देव तथा इनका स्वामी एवं पूज्य कौन हैं।६। ऐसा कौन सा देव है जिसका ध्यान करना चाहिए ? इस जगत का सृजन करने वाला, विश्व का पालक और अन्त में संहार करने वाला कौन हैं? जिसके द्वारा लोक में धर्म प्रवृत्त हुआ करता हैं और संसार में उत्पन्न होने वाले दुष्ट पुरुष का हनन किया करता है ?।७। उस देव का कैसा स्वरूप है, इस जगत् का सर्ग किस प्रकार से माना गया है ? वह सर्वोपरि विराजमान सर्वेश्वर किन व्रतों के द्वारा परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करता है और

किस योग से प्राप्त किया जाता है ।८। उस सर्वेश्वर के कौन-से अवतार होते हैं और किस प्रकार से उनकी वंश आदि से समुत्पत्ति हुआ करती है ? लोक में जो ये वर्ण ब्राह्मण क्षत्रियादि है तथा ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम है इन सबका पालन करने वाला और प्रवर्तक कौन है ? ।९। यह सब तथा इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी बताने के योग्य हो उस सबको हे सूतजी ! आप हमको बताइये क्यों कि आप तो महान् मति वाले हैं। भगवान् नारायण से सम्बन्धित सभी उत्तम कथायें आप हमको बताइए ।१०।

पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णुकथाश्रयम् ।
गरुडोक्तं कश्यपायपुरा व्यासाच्छ्रुतं मया ।।११
एको नारायणो देवो देवानामीश्वरेश्वरः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत ।।१२
जगतो रक्षणार्थाय बासुदेवोऽजरोमरः ।
स कुमारादिरूपेण अतारान् करोत्यजः ।।१३
हरिः स प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मन् ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ।।१४
द्वितीयं तु भावायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुप दत्ते यज्ञेशः शौकरं वपुः ।।१५
तृतीयमृषिसर्गं तु देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रेसात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यंकर्मणां यतः ।।१६
नरनारायणो भूत्वा तुर्ये तेपेपरं हरिः ।
धर्मसंरक्षणार्थाय पूजितः स सुरासुरैः ।।१७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अब आप लोगों के समक्ष गरुड़ पुराण बताऊँगा जो कि परम सार स्वरूप है और विष्णु भगवान् की कथा के आश्रय वाला है। यह महापुराण पहिले गरुड़ ने कश्यप मुनि से कहा था और मैंने व्यासमुनि से श्रवण किया था ।११। समस्त देवों और ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् नारायण देव परमात्मा एक ही हैं। यही

पर ब्रह्म हैं और इनसे ही सम्पूर्ण विश्व का जन्मादि होता है ।१२। भगवान् वासुदेव वैसे स्वयं अजर एवं अमर है किन्तु इस जगत्की रक्षा के लिए वह कुमार आदि के स्वरूप से अजन्मा होकर भी अवतार धारण किया करते हैं ।१३। उस देव हरि ने सबसे प्रथम कौमार सर्गको ग्रहणकर हे ब्रह्मन् ! अति कठिन अखंडित ब्रह्मचर्य का पालन किया था ।१४। दूसरा स्वरूप अर्थात् अवतार इन भगवान् का रसातल को प्राप्त हुई भूमि का उद्धार करते हुए हुआ था जिसमें यज्ञोंके स्वामी ने वाराह का शरीर धारण किया था ।१५। तृतीय ऋषि का सर्ग हुआ था जिसमें उसने देवर्षित्व की प्राप्ति की थी अर्थात् नारद का शरीर धारण किया था और कर्मों की निष्कर्मता का सात्वत तन्त्र प्रचलित किया था ।१६। चौथे अवतार में हरि ने नर-नारायण का स्वरूप धारण कर तपश्चर्या की थी । धर्मके संरक्षण करने के लिए देव और असुरों ने उनकी अर्चना की थी ।१७।

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाच सूरये सांख्यं तत्वग्रामविनिर्णयम् ।।१८
षष्ठमत्रेरपत्यत्व दत्तः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्कायप्रह्लादिभ्य ऊचिवान् ।।१९
ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
सत्यामात्यैः सुरगणैर्यद्दृष्ट्वा स्वायम्भुवान्तरे ।।२०
अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जाति उरुक्रमः ।
दर्शयन्वर्त्म नारीणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।।२१
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धैर्महौषधैर्विप्रास्तेन संजीविताः प्रजाः ।।२२
रूपं स जगहे मात्स्यं चाक्षुषान्तरसंप्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ।।२३
सुरासुराणामुदधिं मथतां मन्दराचम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठे एकादशे विभुः ।।२४

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अप्याययत् सुरानन्यामोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ।।२५

पांचवाँ अवतार सिद्धेश कपिल का हुआ था जिसने अधिक कालसे विलुप्त हुए सांख्य शास्त्र की व्याखया कर तत्वों का विशेष निर्णय बताया था ।१८। छठा अवतार अत्रि की सन्तति के स्वरूप में अनुसूया के द्वारा प्राप्त हुआ जिसमें आन्विक्षि की विद्याको प्रह्लादादि के लिए बताया था ।१९। सप्तम सर्ग रुचि से आकृति में यज्ञ स्वरूप हुआ था और स्वायम्भुव सन्वन्तर में सामान्य सुरगणों के साथ यजन किया था ।२०। आठवें अवतार में नाभि से मेरु देवी में उरुक्रम हुए और सम्पूर्ण आश्रमों का बन्द्यमान नारियों का धर्म प्रदर्शित किया था।२१। ऋषियों के द्वारा याचना करने पर नवम पार्थिव शरीर धारण किया था । हे विप्रगण ! इस अवतार में दुग्ध एवं महौषधियों के द्वारा प्रजाओं को संजीवित किया था ।२२। उसने चाक्षुषान्तर संप्लव में मत्स्य का रूप धारण किया था और महीमयी नौका में चढ़ाकर वैवस्वत मनु की थी ।२३। उस व्यापक प्रभु ने समुद्र के मन्थन करनेमें प्रवृत्त होने वाले दैत्यों के मन्थन दण्ड की स्थिति में रहने वाले मन्दराचल की एकादशवें अवतार में कमठ के रूप में पीठ पर धारण किया था।२४। भगवान् धन्वन्तरि का बारहवाँ अवतार हुआ है । तेरहवें अवतार में परम सुन्दरी मोहिनी का स्वरूप धारण कर अपने रूप चावण्यातिरेक से सब को मोहित करते हुए देवोंको सुधा का पान कराकर तृप्त किया था।२५

चातुर्दशे नारसिंह चैत्य दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैरुग्रै रेरकां कटकृद्यथा ।।२६
पञ्चदशं वामनको भूत्वाऽगादध्वरं बलेः ।
पादत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ।।२७
अवतारे षोड़शके पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिः सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ।।२८

ततः सप्तदशे जातं सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२९
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रसादीनि चक्रे कार्याण्यतः परम् ॥३०
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥३१
ततः कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥३२
अथ सोऽष्टमसन्ध्यायां नष्टप्रायेषु राजसु ।
भविता विष्णुयशसो नाम्ना कल्की जगत्पतिः ॥३३
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः ।
मनुवेदविदो ह्याद्याः सर्वे विष्णुकलाः स्मृताः ॥३४
तस्मात्सर्गदयो जाता संपूज्याच्याश्च व्रतादिना ।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च ।३५

चौदहवाँ अवतार भगवान् नृसिंह का हुआ था जिसमें अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यपुको एरकाकटकृत की भाँति अपने अत्युग्र नखों से ही विदीर्ण किया था ।२६। पन्द्रहवाँ अवतार वामन देव का हुआ था जिसमें बहुत ही छोटा वामन अँगुल का बौना रूप धारण कर भगवान् राजा बली के यज्ञ में गये थे । वहाँ केवल तीन पैंड भूमि की याचना करके तीन लोकों के त्रिविष्टप को ही नाप डाला था ।२७। सोलहवें अवतार में परशुराम का स्वरूप धारण किया था । जब यह देखा था कि राजा लोग ब्रह्मद्रोही हो गये हैं तो क्रोधित होकर ऐसा सङ्कल्प किया था कि मैं भूमि को मैं क्षत्रियों से रहित कर दूँगा और इक्कीस बार उसे क्षत्रिय विहीन कर दिया था। २८। फिर सत्रहवें अवतार में पराशर मुनि से सत्यवती नाम वाली धीवर कन्यामें व्यास के स्वरूपमें समुत्पन्न हुए थे और मनुष्यों को अल्प बुद्धि वाले देखकर वेद रूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओं की रचना करदी थी ।२९। इसके पश्चात् देवों के

कार्यों के सम्पादन करने की इच्छा से नरदेवत्व को प्राप्त होकर समुद्र का निग्रह आदि कर्म किये थे ।३०। उन्नीसवें और बीसवें अवतार में वृष्णियोंके वंशमें जन्म ग्रहण करके बलराम और कृष्ण इन शुभ नामों वाले अवतार हुएथे और भगवान् ने इस वसुधा का भार हलका किया था ।३१। इसके अनन्तर कलियुग के सन्ध्यान्त में सुरद्विषों के सम्मोह के लिये कीटकों में जिनका पुत्र 'बुद्ध' इस नाम वाला अवतार हो ।३२। इसके पश्चात् अष्टम सन्ध्या में जब कि सभी राज्य प्रायः नष्ट जैसे हो जायेंगे तब विष्णुयश से कल्की नाम वाला इस जगत् के स्वामी का अवतार होगा ।३३। हे द्विजगण ! सत्यनिधि भगवान् के यों तो असंख्य अवतार हैं । मनु वेदों के ज्ञाता आदि सभी विष्णु के ही कलांशावतार कहे गये हैं । इसीलिए ये सर्ग आदि हुए हैं कि इनकी व्रतादि के द्वारा भली-भाँति पूजा करनी चाहिए । पहिले व्यास मुनिने आठ हजार आठ सौ पद्यों से पर्ण यह गरुड़-पुराण को मुझे सुनाया था ।३४-३५।

१—गरुड़ पुराण की उत्पत्ति

कथं व्यासेन कथितं पुराणं गारुडं तव ।
एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम् ॥१
अहं हि मुनिभिः सार्द्धं गतो वदरिकाश्रमम् ।
तत्र दृष्टो मया व्यासो ध्यायमानः रमेश्वरम् ।
तं प्रणम्योपविष्टोऽहं पृष्ठवान्हि मुनीश्वरम् ॥२
व्यास ब्रूहि हरे रूपं जगत्सर्गादिकं ततः ।
मन्ये ध्यायसि तं तस्मात्तस्माज्जानासि तं विभुम् ॥३
एवं पृष्टो यथा प्राह तथा विप्रा निबोधतम् ॥४
शृणु सूत प्रवक्ष्यामि पुराणं गारुडं तव ।
सह नारददक्षाद्यैर्ब्रह्मा मामुक्तवान् ॥५
दक्षनारदमुख्यैस्तु युक्तं त्वाकथमुक्तवान् ।
ब्रह्मा श्री गारुडं पुण्य पुराणं सारवाचकम् ॥६

अहं हि नारदो दक्षो भृग्वाद्याः प्रणिपत्य तम् ।
सारं ब्रूहीतिपप्रच्छुर्ब्रह्माणं ब्रह्मलोकगम् ।।७
पुराणं गारुडं सारं पुरा रुद्रञ्च मां यथा ।
सुरैः सहाब्रवीद्विष्णुस्तथाऽहं व्यास वच्मि ते ।।८

ऋषियों ने कहा—महामुनि व्यास ने आपको यह गरुड महापुराण कैसे सुनाया था भगवान् विष्णु के आश्रय युक्त इसे सबको हमें श्रवण कराइये ।१। सूतजी ने कहा—एक समय में मुनियों के साथ बद्रिकाश्रम को गया था और वहाँ मैंने परमात्मा के ध्यान में समास्थित व्यास मुनि का दर्शन किया था । उस वक्त मैं उनको प्रणाम करके समीप में बैठ गया था और फिर मैंने उन महामुनि से पूछा था—हे महामुनीश्वर व्यास देव ! भगवान् हरि के स्वरूप और फिर उसके द्वारा इस जगत्के सर्गादिक का वर्णन कीजिये । मैं यह समझता हूँ कि आप सर्वदा उनका ही ध्यान किया करते हैं अतएव व्यापक भगवान् के स्वरूप आदि को भली–भाँति जानते होंगे । हे विप्रगण ! इस प्रकार से जब मैंने उनसे पूछा तो जिस प्रकार से उन्होंनें मुझसे कहा था उसी तरह में तुमको बताता हूँ उसे तुम लोग मुझसे समझलो ।२-३। व्यासजी ने मुझसे कहा था—हे सूत मैं अब तुमको गरुड पुराण को सुनाता हूँ जो कि नारद दक्ष आदि तथा ब्रह्मा ने मुझे कहा था । सूतजी ने कहा मैंने व्यासजी से भी इसी तरह पूछा था कि दक्ष नारद आदि प्रमुख देवों ने तथा ब्रह्माजी ने यह परम सार वाचक गरुड-पुराण अत्यन्त योग्य आपको क्योंसुनाया था ? व्यासजी ने इसके उत्तर में मुझसे कहा था कि एक बार मैं,नारद, दक्ष तथा भृगु प्रभृति सबने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से पूछा था कि आप परम सार वस्तु हमको बताइये तब ब्रह्माजी ने कहा था—हे व्यास! पहिले समय में भगवान् विष्णु ने देवों सहित रुद्र को और मुझको जो यह सारभूत गरुड पुराण कहा था वही अब मैं तुमको बताता हूँ ।४-८।

कथं रुद्रं सुरैः सार्द्धमब्रवीद्वा हरिः पुरा ।
पुराणं गारुडं तन्मे सारं तन्मे ब्रूहि महार्थकम् ।।९

अहं गतोऽद्रिकैलासमिन्द्राद्यैर्वतैः सह ।
तत्र दृष्टो मया रुद्रो ध्यायमानः परं पदम् ॥१०
पृष्टो नमस्कृतः कं त्वं देवं ध्यायसि शङ्कर ।
त्वत्तो नान्यं परं देवं जानामि ब्रूहि मां ततः ।
सारात् सारतरं तत्वं श्रोतुकामः सुरैः सह ॥११
अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम् ।
सर्वदं सर्वगं शान्तं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥१२
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामण्डलमण्डितः ।
विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह ॥१३
तमेव गत्वा पृच्छामः सारं यं चिन्तयाम्यहम् ।
विष्णुं पद्मनाभं च हरिं देहविवर्जितम् ॥१४
शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम् ।
युक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥१५

व्यास ने ब्रह्माजी से कहा—हे ब्रह्मन् ! पहिले हरि भगवान् ने इस महान् से भी महान् अर्थ वाले गरुड़ पुराण को देवों के साथ रुद्र देव को क्यों बताया था । तब ब्रह्माजी ने व्यास से कहा एक बार मैं समस्त देवों को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर गया था । वहाँ पर मैंने परम पद के ध्यान में स्थित भगवान् रुद्रदेव का दर्शन किया था ।९-१०। हम लोगों ने उनको नमस्कार करके उनसे पूछा था—हे भगवान् शङ्कर ! आप किस देवका ध्यान कर रहे हैं क्योंकि आपसे परे तो अन्य कोई भी देव नहीं है । हम इस बात को अच्छी तरहसें समझते हैं । वह देव कौन है ? आप ठीक प्रकार से मुझको बताइए । मैं इन सब देवों के साथ यहाँ सार के भी सार स्वरुप जो देव हो, उसे सुनना चाहता हूँ ।११। मेरे इस प्रश्न का उत्तर रुद्रदेव ने देते हुए कहा था मैं उस परमात्मा विष्णु का ध्यान किया करता हूँ जो सभी कुछ प्रदान करने वाले सर्वत्र गमन करने वाले समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित और

सर्व स्वरूप हैं। हे पितामह ! भस्म से सम्पूर्ण शरीर को उद्धूलित करके शिर पर जटाजूट धारण करने वाले मेरी उसी भगवान् विष्णु के आराधना करने की ब्रह्मचर्या है।१२-१३। जिनका मैं अहर्निश चिन्तन किया करता हूँ उन्हींके समीप में चलो चलकर सारको पूछे। वे विष्णु पद्मनाभ और देह से रहित हैं। वे स्वयं शुचि हैं, उनका पद (स्थान) परम शुचि (पवित्र) है। वे ब्रह्म स्वरूप हैं, परम ईश्वर हैं। वे सर्वात्माओं से युक्त होकर विराजमान हैं उन्हीं परात्पर देव का मैं ध्यान किया करता हूँ।१४-१५।

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विशन्ति च।
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥१६
सहस्राक्षं सहस्राङ्घ्रिं सहस्रोरुं वराननम्।
अणीयसमाणीयांस स्थविष्ठञ्च स्थवीयसाम्।
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयसामपि ॥१७
यं वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिषत्सु च।
गृणन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ॥१८
पुराणपुरुषः प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिषु।
क्षये सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे ॥१९
यस्मिन्लोकाः स्फुरन्तीमे जलेषु शकुनो यथा।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम्।
अर्चयन्ति चयंदेवा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥२०
यस्यमाग्नि रास्यंद्यौर्मूर्द्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः।
चन्द्रादित्यौ च नयने तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२१
यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य काष्ठाश्च बोहवः।
यस्योच्छ्वासश्चपवनः तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२२
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२३

समस्त भूतों के ईश उनमें सूत्र में मणियों की भाँति इस सम्पूर्ण विश्व में स्थित रहा करते हैं और गुणभूत होकर प्रवेश किया करते हैं ।१६। वे भगवान् विष्णु सहस्र नेत्रों वाले हैं, सहस्रों चरणों से युक्त हैं उनके सहस्रों उरु हैं, श्रेष्ठ मुख वाले, सूक्ष्मोंमें भी परम सूक्ष्म स्थलों से भी अति स्थूल, गुरुओं में सबसे अधिक गुरु और श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ हैं। जिनको वाक्यों, अनुवादों में, उपनिषदों में सत्य कर्म करने वाला ग्रहण किया जाता है और सत्य साभों में उनका सत्य स्वरूप बताया जाता हैं ।१७-१८। उन्हें ही पुराण पुरुष और द्विजातियों में ब्रह्म कहा गया है और उनको ही इस सृष्टि के क्षय काल में सङ्कर्षण नाम से पुकारा गया है। उसी उपासना करने के योग्य भगवान् की हत उपासना किया करते हैं ।१९। जिनमें, यह समस्त लोकों का समुदाय जल में शकुन की भाँति स्फुरित हुआ करता है। वह ऋत-एकाक्षर ब्रह्म और सत् अथवा असत् से भी पर है। जिसकी अर्चना ये सभी यक्ष-राक्षस और पन्नग किया करते हैं ।२०। अग्नि जिसका मुख है, दिवलोक जिसका मूर्द्धा है, आकाश नाभि, चरण क्षिति, तल और चन्द्र एवं सूर्य जिस परमात्माके दोनों नेत्र हैं मैं उसी देव का निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन किया करता हूँ ।२१। यह त्रैलोक्य अर्थात् तीनों लोक जिसके उदर में हैं समस्त दिशायें जिसकी बाहु हैं, पवन जिसका उच्छ्वास है उसी परम देव का मैं चिन्तन किया करता हूँ ।२२। जिसके केशों में मेघ हैं और नदियाँ समस्त अङ्गों की संधियोंसे हैं तथा जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र स्थित रहा करते हैं उसी देव का मैं ध्यान करता हूँ ।२३।

परः कालात्परो यज्ञात्परः सदसतश्च यः।
अनादिरादिर्विश्वस्य तं देवं चिन्तयामयहम् ।।२४
मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकरः।
मुखादग्निश्च संजज्ञे तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२५
पद्भयां यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्रभ्यां च तथा दिशः।
मूर्द्ध भागादिदत्रं यस्य तां देत्रं चिन्तयाम्यहम् ।।२६

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं यस्मात्तं देव चिन्तयाम्यहम् ।।२७
यं ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजामः सारमीक्षितुम् ।।२८
इत्युक्तोऽहं पुरारुद्र श्वेतद्वीपनिवासिनम् ।
स्तुत्वा प्रणम्य तां विष्णुं श्रोतुकामाः किल स्थिराः ।।२९
अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम् ।
सारात्सारतरं विष्णुं पृष्टवीस्तां प्रणम्य वै ।।३०
यथा पृच्छसि मां व्यासस्तथासौ भगवान्भवः ।
पप्रच्छ विष्णुं देवाद्यैः शृण्वतो मम वै सह ।।३१

जो परमेश काल से भी पर है—यज्ञ से और सत् तथा असत् से भी पर है, जिसका कोई आदि काल नहीं है ऐसे इस विश्व के आदि स्वरूप उस देवेश्वर का मैं चिन्तन करता हूँ ।२४। जिसके मन से चन्द्रमा-नेत्रों से दिवाकर (सूर्य) मुख से अग्नि, की उत्पत्ति होती है उस देव की मैं आराधना करता हूँ ।२५। जिसके चरणों से भूमि समुन्नत हुई है तथा श्रोत्रों से सम्पूर्ण दिशाओं की उत्पत्ति हुई है और जिसके मूर्द्धा के भाग से दिवलोक पैदा हुआ है मैं उसी देव का ध्यान करता हूँ ।२६। सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर और वंशानुचरित जिससे ये सभी हुए हैं । मैं उस देव का चिन्तन किया करता हूँ ।२७। मैं जिसका ध्यान करता हूँ उसी से इसका सार जानने को हम सब चलते हैं ।२८। इस प्रकार कहे जाने पर मैं और रुद्र श्वेत द्वीप में निवास करने वाले भगवान् विष्णुके पास जाकर सबने उन्हें प्रणाम किया और श्रवण करने की इच्छा वाले वहाँ स्थित होकर बैठ गए थे ।२९। हम सबमें से रुद्रदेव परमेश्वर से बोले और सार से भी सार है उसे विष्णु से उन्होंने पूछा था और उनको प्रणाम किया था ।३०। ब्रह्मा ने कहा—जैसे व्यास मुझसे पूछते हैं वैसे ही भगवान् शिव ने विष्णु से पूछा था । वहाँ उस समय समस्त देवों के सहित मैं भी श्रवण कर रहा था ।३१।

हरे कथय देवेश देवदेवः क ईश्वरः ।
कोध्येयः कश्च वै पूज्यः कैव्रं तैस्तुत्यसे परः ।।३२
कैर्धर्मैः कैश्च नियमैः कया वा धर्मपूजया ।
केनाचारेण तुष्टः स्यात्किं तद्रूपञ्च तस्य वै ।।३३
कस्माद्देवाज्जगज्जातं जगत्पालयते च कः ।
कीदृशैरवतारैश्च कस्मिन्याति लयं जगत् ।।३४
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वतराणि च ।
कस्माद्देवात्प्रवर्त्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम् ।
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन ।।३५
परमेश्वरमाहात्म्यं युक्तयोगादिकं तथा ।
तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्रं ततोऽब्रवीत् ।।३६
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह ।
अहं हि देवोदेवानां सर्वलोकेश्वरः ।।३७

भगवान् रुद्र ने कहा—हे देवों के स्वामिन् ! हे हरे ! आप कृपाकर हमको यह बताइए कि देवों का भी देवेश्वर कौन है ? कौन ध्यानकरने योग्य है और किसकी पूजा करनी चाहिए ? वह रुद्रदेव जो कोई हो, किन व्रतों से तुष्ट हो जाता है ? ।३२। किन धर्मोंके द्वारा तथा कौन-से नियमों की उपासना करने से अथवा किस धर्म की अर्चनासे और किस प्रकार के कौन-से आचार से वह सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होता है ? यह भी वताइए उसका स्वरूप क्या है ? ।३३। किस देव से यह जगत् समुन्नत हुआ है और इसका कौन पालन किया करता है ? वे किस प्रकार के अवतार हुआ करते हैं ? अन्त में यह जगत् किस में विलीन हो जाया करता है ।३४। सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर और वंशानुचरित किस देव से प्रवृत्त हुआ करते हैं और किसमें जाकर प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ? हे हरे ! यह सब बताइए । इसके अतिरिक्त अन्य भी कुछ बतानेके योग्य हो वह भी बता दीजिए ।३५। इसके अनन्तर भगवान् हरिने रुद्र देवको परमेश्वर का माहात्म्य, युक्त का योगादिक तथा अठारह विद्यायें बताई

थीं ।३६। हरि ने कहा—हे रुद्र ! ब्रह्मा और समस्त देवों के सहित आप श्रवण करो, मैं अब तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ । मैं ही सम्पूर्ण देवों का देव तथा समस्त लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर हूँ ।३७।

अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽहं स्तुतिभिः सुरैः ।
अहं हि पूजितो रुद्र ददामि परमां गतिम् ।।३८
नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवैः ।
जगत्स्थितेरहं बीजं जगत्कर्त्ता त्वहं शिव ।।३९
दुष्टनिग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर ।
अवतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिलं जगत् ।।४०
अहं मन्त्राश्च मन्त्रार्थः पूजाध्यानपरो ह्यहम् ।
स्वर्गादीनां च कर्त्ताऽहं स्वर्गादीन्महमेव च ।।४१
ज्ञाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च ।
सर्वः सर्वात्मको देवो भुक्तिमुक्तिकरः परः ।।४२
ध्यानं पूजोपहारोऽहं मण्डलान्यहमेव च ।
इतिहासन्यहं रुद्र सर्वदेवी ह्यहं शिव ।।४३
सर्वज्ञानान्यहं शम्भौ ब्रह्मात्माहमहं शिवः ।
अहं ब्रह्मा सर्वलोकः सर्वदेवात्मको ह्यहम् ।।४४
अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं पुरातनः ।।४५
यमोऽहं नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च ।
अहं सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यहं तथा ।।४६

मैं ही ध्यान करने के योग्य हूँ—पूजा करने के योग्य हूँ । हे रुद्र ! मैं ही पूजित होकर परम प्रसन्न होते हुए परमगति प्रदान दिया करता हूँ ।३८। मानवों के शुद्ध आचार-व्रत और नियमों से मैं अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करता हूँ । इस जगत् की स्थिति का मैं ही बीज हूँ और हे शिव ! मैं ही इस जगत् की रचना करने वाला हूँ ।३९। हे हर ! दुष्टजनों के निग्रह को करने वाला और धर्म की रक्षा करने वाला भी मैं हूँ । मत्स्य आदि अनेक अवतारों के द्वारा मैं इस समय

जगत् का पालन करता हूँ ।४०। मैं ही स्वयं मन्त्र हूँ तथा मैं ही अर्थ भी हूँ और पूजा एवं ध्यान में तत्पर रहने वाला मैं ही हूँ । स्वर्ग आदि का करने वाला और स्वर्गादि भी मैं ही हूँ ।४१। ज्ञाता अर्थात् ज्ञान रखने वाला श्रवण करने वाला-मन्ता-वक्ता और वक्तव्य भी यह सब कुछ सर्वात्मक अर्थात् सबके स्वरूप वाला देव भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला परम मैं ही हूँ ।४२। ध्यान पूजा का ध्यान उपहार अर्थात् वे सभी पदार्थ जो अर्चा में समर्पित किए जाते हैं मैं हूँ समस्त मण्डल मैं हूँ-इतिहास भी मैं ही हूँ। हे रुद्र ! समस्त देवों का स्वरूप भी मेरा ही स्वरूप हैं—मैं ही शिव हूँ ।४३। हे शम्भो ! मैं ब्रह्मा की आत्मा हूँ मैं ही ब्रह्मा समस्त लोक और सर्व देवात्मक मैं ही हूँ ।४४। साक्षात् सदाचार-धर्म और वैष्णव तथा वर्ण एवं सम्पूर्ण सदाचार उनके धर्म और परात्म मैं ही हूँ अर्थात् यह सब भी मेरा ही स्वरूप है ।४५। हे रुद्र ! यम-नियम-विविध भाँति के व्रत, सूर्य-चन्द्र तथा मङ्गल आदि अन्य ग्रह यह सब मेरा ही स्वरूप है ।४६।

पुरा मां गरुडः पक्षी तपसाऽऽराधयद् भुवि ।
तुष्ट ऊचे वरं ब्रूहि मत्तो वर स च ।।४७
मम माता च विनता नागैर्दासीकृतां हरे ।
ययाहं दैवतान्जित्वा चामृतं ह्यानयामि तत् ।।४८
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाहं वाहनस्तव ।
महावली महावीर्यः सर्वज्ञो नागदारणः ।
पुराणसंहिताकर्त्ता यथाऽहं स्यो तथा तव ।।४९
यथा त्वयोक्तं गरुड़ तथा सर्वं भविष्यति ।
नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि ।।५०
देवादीन्सकलान्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यति ।
महाबलो वाहनस्त्वं भविष्यसि विषार्दनः ।।५१
पुराणं मत्प्रसादच्च मम माहात्म्यवाचकम् ।
यदुक्तं मत्स्यरूपं च चाविर्भविष्यति ।।५२

गारुड़ं तव नाम्ना तल्लोके ख्यातिं गमिष्यति।
यथाऽहं देवदेवानां श्रीः ख्याता विनतासुत।
तथा ख्यातिं पुराणेषु गारुड़ं गरुड़ष्यति ॥५३

पहिले गरुड़ पक्षी ने भूतल पर तपश्चर्या द्वारा मेरी समाराधना की थी, मैं उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उससे बोला था कि तू अपना वरदान माँग ले। उसने मुझसे कहा हे हरे ! मेरी बिनता को नागों ने दासी बना रखा है। ऐसा कृपया वर दीजिये कि मैं देवों को जीतकर अमृत को ले आऊँ और माता को दासीपन से छुटकारा दे सकूँ और मैं आपका वाहन बन जाऊँ-सर्वज्ञाता और नागोंको विदीर्ण करने वाला तथा पुराण एवं संहिताओं की रचना का विधायक हो जाऊँ।४८-४९। तथा विष्णु ने कहा हे गरुड़ ! जो कुछ तुमने मुझसे याचना करके कहा है वह सभी कुछ हो जाएगा। तू अपनी माता विनता को नागों के दास्य भाव से अवश्य विमुक्त कर देगा।५०। तुम सब देवताओं पर विजय करके अमृत ले आओगे और महान् बलशाली विष का मर्दन करने वाला मेरा वाहन भी बन जाओगे।५१। मेरी कृपा से मेरे माहात्म्य को बताने वाले पुराण की रचना के विषय में जो तुमने चाहा है वह मेरा स्वरूप भी तुमको आविर्भूत हो जायगा।५२। हे विनता के पुत्र ! जिस प्रकार से देवदेवों की श्री मैं विख्यात हूँ उसी भाँति यह पुराण तुम्हारे नाम से गरुड़ लोक में ख्याति को प्राप्त होगा। पुराणों में गरुड़ की ख्याति गरुड़ को तीव्र गति के समान ही प्रसृत हो जाएगी।५३।

यथाहं कीर्त्तनीयोऽयं तथा त्वं गरुड़ात्मना।
मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुड़म् ॥५४
इत्युक्तो गरुड़ो रुद्र कश्यपायाह पृच्छते।
कश्यपो गारुड़ं श्रुत्वा वृक्षं दग्धमजीवयत् ॥५५
स्वयञ्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत्।
ॐ यक्षि ॐ हूँ स्वाहा जापो विद्येयं गारुडी परा।

गरुडोक्तं गारुडं हि शृणु रुद्र महात्मकम् ॥५६

जिस प्रकार से मैं कीर्तन करने के योग्य हूँ वैसे ही तुम भी गरुड़ात्मा के द्वारा कीर्तन के योग्य हो। मेरा ध्यान करके पक्षि मुख्य का यह गरुड़ पुराण कहो।५४। हे रुद्र ! इस रीतिसे कहे हुए गरुड़ने पूछने वाले कश्यप से कहा था। कश्यप ने गरुड़ पुराण का श्रद्धा से श्रवण कर दग्ध हुए वृक्ष को सजीक कर दिया था।५५। और स्वयं अन्य मन वाला होकर विद्या से अन्यों को जीवित कर दिया था। "यक्षि ॐ ह्रूं स्वाहा" इसका जाप करने वाला हुआ। यह पूरा गारुड़ी विद्या है। हे रुद्र ! गरुड़ के द्वारा कहा गया गारुड़ माहात्म्य का आप श्रवण करो।५६।

३—पुराण कीर्तन का उपक्रम

इति रुद्राब्जजौ विष्णोः शुश्राव ब्रह्मणो मुनिः।
व्यासो व्यासादहं वक्ष्येऽहं ते शौनक नैमिषे ॥१
मुनीनां शृण्वतां मध्ये सर्गाद्यं देवपूजनम्।
तीर्थं भुवनकोषञ्च मन्वन्तरमिहोच्यते ॥२
वर्णाश्रमादिधर्माश्च दानराज्यादिधर्मकाः।
व्यवहारो व्रतं वंशा वैद्यकं सन्निदानकम् ॥३
अङ्गानि प्रलयो धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम्।
सप्रपञ्चं निष्प्रपंचं कृतं विष्णोर्निगद्यते।
पुराणे गारुडो सर्वं गरुडो भगवानथ ॥४
बासुदेवप्रसादेन सामर्थ्यातिशतैर्युतः।
भूत्वा हरेर्वाहनञ्च सर्गादीनां च कारणम्।
देवान् विजित्य गरुडों ह्यमृताहरणं तथा ॥५
चक्रे क्षुधाहतं यस्य ब्रह्माण्डमुदरे हरेः।
यं दृष्ट्वा स्मृतमात्रेण नागादीनांच संक्षयम् ॥६
कश्यपो गारुडाद् वृक्षं दग्धं चाजीवयद्यतः।
गरुडः स परिस्तेन प्रोक्तं श्रीकश्यपाय च ॥७

तत् श्रीमद्गरुड़ं पुण्यं सर्वदं पठितं तव ।
हरिरित्थं च रुद्राय शृणु शौनक तद्यथा ॥८

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! यह व्यास मुनि ने रुद्र और ब्रह्मा से परम ब्रह्म भगवान् विष्णु ने कहा था । फिर व्यास मुनि से मैंने सुना था । उसे तुमसे कहता हूँ । नैमिषारण्य में समस्त श्रवण करने वाले मुनियों के मध्य वहाँ पर सर्ग का आद्य देवपूजन-तीर्थ-पूजन कोष और मन्वन्तर कहा जाता है ।१-२। वर्णों तथा आश्रम आदि के धर्म, दान और राज्य प्रभृति के धर्म व्यवहार, व्रत, वंश, निदान के सहित वैद्यक, अङ्ग, प्रलय तथा धर्म, काम और अर्थ का उत्तम ज्ञान विष्णु का किया हुआ प्रपंच सहित एवं निष्प्रपंच सब कहा जाता है । यह सभी कुछ भगवान् गरुड़ ने अपने गरुड़ पुराण में कहा है ।३-४। भगवान् वासुदेव के प्रसाद से अतिशायित सामर्थ्य से युक्त होकर गरुड़ हर भगवान् का वाहन हुआ और सर्गादि का कारण बना था । तथा समस्त देव आदि के ऊपर बिजय प्राप्त कर गरुड़ नें अमृत का अपहरण किया था ।५। जिस भगबान् हरि के उदर में क्षुधा से आहत ब्रह्माण्ड किया था, जिसको देखकर स्मरण मात्र से ही नाग आदि का संक्षय किया था ।६। कश्यप ने गरुड़ से ही वृक्ष को दग्ध कर दिया था । भगवान् हरि नें गरुड़ से कहा था और गरुड़ ने इस विद्या को कश्यप को बताया था ।७। वह श्रीमत् गरुड़ पुराण पढने पर तुमको सब प्रदान करने वाला होगा । इस प्रकार से भगवान् हरि ने रुद्र देव से कहा था । हे शौनक ! आप लोग मुझसे यह सब उसी प्रकार से श्रवण करो ।८।

४—सृष्टि कथन (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि की उत्पत्ति)

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव एतद् ब्रूहि जनार्दन ॥१
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि सर्गादीन् पापनाशनान् ।
सर्गस्थितिप्रलयान्तां विष्णोः क्रीड़ां पुरातनीम् ॥२

नरनारायणो देवो वासुदेवो निरञ्जनः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जगज्जनिलयादिकृत् ॥३
तदैतत् सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपबन् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥४
व्यंक्तं विष्णुस्थाऽव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय ॥५
अनादिनिधना धाता त्वनन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्माद्भवति चाव्यक्तं तस्मादात्मापि जायते ॥६
तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्ततः खं पवनस्ततः ।
तस्मात्तेजस्तस्त्वापस्ततो भूमिस्ततोऽसृजत् ॥७

श्री रुद्रदेव ने कहा—हे जनार्दन ! अब आप कृपा करके सर्ग-, तिसर्ग-वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित वर्णन कीजिए । अब भगवान् श्री हरि ने कहा -हे रुद्र ! तुम श्रवण करो, अब मैं पापों के नाश करने वाले सर्ग आदिका बर्णन करता हूँ जोकि भगवान् विष्णु की सर्ग-स्थिति और प्रलयके अन्त तक बहुत पुरातन क्रीड़ा होती है ।१-२। देव-नारायण, वासुदेव, निरंजन, परमात्मा परब्रह्म और इस जगत् के जन्म और निलय आदि के करने वाले हैं । वही यह सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है तथा वह ही पुरुष के रूप से और काल के स्वरूप में अवस्थित रहता है ।४। विष्णु व्यक्त स्वरूप वाले हैं. और उसी का अव्यक्त स्वरूप पुरुष तथा काल होता है । एक बालक की भाँति क्रीड़ा करने वाले परम पुरुष की समस्त चेष्टाओं का श्रवण करो ।५। धाता पुरुषोत्तम भगवान् आदि और अन्त से रहित एवं अनन्त स्वरूप वाले हैं । उनसे अव्यक्त और उससे आत्मा भी उत्पन्न होता है ।६। उससे बुद्धि मन होता है । फिर उससे आकाश, उससे पवन, फिर उससे तेज, उससे जल और उससे भूमि का सृजन किया था ।७।

अण्डो हिरण्मयो रुद्रतः तस्यान्तः स्वयमेव हि ।
शरीरग्रहणं पूर्वं सृष्ट्यर्थं कुरुते प्रभुः ॥८

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा रजोमात्राधिकः सदा ।
शरीरग्रहणं कृत्वाऽसृजदेतच्चराचरम् ॥९
अण्डस्यान्तजगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ।
उपसहरते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं हरिः ॥१०
ब्रह्माभूत्वासृजद्विष्णुर्जगत् पाति हरिः स्वयम् ।
रुद्ररूपो च कल्पांते जगत् संहरते प्रभुः ॥११
ब्रह्मातु सृष्टिकालेऽस्मिन् जलमध्यगतां महीम् ।
दंष्ट्रयोद्धरति ज्ञात्वा वाराहीमास्थलस्तनुम् ॥१२
देवादिसर्गाद्वक्ष्येहं संक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
प्रथमो महतः सर्गो विरूपो ब्रह्मस्तु सः ॥१३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चेन्द्रियकः स्मृतः ॥१४
इत्येषः प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥१५

हे रुद्र ! हिरण्य अण्ड और उसके मध्य में स्वयं ही विराजमान रहते हैं । प्रभु पहिले ऋषि के लिए शरीर का ग्रहण किया करते हैं ।८। चारमुखों वाला ब्रह्मा सदा रजोगुण की अधिक मात्रा वाला होकर शरीर ग्रहण करते हैं और फिर उन्होंने सम्पूर्ण चर एवं अचर जगत् का सृजन किया था ।९। सृष्टाअण्ड के समस्त अन्तर्जगत् को जिस में देव-असुर मनुष्य सभी हैं, रचते हैं और विष्णु आत्मा को तथा पालन करने के योग्य का पालन एवं रक्षण करते हैं । फिर अन्त में स्वयं ही हरि ही संहर्त्ता होकर इस जगत् का उस संहरण किया करते हैं ।१०। प्रभु ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके सृजन करते हैं, हरि स्वयं ही विष्णु के रूप में फिर इस जगत् का पालन करते हैं और कल्प के अन्त में वही प्रभु रुद्र के रूप वाले होकर सम्पूर्ण जगत् का संहार किया करते

।११। ब्रह्मा सृष्टि के समय में इस मही को जल के मध्य गई हुई जान कर वाराह के शरीरको धारण कर अपनी दाढ़ से इसका उद्धार किया है ।१२। हे शंकर ! अब हम देवादि के सर्ग से संक्षेप में कहेंगे । तुम इसको सुनो । सबके महत्व का सर्ग है जो ब्रह्मा का विरूप होता है ।१३। दूसरा पञ्चतन्मात्राओं का सर्ग होता है जो कि भूत सर्ग इस नाम से कहा गया है । तीसरा ऐन्द्रियक सर्ग होता है और वैकारिक सर्ग कहा जाता है । इस प्रकार से बुद्धि पूर्वक प्राकृत सर्ग सम्भूत हुआ है । फिर चतुर्थ मुख्य सर्ग होता है और मुख्य स्थावर कहे गए हैं ।१४-१५।

तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः सः उच्यते ।
तदूर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।।१६
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गन्सप्तमः स तु मानुषः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्विकस्तामसस्तु सः ।।१७
पंचैते वैकृताः सर्गा प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चापि कौमारो नवमः स्मृतः ।।१८
स्थावरान्ता सुराद्यास्तु प्रजा रुद्र चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसाः सुताः ।।१९
ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वामात्मानपूजयत् ।।२०
मुक्तात्मनस्तु मात्रायामुद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जंघान् पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ।।२१
उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
तमोमात्रा तनुस्त्यक्ता शंकराऽभूद्विभावरी ।।२२

तिर्यक् स्रोत्र जो कहा गया है वह तिर्यक् योग्य सर्ग कहा जाता है । उससे ऊर्ध्व स्रोतों में छटवाँ सर्ग नाम से पुकारा जाता है ।१६। उससे अर्वाक् स्रोतों में सातवाँ मानुष सर्ग होता है । आठवाँ अनुग्रह सर्ग है । वह सात्विक और तामस होता है ।१७। इस तरह ये पांच

वैकृत सर्ग होते हैं और तीन प्राकृत सर्ग कहे गए हैं । कौमार नवम सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का होता है ।१८। हे रुद्र ! सुरों से लेकर स्थावर पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा होती है । सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे ।१९। इसके पश्चात् देव, असुर, पितृगण और मनुष्य इन चारों के सृजन की बच्छा रखने वाले ब्रह्माने इन जलोंमें अपनी आत्माका अर्चन किया था ।२०। मुक्तात्मा प्रजापति की मात्रा में उद्रिक्ता हुई थी । सृजनेच्छुक के जाँघ से पहिले असुर उत्पन्न हुए थे ।२१। फिर उस तमोमात्रात्मक शरीर का त्याग कर दिया था और तमोमात्रा त्यक्त वह तनुशंकरा विभावरी (अँधेरी रात्रि) हो गयी थी ।२२।

सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुरा ।
सत्वोद्रिक्तास्तु मुखतः संभूतः ब्रह्मणो हर ॥२३
सत्वप्राया तनुस्तेन संत्यक्ता सोप्यभूद् दिनम् ।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥२४
सत्वमात्रान्तरं गृह्य परतश्च ततोऽभवन् ।
सा चोत्सृष्टा ऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥२५
रजोमात्रान्तरं गृह्य मनुष्यास्त्वभवंस्ततः ।
सा त्यक्ता चाभज्ज्योत्स्ना प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ॥२६
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या शरीराणि तु तस्य वै ।
रजोमात्रान्तरं गृहय क्षुदभूत् कोप एव च ॥२७
क्षुत्क्षमानभृजत् ब्रह्मा राक्षसान् रक्षणाच्च सः ।
यक्षाख्या यक्षणाज्ज्ञेयाः सर्पा वै केशसर्पणात् ॥२८

हे हर ! जब अन्य देह में स्थित होकर सृष्टि के सृजन की इच्छा करने वाले हुए तो बहुत प्रीति को प्राप्त हुए और ब्रह्माके मुख से सत्व गुण के उद्रेक वाले सुर उत्पन्न हुये थे ।२३। वह सत्वोद्रिक शरीर भी उसने त्यक्त कर दिया था जो कि दिन हो गया था । तभी से असुर लोग रात्रि में बल सम्पन्न हुए थे और देवगण दिन में बली हुए थे

।२४। सत्यमात्रा के और अन्य अन्तर के उत्सर्ग से दिन तथा रात्रि के मध्य में स्थित करने वाली सन्ध्या समुत्पन्न हुई थी ।२५। रजोमात्रान्तर का ग्रहण करके फिर उस शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए थे । वह शरीर भी परित्यक्त कर दिया तो ज्योत्स्ना हुई जो प्राक्सन्ध्या कही जाती है ।२६। ये ज्योत्स्ना-रात्रि-दिन और सन्ध्या उसके शरीर ही है। रजो तन्मात्रा का ग्रहण करके क्षुधा और कोप हुए थे ।२७। उत क्षुधा से क्षाम और रक्षण से राक्षसों का सृजन किया था। तक्षण से यक्ष और केश सर्पण से सर्प जानना चाहिए ।२८।

जाताः कोपेन भूताद्या गन्धर्वा जज्ञिरे ततः ।
गायन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन तेऽनघ ।।२९
अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान् ।
सृष्टवानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः ।।३०
पद्भ्याञ्चश्वान् ससानङ्गान गर्दभोष्ट्रादिकास्यथा ।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।।३१
गौरजः पुरुषो मेषः अश्वाश्वतरगर्दभाः ।
एतान् ग्राम्यान् पशून् प्राहुरारण्यांञ्च निबोध मे ।।३२
श्वापदं द्विखुरं हस्तिवानराः पक्षिपंचमाः ।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमाश्च सरीसृपाः ।। ३३
पूर्वादिभ्यो मुखेभ्यस्तु ऋग्वेदाद्याः प्रजज्ञिरे ।
आस्याद्वै ब्राह्मण जाता बाहुभ्यां क्षत्रियाः स्मृताः ।
ऊरुभ्यां तु विशः सृष्टाः शूद्रः पद्भ्यामजायत ।।३४
ब्राह्मो लोको ब्राह्मणानां शाक्रः क्षत्रियजन्मनाम् ।
मारुतञ्च विशां स्थानं गान्धर्वं शूद्र जन्मनाम् ।।३५
ब्रह्मचारिव्रतस्थानां ब्रह्मलोकः प्रजायते ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां यथाविहितकारिणाम् ।।३६
स्थानं सप्त ऋषीणां च तथैव वनवासिनाम् ।
यतीनामक्षयं स्थानं यदृच्छागामिनां सदा ।।३७

कोप से भूतादि की उत्पत्ति हुई थी। फिर गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। हे अनघ ! वे गायन करते हुए उत्पन्न हुए थे इसीलिए उनको गन्धर्व नाम से कहा गया है।२९। उस प्रजापति ने अवियों (भेड़ों) को अपने वक्ष स्थल से और मुख से बकरियों को उत्पन्न किया था। प्रजापति ने अपने उदर और पार्श्व भागों से गायों का सृजन किया था।३०। ब्रह्मा ने अपने पैरों से अश्व, हाथी, गर्दभ, उष्ट्र आदि को उत्पन्न किया था उनके रोमों से सम्पूर्ण औषधियों, फल और मूल उत्पन्न हुए थे।३०। गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर और गर्दभ इन सब को ग्राम्य पशु कहा जाता हैं। अब जो अरण्य में होने वाले पशु होतेहैं उनको भी मुझसे समझलो। श्वापद दो खुरों वाले, हाथी, वानर और पाँचवे पक्षी, छठवें जल में रहने वाले पशु होते हैं तथा सातवें सरीसृप अर्थात् रेंगकर चलने वाले होते है।३२-३३। पूर्व आदि ब्रह्मा के मुखों से ऋग्वेद आदि की समुत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण और बाहुओं से क्षत्रिय समुत्पन्न हुए हैं। ऊरुओं से वैश्य तथा चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए थे।३४।ब्राह्मणों का ब्रह्मलोक है, क्षत्रियोंका शाक्रलोक, वैश्यों का स्थान मारुत लोक और गान्धर्व स्थान शूद्रों का है।३५। जो ब्रह्मचारियों के व्रत में स्थित है उसका ब्रह्मलोक होती है, गृहस्थों का प्राजापत्य है जो कि यथोक्त आश्रम के पालन करने वाले हैं।३६। सात ऋषियों का बन वासियों का, यतियों का और यदृच्छागामियों का स्थान सदा अक्षय होता है।३७।

५—सृष्टि विवरण (१)

कृत्वेहामुत्र संस्थानं प्रजासर्गं तु मानसम्।
अथासृजत् प्रजाकर्तॄन् मानसांस्तनयान् प्रभुः ॥१
धर्मं रुद्रं मनुं चैव सनकं ससनातनम्।
भृगुं सनत्कुमारं च रुचिं शुद्धं तथैव च ॥२
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं नारदञ्चैव पितॄन् बर्हिषदस्तथा ॥३

अग्निष्वात्तांश्च कव्यादानाज्यपांश्च सुकालिनः ।
उपहूतांस्तथा दीप्यां स्त्रींश्च मूर्तिविवर्जितान् ॥४
चतुरो मूर्तियुक्तांश्च दक्षं चक्रेऽस्य दक्षिणात् ।
वामाँगुष्ठात्तस्य भार्य्यामसृजत् पद्मसम्भवः ॥५
तस्यां तु जनयामास दक्षो दुहितरः शुभाः ।
ददौ ता ब्रह्मपुत्रेभ्यः सतीं रुद्राय दत्तवान् ।
रुद्रपुत्रा बभूवुर्हि असंख्याता महाबलाः ॥६
भृगवे न ददौ ख्याति रूपेणाप्रतिमां शुभाम् ।
भृगोर्धाताविधातारौ जनयामास सा शुभा ॥७
श्रियं च जनयामास पत्नी नारायणस्य या ।
तस्यां वै जनयामास बलोन्मादौ हरि स्वयम् ॥८

हरि ने कहा—यहाँ पर संस्थान रचकर फिर मानस प्रजा सर्ग किया था ।१। धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार रुचि, शुद्ध, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, बर्हिषद, पितृगण, अग्निष्वात्त, कव्याद, आज्यप, सुकाली, उपहूत, दिप्य, तीन मूर्त्तियों से रहित और चार मूर्त्ति युक्तोंका सृजन किया था । इसके अनन्तर दक्षिण से दक्ष को बनाया और वामागुष्ठ से उसकी भार्या का पद्म सम्भव ने सृजन किया था ।२-५। दक्ष ने अपनी उस पत्नी से परम शुभ दुहिताओं को जन्म दिया था । उन सब अपनी कन्याओं को दक्ष ने ब्राह्मण के पुत्रों को दे दिया था और सती को रुद्र के लिए दिया था । रुद्र के महान् बलशाली अगणित पुत्र हुए थे ।६। दक्ष ने भृगु को ख्याति नामक कन्या दी थी जो रूप और लावण्य में अद्वितीय और अत्यन्त शुभ थी । उस शुभा ने भृगुसे धाता और विधाता को समुत्पन्न किया था ।७। और श्री को जन्म ग्रहण कराया था जो भगवान् नारायण की पत्नी हुई थी । उस श्री में हरि ने स्वयं बल और उन्माद को उत्पन्न किया था ।८।

आयतिर्नियतिश्चैव मनो कन्ये महात्मनः ।
धाताविधात्रास्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥९

प्राणश्चैव मृकन्डुश्च मार्कण्डेयो मृकन्डुतः ।
पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पोर्णमासमसूयत ।
विरजः सर्वगश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ॥१०
स्मृतेश्चाङ्गिरस पुत्राः प्रसूताः कन्यकास्तथा ।
सिनीवाली कुहू श्चैव राका चानुमस्तथा ॥११
अनसूया तथैवाग्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।
सोमं दुर्वासिसं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥१२
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोलितत्सुतोऽभवत् ।
कर्म्मणश्चार्थवीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ।
क्षमा सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापतेः ॥१३
क्रतोश्च सुमतिर्भार्य्या बालखिल्यानसूयत ।
षष्टि बालसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
अंगुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करवर्चसाम् ॥१४
उर्ज्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।
रजो गात्रोर्ध्ववाहुश्च शरणश्चानघस्तथा ।
सुतपाः शुक्र इत्येतु सर्वे सप्तर्षयो मताः ॥१५

महान आत्मा वाले मनु की आयति और नियति नाम वाली दो कन्यायें थी । वे दोनों धाता तथा विधाता की भार्यायें हुई थीं उनमेंदो सुत हुए उनके नाम प्राण और मृकन्डु थे । मार्कण्डेय मृकन्डु के हुए ।९। मरीचि नाम वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र की पत्नी सम्भूति ने पौर्णमास को प्रसूत किया था । उस महात्मा के विरज और सवर्ग नाम धारी दो पुत्र हुए थे ।१०। स्मृति से अङ्गिरा से पुत्र तथा कन्यायें समुत्पन्न की थीं, जिनके नाम सिनीवाली, कुहू, राका तथा अमुमति थे ।११। अनसूया ने अत्रि मुनि से कल्मष रहित पुत्रों को जन्म दिया था, जिनके नाम सोम, दुर्वासा, और महायोगी दत्तात्रेय थे ।१२। पुलस्त्य की परम प्रिय भार्या प्रीति में दतोलि नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था उसके अर्थात् क्षमा के कर्म्मण, अर्थवीर तथा सहिष्णु ये तीन आत्मज

उत्पन्न हुए थे जो कि प्रजापति पुलह की भार्या थी ।१३। क्रतु की भार्या सुमति नामधारिणी हुई थी उसने वाल खिल्ल नाम वालों को जन्म दिया था जो कि उर्ध्व रेतस वाल खिल्य ऋषिगण संख्या में साठ सहस्र हुए थे । वे भास्कर के समान जाज्वल्यमा वर्चस वाले थे और अंगुष्ठ के पर्व के तुल्य परिमाण वाले ही समुत्पन्न थे ।१४। ऊर्जा में वशिष्ठ मुनि के सात पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । रज, गात्र, ऊर्ध्व वाहु, शरण, अन्ध, सुतपा और शुक्र ये सब सप्तर्षि माने गये थे ।१५।

स्वाहा प्रादात् स दक्षोऽपि सशरीराय वह्नये ।
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसो हर ।
पावकं पवमानं च शुचिञ्चापि जलाशिनः ।।१६
पितृभ्यश्च स्वधा जज्ञे मैनां वैतरणींतथा ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ मैनाऽमात्तु हिमाचलम् ।।१७
ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं पर ।।१८
शतरूपां च तां नारीं तपोनिहतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्त्वे जगृहे ततः ।।१९
तस्माच्च रुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसंज्ञिते ।।२०
देवहूतिं मनुस्तासु नाकूतिं रुचये ददौ ।
प्रसूतिञ्चैव दक्षाय देवहूतिञ्च कर्दमे ।।२१
रुचेर्यज्ञो दक्षिणाऽभूद्दक्षिणायां च यज्ञतः ।
अभवन् द्वादश सुता यमो नाम महाबलः ।।२२
चतुर्विंशतिं कन्याश्च सृष्टवान् दक्ष उत्तमः ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।।२३
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिऋद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणः प्रभुः ।।२४

उस दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या स्वाहा को शरीरधारी अग्निदेव

को प्रदान किया था। हे हर ! उस अग्निदेव ने स्वाहा से परम उदार ओज वाले तीन पुत्रोंकी प्राप्ति की थी जिनके नाम पावक,पवमान और शुचि थे जो जलाशी थे ।१६। स्वधा नाम वाली दक्ष की कन्या ने पितृ-गण से सेना तथा वैतरणी को उत्पन्न किया था। वे दोनों ही ब्रह्म वादिनी थी। मेना तो हिमवान् की पत्नी हुई थी ।१७। इस अनन्तर हे हर ! प्रभु ब्रह्मा ने आत्मा से सम्भूत स्वायम्भुव को सबसे पूर्व प्रजा के पालन में आत्मा को ही मनु किया था ।१८। फिर स्वायंभुव मनु देव ने तपश्चर्या से समस्त कल्मषों को ध्वस्त कर देने वाली शतरूपा नाम धारिणी नारी को अपनी पत्नी के स्वरूप में स्वीकार किया था ।१९। शतरूपा देवी ने उस स्वायम्भुव महापुरुष से प्रियव्रत और उत्ता-नपाद नाम वाले दो पुत्र तथा प्रसूति एवं आकृति संज्ञा वाली दो कन्या प्राप्त की थी ।२०। तीसरी एक देवहूति नाम वाली कन्या भी उत्पन्न की थी उन तीनों पुत्रियों में मनु ने आकूति को रुचि के लिए प्रदान किया था--प्रसूति को प्रजापति दक्षके लिए दिया था तथा और देवहूति नाम धारिणी कन्या को कर्दम मुनि को प्राप्त किया था ।२१। रुचि से यज्ञ उत्पन्न हुआ। यज्ञने दक्षिणा में बारह पुत्र समुत्पन्न किए जिनमें यमनाम वाला महान् बलवान था ।२२। दक्ष ने चौबीस कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था जिनके नाम श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति,तुष्टि, पुष्टि मेधा, क्रिया बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, ऋद्धि, कीर्त्ति इन तेरहों का दाक्षा-यण प्रभु धर्म ने अपनी पत्नियाँ बनाने के लिए ग्रहण किया था ।२४।

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नीतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ।।२५
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवांगिरा मुनिः।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चषिवरस्तथा ।।२६
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ।।२७

श्रद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।
सन्तोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरं सूयत ॥२८
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं लयं विनयमेव च ।
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ॥२९
व्यवसायं प्रजज्ञे वै शान्तिः क्षेमम सूयत ।
सुखमृद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ।
कामस्य च रतिर्भार्य्या तत्पुत्रो हर्ष उच्यते ॥३०
ईजें कदाचिद् यज्ञेन हयमेधेन दक्षकः ।
तस्य जामातरः सर्वे यज्ञं जग्मुर्निमन्त्रिताः ॥३१
भार्य्याभिः सहिताः सर्वं रुद्रं देवीं सती विना ।
अनाहूता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता ॥३२
त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता मेनायान्तु हिमालयात् ।
शम्भोर्भार्य्याऽभवद् गौरी तस्यां जज्ञे विनायकः ॥३३
कुमारश्चैव भृङ्गीशः क्रुद्धो रुद्रः प्रतापवान् ।
विध्वंस्य यज्ञं दक्षं तु शशाप पिनाकधृक् ।
ध्रुवस्यान्वयसम्भूतो मनुष्यस्त्वं भविष्यसि ॥३४

ख्याति, सती, सम्भूति, प्रीति, क्षमा, सन्नीति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा इनको क्रम से भृगु, भव, मरीचि, अङ्गिरा,पुलस्त्य, पुलह क्रतु, अत्रि वसिष्ठ, वह्नि और पितरों ने ग्रहण किया था। मुनियों में परम श्रेष्ठ मुनियों ने ख्याति आदि कन्याओं को पाणिग्रहण किया था। ।२५-२७। श्रद्धा ने काम को चला ने दर्प को, धृति ने नियम आत्मा को, तुष्टि ने सन्तोष और पुष्टि ने लोभ पुत्र को प्रसूत किया था ।२८। मेधा ने श्रुत क्रिया ने दण्ड लय और विनय, बुद्धि ने बोध तथा लज्जा ने विनय वपु आत्मज को उत्पन्न किया था । व्यवसाय को उत्पन्न क्रिया तथा शान्ति ने क्षेम को जन्म दिया था । ऋषि ने सुखको, कीर्त्ति ने यश को उत्पन्न किया; इस तरह से ये सब धर्म के पुत्र हुए थे ।२९-

।३०। काम की भार्या रति हुईथी और उसका पुत्र हर्ष उत्पन्न हुआ था ।३१। प्रजापति दक्ष के किसी समय हयमेघ यज्ञ का यजन किया था । ।३२। सभी के साथ उनकी पत्नियाँ भी वहाँ पहुंची थी किन्तु केवल रुद्र देव और सती नहीं थी। बिना बुलाई हुई सती वहाँ बाद में अपने आप ही पहुँची तो उसके पिता दक्ष के द्वारा ही उसे अपमानित किया गया था ।३३। उसी समय में सती ने देह का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमालय से मेना में उत्पन्न हुई थी। वही सती पार्वती गौरी भगवान् शम्भु की भार्या हुई और उसके विनायक गणेश समुत्पन्न हुए थे। गौरी के, स्वामी कार्त्तिकेय कुमार की उत्पत्ति हुई थी । भृङ्गीश क्रुद्ध हुए और प्रतापी रुद्र ने यज्ञका विध्वंस करके पिनाक धारी ने दक्ष को शाप दे दिया था कि ध्रुव के अन्वय में उत्पन्न होने वाला तू मनुष्य होगा ।३४।

६—सृष्टि विवरण (२)

उत्तानपादादभवत् सुरुच्यामुत्तमः सुतः ।
सुनीत्यां तु ध्रुवः पुत्रः लेभे स्थानमुत्तमम् ।।१
मुनिप्रासादादारश्य देवदेव जनार्दनम् ।
ध्रुवस्य तनयः श्लिष्टिर्महाबलपराक्रमः ।।२
तस्य प्राचीनबर्हिस्तु पुत्रस्तस्याप्युदारधीः ।
दिवञ्जयस्तस्य सुतस्तस्य पुत्रो रिपुः स्मृतः ।।३
रिपोः पुत्रस्ततः श्रीमांश्चाक्षुषः कीर्त्तितो मनुः ।
रुरुस्तस्य सुतः श्रीमानंगस्तस्य तथात्मजः ।।४
अंगस्य वेणः पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जितः ।
अधर्मकारी वेणश्च मुनिभिश्व कुलैर्हतः ।।५
उरुं ममन्थु पुत्रार्थे तत्तोऽस्य तानयोऽभवत् ।
हृनस्वोऽयिमाणः कृष्णांगो निषीदेति ततोऽभुवद् ।
निषादस्तेन वै जातो विन्ध्यशैलनिवासकः ।।६

ततोऽस्य दक्षिणं हस्तं मन्थनः सहसा द्विजाः ।
तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक् ।।७

हरिने कहा—उत्तान पाद से सुरुचि नाम भार्यामें उत्तम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । दूसरी रानी सुनीति नाम वाली से ध्रुव पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने उत्तम स्थान प्राप्त किया था ।१। ध्रुवने नारद मुनि के प्रसाद से देवों के देव भगवान् जनार्दन की आराधना करके उत्तमपद प्राप्त किया था । ध्रुव का पुत्र श्लिष्टि नामवाला परम भक्त हुआ था । जो महान्बल और पराक्रम वाला था।२। उसका पुत्र प्राचीन वंहि हुआ और उसका आत्मज अत्यन्त उदार बुद्धि वाला दिवंजय नामवाला हुआ था इस दिवंजय का पुत्र रिपु हुआ और इसका सुत चाक्षुष मनु इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । इस चाक्षुष का आत्मज रुद्र का तनय श्रीमान अङ्ग हुआ ।४। अङ्ग का वेणु हुआ जो बड़ा नास्तिक और धर्मके रहित था । इस अधर्मके आचरण करने वाले वेणु का हनन मुनियों ने कुशाओं के द्वारा कर दिया था ।५। फिर मुनियों ने इसके उरुओं का मन्थन किया था । उस मन्थन से इसका पुत्र हुआ था जो अत्यन्त छोटा कृष्ण अङ्ग वाला था । उसके 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ ऐसा बोले थे । इसलिए वह निषाद हो गया जो कि विन्ध्य पर्वत का निवास करने वाला था ।६। इसके पश्चात ब्राह्मणों ने उस वेणु का दक्षिण हाथ सहसा मन्थन किया था । उससे एक सुत उत्पन्न था जो विष्णु का रूप धारण करने वाला था ।७।

पृथुरित्येव नामा स वेणः पुत्रादिदिवं ययौ ।
दुदोह पृथिवीं राजा प्रजानां जीवनाय हि ।।८
अन्तार्धानिः पृथोः पुत्रो हविर्धानस्तादात्मजः ।
प्राचीन वर्हिस्तात्पुत्रः पृथिव्यामेकराड् बभौ ।।९
उपयेमे समुद्रस्य लवणास्य स वै सुताम् ।
तस्मात् सुषाव सामुद्री दश प्राचीनर्बहिषः ।।१०

सर्वेप्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ॥११
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।
प्रजापतित्वं संप्राप्ता भार्या तेषां च मारिषा ॥१२
अभवद् भवशापेन तस्यां दक्षोऽभवत्ततः ।
असृजन्मनसा दक्षः प्रजाः पूर्वंचतुर्विधाः ॥१३
नावर्द्धन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु ।
मैथुनेन ततः सृष्टिं कर्तुमैच्छत् प्रजापतिः ॥१४
असिक्नीमावहद्भार्यां वीरणस्य प्रजापतेः ।
तत्र पुत्रसहस्रं तु वैरण्यां समपद्यत ॥१५

इसका नाम पृथु था और इस पुत्रके प्रभाव से वह वेणु स्वर्ग लोक को गया था ।८। इस राजा पृथु ने प्रजा के जीवन के लिए पृथिवी का दोहन किया ।९। पृथु का पुत्र अन्तर्धान हुआ और इसका आत्मज हविर्धान हुआ था । इसका तनय प्राचीन बर्हि था जो इस भूमण्डल में एक ही राजा प्रदीप्त हुआ था ।९। इस राजा ने लवण सागर की पुत्री के साथ विवाह किया था उससे दस समुद्री प्राचीन बर्हि समुत्पन्न हुए थे ।१०। ये सब प्राचीनतम नाम वाले थे और सभी धनुर्विद्या के बड़े पारगामी विद्वान हुए थे । ये अपृथक् धर्म के आचरण करने वाले थे । इनने महान् तप को किया था ।११। दस हजार वर्ष पर्यन्त ये समुद्र के जल में ही शयन करने वाले हुए थे । इन्होंने प्रजापति के पद को प्राप्त किया था । इनकी भार्या मारिषा हुई थी ।१२। भव के शाप से उसमें दक्ष समुत्पन्न हुआ था । उस दक्ष ने मन से ही पहिले चार प्रकार की प्रजा का सृजन किया था ।१३। वे प्रजा उसकी वृद्धिशीलता को प्राप्त नहीं हुई और भगवान हरके द्वारा अपध्यात हो गई थी । इसके अनन्तर उसने मैथुन के द्वारा सृष्टि करने की इच्छा की थी ।१४।फिर उस प्रजापति ने प्रजापति वीरण की भार्या असिक्नी के साथ विवाह किया था और वैरणी के एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ।१५।

नारदोक्ता भुवश्चान्तं गता ज्ञातुञ्च नागताः ।
दक्षः पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान् ॥१६
शबलाश्वास्तेऽपि गता भ्रातृणां पदवी हर ।
दक्षः क्रुद्धः शशापाथ नारदं जन्म चाप्स्यसि ॥१७
नारदो ह्यभवद् पुत्रः कश्यपस्य मुनेः पुनः ।
यज्ञे ध्वस्तेऽथ दक्षोऽपि शशापोग्रं महेश्वरम् ॥१८
यष्ट्वा त्वामुपचारैश्च अपसूरयन्ति हि द्विजाः ।
जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर ॥१९
असिक्न्यां जनयामास दक्षो दुहितरं ह्यथ ।
षष्टि कन्यां रूपयुतां द्वे चैवाङ्गिरसे ददौ ॥२०
द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दश धर्माय चाप्यथ ।
त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे ॥२१
प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभां भामिनी तथा ।
मनोरमां भानुमतीं विशालां बहुदामथ ॥२२
दक्षः प्रदान्महादेव चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
स कृशाश्वाय च प्रदात् समाजाञ्च तथा जयाम् ॥२३

ये सब नारद के द्वारा कहे हुए भूमण्डल के अन्त तक गये थे कि इसका ज्ञान प्राप्त करें किन्तु फिर वापिस नहीं हुए थे । उन सबके नष्ट हो जाने पर प्रजापति दक्ष ने पुनः एक सहस्र पुत्रों का सृजन किया था ।१६। हे हर ! ये शबलाश्व भी आपके भाईयों की ही पदवी को प्राप्त हो गये थे । फिर दक्ष ने अत्यन्त क्रोधित होकर नारद को शाप दे दिया था कि तू जन्म ग्रहण करेगा ।१७। इसके अनन्तर नारद ने कश्यप मुनि के यहाँ पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था । यज्ञ के ध्वस्त हो जाने पर दक्ष ने महेश्वर को भी पहिले शाप दिया था ।१८। हे महेश्वर ! ब्राह्मण लोग तुम्हारा यजन करके भी तुम्हारे पूजोपचार को त्याग दिया करेंगे और जन्मान्तर में ये वैर नष्ट न होंगे ।१-६। फिर इस दक्ष ने असिक्नी में समुत्पन्न की थी । ये अत्यन्त रूप लावण्य से समन्वित साठ कन्या थी । इनमें से दो तो अङ्गिरा को दी थी ।२०।

दो कृशाश्व को दीं—दश धर्म तो दी थीं और तेरह कश्यप मुनि को प्रदान की दीं तथा सत्ताईस चन्द्रमा को दी थीं ।२१। फिर सुप्रभा भामिनी बहु पुत्र को दी थीं मनोरमा, भानुमती, बिमाला और बहुदा इन चार कन्याओं को दश ने हे महादेव ! अरिष्ट नेमि को दिया था। उसने सुप्रजा और जया को कृशाश्वके लिए प्रदान किया था ।२२-२३।

अरुन्धती वसुर्लामी लम्बा भानुर्मरुद्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्व च ता दश ॥२४
धर्मपत्न्यः समाख्याताः कश्यपस्य वदाम्यहम ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः ।
कद्रूः प्राधा इरा क्रोधा बिनता सुरभिः खगा ॥२५
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ।
मरुद्वस्या मरुद्वस्तो तसीस्तु वसवस्तथा ॥२६
भानोस्तु भानवो रुद्र मुहूर्त्ताच्च मुहर्त्त जाः ।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथिस्त यामितः ॥२७
पृथिवीबिषियं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ।
सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ॥२८
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवालिनोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च बसवो नामभिः स्मृतः ॥२९
आपस्य पुत्रो वैतुन्डयः श्रमःश्रान्तो ध्वनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकस्य कालनः ।
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी तेन जायते ॥३०
ध्रुवस्य पुत्रो द्रुहिणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥३१

अरुन्ती, वसु, यामी, लम्बा, भानु मरुद्वती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्य और विश्वा ये दश की पत्नियाँ कही गई थीं। अब कश्यप की पत्नियों को वतलाते हैं-अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंह का कद्रु, प्राधा, इरा, क्रोधा, बिनता, सुरभि और खगा ये तेरह कश्यप की पत्नियाँ

हुई थीं ।१४-२५। विश्वा के विश्वेदेवा समुत्पन्न हुये थे और साध्या के साध्यगण प्रसूत हुये थे ।२६। भानु नाम वाली से भानु गण हे रुद्र ! मुहुर्त्ता से मुहूर्त्त पैदा हुए थे। लम्बा से घोष उत्पन्न हुआ था और याभि से नागवीथि की उत्पत्ति हुई ।२७। सम्पूर्ण पृथिवी विषय अरुन्धती में उत्पन्न हुआ था। संकल्पा से सर्वात्मा संकल्प समुत्पन्न हुआ था ।२८। आप ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनज, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ नामों से वसुगण कहे गये हैं ।२९। आपके पुत्र वैतुण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा ध्वनि हुए थे। ध्रुव का पुत्र भगवान् काल हुए जो समस्त लोक का पालन करने वाले हैं सोम का पुत्र भगवान् वर्चा हुए जिससे वर्चस्वी उत्पन्न हुआ ।३०। ध्रुव का पुत्र द्रुहिण तथा हुत हव्य वह हुए थे। मनोहरा में शिशिर, प्राण तथा रमण हुए थे ।३१।

अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रः पुलोमजः ।
अविज्ञातगर्मिश्चव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ।।३२
अग्निपुत्रः कुमारस्त शरसम्वे व्यजायत ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ।
अपत्यं कृत्तिणानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।।३३
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना तु देवलम् ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य विख्यातो देववर्द्ध किः ।।३४
अजैकपादहिर्ब्रध्नस्त्वष्टा रुद्राश्च वीर्यवान् ।
त्वष्टुंश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्वापराजितः ।।३५
वृषाकपिश्च शम्भु कपर्दी रैवतस्तथा ।
मृगव्याक्षश्च शर्वश्च कपाली च महामुने ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।।३६
सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रसंज्ञिताः ।
आदित्या कस्यपाच्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे ।
विष्णुः शक्रोऽर्यमा घाता त्वष्टा पूषा तथैव च ।।३७

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशुमाश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृताः ॥३८
हिरण्यकशिपु दित्या हिरण्याक्षोऽवत्तदा ।
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रत्तिपरिग्रहा ॥३९
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः पृथुलौजसः ।
अनुह्लादस्व प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।
संह्लादश्चाभवत्तेषां प्रह्लादो विष्णुतत्परः ॥४०
संह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्वाष्कल एव च ।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्वलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
बलेः पञ्चशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं वृषध्वज ॥४१

अनिल की भार्या शिबा थी। उसका पुत्र पुलोमज और अविज्ञात गति थे। ये दो अग्नि के पुत्र हुए थे ।३३। अग्नि का पुत्र कुमार शर-सम्ब में उत्पन्न हुआ था उसके पीछे से शाख, विशाख और नैगमेय हुए थे। कृत्तिकाओं की सन्तति कार्तिकेय इस नाम से की गई है ।३३। प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि के नामसे विख्यात हुए थे। प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देवबर्द्ध कि नाम से विख्यात हुआ था ।३४। अजैक पाद, अहिर्वूध्न, त्वष्टा और वीर्यमान् रूप उत्पन्न हुए। त्वष्टा का पुत्र महातपी विश्वरूप हुआ। हे महामुने ! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषायपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व, कपाली ये एकादश रुद्र उत्पन्न हुए थे जो इस सम्पूर्ण त्रिभुवन के स्वामी हैं ।३५-३६। सोम की सत्ताइस पत्नियाँ थीं जो नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध थीं । उनके अश्विनी, भरणी आदि नाम थे। अदित में कश्यप मुनि से द्वादश सूर्य समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम विष्णु, शक्र, अर्यमा, धात्रा, त्वष्टा, पूषा विवस्वान्, सविता, मित्र वरुण, अंशुमान्, भग ये बारह हैं ।३७-३८। कश्यपकी दिति नाम वाली पत्नी हिरण्यकशिपु और हिरणाक्ष पुत्र हुए थे सिंहका नाम वाली एक कन्या हुई थी जिसका परिग्रह विप्रचिति ने किया था ।३९। हिरण्यकशिपु के अधिक ओज वाले चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं—अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद थे । इन चारों में प्रह्लाद भगवान् विष्णु का परम भक्त हुआ ।४०। प्रह्लाद

के पुत्र आयुष्मान्, शिवि वाष्कल और विरोचन हुए थे। विरोचन से बलि उत्पन्न हुए थे। हे वृषध्वज! बलि के सौ पुत्र हुए उनमें बाण सबसे ज्येष्ठ था।४१।

हिरण्याक्षसुमाश्चासन् सर्व एव महाबलाः।
उत्कटः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा।
महानाभो महाबाहु कालनाभस्तथापरः।।४२
अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्करस्तथा।
अयोमुखः शंकुशिराः कपिलः शम्बरस्तथा।।४३
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः।
स्वर्भानुवृषपर्वा च पुलोमा च महासुरः।
एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्।।४४
स्वर्भानो सुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी।
औपदानवी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः।।४५
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा।
उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः।।४६
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः।
पौलोमाः कालकञ्जाश्च मारीचतनयाः स्मृताः।।४७
सिंहिकायां समुत्पन्न विप्रचित्तिसुतास्तथा।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः।।४८
वातापिनमुनिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा।
अञ्जको नरकश्चैव कालानाभस्तथैव च।
निवातकवचा दैत्याः प्रह्लादस्य कुलेऽभवन्।।४९

हिरण्याक्ष के सभी पुत्र महान बलवान् थे। उनके नाम उत्कट, शकुनि भूतसन्तापन महानाभ, महाबाहु और काल नाम थे।४२। दनुके पुत्र द्विमूर्धा, शंकर, अयोमुख, शंकुशिरा, कपिल, शम्बर, चक्र, महाबाहु तारक, महाबल, स्वर्भानु वृषपर्वा, पुलोमा, महासुर हुए थे। ये सब दनु

के सुत ख्यात थे और बिप्रचिति वीर्यवान थे ४३-४४। स्वर्भानु की सुप्रभा कन्या, शर्मिष्ठा, वार्षपार्वणी और दानवी हयशिरा ये वर कन्यका प्रख्यात थीं ।४५। वैश्वानर के दो सुता थीं । उनके नाम पुलोम तथा कालका थे । ये दोनों महान् भाग्य वाली थीं और मारीचि के हरिग्रह हुई थीं ।४६। उन दोनों से दानवों में पर श्रेष्ठ साठ हजार पुत्र हुए थे ये पौलोम, कालकंज और मारीचि तनय के नामसे प्रसिद्ध हुए थे ।४७। सिंहिका में विप्रचितिके पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम व्यंश, शल्य, बलवान्, नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम अंजक, नरक और कालानाभथे । प्रह्लादके कुलमें निवात कवच दैत्य हुएथे।४८-४९।

षट्सुताश्चमहासत्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि गृध्रिका ।।५०
शुकी शुकानजनयदुलूका प्रत्युलूककान् ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्यपि ।।५१
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत ।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रोवंश प्रकीर्तितः ।।५२
विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुड़ारुणौ ।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ।।५३
काद्रवेयाश्च फणिनः सहस्रमितौजसः ।
तेषां प्रधानो भूतेश शेषवासुकितक्षकाः ।।५४
शङ्खः श्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा ।
एलावतस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ ।
गणं क्रोधवशं बिद्धि तें च सर्वे च दंष्ट्रिणः ।।५५
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान् ।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ।।५६

ताम्रा की छै सुता महान सत्व वाली बतलाई गई है । उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका थे । शुकी ने शुकों

(तोतों को जन्म दिया था। उलूकी ने उलूक पैदा किए थे श्येनी ने श्येनी को प्रसूत किया, भासी ने भासों को गृध्री ने गिद्धों को समुत्पन्न किया था।५०-५१। शुचि ने उदक में रहने वालों की तथा सुग्रीवी ने पक्षीगणों को उत्पन्न किया था। अश्वों को, उष्ट्रों को और गर्दभों (गधों को समुत्पन्न किया था। वह ताम्र वंश कीर्त्तित हुआ था।५२। बिनिता के दो पुत्र हुए जो कि बहुत विख्यात हैं। उनके नाम गरुड़ और अरुण थे। सुरसा के अमित ओज वाले एक सहस्र सर्प हुए थे। अमित ओज से समन्वित काद्रवेय (कद्रू के पुत्र) फणी अर्थात् सर्प एक सहस्र थे। हे भूतेश! उन सबमें शेष वासुकि और तक्षक वे प्रधान हुए थे।५३-५४। सर्पों के अनेक भेद हैं जैसे—शंख, श्वेत महापद्म, कम्बल अश्वतर, एलावत, नाग, कर्कोटक' धनञ्जय। इनके गण को महाक्रोधी समझो और ये सभी दंष्ट्री थे।५५। क्रोधा ने महान् बल वाले पिशाचों को जन्म दिया था। सुरभिने गौ तथा महिषों को उत्पन्न कियाथा।५६।

इरा वृक्षलता बल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः।
खगा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सुरहस्तथा।
अरिष्टा तु महासत्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ।।५७
देवा एकोनहञ्चाशन्मरुतो ह्यभवन्निति।
एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च ।।५८
एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबलः।
ईदृक्चान्यादृक्सदृक्च ततः प्रतिसदृक्तथा ।।५९

मितश्चा समितश्चैव सुमतिश्चा महाबलः ।।६०
अतिमित्रोऽप्यमित्रश्चा दूरमित्रोऽजितस्तथा।
ऋतश्च ऋतधर्म्मा च बिहर्त्ता वरुणो ध्रुवः ।।६१
विधारणश्चातुर्थोऽयं गृहमेकगणः स्मृतः।
इदृक्षश्चा सदृक्षश्चा एतादृक्षो मिताशनः ।।६२

एतनः प्रसदृक्षश्च सुरतश्च महातपाः ।
तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिपः सहः ।।६३
द्युतिर्वसुर्बलाधृष्यो लाभः कामी जयो विराट् ।
उद्वेषणो गणी नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे ।।६४
एतत्सर्वं हरे रूपं राजानो दानवाः सुराः ।
सूर्यादिपरिवारेण मनवाद्या ईजिरे हरिम् ।।६५

इराने वृक्ष, लता, वल्ली, और सभी प्रकार की तृण जातियों को उत्पन्न किया था। खगा ने यक्ष और राक्षसों को प्रसूत किया था तथा मुनि ने अप्सराओं को जन्म दिया था। अरिष्टा ने महान् सत्त्व वाले गन्धर्वं को उत्पन्न किया था।५६। उनचास मरुतदेव हुए थे। उनके नाम एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एक शुक्र, द्वि शुक्र, त्रिशुक्र, महाबल, ईदृक्, अवादृक्, सदृक्, प्रतिसदृक्, मित्त, समित, महा-बलवान्, ऋतजित्, सत्यजित सुषेण, सेनजित्, अमिमिंत्र, अमित्र, दूर-मित्र, अजित ऋत, ऋतधर्मा, विहर्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण वह चतुर्थ एक गण कथित, ईदृक्ष, एतादृक्ष, मिताशन, एतम, प्रसदृक्ष सुरत, महात्तपा, तादृगुग्र, ध्वनि, भास, वियुक्त, विक्षिप, सह, द्युतिवसु बलाधृष्य, लाभ कासी जय, विराट्, उद्वेषण, गण नाम सप्तप वायु-स्कन्ध ये हैं। ये सब दानव और सुर हरि का रूप राजा थे। सूर्यादि पारिवार के द्वारा मनु आदि ने हरि का यजन किया था।५७-५८।

७—सूर्यादि पूजा विधान

सूर्य्यादिपूजनं ब्रूहि स्वायम्भुवादिभिः कृतम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सारं व्यास संक्षेपतः शृणु ।।१
सूर्य्यादिपूजां वक्ष्यामि धर्म्मकामादिकारिकाम् ।।२
ॐ सूर्य्यासनाय नमः ॐ नमः सूर्य्यमूर्त्तये ।
ॐ ह्लां ह्लीं सः सूर्य्याय नमः । ॐ सोमाय नमः ।
ॐ मङ्गलाय नमः । ॐ बुधाय नमः ।

ॐ बृहस्पतये नमः ॐ शुक्राय नमः ।
ॐ शनैश्चराय नमः ॐ राहवे नमः ।
ॐ केतवे नमः ॐ तेजश्चण्डाय नमः ।३
आसनावाहनं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा ।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धं पुष्पं च धूपकम् ।४
दीपकं च नमस्कारं प्रदक्षिणविसर्जने ।
सूर्य्यादीनां सदा कुर्य्यादिति मन्त्रैर्वृषध्वज ।।५

रुद्र ने कहा—सूर्य आदि का पूजन बतलाइये जो कि स्वायम्भुव आदि मनु ने किया था । यह पूजन सम्पूर्ण सांसारिक सुखों को एवं अन्त समय में परम पुरुषार्थ मुक्ति का प्रदान करने वाला है । हे व्यास अब तुम इसका संक्षिप्त रूप से श्रवण करो । श्री हरि भगवान् ने कहा मैं सूर्य की पूजा बतलाता हूँ जो कि धर्म, अर्थ, काम को देने वाली होती हैं ।१-२। हे वृषभध्वज ! लिखित मन्त्रों के द्वारा सर्वदा सूर्यादि देवों का पूजन करना चाहिए जिसमें उक्त देवों का आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नमस्कार, प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि सभी अर्चनाके कृत्य सम्पादित करने चाहिए । इस प्रकार की पूजा के मन्त्र ये होतें हैं—ॐ सूर्यासनाय नमः-ॐ नमः सूर्य मूर्त्तये- ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः-ॐ सोमाय नमः ॐ मङ्गलाय नमः-ॐ बुधाय नमः-ॐ बृहस्पतये नमः-ॐ शुक्राय नमः ॐ शनैश्चराय नमः-ॐ राहवे नमः-ॐ केतवे नमः-ॐ तेजश्चण्डाय नमः ।३-४। यह समस्त देवों का पूजन होता है अतएव सभी देवों के नामों के मन्त्र है जिनका अर्थ सबके लिए नमस्कारात्मक होता है ।५।

ॐ ह्रां शिवासनाय नमः । ॐ ह्रां शिवमूर्त्तये नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । हूँ शिखाये वषट् । ॐ हैं कवचाय हुँ । ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् । ह्रां सद्यो जाताय नमः । ॐ ह्रीं वामदेवाय नमः ॐ है वघोराय नमः । ॐ है

तत्पुरुषाय नमः । ओंह्रौं ईशानाय नमः। ओं ह्रां गौर्य्यै नमः।ओंह्रां गुरुभ्यो नमः । ओंह्रां इन्द्रायनमः। ओं ह्रां चण्डाय नमः । ओंह्रां अघोराय नमः ओं वासुदेवाय नमः । ॐवासुदेवमूर्त्तये नमः। ओं अं ॐनमो भगवते वासुदेवाय नमः ।ॐआ ओंनमोभगवते संकर्षणाय नमः।ॐअं ओं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नम। ओं नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः । ओंनारायणाय नमः ओं तत्सद्ब्रह्मणेनमः। ॐ ह्रूं विष्णवे नमः । ॐक्षौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः।ॐभूः ॐ नमो भगवते वराहाय नमः। ॐ क टं प श वैनतेयाय नमःॐ जं खं सुदर्शनाय नमः । ॐ क ठ फ षंगदायै नमः ॐ वं ल म क्षं पांचजन्याय नमः । ॐ घं ढं भं हं क्षियैनमः । ॐ ग ड वं सं पुष्ट्यै नमः । ॐधं षं वं सं वनमालायै नमः । ॐ सं दं ल श्रीवत्साय नमः । ॐ ठ चां भं वं कौस्तुभाय नमः । गुरुभ्यो नमः ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः ॐ बिष्वक्सेनाय नमः ।।६

इनमें न्यास आदि भी होते हैं। इन अन्य मन्त्रों को भी बताया जाता है--ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्री शिर से स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट् ॐह,अस्त्राय फट् ।

अन्य देवों के नाम नीचे दिये जाते हैं--ॐ ह्रां सद्योजाताय नमः । ॐ ह्रीं वाम देवाय नमः । ॐ ह्रूं अघोराय नमः । ॐ ह्रैं तत्पुरुष नमः । ॐह्यह्रौंईशानाय नमः ।.ॐ ह्रां गौर्य्यै नमः ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ ह्रां इन्द्राय नमः-ॐह्रां चण्डाय नमः-ॐह्रां अघोयाय नमः-ॐ वासुदेवाय नमः. ॐ वासुदेव मूर्त्तये नमः-ॐ अ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः-ॐ आं ॐ नमोभगवते सङ्कर्षणाय नमः ॐ अं ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः ॐ अं ॐ नमोभगवते अनिरुद्धाय नमः--ॐ नारायणाय नमः-ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः ॐ ह्रूं विष्णवे नमः--ॐ क्षौ नमो भगवते नरसिंहाय नमः ॐ भूः ॐ नमोभगवते वाराहाय नमः ॐ क टं श वैनतेयाय नमः--ॐ जं खं सुदर्शनाय नमः ॐ खं ठं फ ष गदायै नमः--ॐ वं लं मं क्षं पाचजन्याय नमः-ॐ धं ढं भं हं श्रियै नम--ॐ गं डं वं पुष्ट्यै नमः ओं धं

षं वं सं वनमालायै नमः-ओ सं दं लं श्रीवत्साय नमः-आं ठं चं भं पं कोस्तुभाय नमः । ओंगुरुभ्यो नमः । ओं इन्द्रादिभ्यो नमः । ओं विश्व क्सेनाय नमः ।६।

आसनादीन् हरेरेतैर्मं न्त्रैर्दद्याद् वृषध्वज ।
विष्णुशक्त्याः सरस्वत्याः शृणु शुभप्रदाम् ॥७

ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ओं ह्रूं शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुम् ॐ ह्रौं नेत्रत्रयायवौषट् । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ॥८

श्रद्धा ऋद्धिः कला मेधा तुष्टिः पुष्टिः प्रभा मतिः ।
ओङ्काराद्या नमोऽन्ताश्च सरस्वत्वश्च शक्तयः ॥९
क्षेत्रपालाय नमः । ॐगुरुभ्यो नमः ॐपरमगुरुभ्यो नमः ।१०
पद्मश्थायाः सरस्वत्या आसनाद्य प्रकल्पयेत् ।
सूर्यादीनां स्वकैर्मन्त्रैः पवित्रारोहणं तथा ॥११

हे वृषध्वज ! इन उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा भगवान् हरि के लिए आसन आदि उपचारों को समर्पित करना चाहिए । अब भगवान् विष्णु की शक्ति सरस्वती देवी की पूजा का श्रवण करो जो कि सम्पूर्ण भी को प्रदान करने वाली हैं ।७। सरस्वती की समर्चना के निम्नलिखित मन्त्र हैं-ओं ह्रां सरस्वत्यै नमः-ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा ओं ह्रूं शिखाये वषट् ओं है कवचाय हुम:-ॐ ह्रों नेत्र त्रयायं वौषट्-ॐअस्त्राय फट् ।८। इन पूजन के मन्त्रों में ओंकार आदि में और अन्त में नमः-यह जोड़कर सरस्वती देवी और श्रद्धा, ऋद्धि, कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा मति इन शक्तियों का पूजन करना चाहिए । ॐ श्रद्धायै नमः–इत्यादि विधि से सभी शक्तियों के मन्त्रों की रचना कर पूजन करे । इसके पश्चात् ओं क्षेत्रपालाय नमः-ॐ गुरुभ्यो नमः ॐ परम गुरुभ्यो नमः-इन मन्त्रों से अर्चना करे ।९-१०। पद्मासन पर संस्थित सरस्वती देवी के आसन आदि का कल्पना करनी चाहिए । तथा सूर्यादि देवों के लिए उनके अपने-अपने नामों के मन्त्रों के द्वारा पवित्रारोहणा करे ।११।

८-विष्णु पूजा विधि

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत् ।
पंचरंगिकचूर्णेन वज्रनाभं तु मण्डलम् ।१
षोडशैः कोष्ठकैस्तत्र सम्मितं रुद्र कारयेत् ।
चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपातं तु कारयेत् ।।२
कोणसूत्रादुभयतः कोणा ये तत्र संस्थिताः ।
तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपातं विचक्षणः ।३
तदनन्तरकोणेषु एवमेव हि कारयेत् ।
प्रथमा नाभिरुद्दिष्टा मध्ये रेखाप्रसंगमे ।४
अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभयः ।
पूर्वमध्यमनाभिभ्यामथ सूत्रं तु भ्रामयेत् ।५
अन्तरेषु द्विजश्रेष्ठः पादोनं भ्रामयेद्धर ।
अनेन नाभिसूत्रस्य कर्णिका भ्रामयेच्छिव ।६
कर्णिकाया द्विभागेन केशराशिं विचक्षणः ।
तदग्रेण सदा विद्वान्मलान्येव समालिखेत् ।।७

श्री हरि ने कहा—स्नान करके पवित्र होकर भूमि में स्थित मण्डप में विरचित मण्डल में भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए । पाँच रङ्ग के चूर्ण द्वारा पंचनाभ मण्डल की रचना करे ।५। हे रुद्र ! वह सोलह कोष्ठकों से सम्मित होना चाहिए । चतुर्थ पंचको में सूत्रपा करना चाहिए ।२। कोण के सूत्र से दोनों ओर जो कोण वहाँ संस्थित होते हैं उनमें ही विचक्षण पुरुष को सूत्रपात करना चाहिए ।३। उनके अन्तर कोणों में भी इसी भाँति करावे । मध्य रेखा प्रसंगम में प्रथमा नाभि उद्दिष्ट होती हैं । अन्तर सभी में आठ नाभियाँ होती हैं । पूर्व और मध्यम नाभियों से सूत्र को घुमाना चाहिए ।४।५। हे हर ! अन्तर कोणों में श्रेष्ठ द्विज को एक पाद न्यून घुमाना चाहिए । हे शिव ! इसके द्वारा नाभि सूत्र की कर्णिका को घुमाना चाहिए । हे मण्डल की रचना की विधि में बताया जाता है कि विचक्षण पुरुष

को कर्णिका के दो भागों के द्वारा केसरोंकी रचना करनी चाहिए और विद्वान् उसके अग्रभाग से दलों का लेखन करें ।७।

सर्वेषु नाभिक्षेत्रेषु मानेनेनानेन सुव्रत ।
पद्मानि तानि कुर्वीत देशिकः परमार्थवित् ।८
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि परिकल्पयेत् ।
द्वारशोभां तथा तत्र तदर्द्धेन तु कल्पयेत् ।९
कर्णिकां पीतवर्णेन सितरक्तादिकेशरान् ।
अन्तरं नीलवर्णेन दलानि ह्यसितेन च ।१०
कृष्णवर्णेन रजसा चतुरस्रं प्रपूरयेत् ।
द्वारे शुक्लवर्णेन रेखाः पञ्च च मण्डले ।११
सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।
कृत्वैव मंडलञ्चादौ न्यासं तत्रार्चयेद्धरिम ।१२
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णुं मध्ये संकर्षणं तथा ।
प्रद्युम्नं शिरसि न्यास्य शिखायामनिरुद्धकम् ।१३
ब्रह्माणं सर्वगात्रेषु करयोः श्रीधरं तथा ।
अहंविष्णुरिति ध्यात्वा कर्णिकायां न्यसेद्धरिम् ।१४
न्यसेत्सङ्कर्षणं पूर्वे प्रद्युम्नञ्चैव दक्षिणे ।
अनिरुद्धं पश्चिमे च ब्रह्माणचेत्तरे न्यसेत् ।१५
श्रीधरं रुद्रकोणेषु इन्द्रादीन्दिक्षु चिन्यसेत् ।
ततोऽभ्यर्च्य च गन्धाद्यैः प्राप्नुयात्परमं पदम् ।१६

हे सुव्रत ! इसी मान से सब नाभि क्षेत्रों में परमार्थ के ज्ञाता आचार्य को उन पद्मों की रचना करनी चाहिए ।८। आदि सूत्र के विभाग के द्वारा ही द्वारों की कल्पना करे और उनके भाग से वहाँ पर द्वार शोभा की परिकल्पना करनी चाहिए ।९। कर्णिका को रचना पीत वर्ण से करे और श्वेत तथा रक्त आदि वर्णों के केसरों की रचना करनी चाहिए । अन्तर भाग को नील वर्ण से तथा दलों की असित

वर्ण से करे ।१०। कृष्ण वर्ण की रज से चारों ओर प्रपूरित करना चाहिए और उसके जो द्वार हो उन्हें शुक्ल वर्ण चूर्ण से पूजित करे तथा मण्डल में पाँच रेखाएँ बनावे ।११। उन रेखाओं के रङ्ग क्रम के सित, रिक्त, पीत तथा कृष्ण होने चाहिए। इस प्रकार से मण्डल की रचना करके आदि में न्यास करके फिर वहाँ पर हरि की अर्चना करे ।१२। हृदय के मध्य में विष्णु का न्यास करे मध्य में संकर्षण का करे, शिर में प्रद्युम्न का न्यास करके शिखा में अविरुद्ध का न्यास करे ।१३। सम्पूर्ण अङ्गों में ब्रह्मा का—हाथों में श्रीधर का न्यास करे ।१४। संकर्षण को पूर्व में, प्रद्युम्न को दक्षिण में, अनिरुद्ध को पश्चिम में और ब्रह्मा को उत्तर में न्यस्त करे ।१५। श्रीधर को रुद्र कोणों में और इन्द्रादि को दिशाओं में विन्यस्त करना चाहिए। इसके अनन्तर सबका गन्धाक्षात् पौष्पादि उपचारोंके द्वारा अभ्यर्चन करकेपरम पदकी प्राप्ति करे ।१६।

९-वैष्णव पञ्जर

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम् ।
नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गुह्य सुदर्शनम् ।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।१
गदां कौमोदकीं गृह्ण पद्मनाभ नमोस्तु ते ।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।२
हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम ।
प्रतीच्या रक्षमां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।।३
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्षरक्षमाम् ।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ।४
खड्गमादाय चर्म्माय अस्त्र शस्त्रादिकं हरे ।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणंगत ।५
पांचजन्यं महाशंखमनुद्बोधं च पंकजम् ।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेयां रक्ष शूकर ।६

चन्द्रसूर्यं समागृह्यखड्गं चान्द्रमस तथा ।
नैऋर्त्यां मांच रक्षस्व दिव्यमूर्त्ते नृकेशरिन् ।७

हरि ने कहा—अब मैं यह परम शुभ वैष्णव पञ्चर बतलाता हूँ हे गोविन्द ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है । आप अपने सुदर्शन चक्र को ग्रहण करके हे विष्णो! मेरी पूर्व दिशामें रक्षा कीजिए । मैं आपकी शरणागति में आ गया हूँ ।१। हे पद्मनाभ ! आप अपनी कौमोदकी नाम वाली गदा को ग्रहण करके दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करे । मेरा आपको नमस्कार है और हे विष्णु देव ! मैं आपके शरण में उपस्थित हो गया हूँ ।१२। हे विष्णो ! आप सौनन्द हल को लेकर हे पुरुषों में उत्तम ! प्रतीची में मेरी रक्षा करे । मैं आपके शरण में आया हूँ ।३। हे पुण्डकारीकाक्ष ! मुसल द्वारा उत्तम दिशा में रक्षा करें । मैं आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ ।४। हे हरे ! आप खड्गचर्म तथा अन्य अस्त्र शस्त्रादि को ग्रहण करें । मेरी आपको नमस्कार है । हे राक्षसोंके हनन कर्त्ता ! ऐशानी दिशा में आप मेरी रक्षा करिये । मैं आपकी शरण में हूँ ।५। हे विष्णु देव ! अब अपने महान् शङ्ख पाञ्चजन्य और अनुद्बोध पंकज का ग्रहण कर हे शूकरदेव ! मेरी आग्नेयी दिशामें रक्षा कीजिये ।६। हे दिव्य मूर्त्ति वाले ! हे नृकेशरी ! आप चन्द्र और सूर्य तथा चन्द्रमस खड्ग का ग्रहण कर मेरी नैऋत्य दिशा में रक्षा करें ।६।

वैजयन्ती सृक्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तुते ।८
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्द्दन ।
मांच रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित ।९
विशालाक्ष समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते ।१०
करशीर्षाद्यं गुलेषु सत्यंत्वं बाहुपंजरम् ।
कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ।११

एवमुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पंजरं महत् ।
पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्यां वृषध्वज ।१२
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम् ।
दानवं रक्तबीजञ्च अन्यांश्च सुरकण्टकान् ।
एतज्जपन्नरो भक्तया शत्रून्विजयते सदा ।१३

हे देव ! हे हयग्रीव ! आप अपनी वैजन्ती माला कण्ठ के भूषण श्रीवत्स का ग्रहण करके मेरी वायव्य दिशा में रक्षा करें । मेरा आपको नमस्कार है । हे जनार्दन ! आप अपने वाहन वैनतेय (गरुड़) पर समारूढ़ होजाइये और आकाश में मेरी रक्षा कीजिये । आप सर्वदा अजित हैं । हे अपराजित देव ! मेरा आपको प्रणाम है ।८। विशाल नेत्रों वाले पर समारोहण करके आप मेरी रसातल में रक्षा कीजिए । हे अकूपार ! हे महाभीम ! आपको मेरा वारम्बार प्रणाम वाहु-पंजर करके हे विष्णो ! पुरुषों में उत्तम ! मेरी रक्षा कीजिए ।११। हे वृषध्वज ! इस प्रकार से यह महान् वैष्णव पंजर शंकर के लिए कहा गया था । पहिले कात्यायनी ने ईशानी की रक्षा के लिए कहा था जिसके द्वारा उसने असुर महिषासुर और दानव रक्तबीज तथा अन्य सुरों को कष्ट देने वालों का नाश किया था । इस वैष्णव पंजर का मनुष्य सर्वदा भक्ति–भाव के साथ जाप करता हुआ अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।१२-१३।

१०-योग वर्णन

अथ योगं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
ध्यायिभिः प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वरः ।१
तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशकः ।
विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्तः षड्भूमिपरिवर्जितः ।२
वासुदेवो जगन्नाथो ब्रह्मात्माऽस्म्यहमेवहि ।
देहिदेहस्थितो नित्यः सर्वदेहविवर्जितः ।३

देहधर्म्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः ।
षड्विधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राता ह्यतोन्द्रियः ।४
तद्धर्म्मरहितः स्रष्टा नामगोत्रविवर्जितः ।
मन्ता मनः स्थितो देवो मनसा परिवर्जितः ।५
मनोधर्म्मविहीनश्च विज्ञान ज्ञानमेव च ।
वोद्धा बुद्धिस्थितः साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः ।६

श्री हरि ने कहा-इसके अनन्तर जब मैं उस परम योगको तुमको बतलाता हूँ जो सांसारिक सुखों का भोग, और अन्त से मोक्ष प्रदान करने वाला है । ध्यान करने वालोंके द्वारा यह कहा जाता हैकि ध्यान के साथ हरि का ध्यान करना चाहिए ।१। हे महेशान ! उस योग का अब तुम श्रवण करो । भगवान् विष्णु सम्पूर्ण प्रकार के पापों के विनाश करने वाले,सबके ईश्वर, अनन्त और पद्मभूमि से रहित हैं।२। में ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हूँ जोकि देहधारियों देहों में स्थित रहता हुआ नित्य हूँ सब प्रकार के देहों से विवर्जित हूँ ।३। वह मैं देह के सभी तरह के धर्मों से रहित एवं क्षर तथा अक्षर से विहीन हूँ । छः प्रकारों में स्थित रहने वाला द्रष्टा, श्रोता, घ्राता, इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं ।४। उनके धर्मोंसे रहित होकर सृजन करने वाला तथा नाम एवं गोत्र से रहित हूँ । मन में स्थित रहने वाला मता देव हुँ किन्तु स्वयं मन से परिवर्जित रहने वाला हूँ ।५। मन के जो कुछ धर्म होते हैं उन सबसे रहित हूँ और मैं विज्ञान तथा ज्ञान का स्वरूप वाला हूँ वह सभी कुछ के बाँध रखने वाला-बुद्धि में स्थित सबका साक्षी अर्थात् देखने वाला होते हुए भी स्वयं बुद्धिसे रहितहूँ ।६।

बुद्धिधर्म्मविहीनश्च सर्वः सर्वगतो मतः ।
सर्वप्राणिविनिर्मुक्तः प्राणधर्म्मविवर्जितः ।७
प्राणिप्राणो मपाशान्तो भयेन परिवर्जितः ।
अहङ्काराविहीनश्च तद्धर्म्मपरिवर्जितः ।८

तत्साक्षी तन्नियन्ता च रुरमानन्दरूपकः।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिस्थस्तत्साक्षी तद्विवर्जितः।९
तुरीय परमो धाता दृग्रूपा गुणवर्जितः।
मुक्तो बुद्धोजरो व्यापी सत्यआत्मास्म्यहं शिवः।१०
एवं ये मानवा विज्ञा ध्याग्रन्तीश परं पदम्।
प्राप्नुयुस्ते च तद्रूपं नात्र कार्य्या विचारणा।११
इति ध्यानं समाख्यातं तव शंकर सुव्रत।
पठेत य एतते सततं विष्णुलोक स गच्छति।१२

बुद्धि विवर्जित होनेका अर्थ है कि बुद्धिके जो भी धर्म हैं उन सबने रहित है। यह सर्व स्वरूप तथा सब में रहने वाला है। समस्त प्राणियों से विनिर्मुक्त तथा प्राण के धर्मों में रहित होता है।७। प्राणियों का प्राण, महान शान्त स्वरूप और भय से विवर्जित तथा अहंकार आदिसे रहित और तद्धर्म से विहीन है।८। उसका साक्षी और उसका नियन्ता परम आनन्दरूप वाला है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों दिशाओं में स्थित,इसका साक्षी और उससे विवर्जित होता है।९। तुरीय (चतुर्थ) परम धाता, दृग के रूप वाला, गुणोंसे रहित, मुक्त बुद्ध बोधयुक्त जरा से रहित, व्यापक सत्य और शिव आत्मा मैं हूँ।१०। इस प्रकार जो विज्ञ मानव ईश का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उसके रूप को प्राप्त किया करते हैं। इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए।११। हे शंकर! हे सुव्रत! इस प्रकार का ध्यान हमने तुमको बता दिया है। जो इसको निरन्तर पढ़ता है वह विष्णु लोक को प्राप्त होता है।१२।

११-विष्णु ध्यान और सूर्यार्चन

पुनर्ध्यानं समाचक्ष्व शंखचाक्रगदाधर।
विष्णोरीशस्य देवस्य शुद्धस्य परमात्मनः।१
शृणु रुद्र हरेर्ध्यानं संसारतरुनाशम्।
अदृष्टरूपञ्चान्तञ्च सर्वव्याप्यजमव्ययम्।२

अक्षयं सर्वगं नित्यं महद्ब्रह्मास्ति केवलम् ।
सर्वस्य जगतो मूलं सर्वेशं परमेश्वरम् ।३
सर्वभूतहृदिस्थं वै सर्वभूतमहेश्वरम् ।
सर्वाधारं निराकारं सर्वकारथकारणम् ।४
अलेपक तथा मुक्तं मुक्तयोगिविचिन्ततम् ।
स्थूलदेहविहीनञ्च चक्षुषा परिवर्जितम् ।५
प्राणेन्द्रियविहीनञ्च प्राणधर्मविवर्जितम् ।
पायूपस्थविहीनञ्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।६
मनोविरहित चैवमनोधर्म्मविवर्जितम् ।
बुद्धया विहीनं देवेश चेतसा परिवर्जितम् ।७
अहंकारविहीनं वै बुद्धि धर्म्म विवर्जितम् ।
प्राणेन रहितञ्चैव ह्यपानेन विवर्जितम् ।
प्राणाख्यवायुहीनं वै प्राणधर्मविवर्जितम् ।८

रुद्र देव ने कहा-हे शंख, चक्र और गदा धारण करनें वाले ! शुद्ध, देव ईश, परमात्मा बिष्णु के ध्यान को पुनः करना चाहिए ।१। हरि ने कहा हे रुद्र ! सुनो, हरि का ध्यान इस संसार रूपी तरु के नाश करने वाला है । रूप तथा अन्त दृष्ट नहीं है वह सर्वव्यापी-अज और अव्यय है ।२। यह अक्षय, सर्वत्र गमन करने वाला नित्य और केवल महान् ब्रह्म है। वह इस सम्पूर्ण जगत् का मूल, सभी का ईश और परमेश्वर है ।३। समस्त भूतों के हृदय में स्थित रहने वाला तथा समस्त प्राणियों का महान् ईश्वर है । वह सभी का आधार भी है और स्वयं बिना आधार वाला है । यह सबके जो कारण है उनका भी कारण है वह लेप से रहित है अर्थात् किसी की भी लिप्तता का प्रभाव उस पर नहीं होता है । वह मुक्त तथा मुक्त हुए योगी जनोंके द्वारा विशेष रूप से चिन्तन किया हुआ है वह स्थूल देहसे रहित है और समस्त इन्द्रियों से भी विहीन होता है । मन इन्द्रिय से रहित और मन के जो धर्म होते हैं उन सबसे भी शून्य होता है बुद्धि तथा चित्तसे विहीन एवं अह-

कार रहित तथा बुद्धि आदि के धर्मों से ही देवेश होता है । प्राण एवं अपान से रहित तथा प्राण वायु से शून्य वह परम देव होते हैं ।५-८।

पुनः सूर्यार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं धनदाय हि ।
अष्टपत्रं लिखेत् पद्म शुचौ देशे सकर्णिकम् ।६
आवाहनीं ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्धरिम् ।
खलोल्कं स्थानयेन्मध्ये स्नापयेद् यन्त्ररूपिणम् ।१०
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेच्छिव ।
ऐशान्यां तु शिरष्यं नैऋँत्यां विन्यसेच्छिखाम् ।११
पौरन्दर्यान्यसेद्धर्ममेकाग्रस्थितमानसः ।
वायव्याञ्चैव नेत्रन्तु वारुण्यामस्त्रमेव च ।१२
ऐशान्यां स्थापयेत् सोम पौरन्दर्यान्तु लौहितम् ।
आग्नेय्यां सोमतनयं ताम्याञ्चैव बृहस्पतिम् ।१३
नैऋँत्यां दानवगुरुं वारुण्यां शनैश्चरम् ।
वायव्याञ्च तथा केतुं कौवेर्यां राहुमेव च ।१४
द्वितीयायान्तु कक्षायां सूर्यान् द्वादशं पूजयेत् ।
भगः सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वै वरुणस्तथा ।१५
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः ।
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।१६
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्रादीन् श्रद्धया नरः ।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ।
शेषश्च वासुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत् ।१७

श्री हरि ने कहा—अब मैं पुनः सूर्यदेव के अर्चन के विषय में बतलाता हूँ जो कि धन के लिए कहा गया था । आठ दलों से युक्त एक पद्म का लेखन करे जो कि किसी अति पवित्र देश में होना चाहिए । उस पद्म की कर्णिका को भी लिखना चाहिए ।६। इस लेखन करने के

अनन्तर आवाहन करने की मुद्रा प्रदर्शित कर वहाँ पर हरि का आवाहन करे। मध्य में खलोल्क की स्थापना करे और यन्त्र के स्वरूप वाले देव का स्थापन करावे ।१०। हे शिव ! आग्नेयी दिशा में देव के हृदय को स्थापित करे। ईशानी दिशा में सिर की स्थापना करनी चाहिये तथा नैऋत्य दिशा में शिखा का विन्यास करे ।११। ऐन्द्री दिशा में एकाग्र मनकी स्थिति रखने वाले धर्मको न्यस्त करना चाहिए। वायवी दिशा में नेत्र तथा वारुणी दिशामें अस्त्र का विन्यास करे ।१२। ऐशानी दिशा में सोम की स्थापना करे—पौरन्दरी में लौहित (मङ्गल)- आग्नेयी में सोमतनय (बुध)-और यामी दिशा में बृहस्पति को विन्यस्त करे ।१३। नैऋत्य में दानव गुरु (शुक्र), वारुणी में शनिश्चर, वायव्य में केतु तथा कावेरी दिशामें राहुका विन्यास करना चाहिये ।१४। द्वितीय कक्षा में बारह सूर्यों का पूजन करना चाहिए। उन बारह सूर्यों के नाम ये हैं—भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबल, बाला विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवाँ विष्णु कहा जाता है ।१५-१६। मनुष्य को पूर्वादि दिशाओं से इन्दु आदि का बड़ी ही श्रद्धा के साथ अर्चन करना चाहिये। जय, विजय जयन्ती और अपराजित, शेष वासुकि तथा नागों का पूजन करे ।१७।

१२-मृत्युंजयार्चन

गरूडोक्तं कश्यपाय वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम् ।
उद्धारपूर्वकं पुण्यं सर्वदेवमयं मतम् ।१
ओङ्कार पूर्वमुद्धृत्य जुङ्कारं तदनन्तरम् ।
सविसर्ग तृतीयं स्यान्मृत्युदारिद्रयमर्दनम् ।२
अमृतेशं महामन्त्रं त्र्यक्षरं पूजन समम् ।
जपनात् मृत्युहीनाः स्युः सर्पपापविवर्जिताः ।।३
शतजप्याद् वेदफलं यज्ञतीर्थफलं लभेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्य त्रिसन्ध्यं मृत्युशत्रु जित् ।४

ध्यायेच्च सितपद्मस्थं वरदंचाभयं करे।
द्वाभ्याचामृतकुम्भं तु चिन्तयेदमृतेश्वरम् ।५
तस्यैवांगता देवीममृतभाषिणीम् ।
कलश दक्षिणे हस्ते वामहस्ते सरोरूहम् ।६
जपेदष्टसहस्र यः त्रिसन्ध्यं मांसमेकतः ।
जरामृत्युमहाव्याधिशत्रुजिज्जीवशान्तिदः ।७

श्री सूतजी ने कहा—कश्यप मुनि के लिए गरुड के द्वारा कथित मृत्युञ्जय का अर्चन मैं बताता हूँ। यह उद्धारके साथ परम पुण्य तथा समस्त देवों से परिपूर्ण माना गया है।१। सबसे पूर्ण में ओंकार का अर्थात् 'ओं' इसका उद्धारकर इसके अनन्तर 'जु' का और फिर विसर्ग से युक्त 'स'—यह तृतीय होना चाहिए। 'ओं जु सः'—यह मन्त्र मृत्यु से और दारिद्र्य के मर्दन करने वाला है। यह अमृतेश का महामन्त्र तीन अक्षर वाला है। इसका आराधन पूजन के ही समान होता है। इस तीन अक्षर वाले महामन्त्र के जप से मानव मृत्यु से रहित हो जाते हैं तथा सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाया करते हैं।२-३। इस महामन्त्र के एक सौ बार जाप करने से वेद तथा यज्ञ और तीर्थ करने का फल प्राप्त होता है। इस महामन्त्र का अष्टोत्तर शत अर्थात् एक माला तीनों सन्ध्याओं में करें तो मनुष्य मृत्यु और शत्रुको जीतनेवाला होता है।४। और भगवान् अमृतेश्वर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि श्वेत कमल पर वे विराजमान है तथा उसके हाथ में वरदान एवं अभय दोनों ही प्रदान करने के लिए विद्यमान हैं और दोनों हाथों में अमृतके कुम्भ हैं ऐसा चिन्तन करना चाहिए।५। उन्हीं अमृतेश्वर के अङ्ग के साथ देवी भी हैं जो कि अमृत तथा ऋत-भाषण करने वाली हैं इनके दाहिने हाथ में कलश है और बाँये हाथ में कमल पुष्प हैं।६। ऐसा ध्यान करते हुए उक्त तीन अक्षर वाले महामन्त्र का आठ हजार जाप तीन सन्ध्याओं में एक मास पर्यन्त नित्य करे तो मनुष्य

की जरा (वृद्धता) मृत्यु महाव्याधि और शत्रु-इन सब पर विजय हो जाती है तथा जीवात्मा को बहुत अधिक शांति का लाभ होता है ।७।

आस्थान स्थापनं रोधं सन्निधान निवेशनम् ।
पाद्यमाचमनं स्नानमर्घ्यं चारूगुरूलेपनम् ।
दीपाम्बरं भूषणञ्च नैवेद्यं पानजीवनम् ।८
मात्रा मुद्रां जपं ध्यानं दक्षिणार्न्वाहुतिः स्तुतिः ।
वाद्यं गीतं च नृत्यं च न्यास योगं प्रदक्षिम् ।
प्रणति मन्त्र इज्या च वन्दनं च विसर्जनम् ।९
षडंगादप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम् ।
परमेशमुखोद्गोणं यो जानाति स पूजकः ।१०
अर्घ्यपाद्यार्थनचादौ अस्त्रेणैव तु ताड़नम्
शोधनं कवचेनैव अमृतीकरण ततः ।११
पूजां चाधारशक्तयादेः प्राणायामं तथासने ।
पिण्डशुद्धि ततः कुर्याच्छोधणाद्यैस्ततः स्मरेत् ।१२
आत्मानं देवरूपं च कराँगन्यासकचरेत्।।
आत्मानं पूजयेत्वश्चाज्ज्योतीरूप हृदब्जतः ।१३

अमृतेश्वर भगवान् के आराधना का साँगोपांग क्रम करना चाहिए । सर्वप्रथम उनका आवाह्वान करे, फिर स्थापना करे, सरोधन करे, सबं सन्निधान तथा सम्मुखीकरण निवेशन करना चाहिए । इसके अनन्तर पूजन का क्रम आरम्भ करे । अर्घ्य, पाद्य, आचमन और स्नान के लिए जल का समर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अगुरुलेपन, दीप, वस्त्र-आभूषण, नैवेद्य, पुनराचमनीय, गन्धाक्षत, पुष्प और मुखशुद्ध्यर्थं ताम्बूल, द्रव्यदक्षिणा, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे । मात्रा, मुद्रा, जप, ध्यान, दक्षिणा आहुति तथा स्तुति करे । फिर वाद्य-गीत, नृत्य, न्यास, योग, प्रदक्षिणा, प्रणति,मन्त्र, यजन, वन्दना आदि करके अन्तमें देवका बिसर्जन करना चाहिए ।८-९। इस प्रकार यह षडंग से पूजन का क्रम बताया गया है जो कि स्वयं शरमेश के मुखारविन्द से उद्गीर्ण हुआ

है । इस समय क्रम को जो भली भाँति से जानता है वही यथार्थ पूजा करने वाला होता है ।१०। आदि में अर्घ्य, पाद्य, अर्चन और अस्त्र के द्वारा ही ताड़न करे फिर कवच के द्वारा शोधन तथा इसके अनन्तर अमृतीकरण करे ।११। आधार शक्ति आदि की पूजा, प्राणायाम तथा आसन और इसके अनन्तर शोषणादि के द्वारा पिंड शुद्धि करे और इसके उपरान्त स्मरण करना चाहिए ।१२। आत्मा को देवरूप करके करांगन्यासादि करे । अपने आप में अन्तः स्थित हृदय कमल पर विराजमान ज्योति रूप का सृजन करे ।१३।

मूर्त्तौ वा स्थण्डिलेवापि क्षिपेत्पुष्पं तु भास्वरम् ।
आत्मनं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा ।१४
सन्निधीकरणं परिवारस्य पूजनम् ।
अंगषट्कस्य पूजार्थं कर्त्तव्या दिग्विभागतः ।१५
धर्मादियश्च शक्राद्याः सायुधाः परिवारकाः ।
युगवेदमुहूर्त्तश्च पूजेयं भुक्तिमुक्तिकृत् ।१६
मातृकाया गणं चादौ नन्दिगंगे च पूजयेत् ।
महाकालं च यमुनां देहल्यां पूजयेत् पुरा ।१७
ॐ अमृतेश्वरभैरवाय नमः ।
एवं ओं जूं सः सूर्य्याय नमः ।
एव शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च ।
चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत् ।१८

मूर्ति पर अथवा स्थण्डिल पर पुष्पोंका क्षेपण करे । भास्वर आत्मा की पूजा तथा द्वार पूजाके लिए आधार शक्तिकी पूजा करनी चाहिए । देव में सन्निधीकरण, परिवार का पूजन तथा दिशाओं के विधान के षडङ्ग पूजा करनी चाहिए ।१४। अपने-अपने आयुधों से समन्वित धर्म आदि एवं शक्र प्रभृति परिवार वाले होते हैं युगवेद और मुहूर्त होतेहैं । इनकी यह पूजा भुक्ति अर्थात् साँसारिक सुखोपभोगों के रसास्वादन का आनन्द और अर्थात् विभिन्न योनि में जन्म-मरण के बन्धन कष्टों के

छुटकारा दोनों ही को प्राप्त राने वाली होती है ।१५-१७। आदि में मातृका, गणनन्दी, गङ्गा का पूजन करना चाहिए। पहिले देहली में महाकाल और यमुना अर्चन करे। 'ॐ अमृतेश्वर भैरवायनमः'—इस मन्त्र में एग 'ॐ जूं सः सूर्याय नमः' इस मन्त्र के द्वारा पूजन करना चाहिए। इसी प्रकारसे शिवाय,' कृष्णाय,' ब्रह्मणे;''गणाय, 'चण्डकायै,' 'सरस्वत्यै,' महालक्ष्म्यै' इत्यादि क्रम से इनके आगे प्रणव तथा अन्त में 'नमः' यह लगाकर सबका यजन करना चाहिए ।१८।

१३—शिवार्चन और पंचतत्व दीक्षा

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
शान्तं सर्वगतं शून्यं मात्रा द्वे दशके स्थितम् ।
पंचवक्त्राणि ह्रस्वापि दीर्घाण्यगानि विन्दुना ।
सविसर्गं वदेदस्त्रं शिव ऊर्ध्वं तथा पुनः ।
षष्ठनाधो महामन्त्रो हौमित्येवाखिलार्थदः ।२
हस्ताभ्यां संस्पृशेत पादाबूर्ध्वं पादान्समस्तकम् ।
महामुद्रा हि सर्वेषां करांगन्यासमाचरेत् ।३
तालहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रमन्त्रेण शोधयेत् ।
कनिष्ठामादितः कृत्वा तर्जन्यंगानि विन्यसेत् ।४
पूजनं सम्प्रवक्ष्यामि कणिकायां हृदम्बुजे ।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यादि हृदाऽर्चयेत् ।५
आवाहनं स्थापनं पाकमध्यहृदार्पयेत् ।
आचामं स्नपनं पूजामेकाधारतुल्यकाम् ।६
अग्निकार्यविधिं वक्ष्ये शस्त्रेणोल्लेखनं चरेत् ।
वर्मणाभ्युक्षणं कार्यं शक्तिन्यासं हृदाचरेत् ।७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के अर्चन को बतलाऊँगा जो कि परम भक्ति तथा मुक्ति का करने वाला है। वह शान्त, सर्वगत अर्थात् सभी में व्याप्त रहने वाला और शून्य है। वह द्वादश मात्रा में स्थित

रहता है ५ वक्त्र अस्व हैं और अन्य अङ्ग विन्दु से दीर्घ है ।१। विसर्ग के सहित अस्त्र को बोले 'शिव'—यह उर्ध्व में है तथा पुनः षष्ठ से महा-मन्त्र "होम" इतना ही समस्त प्रकार के अर्थों का दान करने वाला होता है ।२। दोनों हाथों से दोनों पादों को पादान्त नामक ,उर्ध्व का स्पर्श करे। सबकी महामुद्रा है—करन्यास अङ्ग न्यास करना चाहिए ।३। और हस्त से पृष्ठ को अस्त्र मन्त्र के द्वारा शोधन करे। कनिष्ठा को आदि में करके तर्जनी से अङ्गों का विन्यास करे ।४। अब मैं हृदय कमल में कर्णिका में पूजन को बतलाता हूँ। हृदय से धर्म्म-ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य आदि की अर्चना करे ।२। हृदय के द्वारा ही आवाहन और स्थापना, सम्मुखीकरण, संरोधन आदि पाद्य एवं अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। आचमन, स्नपन एक ही आधार के तुल्य पूजा करनी चाहिए ।६। जब अग्नि कार्य की विधि बतलाऊँगा। शास्त्र के द्वारा उल्लेख करे—धर्म्म के अभ्युक्षण और हृदय से शक्ति का न्यास करना चाहिए ।७।

हृदि वा शक्तिगते च प्रक्षिपेज्जातवेदसम् ।
गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृतिञ्चाय पश्चिमाम् ।८
हृदा कृत्वा सर्वकर्म शिवं सांग तु होमयेद् ।
पूजयेन्मण्डले शम्भु पद्मगर्भे गवाङ्कितम् ।९
चतुःषष्ठयन्तमष्टादि स्वाक्षिस्वाध्यादिमण्डलम् ।
खाक्षीन्प्रसूर्यगं खदिवेदेन्दुत्तनात् ।१०
आग्नेय्यां कुण्डमद् कारयदर्धचन्द्रनिभं शुभम् ।
अग्निशास्त्रपरा शस्त्रहृदयादिगणोच्यते ।
अस्त्र दिशामुपान्तेषु कर्णिकायां सदाशिवम् ।११
दीक्षां वक्ष्ये पञ्चतत्वे स्थितां भूम्यादिकां परे ।
निवृत्तिर्भू प्रतिष्ठा च विद्याग्निः शन्तिरश्मिनः ।१२
शान्त्यतीत भवेद्धोमे तत्परं शान्तमव्ययम् ।
एकैकस्य शतं होममित्येव पञ्च होमयेत् ।

पश्चात् पूर्णाहुति दत्वा प्रसादेन शिवं स्मरेत् ।१३
प्रायश्चितत्तविशुद्धयर्थमेकैकमाहुतिं क्रयात् ।
होमयेदस्त्रीबीजेन एवं दीक्षा समाप्यते ।१४
यजनव्यतिरेकेण गोप्यं संस्कारमुत्तमम् ।
एवं संस्कार शुद्धस्य शिवत्वं जायते ध्रुवम् ।१५

हृदय में अथवा शक्तिगर्त्त में अग्नि का प्रक्षेपण करे। गर्भाधानादि करके इसकी निष्कृति करनी चाहिए। हृदयके द्वारा समस्त कर्म करके फिर सांग शिव का होम करे। मण्ड़ल में पद्मगर्भ में गवांकित शम्भु का पूजन करना चाहिए।८-९। अष्ट आदि चौसठ के अन्त तक अक्षिपों में स्वाध्यादि मण्डल को अन्तरिक्ष के अभीष्ट सूर्य में गमन करने वाले को सबको आकाश की भाँति इन्दुवर्त्तन से आग्नेय दिशा में अर्धचन्द्र के सदृश परम शुभ कुण्ड की रचना करनी चाहिए। अग्नि शास्त्र में परायण शास्त्र हृदयादि गणा कही जाती हैं। दिशाओं के उपान्तों में अस्त्र को और कर्णिका में सदाशिव का अर्चन करे।१०-११। अब मैं पश्चात्व में स्थित भूम्यादि की दीक्षा को बतलाता हूँ। निवृत्ति, भू, प्रतिष्ठा, विद्याग्कि और अग्नि की शान्ति तथा शान्ति के पश्चाद् होम में तत्पर अव्यय शान्त होता है। एक एकको सौ आहुतियों का होम होता है। इस प्रकार से होम करने चाहिए। इसके अनन्तर पूर्णाहुति देकर प्रसाद के द्वारा भगवान् शिव का स्मरण करना चाहिए।१२-१३। प्रायश्चित्त की बुद्धि के लिए क्रम से एक-एक आहुति अस्त्र बीज से होम करना चाहिए। इस प्रकार से दीक्षा की समाप्ति की जाती है।१४। यजन के व्यतिरेक से उत्तम संस्कार को गुप्त रखना चाहिए। इस प्रकार से संस्कारों से शुद्ध को शिवतत्व निश्चित ही प्राप्त हो जाता है।१५।

१४—श्रीकृष्ण पूजन विधि

गोपालपूजां वक्ष्यामि भुक्तिमुक्ति प्रदायनीम् ।
द्वारे धाता विधाता च गंगा यमुनया ।१

शंखपद्मनिधि चैव शारङ्ग शरभः श्रिया ।
पूर्वे भद्रः सुभद्रो द्वौ दक्षौ चण्डप्रचण्डको ।२
पश्चिमे गलप्रबलो जयश्च विजयो यजेत् ।
उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारे गणो दुर्गा सरस्वती ।३
क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेषु दिक्षु नारदपूर्वकम् ।
सिद्धो गुरुर्नलकूबरं कोणे भावबतं यजेत् ।४
पूर्वे विष्णुतपो विष्णुशक्ति समर्चयेत् ।
ततो विष्णुपरिवारां मध्ये शक्ति च कूर्मकम् ।५
अनन्तं पृथिवीधर्मा वैराग्यमग्नितः ।
ऐश्वर्य्यं वायुपूर्वश्च प्रकाशात्मानमुत्तरे ।६
सत्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहरूपिणे ।
तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्वकम् ।७
विद्यातत्वं सूर्य्येन्दुवह्निमण्डलम् ।
विमलाद्या आसनञ्च प्राच्यां श्रीं ह्रीं संपूजयेत् ।
गोपीजनबल्लभाय स्वाहान्ती मनुरुच्यते ।८

सूतजी ने कहा—अब मैं आप लोगों को गोपाल की योग तथा मोक्ष प्रदान कराने वाली पूजा के विषय में बताता हूँ द्वार मैं धाता, विधाता और यमुना के साथ गङ्गा का यजन करना चाहिए ।१। शंख ओर पद्म नदियों को तथा शारङ्ग एवं श्री के सहित शरभ का यजन करे। पूर्व दिशा में भद्र, सुभद्र दो दक्ष चण्ड प्रचण्डक, पश्चिम दिशा में बल,प्रबल जय और विजय, उत्तर में भी चतुर्द्वार में गण दुर्गा और सरस्वती,क्षेत्र के अग्नि आदि कोणों में दिशाओं में नारद के साथ सिद्ध,गुरु एवं कोण में भगवान नलकूवर का यजन करना चाहिए ।२-४। पूर्व में विष्णु तप और विष्णु शक्तिकी समर्चना करनी चाहिए । इसके अनन्तर विष्णु के परिवार की अर्चना करे और मध्य में शक्ति और कूर्म का पूजन करना चाहिए ।५। आग्नेयी दिशामें अनन्त पृथ्वी, धर्म, ज्ञान और वैराग्य का यजन करे तथा वायु पूर्व ऐश्वर्य का एवं उत्तरसे प्रकाशात्मा

का पूजन करे ।६। प्रकृतात्मा सत्व के लिए-मोह रूपी रजोगुण के लिए और तमोगुण पद्म के लिए अहङ्कार तत्व का यजन करना चाहिए ।७। विद्या तत्व, पर तत्व,सूर्य, इन्दु, वह्नि, मण्डल, विमला आदि और आसन को प्राची (पूर्व दिशा) में श्री ह्रीं से पूजित करे । गोपीजन वल्लभाय स्वाहा'-यह जिसके अन्त में है, ऐसा उसका मन्त्र कहा है ।८।

आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च ।
त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम् ।६
हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्रं शक्तिञ्च पूर्वतः ।
रूक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा आग्नजित्यपि ।१०
लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्या सुशीलया ।
शंखचक्रगदापद्मं मुसलं शाङ्गं मर्चयेत् ।।११
खङ्ग पाशाकुलं प्राच्यां श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ।
मुकुटं वनमालाञ्च इन्द्राद्यान् ध्वजमुख्यकान् ।१२
कुमुदाद्यान्विष्वक्सेनं कृष्णं श्रिया सहार्चयेत् ।
जप्यात्द्धयानात्पूजनाच्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।१३

सब अङ्गों को बतलाया जाता है-आचक्र सुचक्र, विचक्र तथा त्रैलोक्य की रक्षा करने वाला असुरों के हरि भगवान विष्णु के चक्र का यजन करे ।६। हृदादि पूर्ण कोणों में शक्ति का पूजन करे । पूर्व में रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्नाजिती, लक्ष्मणा, मित्रवृन्दा सुशीला जाम्बवती इन आठ महा महिषियों के सहित शंख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल और शार्ग धनु, इस भगवान आयुधों का समर्चन करना चाहिए ।१०-११। प्राची दिशा में खड्ग, पाश, अंकश श्रीवत्स, कौस्तुभ मुकुट, बनमाला और इन्द्रादि ध्वस मुख्यों का यजन करे । कुमुदादि विष्वक्सेन तथा श्री के सहित कृष्ण का अर्चन करना चाहिए । इस प्रकार से जाप से, पूजन से मानव अपने समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ।१२-१३।

१५—गायत्री न्यास

न्यासादिकं प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव च ।
विश्वामित्रं ऋषिश्चैव सविता चायं देवता ।१
ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयाश्रिता ।
विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा ।२
त्रैलौक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता ।
एवं ज्ञात्वा तु गायत्रीं जपेद् द्वादशलक्षकम् ।३
त्रिपदाऽष्टाऽक्षरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा ।
जपेच्च त्रिपदा प्रोक्ता ऊचयेच्च चतुष्पदा ।४
न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ।
गायत्रीं विन्यसेन्नित्यं सर्वपापप्रणाशिनीम् ।५

श्री हरि से कहा—अब हम गायत्री के न्यास को बतलाते हैं। पर गायत्री के छन्द भी बतलायेंगे। गायत्री के विश्वामित्र ऋषि है और इसके देवता सविता है। ब्रह्म के शीर्षवाली यह रुद्र की शिखावालीहैं। यह गायत्री विष्णु के हृदय में संश्रित रहती हैं। इसका विनियोग एक नेत्र है तथा कात्यायन की सगोत्रजा है।१-२। गायत्री को त्रैलोक्य के चरण वाली और पृथिवी की कुक्षि में संस्थित रहने वाली समझना चाहिए। गायत्री का इस प्रकार का पूर्णज्ञान प्राप्त करके तथा स्वरूप को जानकर ही इसका बारह लक्षजप करना चाहिए।३। इसे तीन पदों वाली, आठ अक्षरों वाली चारपदोंसे युक्त तथा षडक्षरा जानना चाहिए त्रिपदा का जप करना चाहिए और अर्चनमें चतुष्पदा यह बताई गईहै। न्यास में, जप में, ध्यान में, अग्नि कार्य में अर्थात् हवन में तथा अर्चन में इस समस्त पापों के प्रकृष्ट रूप से नाश कर देने वाली गायत्री का नित्य ही विन्यास करना चाहिए।४-५।

पादांगुष्ठे गुल्फमध्ये जंघयोर्विद्धि जानुनोः ।
ऊर्ध्वोर्गुह्य च वृषणे नाड्यां नाभौ तनूदरे सहा ।६

स्तनयोर्हृदि कण्ठोष्ठमुखे तालुनि वांशयोः।
नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्यां दक्षिणोत्तरे।
पश्चिमे मूर्ध्नि चाकारं न्यसेद्वर्णान् वदाम्यहम् ।७
इन्द्रनीलञ्च वह्निञ्च पीतं श्यामञ्च कापिलम्।
श्वेतं विद्युत्प्रभं तारं कृष्णं रक्तं क्रमेण तत् ।८
श्यामं शुक्लं तथा पीतं श्वेतं वै पद्मरागवत्।
शंखवर्णं पाण्डरञ्च रक्तंचासवन्निभम्।
अर्कवर्णं समं सौम्यं शंखाभं श्वेतमेव च ।९
सकृत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
पूतं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः ।१०

इस गायत्री के न्यास करने के स्थानों को बताते हुए कहते हैं कि पैरों के अंगूठे, गुल्फ के मध्य में, दोनों जंघाओं में,जानुओं में, उरुओंमें गुह्य में, वृषण में, नाड़ी में, नाभि में, शरीर के मध्य में, स्तनोंमें हृदय में, कण्ठ में, ओष्ठ, मुख, तालु में दोनों कन्धों में, नेत्र में भौंहों में और ललाट में न्यास करे। पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम तथा मूर्धा के आकार का न्यास करना चाहिए। अब न्यास के वर्णों को मैं बताता हूँ इसका वर्ण इन्द्र नील और वह्नि के समान है—पीत, श्याम, कपिल, श्वेत, विद्युत की प्रभा के तुल्य तार, कृष्ण और क्रम से रक्त वर्ण है ।६-८। श्याम, शुक्ल पीत, श्वेत पद्मराग मणि के समान है। शङ्ख वर्ण और पाण्डर वर्ण है तथा रक्त वर्ण आसव के तुल्य हैं। अर्क (सूर्य) के वर्ण के सम वर्ण है और शङ्ख की आभा के तुल्य सौम्य एवं श्वेत वर्ण होता है ।९। जिस-जिसका हाथ स्पर्श करता है और जो-जो नेत्र से देखता वह सभी पूत हो जाता हैं। गायत्री से पर अन्य कुछ भी नहीं है। यह गायत्री सर्वोपरि शिरोपरि मन्त्र है ।१०।

१६—सन्ध्या विधि

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि शृणु रुद्राघनाशनम्।

प्राणायामत्रयं कृत्वा सन्ध्यास्नानमुपक्रमेत् ।१
सप्रणवां सव्याहृति गायत्री शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ।२
मनोवाक्कायजं दोषं प्राणायामैर्दहेद् द्विजः ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत् ।३
सायमग्निश्च नेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत् ।
आपः पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि ।४
आपो हिष्ठेत्युचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकैः ।
प्रणवेन तु संयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ।५
रजस्तमः स्वमोहोत्थान् जागृत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
वाङ्मनः कर्मजान् दोषान् नवैतान्नवभिर्दहेत् ।६
समुद्धृत्योदकं पाणौ जप्त्वा च द्रुपदा क्षिपेत् ।
त्रिषडष्टौद्वादशधा वर्त्तयेदघमर्षणम् ।७
उदुत्यु चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् भास्करम् ।
दिवारात्रौ च यत् पापं सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ।८

श्री हरि ने कहा—हे रुद्र ! अब मैं तुमको संध्या की विधि बतलाता हूँ जोकि अघोंका नाश करने वाली होती है । तीनबार प्राणायाम करके फिर सन्ध्याके स्नान का उपवास करना चाहिए ।१। आयत प्राण वायु वाला होते हुए तीनबार प्रणवव्याहृति और शिरके सहित गायत्री का जप करे, इसी को प्राणायाम कहा जाता है ।२। ब्राह्मण को प्राणायामों के द्वारा मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले दोषों का दाह कर देना चाहिए । इसलिए ब्राह्मण को सब कालों में प्राणायाम परायण होना चाहिए ।३। सन्ध्या के समय में "अग्निरश्च मे'—इस मन्त्र का उच्चारण करके, प्रातःकाल "सूर्यश्च"—इत्यादि मन्त्र को कहकर और मध्याह्न में 'आप पुनन्तु"—इत्यादि मन्त्र को बोल कर यथा विधि उपस्पर्शन करना चाहिए ।४। इसके अनन्तर आपोहिष्ठा मत्रों—

भुवः इत्यादि ऋचा से कुशोदक से मार्जन करना चाहिए । प्रणव के संयुक्त बारि को पद-पद से प्रक्षित करे ।५। रजोगुण, तमोगुण के होने वाले अपने मोह के कारण उठे हुए—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिकाल में उत्पन्न होने वाले तथा वाणी, मन और कर्म से समुत्पन्न हुए दोषों को जो नौ प्रकार के होते हैं उनको इन 'आपोहिष्ठा'—इत्यादि नौ मन्त्रों के द्वारा दग्ध कर देना चाहिए ।६। फिर हाथ में जल को लेकर 'द्रुपदादिव'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण एवं जाप करके उस जल को प्रक्षिप्त करना चाहिए । तीन बार, छै बार, आठ बार और बारह बार अघमर्षण करना चाहिए ।७। 'उदुत्यं', चित्रम्—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सूर्यदेव का उपस्थान करना चाहिए । इस प्रकार से दिन और रात्रि के समय में जो भी कुछ पाप किया है वह सभी उसी क्षण से नष्ट हो जाया करता है ।८।

पूर्वं संध्यां जपंस्तिष्ठेत् पश्चिमामुपविश्य च ।
महाव्याहृत्तिसंयुक्तां गायत्रीं प्रगवान्विताम् ।९
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।
त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ।१०
रक्ता भवति गायत्रीं सावित्री शुक्लवर्णिका ।
कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम् ।११
ॐ भूर्विन्यस्य हृदये ॐ भुवः शिरसि न्यसेत् ।
ॐ स्वरिति शिखायांच गायत्र्याः प्रथमं पदम् ।१२
विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत् ।
तृतीयेनाङ्गविन्यासः चतुर्थं सर्वतो न्यसेत् ।१३
सन्ध्याकाले तु विन्यस्य जपेद्वै वेदमातरम् ।
शिबस्तस्यास्तु सर्वाङ्गे प्राणायामपरं न्यसेत् ।।१४

इस विधि से पूर्व अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या को जप करते हुए खड़ा होकर पूर्ण करे और पश्चिम सन्ध्या को बैठकर करे । महाव्याहृतियों से युक्त तथा प्रथव से समन्वित गायत्री मन्त्र को एक सौ बार

जप से पहिला किया हुआ दस जन्मों का समुत्पन्न पाप नष्ट हो जाता है। एक सहस्र जाप करने पर साबित्री त्रियुग के दुष्कृत का नाश कर दिया करती है।६-१०। गायत्री का रक्तवर्ण होता है-साबित्री का शुक्ल वर्ण होता है तथा सरस्वती का कृष्ण वर्ण माना जाता है । ये तीनों काल की सन्ध्याओं का बिवरण बता दिया गया है। जब न्यास का प्रकार बताया जाताहै 'ओंभुवः' इसका बिन्यासमें हृदय करे अर्थात् 'ॐ भूहृदयाय नमः, यह उच्चारण करके हृदय का स्पर्श करना चाहिए में विन्यास करना चाहिए। इस प्रकार से गायत्री के प्रथम पद का विन्यास करे। प्रथम हृदय से न्यास में—नमः का प्रयोग, द्वितीय में 'स्वाहा' का और तृतीय में 'वषट्'—प्रयोग करे। इसके पश्चात् विद्वान् को कवच में न्यास करना चाहिए और द्वितीय विन्यास नेत्रों में करे तथा तृतीय से अङ्ग का विन्यास करे और चतुर्थ का सब ओर करे । ।११-१३। सन्ध्या की बेला में इस तरहसे बिन्यास करके फिर देबमाता का विशेष रूप से जप करना चाहिए। उसके समस्त अङ्ग में शिब हीवे प्राणायाम पर न्यास करे।१४।

त्रिपदा या गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी ।
विनियोगवृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।१५
परोरजसि सारं तं तुरीयपदमीरितम् ।
तं हन्ति सूर्य्यःसन्ध्यायां नोपास्ति कुरुते तु यः ।१६
तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिनिर्मल एव च ।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ।१७

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली जो त्रिपदा गायत्री है उसका विनियोग, ऋषि और छन्दका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही जपका आरोप करना चाहिए। गायत्रीका इस प्रकारसे विधि पूर्वक जप करने वाला व्यक्ति सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्ति किया करती है।१४। जो तुरीय पद कहा गया है सन्ध्या

में सूर्य उसका हनन कर देता है जो कि सन्ध्या समय में उपासना नहीं किया करता है । अतः सन्ध्योपासना करना नितान्त आवश्यक है । तुरीय पद का भी ऋषि निर्मल होता है । उसका छन्द गायत्री होता है और परमात्मा देवता है ।१६-१७।

१७—गायत्री माहात्म्य

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम् ।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि ।१
गायत्रीकल्पमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदश्च तत् ।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा अथवाऽष्ट शतं जपेत् ।
त्रिसन्ध्यं ब्रह्मलोको स्याच्छतजप्तं जले पिबेत् ।२
सन्ध्यायां सर्वपापघ्नीं देवीं मावाह्य पूजयेत् ।
भूर्भुवः स्वः स्वमन्त्रेण युतां द्वादशनामभिः ।३
गायत्र्यै नमः सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नमः ।
वेदमात्रे च सांस्कृत्यै ब्रह्माणी कौशिको क्रमात् ।४
साध्व्यै सर्वार्थसाधिन्यै सहस्राक्ष्यै च भूर्भुवः ।
स्वथेव जुहुयादग्नी समिधाऽऽज्यं हविष्यकम् ।५
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टशतं धृतम् ।
धर्मकामादिसिद्धिचर्थं जुहूयात् सर्वकर्मसु ।६
यथा लक्षं तु जप्तव्यं पयोमूलफलाशनैः ।
अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामनावाप्नुयात् ।७
उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनी ।
ब्रह्मणा समानुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ।८

श्री हरि ने कहा—गायत्री परमा अर्थात् सर्वोच्च देवी है । यह सांसारिक समस्त भोग और अन्त में मोक्ष प्रदान करने वाली है । जो मनुष्य उसका जप करता है उसके चाहे बड़े-से बड़े पाप क्यों न हों सभी समूल विनष्ट हो जाया करते हैं ।१। अब मैं गायत्री के कल्प को

बताऊँगा वह कल्प भक्ति तथा मुक्ति दोनों को देने वाला होता है। गायत्री को एक सौ आठ सहस्र बार अथवा आठ सौ जपना चाहिए। तीन काल की सन्ध्या में गायत्री का जप करने से ब्रह्मलोक के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। सौ बार जप किया हुआ जल पीना चाहिए।२। सन्ध्य में अगस्त पापों का नाश करने वाली देवी का आवाहन करके उसका पूजन करना चाहिए। "ओम् भूर्भुवः' इस स्वमंत्र से उसके द्वादश नामों से गायत्री का यजन करना चाहिए। गायत्री के लिए नमस्कार है। सावित्री के लिए नमस्कार है—सरस्वती के लिए बारम्बार नमस्कार है। वेदों की माता के लिए नमस्कार है। सांकृति के लिए नमस्कार है। ब्रह्माजीके लिए नमस्कार है। कौशिकी के लिए नमस्कार है। इस क्रम से साध्वी के लिए नमस्कार है। सर्वं अर्थोंके साधन करने वालीके लिए नमस्कार है और सहस्रों नेत्रों वाली के लिए नमस्कार हैं। फिर भूर्भुवः स्वः—इससे ही अग्नि में समिधा आज्य (घृत) और हवि का हवन करना चाहिए।४-५। अष्टोत्तरशतं अथवा आठ सौ की आहुतियाँ समस्त कर्मों में धर्म आदि कामादि की सिद्धि के लिए अग्नि में देनी चाहिए।६। गायत्री की प्रतिमा चंदन अथवा सुवर्ण की बनवाकर उसका पूजन करे। गायत्री का एक लाख बीस बार होम करने पर मानव सभी कामनाओं की प्राप्ति पर दिया करता है।७। उत्तर शिखरमें समुत्पन्न हुई भूमिमें है पर्वत पर निवास करने वाली ! ब्राह्मणों के द्वारा समनुज्ञात होती हुई हे देवी! अब आप सुख पूर्वक पधारिये—इस प्रकार से गायत्रीका विसर्जन अन्त में करना चाहिए।८।

१८—ब्रह्मध्यान

पूजयित्वा पवित्राद्यै र्ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत्।
ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायामन्त्रप्रमर्दकम्।१
यच्छैद्वाङ् मनसा प्राज्ञस्तं यजेद् ज्ञानमात्मानः।
ज्ञानं महति संपच्छेद्य इच्छैज्ज्ञाननात्मंनि ।।२

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
वर्जित भूततन्मात्रैर्गुणजन्माशनादिभिः ।३
स्वप्रकाश निराकारं सदानन्दमनादि यत् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमृद्धं सत्यमानन्दमद्वयम् ।४
तुरीयमक्षरं ब्रह्म अहमस्मि परं पदम् ।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरपि गीयते ।५
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः ।६
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।
यस्तु विज्ञानवान्ह्येन युक्तेन मनसा समा ।
स तु तत्पदमाप्नोति न च भूयोऽभि जायते ।७

श्री हरि ने कहा—पवित्रादि के द्वारा पूजन करके और ब्रह्म का ध्यान करके हरि हो जाता है। अब ब्रह्म के ध्यान को बतलाता हूँ जो इस माया के मन्त्र का प्रमर्दन कर देने वाला है। प्राप्त पुरुष को वाणी और मन के द्वारा उसका यजन करना चाहिए। आत्म ज्ञान का उपयोग करे। जो आत्मा में ज्ञान की इच्छा रखता है उसे महत् में ज्ञान को लगा देना चाहिए।१-२। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार सहित, भूत, तन्मात्रा-गुण जन्म और अशन आदि से हीन, अपने आपसे प्रकाश वाला, आकार से शून्य, सदाआनन्द स्वरूप, अनादिः शुद्ध, बुद्ध, ऋद्ध, सत्य, आनन्दमय,अद्वय तुरीय और अक्षर ब्रह्म-पर यह मैं हीहूँ। मैं ब्रह्म हूँ यह अवस्थान तथा समाधि यह भी गाया जाता है।३-४-५। इस आत्मा को रथ में स्थित रथी तथा इस शरीर को रथ समझना चाहिए। इस शरीर में जो इन्द्रियाँ है वे इस शरीर रूपी रथको चलाने वाले अश्व हैं और समस्त इन्द्रियों के विषय गोचर पदार्थ होते हैं।६। विद्वान् पुरुषमन इन्द्रियों से युक्त आत्मा ही भोक्ता होता है, ऐसा कहते हैं जो सदा बिज्ञान, वान्ह्य मन से युक्त होता है वही उस पद को प्राप्त होता है और फिर वह जन्म ग्रहण नहीं किया करता है।७।

विज्ञानसारथिर्यस्य मनः प्रग्रहवान्नरः ।
स्वाहिन्याः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।८
अहिंसादि यमः प्रोक्तः शौचादि नियमः स्मृतः ।
पद्माद्युक्त आसनञ्च प्राणायामो मरुज्जयः ।९
प्रत्याहारो जयः प्रोक्तो ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ।
मनोधृतिर्धारणास्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः ।१०.
अमूर्त्तो चेट्टणी स्यात्तु ततो मूर्त्ति विचिन्तयेद् ।
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शंखचक्रगदाधरः ।११
श्रीवत्सकोस्तुभयुतो वनमालाश्रिया युतः ।
नित्यः शुद्धो बुद्धियुक्तः सत्यानन्दाह्वयः परः ।१२
आत्माऽहं परम ब्रह्म परमज्योतिरेव तु ।
चतुर्विंशतिमूर्त्तिः स शालग्रामशिलास्थितः ।१३
द्वारकादिशिलासंस्थो ध्येयः पूज्योऽपि वा परिः ।
मनसोऽभीप्सितं प्राप्य देवो वैमानिको भवेत् ।
निष्कामो मुक्तिमाप्नोति मूर्तिंध्यायन्स्तुवन् जपन् ।१४

जिसका सारथी अर्थात् इस शरीर रूपी रथ के इन्द्रिय स्वरूपी अश्वों को चलाने वाला ड्राइवर विज्ञान होता है वह मनुष्य मन रूपी प्रग्रह बागडोर को हाथ रखने वाला होकर इस स्वाहिनी के पार लग जाया करता है अर्थात् इस संसार से पार हो जाया करता है और वह ही बिष्णु का परम पद होता है ।८। अहिंसा आदि को यम कहा जाता है और शौच आदि नियम कहे जाया करते हैं । पद्म आदि को आसन कहते हैं तथा वायु पर विजय प्राप्त करने को ही प्राणायाम कहा जाता है । इस प्रक्रिया पर जय प्राप्त कर लेने की स्थिति को ही 'प्रत्याहार' इस नाम से योग के एक अङ्ग को पुकारा जाता है । इस प्रकार से ईश्वर के चिंतन करने को ध्यान कहते हैं । मन की धृति अर्थात् मन को केन्द्रित कर लेनेका नाम ही धारणा कही जाती है । इस तरह से मन को एकाग्र करके जो ब्रह्म की स्थिति करली जाती है वह ही

समाधि कही जाया करती है ।९-१०। यदि निराकार ब्रह्मका ध्यान बन पावे तो साकार ब्रह्म का चिंतन करना चाहिए । ध्यान करने वाले पुरुष को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि उसके हृदय रूपी कमल में जो उसके मध्य भाग में कर्णिका है वहाँ पर शंख-चक्र-गदा एवं पद्म इन चारों आयुधों के धारण करने वाले प्रभु हैं जो श्रीवत्स एवं कौस्तुभको धारण किए हुए हैं तथा वनमाला पहिने हुए हैं । उनका स्वरूप नित्य शुद्ध, बुद्धि, मुक्त, सत्य पर एवं आनन्दमय है ।११-१२। मैं आत्मा ही परब्रह्म एवं परम ज्योति हूँ । चौबीस मूर्तियों वाला मैं ही शालग्राम की शिला में स्थित रहता हूँ ।१३। द्वारका आदि का शिला में स्थित रहने वाला भी निरन्तर हरिध्यान करने के तथा पूजा के योग्य हैं, भी मेरी मूर्ति ध्यान करने वाले को अभीष्ट हो उसी का ध्यान करके वह अभीप्सित प्राप्त कर लेता है और वे मानिक देव हो जाता है । तात्पर्य यह कि स्वर्गादिका अधिकारी देव बन जाता है । जो कामनाओं से रहित होकर मेरी मूर्तिका ध्यान किया जाताहै वह परमपद मुक्तिको प्राप्त करता है चाहे मेरा ध्यान करे, स्तवनकरे या मेरा जप करे।१५।

१९—शालग्राम लक्षण

प्रसङ्गात्कथयिष्यामि शालग्राम लक्षणम् ।
शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ।१
शंखचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधरः ।
साब्जकौमोदकीचक्रशङ्खी नारायणो विभुः ।२
सचक्रशंखाब्जगदी माधवः श्रीगदाधरः ।
गदाब्जशंखचक्री वा गोविन्दोऽर्च्यो गदाधरः ।३
पद्मशंखारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः ।
सशङ्खाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्त्तये ।४
नमो गदारिशङ्खाब्जमूर्ति त्रैविक्रमाय च ।
सारिकौमोदकीपद्मशङ्खवामनमूर्त्तये ।५
चक्राब्जशङ्खगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये ।
हृषीकेशायाब्जगदाशङ्खिने चक्रिणे नमः ।६

साब्ज चक्रगदाशङ्खपद्मनाभस्वरूपिणे ।
दामोदरशंखचक्रगदापद्मिन्नमोनमः ।७
सारिशंखगदाब्जाय वासुदेवाय वै नमः ।
शंखाब्जचक्रगदिनेदे नमः सङ्कर्षणाय च ।८

श्री हरि से कहा—अब मैं प्रसङ्गवश शालग्राम के लक्षण बतलाता हूँ शालग्राम की शिला का बहुत ही अधिक महत्व है । शालग्राम की शिला के स्पर्श करने से करोड़ों जन्मों के अघों का नाश हो जाता है । ।१। शंख, चक्र, पद्म और गदा के धारण करने वाले भगवान् का नाम केशव है । कमल, कौमोदकी, चक्र और शंख धारी विभु का नाम नारायण है ।२। चल-शंख और गदा वाले श्रीगदाधर का नाम माधव है।गदा अब्ज, शंख और चक्र के धारण करने वाले गदाधर गोविन्द अर्चना के योग्य है ।३। पद्म-शंख और शत्रु की नाशक गदा के धारण करने वाले विष्णु के स्वरूप आपके लिए नमस्कार है । शंख, चक्र, अब्ज गदा के सहित मधु दैत्य के सूदन करने वाली मूर्ति के लिए नमस्कार है ।४। गदादि, शंख अब्जकी मूर्ति त्रैविक्रम के लिए प्रणाम है सारि, कौमोदकीं अर्थात् आपके सहित कौमोदकी गदा, पद्म और शंख और वामन मूर्ति वाले आपको नमस्कार है। चक्र, अब्ज, शंख और गदा वाले श्रीधर मूर्ति को नमस्कार है । हृषीकेश अर्थात् विषयन्द्रियों के स्वामीं, अब्ज, गदा और शंखधारी चक्री के लिए नमस्कार है ।५-६। अब्ज, चक्र, गदा और शंख के सहित पद्मनाभ के स्वरूप वाले, हे दामोदर ! हे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारिन ! आपके लिए बारम्बार नमस्कार है ।७। सारि, शंख गदा और अब्ज के सहित वासुदेव के लिए प्रणाम है । शंख अब्ज, चक्र और गदा के धारण करने वाले संकर्षण के लिए प्रणाम है ।८।

सुशंखसुगदाब्जारिदधते प्रद्युम्नमूर्त्तये ।
नमोऽनिरुद्धाय गदाशंखाब्जारिविधारिणे ।९
साब्ज शंखगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये ।
नमोऽधोऽक्षजरूपाय गदाशंखारिपद्मिने ।१०

नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशंखारिधारिणे ।
पद्मारिशंखगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ।११
सशंखचक्राब्जगदं जनार्दनमिहानये ।
उपेन्द्रं सगद सारि पद्मशंखिन्नमो नमः ।१२
सुचक्राब्जगदाशंखयुक्ताय हरिमूर्त्तये ।
सगदाब्जारिशंखाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये ।१३
शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक् ।
शुक्लाभो वासुदेवाख्यः सोऽव्याद्वः श्रीगदाधरः ।१४
लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्वभागन्तु पद्मभृत् ।
संकर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः ।१५
संदीर्घः सशिरश्छिद्रो योऽनिरुद्धस्तु वर्तुलः ।
नीलो द्वारि त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः ।१६

सुन्दर शङ्ख, सुन्दर गदा, अब्ज और अरि के धारण करने वाले प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के लिये नमस्कार है ।९। अब्ज, शङ्ख, गदा, चक्र के सहित पुरुषोत्तम मूर्ति वाले के लिये प्रणाम है । गदा, अरि, शंख और पद्म वाले अधोक्षज रूप वाले के लिए प्रणाम है ।१०। पद्म,गदा शङ्ख और अरि के धारण करने वाले नृसिंह मूर्ति तथा अच्युत मूर्ति भगवान् को नमस्कार है ।११। शङ्ख, चक्र, अब्ज, गदा से समन्वित भगवान् जनार्दन को यहाँ लाता हूँ । गदा और के सहित उपेन्द्र को हे पद्म और शङ्ख के धारी ! बारम्बार नमस्कार है ।१२। सुन्दर चक्र, अब्ज, गदा और शङ्ख से युक्त हरि की मूर्ति के लिए प्रणाम है । गदा, अब्ज, अरि और शङ्ख से संयुत भगवान् श्रीकृष्ण मूर्तिके लिए नमस्कार है ।१३। शालग्राम शिला के द्वार पर गत एवं लग्न दो चक्र के धारण करने वाले, शुक्ल आभा से युक्त वासुदेव नाम वाले श्री गदाधर हैं वह भगवान् हमारी रक्षा करें ।१४। संलग्न दो चक्र वाले, रक्त आभा से युक्त, पूर्व भाग में पद्मयुत् संकर्षण तथा-सूक्ष्म चक्र वाले, पीत वर्णन से

युक्त प्रद्युम्न, सुदीर्घ तथा शिरश्छिद्र से समन्वित जो वर्त्तुल अग्निरुद्ध, द्वार पर नील, तीन रेखा वाले नारायण मेरी रक्षा करें ।१५-१६।

मध्ये गदाकृती रेखा नाभिचक्रो महोन्नतः ।
पृथुवक्षो नृसिंहो बः कपिलोऽव्यात्त्रिविन्दुकः ।१७
अथवा पञ्चविन्दुस्त पूजनं ब्रह्मचारिणः ।
वराहशक्तिलिङ्गोऽव्याद्विषमद्वयं चक्रकः ।१८
नीलस्त्रिरेखः स्थूलोऽथकूर्मंमूर्त्तिः स विन्दुमान् ।
कृष्णः स वर्त्तुलावर्त्तं पातु वो नतपृष्टकः ।१६
श्रीधरः पंचरेखोऽव्याद्वनमाली गदाङ्कितः ।
वामनो वर्त्तुली ह्रस्वो वामचक्रः सुरेश्वरः ।२०
नानावर्णोऽनेकमूर्त्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः ।
स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्रः सुनीलकः ।२१
संकीर्णद्वारको वाव्यादथ ब्रह्मा सुलोहितः ।
सदीर्घरेखः शुषिर एकचक्राम्बुजः पृथुः ।२२
पृथुच्छिद्रः स्थूलचक्रः कृष्णो बिन्दुश्च बिन्दुमत् ।
हयग्रीयोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः ।२३
वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राबजोऽसितः ।
मत्स्यो दीघोऽम्बुजाकारो द्वाररेखश्च पातु वः ।२४
रामचक्रो दक्षरेखः श्यामो वोऽव्यात्त्रिविक्रमः ।
शालाग्रामे द्वारकायां स्थिताय गदिने नमः ।२५
एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् ।
स्वर्ण रेखासमायुक्तं गोष्पदेन विराजितम् ।
कदम्बकुसुमाकारं लक्ष्मीनारायणोऽवतु ।२६

मध्य में गदा की प्रकृति वाली रेखा, नाभिचक्र, महान् उन्नत, पृथु वक्ष वाले नृसिंह, त्रिबिन्दुक कपिल हमारी रक्षा करें ।१६। अथवा पंच बिन्द ब्रह्मचारी का बह पूजना वराह शक्ति लिंग बिषमद्वय चक्रक रक्षा करें ।१८। नील-तीन रेखा से युक्त, स्थूल, कर्म मूर्ति, बिन्दुमान्,

वर्त्तुलावर्त्तक नत पृष्ठवाले वह कृष्ण हमारी रक्षा करें ।१९। श्रीधर, पाँच रेखा वाले, वनमाली, गदा से अंकित, वर्तुल, वामनह्रस्व, वाम-चक्र, सुरेश्वर, नाना वर्ण से युक्त, अनेक मूर्ति वाले, नाग भोगी, अन-न्तक, स्थूल, दामोदर, नील-मध्य में सुनीलक चक्र तथा सङ्कीर्ण द्वारा वाला रक्षा करे । इसके अनन्तर सुलोहित ब्रह्मा, दीर्घ रेखा से युक्त, सुषिर, एक चक्र और अम्बुज वाले पृथु छिद्र वाले, स्थूल चक्र, कृष्ण, बिन्दु, बिन्दुमत् हयग्रीवा अंकुशाकार, पञ्चरेख, कौस्तुभसे युक्त, बैकुण्ठ मणिरत्नाभ, एक चक्रा अम्बुज अमित मत्स्य, दीर्घ अम्बुजाकार और द्वारा रेखा हमारी रक्षा करें ।२०-२४। राम चक्र, देख रेख,श्याम और त्रिविक्रण हमारी रक्षा करें । शालग्राम में, द्वारका में स्थित गदा वाले के लिए नमस्कार हैं । एक द्वार मे चार चक्र वाले, वनमाल से भूषित भगवान् लक्ष्मीनारायण रक्षा करें ।२५-२६।

एकेन लक्षितो योऽव्याद् गदाधारी सुदर्शनः ।
लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्यां त्रिभिमूर्त्तेस्त्रिविक्रमः ।२७
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभिः ।
प्रद्युम्नः षड्भिरेव स्यात्संकर्षण इतस्ततः ।२८
पुरुषोत्तमोऽष्टाभिः स्यान्नवव्यूहो नवाङ्कितः ।
दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादथ ।२९
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ।
विष्णोर्मूर्त्तिमयं स्तोत्रं यः पठेत्स स्तोत्रं दिवं व्रजेत् ।३०
ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुयुगान्वितः ।
महेश्वरः पंचवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः ।३१
यथायुधस्तथा गौरी चन्डिका च सरस्वती ।
महालक्ष्मीर्मातपंचं पद्महस्तो दिवाकरः ।३२
गजास्तश्च गणः स्कन्दः षण्मुखोऽनेकधा गुणाः ।
एतेऽर्चिताः स्थापिताश्च प्रासादे वास्तुपूजिते ।
धर्मार्थकाममोक्षाद्याः प्राप्यन्ते पुरुषेण च ।३३

एकसे लक्षित जो गदाधारी सुदर्शन भगवान् दो से लक्ष्मी नारायण तीन मूर्तियों से युक्त त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करे। चार से चतुर्व्यूह, पांच से भगवान् वासुदेव, छः से प्रद्युम्न और इधर-उधर भगवान् संकार्षण, आठ से भगवान् पुरुषोत्तम आपकी रक्षा करे। इस प्रकार से नवांकित नव व्यूह होते हैं। दश ने दशावतार वाले भगवान् अनि-रुद्ध, द्वादशा आत्मा वाले जो वारह से युक्त हैं, अनन्तन भगवान् उपर में रक्षा करे। इस भगवान् के मूर्ति स्वरूप इस स्तोत्रका जो पाठ किया करता है वह दिवलोक को प्राप्त होता है।६९-३०। ब्रह्मा चार मुख वाले दन्डी और दो कमन्डलुओं से युक्त हैं। महेश्वर पांच मुख वाले हैं और वृषध्वज दशा बाहुओं से युत्त हैं।३१। जिस प्रकार से वह आयुधों से युक्त है वैसे ही गोरी, चण्डिका और सरस्वती देवी तथा महालक्ष्मी माताए हैं। दिवाकर पद्म हाथ में धारण करने वाले है। गणेश छः मुखों से युत्त स्कन्द है। ये इस तरह अनेक प्रकार के गुण हैं ये सब स्थापित एवं समर्पित होते हैं और प्रासाद में वास्तुका पूजन किये जाने पर पुरुष के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि सब प्राप्त किये जाया करते हैं।३२-३३।

२०—वास्तुयाग विधि

वास्तु संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्।
ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत्।१
ईशाने च शिरः पादौ नैर्ऋते ऽन्यानले लरौ।
आवासबासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे।२
प्रसादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च।
द्वाविंशत्त सुसान्दाहये तदन्तश्च त्रयोदश।३
ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्य्यः सत्यो भृगुश्चैव आकाश वायुरेव।४
पूषा च भृगुश्चैव ग्रहक्षेत्रयमावुभौ।
गन्धर्वो भृगुरास्तु मृग पितृगणस्तथा।५

द्वौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो गणाधिपः ।
असुरः शेषपादौ च रोगोऽहिमुख्य एव च ।६
भल्लाटः सोमसर्पो च अदितिश्च दितिस्तथा ।
वहिर्द्वात्रिंशद्देवे तु तदन्तरश्चतरः श्रृणु ।७
ईशानादि चतुष्कोणं संस्थितान्पूजयेद् बुधः ।
आपश्चैवाथ सावित्री जयो रुद्रस्तथैव च ।८
मध्ये नवपदे ब्रह्म तस्याष्टौ च समीपगान् ।
देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादौ नामतः श्रृणु ।९

श्रीहरि भगवानसे कहा—अबमैं संक्षेप से वास्तुके विषय में बतलाता हूं जो कि गृह आदि में विघ्नों का नाश करने वाला है। ईशानकोण से आरम्भ करके इक्यासी पदतक यजन करना चाहिए।१। ईशान उपदिशा में सिर का यजन करे-नैऋृत दिशामें पादों का अर्चन करे तथा अग्नि, एवं वायव्य में दोनों करों का यजन करे। आवास वास, वेश्य आदि में पुर, ग्राम, वाणिक्पथ में, प्रसाद, आगम, दुर्ग में ओर देवालय तथा मठों में बत्तीस देवों को आवाहन करे। उनके अन्दर तेरह का आवाहन करे।२। ईश, पर्जन्य, जयन्त, कुलिश के आयुध वाला अर्थात् इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु पूषा, वितथ, दोनों ग्रहक्षेत्र यम, गन्धर्व, भृगुराज, मृग तथा पितृगण, द्वारपाल सुग्रीव, पुष्पदन्त, गणाधिप, असुर शेष, पाद, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति ये बाहिर बत्तीस देवगण हैं। इसके अन्दर चार हैं। उनका श्रवण करो।।४-७। बुध पुरुषको ईशान आदि कोणों में संस्थित देवोंका पूजन करना चाहिए। आप, सावित्री, जय सावित्री, जय, रुद्र, कध्य नवपद में ब्रह्म और उसके समीप में रहने वाले ८ पूर्वादि में एकोत्तर देवों का यजन करे। उनके नाम श्रवण करे।८-९।

अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः ।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ।
अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्राह्मणः स्मृताः ।१०

ईशानकोणादारंभ्य दुर्गे च वंश उच्यते ।
आग्नेयकोणादारंभ्य वंशो दुर्द्धरः ।११
अदितिं हिमवन्तञ्च जयन्तञ्च इदं त्रयम् ।
वास्तुदेवान्पूजयित्वागृहप्रासादकृद्भवेत् ।१२
सुरेज्यः पुरतः कार्यो दिश्याग्नेय्यां महानसम् ।
कपिनिर्गमन चैन पर्वतः सत्रमण्डपम् ।१३
गन्धपुष्पगृह कार्यमैशान्यां पट्टसंयुतम् ।
भाण्डागारञ्च कौबेर्यां गोष्ठागारञ्च वातवे ।१४

अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और आठवाँ, आप वत्स है जो ब्रह्म के चारों ओर कहे गये हैं ।१०। और दुर्ग में ईशान कोणासे आरम्भ करके वंश कहा जाता है । आग्नेय कोण से आरम्भ करके वंश दुर्धर होता है ।११। अदिति, हिमवन्त और जयन्त ये तीनों कलिका नाम वाली नायिका शक्र (इन्द्र) से गन्धर्व को जाने वाली इन समस्त वास्तु देवों का पूजन करके गृह प्रसाद का कर्त्ता होना चाहिए ।१२। आगे सुरेज्य करना चाहिए, आग्नेयीदिशा में महानस (रसोईघर) रखना चाहिए । पूर्व में कपि निगमन में सत्र मण्डप रक्खे । ऐशानी दिशा में पद से संयुत गन्ध एवं पुष्पों का गृह रखना चाहिए । कौवेरी दिशा में भाडों (बर्तनों) का आधार रखे । वायव्य दिशा गोष्टाकार रखना चाहिए ।१३-१४।

उदगाश्रयं वारुण्यां वातायमसमन्वितम् ।
समित्कुशेन्धनस्थानमायुधाना च नैर्ऋते ।१५
अभ्यागतालयं रम्यं सशय्यासनपादुकम् ।
तोयाग्निदीपद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत् ।१६
गृहांतराण्यि सर्वाणिः सजलैः कदलीगृहैः ।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत् ।१७

प्राकारं तद्बहिर्विद्यात् पंचहस्तप्रमाणतः ।
एवं विष्णवाश्रमं कुर्याद्वनैश्चोपवनैर्युतम् ।१८

उसके आश्रय का स्थान वारुणी दिशा में नियत करे जो कि वायुके आ जाने वाले वातयनों से संयुत हो । समिधा, कुशा, ईंधन और आयुधों के रखने का स्थान नैर्ऋत्य दिशा में होना चाहिए । अभ्यागत पुरुषों के रहने का स्थान परम सुन्दर होना चाहिए जो शय्या, आसन और पादुका आदि से समन्वित होवे और वहाँ पर जल, अग्नि, दीपक तथा समुचित भृत्यभी रहने चाहिए । यह स्थान दक्षिणमें होना चाहिए ।१५-१६। समस्त गृहों के अन्तर्भाग संजल कदलीगृह और पाँच वर्ण वाले कुसुमों से सुशोभित कल्पित रखने चाहिए ।१७। उसके वाहिर पाँच हाथ के परिणाम वाला प्रकार रखना चाहिए । इस प्रकार से वन तथा उपवनों से समन्वित भगवान् विष्णु का आश्रय बनाना चाहिए ।१८।

चतुः षष्टिपदो वास्तुः प्रासादादौ प्रपूजितः ।
मध्य चातुष्पदो ब्रह्म द्विपदास्त्वर्यमादयः ।१६
कर्णे चैवाथ शिखाद्यास्तथा देवाः प्रकीर्त्तिताः ।
तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धादन्येऽपि द्विपदा सुराः ।
चतुः षष्टिपदा देवा इत्येव परिकीर्त्तित्ताः ।२०
चरकी च विदारी च पतना पापराक्षसी ।
ईशानाद्यास्ततौ ब्राह्य देवाद्या हेतुकादतः ।२१
हेतुकस्त्रिपुरान्तश्च अग्निबेतालकौ यमः ।
अग्निजिह्वः कालकश्चा करालो ह्येकपादकः ।२२
ऐशान्यां भीमरूपस्तु पाताले प्रेतनायकः ।
आकाशे गन्धमाली स्यात्क्षेत्रपालास्ततो यजेत् ।२३
विस्ताराभिहतं दैर्ध्यं राशि वास्तोस्तु कारयेत् ।
कृत्वा च वसुभिर्भागं शेषं चैवायमादिशेत् ।२४

पुनर्गुणितमष्टाभिर्ऋक्षभागन्तु भाजयेत् ।
यच्छेवं तद्भवेद्दक्ष भागेहृत्वा व्यर्थं भवेत् ।२५
ऋक्षं चतुर्गुणं कृत्वा नवभिर्भागहारितम् ।
शेषमशं विज्ञानीयाद्देवलस्य मतं यथा ।२६
अष्टाभिर्गणितं पिंड षष्टिभिर्भागहारितम् ।
यच्छेषं तद्भवेज्जीवं मरणं भूतहारितम् ।२७
वास्तुक्रोडे गृहं कुर्यान्न पृष्ठे मानवः सदा ।
बामपार्श्वेन स्वपिति नात्रकार्या विचारणा ।२८

चौंसठ पदों वाला वास्तु प्रासादके आदि में प्रपूजित होवे । मध्यम चतुष्पथब्रह्मा और द्विपद अर्यमा आदिक पूजित होवे कर्णमें शिखीआदि देव कहे गये हैं । उनके दोनों और अन्य भी द्विपद सुर होतेहैं । ये सभी चतुःषष्ठि पदों वाले देवहैं ।१९-२०। चरकी,विदारी,पूतना,पाप राक्षसी ईशानाद्यहै । इससे अनन्तर ब्राह्ममें हेतुकादि देवाद्य है । हेतुक त्रिपुरांत अग्नि, वेतालक; यम, अग्निजिह्व, कालका, कराल,एक पादका ऐशाली दिशा में भीतरूप, पाताल में प्रेयगायक, आकाश में गन्धमाली इसके अनन्तर क्षेत्रपालोंका यजन करे । दैश्यराशिको अभिहृत करे । इसतरह से वास्तु का करावे और आठ से भाग करके शेष को अरिष्ट करना चाहिए ।२१-२४। आठ से गुणित कर ऋक्ष भागको भाजित करे जो शेष हो वह ऋण होता है । भागों से हरण करके व्यय होता है ऋक्ष को चतुर्गुण करके ९ से भाग हर्षित करे जो शेष रहता हैं वह जीव होता है और भूत हारित मरण है ।२५-२७। वास्तु के क्रोड़ (गोद) में मानव को गृह करना चाहिए तथा पृष्ठ में न करे । वाम पार्श्व से सोता है इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए ।२८।

सिंहकन्यातुलायां चाद्वारं शुद्धं तथोत्तरम् ।
एवं चा वृश्चिकादौ स्यात्पर्वंदक्षिणपश्चिमम् ।२९
द्वारं दीर्घार्द्धं विस्तारात् द्वाराण्यष्टौ स्मृतानि च ।३०

स्वतल्पे प्लवनोचत्वं सर्पेण सूत्रभाजनम् ।
पुत्रहीनन्तु रोद्रेण वीर्यघ्न दक्षिणे तथा ।३१
वह्नौ बन्धश्च वायो च पुत्रलाभः सतृप्तिदः ।
धनदे नृपपीडादि बन्धनं रोगदं जले ।३२
अर्थदे चार्थहानिश्च दोषदं पुत्रमृत्यदम् ।
नृपभीतिमृतापत्यं ह्यनपत्यकच वैरिदम् ।
द्वाराण्युत्तरसंज्ञानि पूर्वद्वाराणि वचम्यहम् ।३३
अग्निभीतिर्बहु कन्या धनसम्मानकं पदम् ।
राजघ्नं रोगदं पूर्वे फलतो द्वारमीरितम् ।३४
ईशानादौ भवेत्पूर्वमाग्नेयादौ तु दक्षिणाम् ।
नैरृत्यादौ पश्चिमं स्यद्वाव्यादौ त चोत्तरम् ।
अष्टभागे कृते भागे द्वाराणां च फलाफलम् ।३५
अश्वत्थप्यधन्यग्रोधाः पूर्वादौ स्यादुदुम्वरः ।
गृहस्य शोभनः प्रोक्त ईशाने चैव शाल्मलिः ।
पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च ।३६

सिंह, कन्या और तुला में द्वार शुद्ध करे । उत्तर में इसी सकार से वृश्चिकादि में पूर्व-दक्षि और पश्चिम होवे । दीर्घ के आधे विस्तार वाला द्वार होना चाहिए । आठ द्वार कहे गए हैं ।२९-३०। स्वतल्प में प्लव नीचत्व है—सर्प के सूत्र भाजन है—रौद्र में पुत्र हीनता होती है—दक्षिणा में वीर्य का हनन होता है ।३१। वह्नि दिशा में बाध होता है वायु दिशा में पुत्र का लाभ एवं सुतृप्तिप्रद है । धनद दिशा में नृपको पीड़ा देने वाला-जल में व धन और रोग प्रद होता है ।३२। नृपसे भय मृतापत्यता (सन्तान का मृतहो जाना) सन्तति का प्रभाव तथा बैरियों को देने वाला होता है । अर्थद में अर्थ की हानि-दोषप्रद और पुत्र की मृत्यु देने वाला होता है । अब मैं पूर्वद्वार उत्तप संख्या वाले द्वारों का वतलाता हूँ ।२३। अग्नि का भय बहुत कन्याओं का होना धन तथा

सम्मान प्रदान करने वाले पद का पाना-राजा का हनन-रोगप्रद पूर्व में फल द्वारा अभीष्ट होता है।२४। ईशान आदि में पूर्व होता है-आग्नेय आदि में दक्षिण नैऋत्य आदि में पश्चिम और वायव्य आदि में उत्तर होता है। भाग के अष्टभाग करने पर द्वारों पर फलाफल होता है।३५ पूर्वादि में अश्वत्थ (पीपल-प्लव पाखर)—न्यग्रोध (बड़) और उदुम्बर (गूलर) गृह का शोभन कहा गया है। ईशान में शाल्मलि प्रासाद तथा गृह का पूजक होता हुआ विघ्नों का हरण करने वाला होता है।३६।

२१—प्रसाद लक्षण

प्रासादानां लक्षणां च वक्ष्ये शौनकं तच्छृणु:।
चतुषष्टिपद कृत्वा दिग्विदिक्षू पलक्षितम्।१
चतुःष्कोण चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्य्यसंख्यया।
चत्वारिंशाष्टभिश्चैव भित्तीनां कल्पना भवेत्।२
ऊर्ध्वंक्षेत्रसमा जंघा तदूर्ध्वे द्विगुणं भवेत्।
गर्भविस्तार विस्तीर्णा शुकाङ्घ्रिश्च विधीयते।३
तत्त्रिभागेन कर्त्तव्यः पंचभागेन वा पुनः।
निर्गमस्तु शुकाङ्घ्रेश्च उच्छ्रायः शिखरार्द्धगः।४
चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम्।
चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामूलसाधनम्।५
अथवापि समं वास्तु कृत्वा षोडशभागिनम्।
तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भन्तु कारयेत्।६
भागद्वादशिकां भित्तिं ततश्च परिकल्पयेत्।
चतुर्भागेन भित्तीनामुछ्रायः स्यात्प्रमाणतः।७
द्विगुणः शिखिरोच्छ्रायां भित्युच्छ्रायाच्च मानतः।
शिखरार्द्धस्य चार्द्धेन विधेयास्तु प्रदक्षिणाः।८

चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधैः ।
पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः ।९
भागमेकं गृहीत्वा तु निर्गमं कल्पयेत् पुनः ।
गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः ।
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्य हि लक्षणम् ।१०

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब प्रसादों का लक्षण बताऊंगा । दिशा में विदिशाओंमें उपलक्षित उपर्युक्त चौसठ पदोंवाला चारों ओर चौकोर और सूर्य संख्या से अर्थात् बारह द्वारा कहे और अड़तालीस भित्तियों की कल्पना होनी चाहिए । ऊर्ध्व क्षेत्र के समान जंघा उसके ऊर्ध्व में द्विगुण होवे । गर्भ के विस्तार से विस्तीर्ण शुकांघ्रि की जाती है ।२:३। वह त्रिभाग से अथवा पंच भाग से करें । निर्गम और शुका-घ्रिका शिखर का अर्धगामी उच्छ्राय (ऊँचाई) होवे । चार प्रकार से शिखर करके विभाग में वेदी बन्धन को फिर इसकेही चतुर्थ से आमूल साधन कण्ठ करे ।५। अथवा वास्तु को षोड़श भाग वाला समान करके उसके मध्य में आदि में चार भाग को गर्भ करावे ।६। द्वादश भाग की भित्ति की कल्पना करनी चाहिए । प्रणाम से चतुर्भाग से भित्तियों की ऊँचाई के मान से होवे । भित्ति की ऊँचाई से शिखर की ऊँचाई दूनी होनी चाहिए । शिखरार्ध के अर्धभाग से प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करनी चाहिए ।७-९। बुध पुरुष के द्वारा चारों दिशाओं में निर्गम (निवास) मार्ग) जानना चाहिए । विचक्षणा पुरुष पाँचवाँ भाग गर्भ का मान संभाजित करके उसमें से फिर एक भाग ग्रहण करके निगमकी कल्पना करनी चाहिए । गर्भ सूत्र के समान भागसे आगे मुख मन्डप करे । यह साधारण प्रासाद का लक्षण उद्दिष्ट किया गया है ।१०।

लिङ्गमानमथो वक्ष्ये पीठो लिङ्गसमो भवेत् ।
द्विगुणेन भवेद् गर्भः समन्ताच्छौनक ध्रुवम् ।
तद्विधा च भवेद् भित्तिजंघा तद्विस्तरार्धगा ।११
द्विगुणं शिखरं प्रोक्तं जंघायाश्चैव शौनक ।

पीठगर्भावरं कर्म तन्मानेन शुकाङ्घ्रिकम् ।१२
निर्गमस्तु समाख्यातः शेषं पूर्ववदेव तु ।
लिङ्गमान स्मृती ह्येषद्वारमानमथोच्यते ।१३
कराग्रं वेदत्कुता द्वारं भागाष्टं भवेत् ।
विस्तरेण सम ख्यातं द्विगुणं स्वेच्छया भवेत् ।१४
द्वारवत्पीठमध्ये तु शेष शुषिरकं भवेत् ।
पादिकं शेषिकं भित्तिद्वाराद्धेन परिग्रहात् ।१५
तद्विस्तारसमा जंघा शिखरं द्विगुण भवेत् ।
उक्तं मण्डपमानन्तु स्वरूप चापरं वद ।१६
त्रैवेदं कारयत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः ।
इत्थ कृतेन मनिन बाह्यभागाविनिर्गतम् ।१७
नेमिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः ।
गर्भन्तु द्विगुणं कुर्य्यान्नेम्या मानं सवेदिह ।
स एव भित्तरुत्सेधो शिखरो द्विगुणो मतः ।१८

इसके अनन्तर लिङ्ग मान कहता हूँ । पीठ लिंग के समान होना चाहिए । हे शौनक चारो ओर निश्चय ही द्विगुण भाग से गर्भ होना चाहिए । इस प्रकार की भित्ति हो जंघा उसके विस्तार से अर्धभाग वाली होनी चाहिए ।११। हे शौनक ! दुगुना शिशर कहा गया है जो कि जंघा से होना चाहिए । पीठ से अवर कर्म उसके मान शुकड्घ्रिका होवे ।१२। निर्गम तो कह दिया है । शेष सब पूर्व की भाँति ही होवे । यह लिंग का मान कहा गया है । अब यह द्वार का मान कहा जाता है ।१३। वेदकी भाँति कराग्र करके आठवां भाग द्वार होना चाहिए । विस्तार से यह बताया गया है स्वेच्छा से दुगुना हो जाता है ।१४। द्वार की भाँति पीठ के मध्य-में शेष शुषिरक होता है । द्वारार्ध के भाग से परिग्रहसे शेषिक पादिक भित्ति होती है।१५। उसके विस्तार के समान जंघा और दुगुना शिखर होता है शुक्राङ्घ्रि पूर्वकी ही भाँति जान लेना चाहिए और निर्गम की ऊँचाई होती है । यह मण्डल

का मान कहा गया है अब दूसरा स्वरूप बताओ।१६। त्रैवैद क्षेत्र करना चाहिए जहाँ पर देवता स्थिर रहा करते हैं। इस प्रकार मान के करने से इनका ब्रह्म भाग विनिर्गत हो जाता है।१७। प्रसाद के चारों ओर पादके विस्तीर्ण नेमि होती है और गर्भ द्विगुणा नेमि के मान से करना चाहिए जो कि यहाँ होता है। वह ही भित्ति का उत्सेध दुगुना शिखर माना गया है ।१८।

प्रसादानां च वक्ष्यामि मानं योनिं च मानतः ।
वैराजः पुष्पकाखग्रश्च कैलासो मलिकाह्वः ।
त्रिविष्टपञ्चं पञ्चैते प्रसादाः सर्वयोनयः ।१९
प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदायतः ।
वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चमः ।२०
एतेभ्य एव सम्भूताः प्रासादाः नमनोहराः ।
सर्वप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशच्च एव च ।२१
मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापरः ।
भद्रकः सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा ।२२
कन्दिवर्द्धनभज्ञश्च श्रीवत्सश्च नवेत्यमी ।
चतुरस्राः समुद्भूता वैराजादिति गम्यताम् ।२३
बलभी गृहराजश्च शालागृहञ्च मन्दिरम् ।
विमानञ्च तथा ब्रह्म मन्दिरं भवनं तथा ।
उत्तम्भं शिविकावेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः ।२४
वलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मस्तथापरः ।
मुकुली चस्य उष्णीषी शंखश्च कलशस्तथा ।
वावक्षस्तथान्यश्च वत्ताः कैलाशसम्भवाः ।२५
गजोऽथ वृषभौ हंसो गरुड़ः सिंहनामकः ।
भूमुखो भूधरश्चैव श्रीजयः पृथिवीधरः ।
वृत्तायताः समुद्भूता नवैते मालकाहूवयात् ।२६
वज्रं चक्रं तथान्यच्चमुष्टिकं वभ्रुसंज्ञितम् ।

वक्रः स्वास्तिक भगौ च गदा श्रीवृक्ष एव च ।
विजयो नामतः श्वेतस्त्रिपिष्टपसमुद्भवाः ।२७

अब प्रसादों का मान और मान से योनि बताऊँगा । वैराज, पुष्प काख्य कैलाश, मलिकाह्वय और त्रिपिष्टप ये पाँच प्रासाद सर्व योनि वाले होते हैं ।१६। प्रथम प्रासाद जो वैराज नाम वाला होता है वह चतुरस्र होता है । द्वितीय उसके आवृत्त वाला होता है । तीसरा वृत होता है तथा चतुर्थ वृतायत होता और पाँचवा अष्टाक होता है ।२०। सर्व प्रकृतिभूत इन्हीं से मनोहर प्रासाद सम्भूत होते है जो कि चालीस होते हैं ।२१। मेरु, मदर, विमान तथा अपर भद्रक, सर्वतो भद्रा रुचक, नन्दन, नन्दि वर्धन, श्री वत्स ये नौ जो वैराज से चतुरस्र सम्भूत होते हैं ऐसा जान लो ।२२-२३। बल भी गृह राज, शालागृह मन्दिर, विमान ब्रह्म मंदिर, भवन, उत्तम्क, शिविका वेश्म, ये नौ पुष्पक से उद्भय होने वाले हैं । वलय दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुलीं, उष्णीषी, शंख कलश गुवावृक्ष ये वृत प्राहाद कैलाश संज्ञक से सम्भूत होने वाले हैं ।२४-२५। गल, वृषभ, हंस गरण, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय, पृथिवींधर ये वृता यत नौ मालक संज्ञा वाले से उद्भव प्राप्त करने वाले होते हैं । वज्र, चक्र, मुष्टिक, वभ्रु, वक्र, स्वास्तिक, भङ्ग, गदा, श्री बृक्ष, विजय और श्वेत ये त्रिपिष्टिका से समुद्भव प्राप्त करने वाले हैं ।२६-२७।

त्रिकोणं पद्ममर्द्धेन्दुश्चतुष्कोणं द्विरष्टकम् ।
यत्र यत्र विधातव्यं सस्थानं मण्डपस्य तु ।२८
राज्यञ्च विभावश्चैव ह्यायुवर्द्धनमेवं च
पुत्रलाभः स्त्रियः पुष्टिस्त्रकोणादिक्रमाद् भवेत् ।२९
कुर्याद् ध्वजादिक ख्याता द्वारि गर्भगृहं तथा ।
मन्डपः जपसंख्याभिगणितः सूत्रतस्तथा ।३०
मन्डपस्य चतुर्थांशात् भद्रः कार्यो विजानता ।
सार्द्धगवाक्षकोपेतो निर्गवाक्षीऽथवा भवेत् ।३१

साद्धं भित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुनः ।
भित्ते द्वैगुण्यतो वापि कर्त्तव्या मण्डपाः क्वचित् ।३२
प्रासादे मंजरी कार्या चित्रा विषमभूमिका ।
परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूषिता ।३३
आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मन्डपशोभितः ।
शतशृङ्गसमायुक्ता मेरुः प्रासाद उत्तमः ।३४
मन्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रैस्त्रिभिरलंकृताः ।
गडनाकारमानानां भिन्नाद्भिन्नाद्भवन्ति ते ।३५
कियन्तो येष साधारा निराधाराश्च केचन ।
प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादाः सम्भवन्ति ते ।३६

त्रिकोण-पद्म-अर्धेन्दु, चतुष्कोण और द्विरष्टक जहाँ-जहाँ मण्डप संस्थान ही करना चाहिए ।२८। राज्य-वैभव-आयु की वृद्धि पुत्र लाभ स्त्री की पृष्टि ये फल त्रिकोणादि के क्रम से होते हैं।२६। ध्वजादिक करे जो कि द्वार पर ख्यात है तथा गर्भ गृह करे । सम संख्याओं से गुणित, मण्डप करे । तथा ज्ञाता पुरुष को सूत्र से मंडप के चतुर्थ अंश से भद्र करना चाहिए । वह सार्ध गवांक्ष से युक्त अथवा विना गवाक्ष वाला होवे ।३०-३१। सार्ध भित्ति के प्रमाण से अथवा फिर भित्ति से या भित्ति की द्विगुणता से कही, पर मंडप वनाना चाहिए । परिमाण के विरोध से भूषिता रेखा करें । चार द्वार वाला और चार मंडपों से शोभित आधार जो शत शृङ्गों (शिखरों)से समायुक्तहो वह मेरु प्रसाद उत्तम होता है ।३२-३४। उसके मण्डप तीन भद्रों से समलंकृत करने चाहिए । गठना का मान वालों के भिन्न से भिन्न होते हैं ।३५। जिनमें कुछ आधार होते हैं और कुछ निराधार ही होतें हैं । वे प्रसाद प्रतिछंदक भेद से सम्भूत हुआ करते हैं ।३६।

अन्याय संस्कारात्नेशां गठनानाभभेदतः ।
देवतानां विशेषाय प्रसादा वहवः स्मृताः ।३७

प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम् ।
तानेव देवतानांचपूर्वमानेन कारयेत् ।३८
चतुशस्त्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विताः ।
चन्द्रशालान्विता कार्या भेरी शिखर संयुताः । ३९
तुरतो वाहनाञ्च कर्त्तव्या लघुमण्डपाः ।
नाट्यशाला च कर्त्तव्याद्वारदेशसमाश्रया ।४०
प्रसादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिक्ष्वपि ।
द्वारपालाश्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक् पृथक् ।४१
किञ्चिद् दूरतः कार्या मठा स्तत्रोपजाविनाम् ।
प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता ।४२
प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभिः पूजयेन्नरः ।
वासुदेवः सर्वदेव सर्वभाक् तद्गृहादिकृत् ।४३

अन्य संस्कार के गठन वाले उनके अभेद से देवताओं के विशेष के लिए बहुत से प्रासाद कहे गये हैं ।३७। स्वयंभू देवताओं का प्रासाद में नियम नहीं होता । उनको देवताओं के पूर्व ध्यान से करना चाहिए ।३८।वहाँ चतुरस्त्रायता चतुष्कोण समन्वित, चन्द्रशालान्वित और भेरी शिखिर संयुत करने चाहिए । आगे के भाग में वाहनों के छोटे मण्डप बनाने चाहिए । द्वारदेशमें समाश्रय रखने वाली नाट्यशाला भी करनी चाहिए ।३९-४०। प्रासाद में देवताओं के दिशा-दिशाओं में भी पृथक् पृथक् मुख्य द्वारपाल करने चाहिए ।४१। कुछ दूर चलकर वहाँ पर मठोपजीवियों के भी मठ बनाने चाहिए । फल, पुष्प और जल से युक्त प्रावृत्ता जगती करनी चाहिए । मानव प्रासादों में स्थाप्य सुरोंका पूजनोपचारों से यजन करना चाहिए । उन ग्रहादि का करने वाला सर्व सेवन कारी सबके देव भगवान् वासुदेव ही हैं ।४२-४३।

२२—सर्वदेव प्रतिष्ठा वर्णन

प्रतिष्ठां सर्वदेवानां संक्षेपेण वदाम्यहम् ।
सुतिथ्यादौ सुरम्यञ्च प्रतिष्ठां कारयेद् गुरु ।१

ऋत्विग्भिः सह आचार्य वरयेन्मध्यदेशगम् ।
स्वशाखोक्तविधानेन. अथवा प्राणवेन तु ।२
पञ्चभिर्बहुभिर्वाय कुर्यात् पाद्यार्घमेव च ।
मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रै गंन्धमाल्यानुलेपनैः ।
मन्त्रन्यास गुरुः कृत्वा ततः धर्म समारभेत् ।३
प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डपं दशहस्तकम् ।
कुर्याद् द्वादशहस्तं वा स्तम्भैः षोडशभियुतम् ।
ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्तां मध्ये वेदीञ्च कारयेत् ।४
नदीसङ्गमतीरोत्थां बालुकां तत्र दापयेत् ।
चतुरस्त्रं कार्मुकाभं वर्त्तुलं कमलाकृति ।५
पूर्वादियः समारंभ्य कर्त्तव्यं कुण्डपञ्चकम् ।
अथवा चतुरस्त्राणि सर्वाण्येतानि कारयेत् ।६
शान्तिकर्मविधानेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
शिरःस्थाने तु देवस्य आचार्यो होममाचरेत् ।
ऐशान्या केचिदिच्छन्ति उपलिप्यावनि शुभाम् ।७

श्री सूतजी ने कहा– अब मैं समस्त देवों की प्रतिष्ठा को संक्षेप में बतलाता हूँ। गुरुको सुशोभग किस तिथिमें सुरम्य प्रतिष्ठा करनी चाहिए ऋत्विजों के साथ आचार्य का जो कि मध्यदेश ही वरण करना चाहिए अपनी शाखा में उक्त विधान के द्वारा अथवा पृथक् से करे ।१-२। पाँच अथवा बहुत मुद्रिकाओं के पाद्य-अर्घ्य आदि करे तथा मन्त्र न्यास वस्त्र एवं गन्ध-माल्य और अनुलेपनों द्वारा करके फिर गुरु को कर्म का आरम्भ करना चाहिए ।३। प्रासाद के आगे के भाग में दश हाथ प्रमाण वाले एक मण्डप को रचना चाहिए । अथवा बारह हाथ प्रमाण वाले मण्डप रचे जिसमें सोलह स्तम्भ निर्मित किये गये हों । आठ ध्वजाओं से युक्त चार हाथ प्रमाण वाला मध्य में एक बेदी का निर्माण करना चाहिए ।४। नदी के सङ्गम के तट पर रहने वाली बालुका को वहाँ डलवाना चाहिए । चतुरस्र (चौकोर) कार्मुक (धनुष) की आभा के तुल्य वर्त्तुल (गोलाकार) अथवा कमल के पुष्प की आकृति वाले पूर्व

आदि दिशाओं से आरम्भ करके पाँच कुण्डों की रचना करे। अथवा ये कुण्ड सभी चतुरस्र ही निर्मित्त लेवें ।५-६। समस्त कामनाओं को सिद्धि के लिए शान्ति कर्म से विधान से आचार्य को शिर स्थान में देवता का होम करना चाहिए। कुछ मनीषी गण इसे शुभ भूमि का लेपन करा कर ऐशानीं दिशा में करने का मत रखते हैं ।७।

द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके ।
न्यग्रोधोदुम्वराश्वत्थबैल्वपालाशंखादिरा ।८
तोरणाः पंचहस्ताश्च वस्त्रपुष्पाद्यलंकृताः ।
निखनेद्धस्तमेकैकं चत्वारचन्तुरो दिशः ।९
पूर्वंद्वारे मृगेन्द्रन्तु हृतराजन्तु दक्षिणे ।
पश्चिमे गोपतिर्नाम सुरशार्दूलमत्तरे ।१०
अग्निमीलेंति मन्त्रेण प्रथम पूर्वतो न्यमेत् ।
ईषेत्वेति च मन्त्रेण दक्षिणस्यां द्वितीयकम् ।११
अग्नआयाहि मन्त्रेण पश्चिमस्यां तृतीयकम् ।
शन्नोदेवीतिमन्त्रेण उत्तरस्यां चतुर्थकम् ।१२
पूर्वे अम्बुदवत् कार्या आग्नेय्यां धूमरूपिणी ।
याम्यां वै कृष्णरूपा तु नैर्ऋत्यां श्यामला भवेत् ।१३
वारुण्यां पाण्डरा ज्ञेया वायव्यां पीतवर्णिका ।
उत्तरे रक्तवर्णातु शुक्लैशी च पताकिका ।
बहुरूपा तथा मध्ये इन्द्रविद्येति पूर्विका ।१४
अग्नि संसुप्तिमन्त्रेण यमोनागेति दक्षिणे ।
पूज्या रक्षोहनावेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च ।१५
वात इत्यभिषिच्याथ आप्यायस्वेति चोत्तरे ।
तमीशानमतश्चैव विष्णुर्लोकेऽपि मध्यमे ।१६

तोरण के समीपमें चार द्वार करके न्यग्रोध (वट) उदुम्बर (गूलर) अश्वत्थ (पीपल), पलाश और खदिर के पाँच हाथ प्रमाण वाले तोरण करें, जो कि वस्त्र तथा पुष्पों से सुविभूषित हों। चारों दिशाओं में चार

गर्त्त एक २ हाथ के खोदे ।८-६। पूर्व दिशा के द्वार में मृगेन्द्र, दक्षिण में हयराज, पश्चिम में गोपति और उत्तर दिशाके द्वार पर सुर शार्दूल रक्खे । 'अग्निमीले' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पहिले पूर्व दिशा में न्यास करना चाहिए । 'ईषेत्वेत्ति'—इस मन्त्रसे दक्षिण में दूसरा न्यास करे ।१०-११। 'नग्न अस्याहि'—इस मन्त्र के द्वारा पश्चिम में तृतीय रक्खे । 'शन्नो देवी'—इस मन्त्र से उत्तर में चतुर्थ को न्यस्य करे ।१२। पूर्व दिशा में पताका मेघ के समान वर्ण वाली लगावे । आग्नेयी दिशा में धूम वर्ण वाली, याम्य दिशा में कृष्ण वर्ण वाली, नैऋत्य में श्यामल वर्ण से युक्त-वारुणी दिशा में पाँडर, वायव्य में पीत वर्ण को उत्तर में रक्त वर्ण वाला और ईशान दिशा में शुक्लवर्ण वाली पताका होनी चाहिए । एवं मध्य भाग में बहुत से रूप और वर्णों वाली पताकाएं होनी चाहिए । पूर्व में इन्द्र विद्या, अग्नि संसुप्ति मन्त्र के द्वारा यमो नागा' इससे दक्षिण में, पश्चिम और उत्तर में 'रक्षो हनावा,' इससे पूजा करे, वात—इससे अभिषेक करके 'आप्यायस्व' इससे उत्तर में । तमोशान विष्णुलोक इससे मध्य में यजन करे ।१२-१६।

कलशौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यो तोरणान्तिके ।
वस्त्रयुग्मसायुक्ताश्चन्दनाद्यै: स्वलंकृता: ।१७
पुष्पैर्वितार्बहुलैश्चादिवर्णामन्त्रिता: ।
दिक्पालाश्चतत: पूज्या: शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।१८
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निमूर्द्धेति चापरे ।
अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता ।१६
किञ्चेदधानु आचात्वा भिन्नदेवीति सप्तमी ।
इमारुद्रेति दिक्कालान्पूजयित्वा विचक्षण: ।
होमद्रव्याणि वायव्ये कुर्य्यात्सोपस्कराणि च ।२०
शंखान्शास्त्रोदिताश्वेतान्नेत्राभ्यां विन्यसेद् गुरु: ।
आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धि यान्ति न संशय: ।२१
हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृतिप्रणवेन च ।
अस्त्रञ्चैव समस्तानां न्यासोऽयं सार्वकामिक: ।२२

अक्षतान्विष्टरञ्चैव अस्त्रेणेवाभिमन्त्रितान् ।
विष्टरेण स्पृशेद् द्रव्यान्यागमण्डपसंयुतान् ।
अक्षतान्विकिरेत्पश्चादस्त्रपूतान्समन्ततः ।२३

इसके अनन्तर दो २ कलश तोरण के समीप में निवेशित करने चाहिए । वस्त्र युग्म अर्थात दो वस्त्रों से युक्त एवं चन्दन आदि से समलंकृत हुए बहुत से पुष्पों तथा वितानों के समन्वित और आदि वर्ण से अभिमन्त्रित दिशाओं के पालक देव शास्त्र में दुष्ट कर्म के द्वारा पूजित होने चाहिए ।१७-१८। 'त्रातारम्'-इन्द्र मन्त्र से और दूसरे 'अग्निहुर्घा' इस मन्त्र से, इस वृक्ष में दूसरी ऋचा इतैश्चैव प्रचारी–यह कही गईहै। किचेदधातु आचात्मा मित्रा देवी, इस सप्तमी से,इमा रुद्र, इससे बिलक्षण पुरुष को दिक्पालों को पूजन करे । वायव्य दिशा में उपस्कर के सहित होम के द्रव्य रखे ।१९-२०। शास्त्र में कथित श्वेत शंखोंको नेत्रों के हेतु विन्यस्त करे । आलोकन के द्वारा समस्त द्रव्य शुद्धि को प्राप्त हो जाते हैं–इसमें कुछ में संशय नहीं हैं ।२१। हृदय आदि अङ्गों का व्याहृति प्रथव के द्वारा न्यास करे ओर समस्तों का न्यास अस्त्र के द्वारा करे । यह न्यास समस्त कामनाओं के लिए होता हैं ।२२। अक्षतों को और विष्टर को अस्त्र मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करे । याग मन्डप से संयुत द्रव्यों का विष्टर से स्पर्श करें । फिर अस्त्र द्वारा पूत किये गये अक्षतों को चारों ओर फैलादे ।२३।

शाक्री दिशमथारभ्य यावदीशागगोचरम् ।
अवकीर्य्याक्षितान्सर्वान्सर्वान्लेपयेन्मण्डल ततः ।२४
गन्धाद्यै रर्घ्यपात्रे च मन्त्रग्रामं न्यसेद् गुरुः ।
तेनार्घ्यंपात्रतोयेन प्रोक्षयेद् यागमण्डपम् ।२५
प्रतिष्ठा यस्य वैस्य तदाख्यं कलशं न्यसेत् ।
ऐशान्यां पूजयेद् याभ्ये अस्त्रेणैव का वर्द्ध नीम् ।
कलमं वर्द्ध नीञ्चैव ग्रहान्वास्तोष्पति तथा ।२६
आसने तानि सर्वाणि प्रणवाख्यं जपेत् गुरुः ।
सूत्रग्रीवं रत्नगर्भं वस्त्रमुख्येन वेष्टितम् ।

सर्वोषधि गन्धलिप्तं पूजयेत्कलशं गुरुः ।२७
देवस्तु कलशे पूज्यो वर्द्धन्या वस्त्रमुत्तमम् ।
वर्द्धन्या तु समायुक्तं कलमे भ्रामयेदनु ।२८
वर्द्धनीधारया: सिचन्नग्रतो धारयेत्ततः ।
अभ्यर्च्य वर्द्धनी कुम्भं स्थन्डिले देवमर्चयेत् ।२९
घटञ्चावाह्य वायव्यां गणानान्त्वेति सद्गुणम् ।
देवमीशानकोणे तु जपेद्वपति बुधः ।
वास्तोष्पतीति मन्त्रेण वास्तुदोषोपशान्तये ।३०
कुम्भस्य पूर्वतो भूतं गणदेवं बलि हरेत् ।
पठेदिति च विद्याश्च कुर्यादाम्भनं वधः ।३१
योगे योगेति मन्त्रेण संस्तरन् ज्वलनैः कशैः ।
आचार्य्य ऋत्विजैः सार्द्धं स्नानपीठे हरस्तथा ।३२

ऐन्द्री दिशा से आरम्भ करके ईशान दिशा पर्यन्त अक्षतों का अव किरण कर इसके अनन्तर मण्डपका लेपन करावे । फिर गुरुको गन्धादि से युक्त अर्घ्य पात्र में मन्त्र ग्राम का न्यास करना चाहिए । उस अर्घ्य पात्र को जल से सम्पूर्ण याग मन्डप का प्रोक्षण करें ।२४-२५। जिस देवता की प्रतिष्ठा करनी हो उसके नाम का एक कलश न्यस्त करे । ऐशानी दिशा में उसका यजन करे और वाम्य दिशा में अस्त्र-मन्त्र के द्वाराही वर्द्धनीका यजनकरे । कलश वर्द्धनी, ग्रह तथा वास्तोष्पत्तिइन सबका आसन पर गुरु प्रणव नामका जापकरे । गुरु को चाहिए कि इस कलश के ग्रीवा में सूत्र-मध्य में रत्न रखकर मुख्य वस्त्र के वेष्टित करे तथा सर्वोषधि एवं गन्ध ने प्रशिप्त कर कलश का पूजन करे ।२६-२७। देव का कलश में ही यजन करना चाहिए । कलशका यजनकर वर्द्धनी से युक्त कलशको पीछे भ्रमित करे।२८। उसके पश्चात वर्द्धनीकी धारा से सिंचन करता हुआ आगे धारण करे । फिर वर्द्धनी को कुम्भ का अभ्यर्चन करके स्थाण्डिल में देव का समर्चन करे।२९। वायव्यय से घट का आवाहन करे, गणानांत्वा'—इस मन्त्र से गणपत देव को ईशान

कोण में जाप करें। बुध याजक 'वास्तोष्पर्ति'—इस मन्त्र के द्वारा वास्तु दोषों के उपशमनार्थ वास्तु पति का जाप करना चाहिए।३०। कुम्भ के पूर्व भाग में भूत गणदेव के लिए वलि का आहरण करें। 'पठेत्'—इससे विद्याओं का वध को आलम्वन करना चाहिएं।३१। 'योग' योग-मन्त्र के द्वारा ज्वलन कुशों से संस्तरण करते हुए फिर ऋत्विज़ों के जाथ आचार्य को स्नान पीठ पर हरि का जाप करना चाहिए।३२।

विविधैर्ब्र ह्मघोषैश्चा पुण्याहजयमङ्गलैः।
कृत्वा ब्रह्मरथे देवं प्रतिष्ठन्त्रि ततो द्विजाः।३३
ऐशान्यामानयेत्पीठं मन्डपे विन्यसेद् गुरुः।
भद्रं कर्णेत्यथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु।
संस्नाप्य लक्षणे द्वारं कुर्याद् दूराभिवादनैः।३४
मधुर्सपिः समायुक्तं कांस्ये वा ताम्रभाजने।
अक्षिणो चांजयेच्चाय सुवर्णस्य शलाकया।३५
अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण नेत्रोद्घाटन्तु कारयेत्।
लक्षणे क्रियामाणे तु नाम्नैकं स्थापको वदेत्।३६
इमग्मे गाङ्गमन्त्रेण नैत्रयोः शीतलक्रिया।
अग्निमूर्द्धेति मंत्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम्।३७
विल्वोदुम्बरमश्वत्थं वट पालाशमेव च।
यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पचकषायकम्।३८
पंचगव्यैः स्नापयेच्च संसदेव्यादिभिस्ततः।
सहदेवा वला चैव शतमूलीं शतावरी।३९
कुमारी च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च।
या ओषधीति मन्त्रेन् स्नानमोषधिमज्जलैः।
याः फलानीति मन्त्रेण फलस्नानं विधीयते।४०

अनेक भाँति के ब्रह्म भोगों के द्वारा पुण्याह और जय मङ्गल ध्वनियों के द्वारा देवताओं को ब्रह्मरथ में स्थित्त करके फिर द्विजगण

प्रतिष्ठा करते हैं ।३३। उस पीठ को गुरु को चाहिए कि ऐशानी दिशा में ले आवे और फिर मण्डप में उसका न्यास करे । 'भद्र कर्ण'—इससे स्नान कराके इसके अनन्तर सूत्रवन्धन से स्नपन कर दूराभि वासनों से लक्षण में द्वार करे ।३४। कांस्य पात्र में अथवा ताम्र पात्र में मधु, घृत से युक्त करके सुवर्ण शलाका से देवता के नेत्रों को अंजित करे ।३५। 'अग्नि ज्योति'—इस मन्त्र का उच्चारण करके देव के नेत्रों को उद्घाटित करना चाहिए । लक्षण के लिए जाने पर स्थापक एक को नाम द्वारा बोले ।३६। 'इमम्मेगांग'—इत्यादि मन्त्र से बाँबो की मृत्तिका को अर्पित करे ।३७। 'यज्ञायज्ञ'—इत्यादि मन्त्रके द्वारा बिल्व-उदुम्बर-अश्वत्थ-वट और पलाश इसके पञ्च कषायको समर्पित करे।३८। पहले पञ्च-गव्य में स्नान करावे । पञ्चगव्य मे गौ की पाँच वस्तुयें होती है जिसमें दूध-दधि, घृत, गौमूत्र और गोमय ये है । इसके अनन्तर सह-देवी आदिसे स्ना करावे जिनमें सहदेवी-बला-शतमूली-शतावरी-कुमारी गिलोय-सिंही व्याधी ये सबहैं । इन समस्त औषधियों वाले जल से या औषवीति'—इत्यादि मन्त्रसे स्नान करानाचाहिए । 'या फलानि'-इत्यादि मन्त्र के द्वारा, फलों द्वारा स्नान का विधान होता है।३९-४०

द्रुपदादिवेति मन्त्रेण कार्य्यमुद्वर्त्तनं बुधैः ।
कलशेषु च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुक्रमात् ।
रत्नानि कैव धान्यानि ओषधि शतपुष्पकाम् ।४१
समुद्रांश्च विन्यस्थ चतुरश्चतुरो दिशः ।
क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्योति वा पुनः ।४२
आप्यास्व दधिक्रन्णो या औषधीरितीति च ।
तेजोऽसीति च मंत्रश्च कुम्भञ्चैवाभिमन्त्रयेत् ।
समुद्राख्योश्चतुर्भिश्च स्नापयेत् कलशैः पुनः ।४३
स्नातश्चैव सुवेशवश्च धूपो देयश्च गुग्गुलः ।
अभिषेकाय कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत् ।४४

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।
या औषधीति मन्त्रेणकुम्भाच वाभिमंत्रयेत् ।
तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सर्वपातकैः ।४५
अभिषिच्य समुद्रैश्च चार्घ्यं दद्यात्तवः पुनः ।
गन्धद्वारेति गन्धञ्च न्यासं वै वेदमंत्रकैः ।४६
स्वशास्त्रविहितैः प्राप्तैरिम मन्त्रेति स्त्रकम् व ।
कविहाविति मंत्रेण आनयेन्मण्डपं शुभम् ।४७

बुध पुष्पों के द्वार 'द्रुपदा दिगं'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्वर्त्तन करना चाहिए । कमलों में विन्यास करके उत्तरादि में अनुक्रम से करे। रत्न, धन्य, औधधि, शतपुष्पिका, चार समुद्र, चार दिशायें क्षीर, दधि जो कि क्षीरोद और घृतोद का है । इन सबका विन्यास कर 'आप्यायस्व दधिक्रान्तो'—औषधिरिति'—तेजोसीति'—इन मन्त्रों से कुम्भ को अभिमन्त्रित करें । फिर चार समुद्र संजक कलशों से स्नपन कराना चाहिए ।४२-४३। स्नान कराये हुए और सुन्दर पोशाक धारण कराये जाने पर गूगल की धूप देनी चाहिए । कुम्भों में अभिषेक कराने के के लिये उन दोनों को विन्यस्त कराना चाहिए ।४४। पृथ्वी मण्डल में जितने जो भी तीर्थ, नदियाँ तथा सागर है और जो-जो भी औषधियाँ है उनकी 'या औषधि'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कुम्भ में अभिमन्त्रित करे । उप अभिमन्त्रित किये हुए जल से जो स्नान करे वह समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ।४५। समुद्रोंमें अभिषेक करके फिर अर्घ्य देना चाहिए । 'गन्ध द्वारा दुराधर्षा'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा गन्ध का न्यास करे और वेदोक्त मन्त्रों के द्वारा तथा स्वमास में विहित मन्त्रों से फिर शुभ मन्डप में ले आवे ।४६-४७।

शम्भावायेत्ति मंत्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् ।
विश्वतश्चक्षुमंत्रेण कुर्य्यात् सकलनिष्कलम् ।४८

स्थित्वा चैव परे तत्वे मन्त्रन्यासन्तु कारयेत् ।
स्वशास्त्रविहितो मन्त्रो न्यासस्तस्मिस्तथोदितः ।४६
वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीयः स्वभावतः ।
यथाशस्त्रं निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत् ।५०
अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
कलशं सहिरण्यञ्च शिर स्थाने निवेदयेत् ।५१
स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रै वेदोक्तैर्वायवा गुरुः ।५२
श्रीसूक्तं पावनमानञ्च वास दास्यं सहाजिनम् ।
वृषाकपिंच मित्रच वहवृचः पूर्वतो जपेत् ।५३
रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्च सुक्रियः ।
ब्रह्माणं पितृमैत्रञ्च अध्वर्युदक्षिणे जपेत् ।५४

फिर 'शम्भवाय'—इत्यादि मन्त्र से शय्या में निवेशित करावे। 'विश्वतश्चक्षु'—इत्यादि मन्त्र से सकल निष्कल करे।४८। परतत्व में स्थित होकर मन्त्र का न्यास करावे, अपने शास्त्र, विहित मन्त्रों का न्यास उस प्रकार से कहा गया है।४६। वस्त्र से आच्छादित करके स्व भाव से पूजन कराना चाहिए। शास्त्रके अनुसार को निवेदन करने के योाय नैवेद्य हैं उन्हें पाद के मूल में समर्पित करे।५०। इसके अनन्तर प्रणव से संयुत वस्त्रों के युग्म से वेष्टिव किए हुए और हिरण्य से संयुत कलश को शिर के स्थान में निवेदन करे।५१। फिर कुण्ड के समीप में स्थित होकर अग्नि की स्थापना करे। अग्नि की स्थापत्रा वेदमें कथित यन्त्रों के द्वारा गुरु करना चाहिए।५२। श्री सूक्त पवमान—वास दास्य सहाजिन'-वृषाकपि और मित्र इन बहुत ऋचाओं की पूर्वकी ओर जपे अर्थात जाप करे या पढ़े।५३। रुद्र पुरुष सूक्त और श्लोकाध्याय, ब्राह्मण और पितृ को सुन्दर क्रिया करने वाला अध्वयुं दक्षिण दिशा में जप करे।५४।

गेदव्रतं वामदेव्यं ज्येष्ठसामरथन्तरम् ।
मेरुदण्डानि च सामानि छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ।५५
अथर्वशिरसश्चैव कुम्भसूक्तमथर्वणः ।
नीलरुद्रांश्चमैत्रञ्चअथर्वश्चोत्तरे जपेत् ।५६
कुण्डं चास्त्रेण संप्रोक्ष्य आचार्य्यस्य विशेषतः ।
ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा ।
जातवेदसमानीय अग्रतस्सन्निवेशयेत् ।५७
अस्त्रेण ज्वालयेद्वह्निं कवचेन तु वेष्टयेत् ।
अमृतीकृत्य तु पश्चान्मन्त्रैः सर्वैश्च देशिकः ।५८
पात्रं गृह्य कराभ्यांच कुण्डं भ्राम्य ततः पुनः ।
वैष्णवेन तु योगेन परं तेजस्तु निक्षिपेत् ।५९
दक्षिणे स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताञ्चोत्तरेण तु ।
साधारणेन मन्त्रेण स्वशास्त्रविहितेन वा ।
दिक्षु दिक्षु ततो दद्यात्परिधिं विष्टरैः सह ।६०
ब्रह्माविष्णुहरेशानाः पूज्याः साधारणेन तु ।
दर्भेषु स्थापयेद्वह्निं दर्भैश्च परिवेष्टितम् ।
दर्भतोयेन संस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्धयति ।६१

बेद व्रत, वामदेव्य, ज्येष्ठ साम रथन्तर, मेरुदण्ड, सामों को छंदोग पश्चिम दिशा में जप करे ।५५। अथर्व शिर, कुम्भ सूक्त जो कि अर्थ र्वोक्त है । नील रुद्रों को और मैत्र को अथर्व ज्ञाता उत्तर दिशा में जपे ।५६। अस्त्र मन्त्र के द्वारा कुण्ड भली-भाँति प्रोक्षण करके तथा विशेष रूप से आचार्य का सम्प्रोक्षण करके ताम्र के पात्र में शराब (सेकोरा) में अथवा बिभव के अनुसार जो हो अग्नि को लाकर आगे की ओर सन्निवेशित करे ।५७। अस्त्र से अग्नि को जलावे और कवच से वेष्ठन करे । इसके पश्चात् आचार्य समस्त मन्त्रों के द्वारा अमृतीकरण करे ।५८। दोनों से पात्र को ग्रहण का फिर कुण्ड के सब ओर

भ्रमण करावे और वैष्णव योग के द्वारा परतेज का निक्षेप करना चाहिये ।५६। साधारण मन्त्र के द्वारा या अपने शास्त्र में विहित के द्वारा दक्षिण में ब्रह्म को और उत्तर में प्रतीताको स्थापित करे । इसके अनन्तर दिशाओं में विष्टरी सहित परिधि देनी चाहिए ।६०। साधारण तथा ब्रह्मा,विष्णु, हर और ईशान का पूजन करना चाहिएं । फिर दर्भों के द्वारा परिवेष्टित अग्नि को दर्भों में स्थापित करना चाहिए । दर्भ के बल से संस्पर्ख किया हुआ चाहे मन्त्र से हीन भी हो तो वह विशुद्ध हो जाता है ।६१।

प्रागग्रन्रुदगगैश्च प्रत्यगग्रैर. खण्डितैः ।
विततैर्वेष्टितो वह्निः स्वयं सान्निध्यतां व्रजेत् ।६२
अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित् ।
आचार्याः केचिदिच्छन्ति जातकर्मादनंतरम् ।६३
पवित्रन्तु ततः कृत्वा कुर्म्यादाज्यस्य संकृतिम् ।
आचार्योऽय निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम् ।६४
आज्यभागाभिधारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये ।
पंच पञ्चाहुत्वाज्येन तदन्तरम् ।६५
गर्भाधानादितस्तावत्तद् गोदानिकं भवेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैः प्रणवेनाथ होमयेत् ।६६
ततः पूर्णाहुति दत्वा पूर्णात्पूर्णमनोरथः ।
एवमुत्पादितो वह्निः सर्वकर्मसु सिद्धिदः ।६७
पूजयित्वा ततो वह्नि कुण्डेषु विहत्तथा ।
प्रइन्द्रादीनां स्वमन्त्रैश्च तथाहुतिशतं शतम् ।६८

प्रत्यग्र, प्रागग्र, उदग्र, अखण्डित और विततदर्भों से वेष्ठित वह्नि स्वयं ही सान्निध्य को प्राप्त हो जाता है ।६२। मन्त्र के ज्ञाता ने अग्नि की रक्षा के लिए जो भी कर्म कहा हैं उसे कुछ आचार्य जातकर्मा के अनन्तर चाहा करते हैं ।६३। इसके पश्चात् पवित्र कर से घृत का संस्कार करना चाहिए इसके अनन्तर आचार्य देखकर भी नीराज का

अभिमन्त्रित करे । आज्य (घृत) की सिद्धि के लिये आज्य से पाँच-पांच आहुतियों द्वारा हवन करे ।२४-२५। गर्भाधान से आदि लेकर जब तक गोदानिक होवे अपने शास्त्र में विहित मन्त्रों से द्वारा या प्रणव से होम करना चाहिए ।६६। इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर पूर्णात्पूर्ण मनोरथ होवे । इस प्रकार से उत्पादित वह्नि सम्पूर्ण कर्मों में सिद्धि का प्रदान करने वाला होता है।६७। इसके पश्चात् अग्नि का पूजन करके कुण्डोंमें विहृत करे । इन्द्र आदि देवों को अपने-२ मन्त्रों के द्वारा सौ-सौ आहुतियाँ देवें ।६८।

पूर्णाहुति शतस्यान्ते सर्वेषाञ्चैव होमयेत् ।
स्वामाहुतिमथाज्येषु होता तत्कलशे न्यसेत् ।६६
देवताश्चैव मन्त्राश्च तथैव जातवेदसम् ।
आत्मानमेकतः कृत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत् ।७०
निष्कृष्य बहिराचार्य्यो दिक्पालान बलिं हरेत् ।
भूतानांचैव देवानां नागानांच प्रयोगतः ।७१
तिलाश्च समिधाश्चैव होमद्रव्यं द्वयं स्मृतम् ।
नाज्य तयोः सहकारि तत्प्रदानं यदङ्कयोः ।७२
पुरुषसूक्तं पूर्वेणैव रुद्रञ्चैव तु दक्षिणे ।
ज्येष्ठसाम च भीरुण्डं तन्नयामीति पश्चिमे ।७३
नीलरुद्रो महामन्त्रः कुम्भसूक्तमथर्वणः ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं शिरसि कल्पयेत् ।७४
एवं मध्ये तथा पादे पूर्णाहुत्वा तथा पुनः ।
शिरः स्थानेषु जुहुयादाविशेच्च अनुक्रमात् ।७५
देवानामादिमन्त्रैर्वा मन्त्रैर्वा अथवा पुनः ।
स्वशास्त्रविहितैर्वापि गायत्र्या वाथ ते द्विजाः ।
गायत्र्या वाथवाऽऽचार्य्यो व्याहृतिप्रणवेन तु ।७६

एव होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्त देशिकः ।
चरणावग्मिीले तु ईषेत्वो गुल्फयोः स्थिताः ।७७

सौ आहुतियों के अन्त में सबके लिए पूर्णाहुति का होम करे । इसके अनन्तर अपनी आहुति को होता आज्यों में उस कलश में न्यास करे ।६९। देवता, मन्त्र और जातवेद तथा आत्माको एकत्र करके फिर पूर्णाहुति देनी चाहिए ।७०। आचार्य को बाहिर निकालकर दिक्पालोंके निमित्त बलि का हरण करना चाहिए भूत को देवों तथा नागों को सबको बलि दवे ।७१। तिल और समिधां ये दो होम के द्रव्य है । इन दोनों द्रव्यों का घृत सहकारी पदार्थ होता है । जिनके अङ्कों में उसका प्रदान होता है ।७३। पूर्व में पुरुष सूक्त और दक्षिणा से रुद्र सूक्त, ज्येष्ठ साम और भीरुण्ड नयामि, यह पश्चिम में नील रुद्र महामन्त्र कुम्भ सूक्त और अथर्वण इन सब एक-एक को सहस्र वार हवन कर शिर में देव को कल्पित करे ।७३-७४। इस प्रकार से मध्य में तथा पादमें फिर उसी प्रकार से पूर्णाहुति द्वारा शिर स्थानों में हवन करे और अनुक्रमसे आविष्ट करे ।७५। देवी आदि मन्त्रों के द्वारा अथवा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या गायत्री के द्वारा द्विज एवं आचार्य प्रणव एवं व्याहृति के द्वारा इस प्रकार से होम को विधिको सुसम्पन्न करके फिर आचार्य मन्त्रों का न्यास करे । चरणों में "अग्नि मीले" इस मन्त्र का न्यास करे गुल्फों में 'ईषत्वों'—इसका न्यास करे ।७६-७७।

अग्नआयाहि जंघे द्वे शन्नौदेवीति जानुनी ।
वृहद्रथन्तरे ऊरू उदरेष्वातिलो न्यसेत् ।७८
दीर्घायुष्ट्वाव हृदये श्रीश्च ते गलके न्यसेत् ।
त्रातारमिन्द्रं वक्षे च नेत्राभ्यान्तु त्रियुग्मकम् ।
मूर्द्धा भव तथा मूर्ध्नि ह्यालग्ना धीममाचरेत् ।७९
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्राह्मणः पते ।
वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम् ।८०
पिण्डिकालभनं कृत्वा देवस्यत्वेति मन्त्रवित् ।

दिक्पालोन्सह रत्नैश्च धातूनौषधयस्तथा ।
लौहबीजानि सिद्धानि पश्चादेवन्तु विन्यसेत् ।८१
न गर्भे स्थापयेदेव गर्भं न परित्यजेत् ।
ईषन्मध्यं परित्यज्य ततो दोषापनं तु तत् ।८२.
तिलस्य त सनात्रन्तु उत्तर किञ्चिदानयत् ।
ॐ स्थिरो भव शिवो भव प्रजाभ्यश्च नमो नमः ।८३
देवस्थ त्वा सवित वं षड्भ्यो वै विन्यसेद् गुरुः ।
तत्ववर्णतलामात्र प्रजानि भुवनात्मजे ।८४
षड्भ्यो विन्यस्य सिद्धयर्थं ध्रुवार्थं रभिमन्त्रयेत् ।
सम्पातकलशेनैव स्नापतेत्सुष्ठितम् ।८५

दोनों जाँघों में 'अग्न आयाहि—इसका जानुओं में 'शन्नोदेवी'—इस मन्त्र का और उदरों में 'आताल'—इसका न्यास करे ।७८। हृदय में 'दीर्घायुष्ट्वाल' इस मन्त्र का और गले में 'श्रीश्चते'— इसका न्यास करे । वक्षः स्थल में 'त्रातारमिद्रम् इसका एवं दोनों नेत्रों में 'त्रियुग्म-कार'— इसका न्यास करना चाहिए । 'मूर्द्धाभव'— इससे मूर्द्धा में न्यास करे और आलग्न होम करे ।७९। इसके अनन्तर देव का उत्थापन करे तथा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' – इस मन्त्र से करना चाहिए । वेद पुण्याह शब्द के द्वारा प्रासादों की प्रदक्षिणा करे ।८०। मन्त्रोंके वेत्ताकी वेवस्य त्व—इससे पिंडिकालभत करके रत्नों के सहित दिक्पालों को धातुओं की औषधियों को और सिद्ध लौह बीजोंको विन्यस्त करके पीछे देवका विन्यास करे ।८१। गर्भ में देरुको स्थापित न करे और गर्भ का परित्याग भी नहीं करे । थोड़ा सा मध्य का परित्याग करके इसके अनन्तर दोषापन करे ।८२। तिल का कुछ समात्र उत्तर लावे । गुरु को 'ॐ' स्थिरों भव शिवोभव प्रजाभ्यं च नमो नमः । देवस्य त्वा सविसुतुर्य, षड्भ्यो वै' इससे विन्यास करे ध्रुवार्थो को अभिमन्त्रित करे । सुप्रतिष्ठित को सम्पात कलश के द्वारा ही स्नपन करावे ।८३-८५।

दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यै श्च प्रपूजयेत् ।
अर्घ्यं दत्वा नमस्कृत्य ततो देवं क्षमापयेत् ।८६
पात्रं वस्त्रयुगं छत्रं तथा दिव्यांगुरीयकम् ।
ऋत्विग्भ्यश्चप्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तितः ।८७
चतुर्थी जुहुयात्पश्चाद्यजमानः समाहितः ।
आहुतीनां शतं हुत्वा ततः पूर्णा प्रदापयेत् ।८८
निष्क्रम्य वहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलि हरेत् ।
आचार्य्यः पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत् ।८९
यागान्ते कपिशां दद्यादाचार्याय च चामरम् ।
मुकुटं कुण्डलं छत्रं केयूरं कटिसूत्रकम् ।
व्यञ्जनं ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कारं समण्डलम् ।९०
योजनञ्च महत् कुर्यात् कृतकृत्यश्च जायते ।
यजमानो विमुक्तः स्यात्स्थापकस्य प्रसादतः ।९१

फिर दीपों धूपों और सुगन्धियों के द्वारा और नैवेद्यों के द्वारा पूजन करना चाहिए अर्घ्य देकर नमस्कार करके इसके अनन्तर देवता में क्षमापन करने की क्रिया करे ।८६। पात्र वस्त्र युग्म-वस्त्र युग्म दिव्य अंगुरीयक और शक्ति पूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए।८७। इसके पीछे यजमान को पूर्ण सावधान होकर चतुर्थी का हवन करना चाहिए । इस प्रकार से एक सौ आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति देवे ।८८। आचार्य बाहिर निकलकर दिक्पालोंके लिए बलिका हरण करे ।.आचार्य कुण्डल छत्र, केयूर, कटिसूत्र, व्यञ्जन एवं सोपस्कर तथा समण्डल ग्राम वस्त्रादि देवे । इससे यजमान कृत-कृत्य होता है और प्रासाद से विमुक्त होता है ।८९-९१।

२३—अष्टांगयोग कथन

सर्गादिकृद्धरिश्चैव पूज्यः स्वायम्भुवादिभिः ।
विप्राद्यैः स्वेन धर्मेण व्यास वै श्रृणु साम्प्रतम् ।१

यजन याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः ।
अध्यापनञ्चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमे ।२
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः ।
दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते ।३
शुश्रूषेव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।
कारुकर्म तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपि धर्मतः ।४
भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।
संन्यासकर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ।५
सर्वेषामाश्रमाणां द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् ।
ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ।६
योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ।७
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम् ।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयंद्विजसत्तम् ।८

ब्रह्मा जी ने कहा——सर्गादि के करने वाले हरि स्वायम्भुव आदि द्वारा तथा विप्रादि के द्वारा अपने धर्म से पूजने के योग्य हैं । हे व्यास! अब उस धर्म को श्रवण करो ।१। यजन-करना-यज्ञ करना-दान लेना-ब्राह्मणों को दान देन-वेद-शास्त्रों का अध्ययन करना तथा अध्यापन करना ये द्विज के श्रेष्ठ धर्म होते हैं ।२। दान वेला-अध्ययन करना और यज्ञ कर्म करना – ये क्षत्रिय और वैश्य के कर्म हैं । क्षत्रिय कर्म दण्ड देना तथा वैश्य का कर्म कृषि करना प्रशस्त कहा जाता है ।३। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इस द्विजातियों की सेवा करना ही शूद्रों का धर्म-साधन कर्म होता है । तथा शूद्रों का कर्म और थर्म ने अपाक यज्ञ की जीबिका का साधन होता है ।४। भिक्षाचरणं करने गुरु की सेवा करना और स्वाध्याय करना संन्यास कर्म और अग्नि कार्य हवनादि ये ब्रह्मचारी के धर्म कृत्य होते हैं ।५। समस्त आश्रमों के दो प्रकार होते हैं । इस प्रकार से ४ भेद होते हैं । ब्रह्म-

चारी-उप कुर्वाण नैष्ठिक और ब्रह्मतत्पर होते हैं।६। जो विधिपूर्वक गुरु के पास ब्रह्मचर्य विधि से-रहकर वेदों का अध्ययन करे और फिर समावर्त्तन करके माहात्म्य आश्रम को ग्रहण करता है। उसे उपकुर्वाण जानना चाहिए। जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करके मरण पर्यन्त ब्रह्म-कर्म-अतिथियों की सत्कारपूर्वक सेवा-यज्ञ करना-दान देना और ब्रह्म चर्य का पालन करता है यह गृहस्थ का संक्षेप में धर्म कहा गया हैं।८

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।
कुटुम्बभरणे युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत्।९
ऋणानी त्रीण्यापकृत्वा भार्य्याधनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः।१०
भूमौ मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च।
सविभागो यथान्यायं यथान्यायं धर्मोऽयं बनवासिनः।११
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देदान्जुहोति च।
स्वाध्याये चैवं निरतो वनस्थस्तापसोत्तमः।१२
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
सन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः।१३
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुजितेन्द्रियः।
ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पापमेष्ठिकः।१४
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः।
सम्यक् चन्दनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते।१५
भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं ध्यानं विशेषतः।
सम्यव ज्ञानवैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः।१६

उदासीन और साधक भेद से भी दो प्रकार का हुआ करता है। जो अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण में युक्त रहा करता है वह साधक गृही होता है।९। देव ऋषि और पितर इन तीनों के ऋणों को दूर कर अर्थात् चुकाकर फिर अपनी भार्या और धन-वैभवका त्यागकर एकाकी

जो विचरण किया करता है वह मौक्षिक उदासीन नहीं होता है ।१०। वन में निवास करने वाले का यह धर्म होता है कि भूमिमें शयन करे–वन के मूल और फलों का भोजन करे स्वाध्याय करे, तपश्चर्या करे और यथान्याय संविभाग करें ।११। जो वन में तपश्चर्या करता है, देवों का यजन किया करता है, हवन करता है सदा स्वाध्याय में निरत रहा करता है वह वनवासियों में परमश्रेष्ठ तापस होता है ।१२ तपस्या से जो अत्यन्त कर्षित होता हुआ निरन्तर ध्यान में ही परायण रहता है उसे वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाला सन्यासी ही समझना चाहिए ।१३। नित्य ही योगके अभ्यास में रति रखने वाला और उच्च–पद पर आरोहण करने की इच्छा वाला इन्द्रियों को जीत कर वश में रखने वाला ज्ञानके लिए ही वर्त्तन करता वह पारमेष्ठिक भिक्षु कहा जाया करता है ।१४। जो आत्मा में ही रति रखने वाला-नित्य तृप्त सम्यक् तथा चन्दन सम्पन्न महामुनि होता हैं वह योग भिक्षु कहा जाया करता है ।१५। भिक्षा करना शास्त्र तथा वेद का ज्ञान, मौन व्रत धारण करना, तपश्चर्या, विशेष रूप से ध्यान लगाना और भली-भाँति ज्ञान एवं वैराग्य का रखना ये ही भिक्षु का धर्म कहा गया है ।१६।

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे ।
कर्मसंन्यासिनः केचित्त्रिविधः पारमेष्ठिकः ।१७
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः क्षत्र एव च ।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्त्ति समाश्रितः ।१८
प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्करभावना ।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ।१९
धर्मात्संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते ।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तञ्चाग्निदेवकृत् ।२०

क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च ।
आर्जवञ्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ।२१
सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं यथा चेन्द्रियनिग्रहः ।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ।२२
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता ।
एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः ।२३
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्यपलायिनाम् ।२४
वैश्यानां मारुतं स्थान स्वधर्ममनुवर्त्तताम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारे च वर्त्तताम् ।२५
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।२६

यह पारमेष्ठिक तीन प्रकार के होते हैं कुछ तो ज्ञान सन्यासी होतेहैं अर्थात ज्ञान के बलसें हृदय में सबका पूर्ण त्याग भाव रखने वाले होते हैं-दूसरे वेद सन्यासी हुआ करते हैं और तीसरे प्रकार के कर्म सन्यासी होते हैं ।१७। योगी भी तीन प्रकार के होते हैं-भौतिक योगी क्षत्रयोगी और तृतीया योगमूर्ति समन्वित अन्त्याश्रमी होताहै।१८।प्रथम में प्रथमा भावना होती हैं-मोक्ष दुष्कर भावना होती हैं और तीसरे में अन्तिम पारमेश्वरी भावना हुआ करती है ।१९। धर्म में मोक्ष हुआ करता है और अर्थ में काम की उत्पत्ति होती है । इस तरह से यह वैदिक कर्म प्रवृति परक और निवृति परक दो प्रकार का होता हैं । जो ज्ञानपूर्वक कर्म होता है यह निवृति परक होता है और जो जग्नि एवं देव परक कर्म होता है यही प्रवृति कर्म कहा जाता है ।२०। क्षमा-दया-दान-लोभ का अभ्यास-सरलता-अनसूया अर्थात दूसरों के दोष का प्रकट करने का भाव-तीर्थों का अटल-सत्य-सन्तोष-आस्तिकता की भावना इन्द्रियों पर निग्रह रखना, देवताओं का समर्चन विशेष रूप से ब्राह्मणों की पूजा-अहिंसा-प्रिय बोलना-पैशुनता का न होना--रूखेपन का अभाव

ये सब आश्रमों वालों के धर्म होते हैं। अतएव मैं अब चातुवर्ण्य को बतलाता हूँ।२१-२३। क्रिया वाले ब्राह्मणों का प्राजापत्य स्थान कहा गया है। संग्रामोंमें पलायन न करने वाले प्राणियों का ऐन्द्र स्थान कहा गया है। अपने धर्म का अनुवर्त्तन करने वाले वैश्वों का मारुत स्थान होता है। परिचर्या में सर्वदा संलग्न रहने वाले शूद्रों का गांधर्व स्थान बताया गया है।२४-२५। उर्ध्व रेतस अट्ठासी सहस्र ऋषियों का जों स्थान कहा गया है वही पुरुवारियों का होता है।२६।-

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थानं तद्वै वनौकसाम् ।
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ।
आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं चस्मान्नवर्त्तते मुनिः ।२७
योगिनाममृतस्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम् ।
आनन्तमैश्वर यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः ।२८
मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञानात् संक्षेपात्तद्वदे शृणु ।
यमाः पंचत्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम् ।२९
सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वग्रहं परम् ।
अमैथुनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः ।३०
नियमाः पंच सत्याद्या वाह्यमाभ्यन्तरं द्विधा ।
शौचं सत्यञ्च सन्तोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः ।३१
स्वाध्यायः स्यान्मन्त्रजपः प्रणिधानं हरेर्यजिः ।
आसनं पद्मकाद्यु प्राणायामो मरुज्जयः ।३२
मन्त्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः ।
एवं द्विधात्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकः स च ।
कुम्भको निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचकस्त्रिया ।३३

सप्त ऋषियों का जो स्थान होता है वह स्थान वन में रहने वाले यात्रियों का होता है जो यतचित होते हैं और न्यास करने वाले तथा ऊर्ध्वरेता होते हैं, वह आनन्द ब्रह्म स्थान है जहाँ से फिर मुनि पुनः-

रावर्तित नहीं हुआ करता है ।२७। योगियों का व्योमसंज्ञक परमाक्षर अमृत स्थान होता है । वह आनन्दमय तथा ऐश्वर स्थान है जहाँ कि फिर मानव का पुनरावर्तक उस संसार में नहीं होता है ।२८। आठ अङ्गों के विशेष ज्ञानसे मुक्ति हुआ करती है । उसे मैं संक्षेप में बताता हूँ । उसका श्रवण करो । अहिंसा आदि पाँच यम होते है । प्राणियों की कायिक, वाचिक एवं मानसिक हिंसा का न करना ही अहिंसा कही जाती है ।२९। भूतों का हित करने वाला वाक्य सत्य होता है । पराई वस्तु का न ग्रहण करना अस्तेय है । मैथुन का न करना ब्रह्मचर्य होता है । समस्त वस्तुओं का परिग्रह न करना ही त्याग है ।३०। सत्य आदि पांच नियम होते हैं । वे बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार से होतेहैं । शौच सत्य एवं सन्तोष है-तपश्चर्या इन्द्रियों का निग्रह है—स्वाध्याय-मन्त्रों का जप है—प्रणिधान-हरि का यजन है—पद्म आदि आसन हैं-वायु का जय प्राप्त कर लेना ही प्राणायाम होता है ।३१-३२। मन्त्र के ध्यान से जो युक्त होता है वह अगर्भक कहा जाता है । इस प्रकार से वह दो एवं तीन प्रकार का होता है । पूरण करनेसे वह पूरक होता है । निश्चल होने से कुम्भक और रेचन से रेचक कहा जाता है ।३३

लघुर्द्वादशमात्रः स्याच्चतुर्विशतिकः परः ।
षट्त्रिंशन्मात्रिकः श्रेष्ठः प्रत्याहारश्च रोधनम् ।३४
ब्रह्मात्माचिन्ता ध्यानं स्याद्धारणा मनसो धृतिः ।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः ।३५
अहमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।
ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्वमसि केवलम् ।३६
अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्म अक्षरमानिन्द्रियम् ।
अहं मनोबुद्धिमहदहङ्कारादिवर्जितम् ।३७
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियुक्तयज्ज्योतिस्तदीयकम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धियुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ।३८

योऽसावादित्यपुरुषः सौऽसावहमखण्डितम् ।
इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात् ।३९

बारह मात्राओं वाला लघु प्राणायाम होताहै और चौबीस मात्राओं वाला पंर होता है तथा छत्तीस मात्राओं से युक्त परम श्रेष्ठ होता है । रोधन करने को ही प्रत्याहार कहते हैं ।३४। ब्रह्मात्म चिन्तन करने को ही ध्यान करते हैं । मन की वृत्ति को ही धारणा कहा जाता है । मैं ही ब्रह्म हूँ-इस प्रकार की जो अतस्थिति होने पर ब्रह्म की स्थिति का प्राप्त हो जाना है उसे ही समाधि कहा जाता है ।३५। मैं आत्मा हूँ ब्रह्म पर है और वह सत्य एवं ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त है । ब्रह्म का विज्ञान ही आनन्दमय हैं और वह केवल तत्वमसि है ।३६। मैं ब्रह्म हूँ मैं बिना शरीर वाला और इन्द्रियों से रहित हूँ—मैं मन, बुद्धि, अहंकार आदि से वर्जित हूं और जाग्रत्, सुषुप्ति आदि से युक्त उसी की ज्योति स्वरूप हूँ । मैं शुद्ध, वुद्धि युक्त, सत्य एवं आनन्द स्वरूप अद्वितीय हूँ, जो यह आदित्य पुरुष है वह मैं अखण्डित हूँ इस प्रकार से अपने आपको ध्यान करने वाला ब्राह्मण इस संसार में महा बन्धन से विमुक्त जाता है ।३७-३९।

५४—नित्य क्रिया शौच वर्णन

अहन्यहनि यः कुर्यात् क्रियां स ज्ञानमाप्नुयात् ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ।१
चिन्तये धृदि पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम् ।
उषःकाले तु संप्राप्ते कृत्वा वावश्यकं बुधः ।
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ।२
प्रातः स्नानेन पूजयन्ते योऽपि पापकृतो जनः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातः स्नानं समाचरेत् ।३
प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ।

सुखात् सुप्तस्य सततं लालाद्याः संभ्रवन्ति हि ।
अतोनैवाचरेत् कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ।४
अलक्ष्मीः कालकणा च दुस्वप्नां दुर्विचिन्ततम् ।
प्रातः स्नानेन पापानि धूयन्ते नात्र संशयः ।५
न च स्नानं विना पुंसा प्राशस्त्यं कर्म संस्मृतम् ।
होमे जप्ये विषेशेण तस्माद् स्नानं समाचरेत् ।६
अशक्तावशिरस्कं तु स्नानमस्य विधीयते ।
आर्द्रेण बाससा वापि मार्जनं कायिकं स्मृतम् ।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो प्रतिदिन इस क्रिया को करता है यह ज्ञान को प्राप्त किया करता हैं । ब्राह्म मुहूर्त में उठकर अर्थात् शय्या त्याग करके सर्वप्रथग धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए । उषा काल समाप्त होने पर बुध पुरुष आवश्यक कृत्य करके हृदय में पद्मासन पर संस्थित करके आनन्द स्वरूप श्री हरि का चिन्तन करे । यथा विधि शौच-कार्य करके फिर शुद्ध नदियों में स्नान-क्रिया सम्पन्न करे ।१-२। प्रातःकाल में किये जाने वाले स्नान की प्रशंसा की जाती है क्योंकि वह दृष्टि और दृष्टि के करने वाला होता है । सुख से सोते हुए मनुष्य की सर्वदा लाला (लार) आदि का स्रवण हुआ करता । इसलिए आदि में स्नान न करके कभी भी अन्य कर्मोका आरम्भ न करे ।३-४। प्रातःकाल नित्य किये हुए स्नान से लक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न, दुर्विचिन्तन (बुरी भावना) एवं सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं कुछ भी संशय नहीं है ।५। स्नान के बिना पुरुषों के प्रशस्त कर्म नही बताये गये हैं । होम और मन्त्र जाप में तो विशेष रूप स्नान करना ही चाहिए ।६। यदि सर्वांग स्नान करनेकी स्थितिमें न हो और ऐसी शक्ति शरीर में न हो तो बिना शरीर को भिगोये हुए ही स्नान अवश्य करना चाहिए । इतना भी न किया जा सके तो गील। वस्त्र करके उससे ही शरीर का मार्जन अवश्य करे । ऐसा कहा है ।७।

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्ट वायव्यं दिव्यमेव च ।

वारुणं यौगिकं तद्वष्षड्ङ्गं स्नानमाचरेत् ।८
ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः-सोदकबिन्दुभिः ।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम् ।९
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।
यत् तु सातवर्षेण स्नानं यद्दिव्यमुच्यते ।१०
वारुणञ्चावगाहं च मानसं त्वात्मवेदनम् ।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम् ।
आत्मतीर्थंमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।११
क्षारवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम् ।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्च कारवीरच धारणम् ।१२
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्य्यात्तु दन्तधावनम् ।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः ।१३
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणास्तथा ।
आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ।१४
संमार्ज्य मन्त्रै रात्मानं कुशैः सोदकविन्दुभिः ।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ।१५

ब्राह्म-स्नानं को आग्नेय स्नान कहा गया है—वायव्य स्नानको दिव्य स्नान बताया गया है—वारुण स्नान को योगिक कहा गया हैं । इसी भांति षडंग स्नान करे ।८। जल की बूँदों के सहित कुशों के द्वारा मन्त्रों से जो स्नान क्रिया को सम्पन्न करके मार्जन किया जाता है उसे आग्नेय स्नान कहा जाता है ।९। गौओं के खुरों से उठी हुई रज से जो स्नान किया जाता है उस उत्तम स्नान को वायव्य स्नान कहते हैं । जो आतप रहते हुए वर्षा की बूँदों से, स्नान होता है उसे दिव्य स्नानं कहा जाता है ।१०। मानस स्नान को वारुण स्नानं कहते हैं और आत्मवेदन यौगिक स्नान होता है जिसमें योग के द्वारा परिचिन्तन किया जाता है । ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित आत्मतीर्थ कहा गया है ।११। दूध जिन वृक्षों के निकला जाता जाता है उन वृक्षों की बनाई

हुई—मालती लता की टहनी से बनाई गई परम शुभ अपामार्ग (ओंघा) को विल्व की ओर करवीर की दाँतुन लो उत्तर की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख वाला होकर करना चाहिए। चबा कर और धोकर शुचि देश में समाहित होकर उसका उपयोग करके फिर त्याग देवे।१२-१३। फिर स्नान करके देवों, ऋषियों, पितृगण का तर्पण करे। बिधि के सहित आचमन करके नित्य ही पुनः आचमन कर के मौन होकर उदक बिन्दुओं के सहित कुशाओं से मन्त्रों के द्वारा अपना समार्जन करे और वह 'आपोहिष्टा मयोभुंव' इत्यादि व्याहृतियों से, सावित्री से और शुभ वारुणों से करना चाहिए।१४-१५।

ॐकारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्।
जप्त्वा जलांजलि दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः ।१६
प्रातःकाले ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुतिः।१७
या सन्ध्या सा जगत्सूति र्मायातीता हि निष्कला।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्वत्रयसमुद्भवा।१८
ध्यात्वा रक्तां सितां कृष्णां गायत्री वै जपेद्बुधः।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत्।१९
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत्कुरुते किंचिन्न तस्य फलभाग्भवेत्।२०
अनन्यचेतसः सं तो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपास्य विधिवत्संध्यां प्राप्ताः पूर्वपरां गतिम्।२१
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्य्ये द्विजोत्तमः।
विहाय संध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम्।२२

फिर ओंकार व्याहृतियों से युक्त वेदमाता गायत्री का जप करके तन्मय होकर भगवान् भास्करदेवके प्रति जलांजलि समर्पित करे।१६। इसके अनन्तर प्रातःकाल कुशासन पर स्थित होकर सुसमाहित होते

हुए प्रणाम करके सन्ध्या की उपासना करे,ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ।१७। जो यह सन्ध्या है वह जगत् को जाननी है, माया से अतीत और निष्कला है । यह केवल ऐश्वरी शक्ति तीनों तत्वोंसे समुत्पन्न होने वाली है ।१८। बुध पुरुष को चाहिये कि गायत्री के स्वरूप का रक्त-सित और कृष्ण वर्ण का ध्यान करके फिर इसका जाप करे । विप्र को सर्वथा पूर्व की ओर मुख करके सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए।१९ जो विप्र सन्ध्या नहीं करता है वह परम हीन होता है और समस्त कर्मों के करने के अयोग्य होता और भी वह जो कुछ करता है उसके फल भोगने वाला नहीं होता है ।२०। अनन्य चित्त वाले होते हुए वेद के पारगामी ब्राह्मण विधि-विधान के साथ संध्या की उपासना करके पूर्वपरा गति को प्राप्त हुए ।२१। जो द्विज श्रेष्ठ अन्य कर्मों में जो कि धर्म युक्त होते हैं यत्न किया करता है और सन्ध्या को प्रणति का त्याग कर देता है वह दश सहस्र पर्यन्त नरक गामी होता है ।२२।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ।२३
सहस्रपरमां नित्यां शतमध्यां दशापराम् ।
गायत्री वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः ।२४
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदस्थं समाहितः ।
मन्त्रैस्तु विविधे सारैः ऋग्यजुःसामसंज्ञितैः ।२५
जपस्थाय महायोग देव देत दिवाकरः ।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूद्धर्नामभिमन्त्रितः ।२६
ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रहेतव ।
निवेदयामि चात्मनं नमस्तें ज्ञानरूपिणे ।२७
त्वमेव ब्रह्म परमतापोज्योतीरसोऽमृतम् ।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः ।२८

एवद्वै सूर्य्यं हृदये जप्त्वा स्तवनमुत्तमम् ।
प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ।२९
अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि ।
प्रज्वाल्य वह्नि विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ।३०

अतएव सम्पूर्ण प्रयत्नों से ब्राह्मण को सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिए । उस सन्ध्या में उपासित देव परमयोग तनु हो जाता है ।२३। विद्वान् ब्राह्मण को नित्य प्रति एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए—यह सर्वोत्तम है यदि इतना न बन सके तो १०८ बार एक माला गायत्री के जप की करे—यह मध्यम है और इतना भी व्यस्ततावश न कर सके तो भी कम से कम दस बार तो अवश्य ही गायत्री का जप प्रतिदिन करना चाहिए यह सबसे निम्न श्रेणी की जप संख्या है । विद्वान्को पूर्वकी ओर मुख करके और परम संयत होकर ही परम शुचिता के साथ गायत्री का जप करना चाहिए ।२४। उसके अनन्तर बहुत सावधान होते हुए उदयस्थ भगवान् आदित्यदेव का उदस्थान करे यह उपस्थान परम साररूप विविध ऋक्, यजु और सामवेद की संज्ञा वाले मन्त्रों के द्वारा करे ।२५। सहयोग देवों के भी देव भगवान् दिवाकर (सूर्य) का उपस्थान करके अभिमन्त्रित होते हुए भूमि में मस्तक टेककर सूर्यदेव को प्रणाम करे । प्रणाम करने का मन्त्र यह है—'ॐ ख खोल्काय शान्ताय-इन्द्रायि' —अर्थात् ख अर्थात्आकाश के उल्का स्वरूप, परम, शान्त, तीनों करणोंके हेतु, ज्ञानस्वरूप वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है। मैं अपने को आपके लिए निवेदित करता हूँ ।२६-२७ आप ही परम ब्रह्म है आप ज्योति रस एवं अमृत है। आप भूर्भुवः स्वः हैं—आप ओंकार, सर्व, रुद्र एवं सनातन हैं । इस उत्तम स्तवन का हृदयमें सूर्य जाप करके प्रातःकाल में और मध्याह्न के समयमें भगवान् दिवाकर को नमस्कार करे इसके अनन्तर अपने घर में जाकर विधि पूर्वक आचमन करके अग्नि को प्रज्वलित करे और विधि के साथ हवन करे ।२८-३०।

ऋत्विक्पुत्रोऽथपत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां बिशेषेण जुहूयाद्वा यथाविधि ।
बिना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम् ।३१
देवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत् ।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत् ।३२
वेदाभ्यासं ततः कुर्य्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ।
जपेदध्यायपयेच्छिष्वान्धारयेद्वै बिचारयेत् ।३३
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनां द्विजोत्तम ।
वैदिकांश्चैयं निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः ।३४
उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये ।
साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विजः ।३५
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
पुष्पाक्षतन्तिलकुशान् गोमये शुद्धमेव च ।३६
नदीषु देवखातेसु तडागेषु सरासु च ।
स्नानं समाचरन्नैव परकीये कदाचन ।
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य स्नानं दुष्यन्ति नित्यशः ।३७

ऋत्विक्, पुत्र, पत्नी, शिष्य अथवा सहोदर भाई की आज्ञा प्राप्त करके बिशेष रूप से यथा विधि हवन करना चाहिए। मन्त्रके बिना जो कोई भी कर्म होता है वह इस लोकमें तथा परलोकमें फल प्रदान करने वाला नहीं होता है ।३१। समस्त देवों को नमस्कार करे और उन्हें उपहारों को समर्पित करे। फिर गुरुदेव और इनके जो भी हित हों उन की उपासना करनी चाहिए ।३२। इस कृत्य से सम्पन्न करने के अनन्तर द्विज को अपनी शक्ति से प्रयत्न पूर्वक वेदों का अभ्यास करना चाहिए। जप करे, शिष्यों का अध्यापन करें, धारण करें और विचारण करे ।३३। हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर शास्त्रों का अवेक्षण करे तथा धर्म आदि का निरीक्षण करे। वैदिक नियमों को तथा सभी वेद के अङ्ग व्याकरण निरुक्त आदि शास्त्रोंका परिशीलन करे ।३४। अपने योगक्षेमकी प्रसिद्धि

के लिए ईश्वर का उपगमन करे, और इसके पश्चात् द्विज को कुटुम्ब के लिए अनेक प्रकार के अर्थों का साधन करना चाहिए।३५। इसके अनन्तर मध्याह्न के समय स्नान के लिए मृत्तिका लावै। पुष्प-अक्षत-तिल-कुशा और शुद्ध गोमय लाना चाहिए।३६। नदी-देवखात-तड़ाग अथवा सरोवर में स्नान कराना चाहिए। किन्तु दूसरों के स्थान में कभी भी स्नान नहीं करे। नित्य ही पाँच पिंडों का उद्धार न करके लोग स्नान को दूषित कर दिया करते हैं।३७।

मृदैकया: शिरा क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि।
अधश्च तिसृभिः क्षाल्यं पादौ षड्भिस्तथैव च।३८
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका।
गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्गं लेयेत्ततः।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः।३९
लेपयित्वा तु तीरस्थतल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः।
अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रै वालिङ्गैर्वारुणैः शुभैः।
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यतः।४०
प्रेक्ष्य ओंकारमादित्यं त्रिर्निमज्यजलाशये।
नाचान्तं पुनराचामेन्मन्त्रेनानेन मन्त्रवित्।४१
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम्।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोमृताम्।४२
द्रुपदां त्रिरभ्यस्येद् व्याहृतिप्रणवान्विताम्।
साविित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षणम्।४३

एक मृत्तिका से सिर को धोना चाहिए दो से नाभि के ऊपर के भाग को प्रक्षालन करे तीन मृत्तिकाओं से अधोभाग को और छह पैरों का प्रक्षालन करना चाहिए। बँधे हुए आँवले के फल के बराबर एक मृत्तिका समझनी चाहिए। फिर गोमय (गोबर) का प्रमाण लेकर उससे अङ्ग का लेपन करे और प्रक्षालन करके फिर आचमन करे तथा फिर विधिपूर्वक समाहित होकर स्नान करना चाहिए।३८-३९। तीर में

स्थित होते हुए लेप करके उसके लिङ्गों से ही मन्त्र से जल को आलिंग शुभ वारुणों द्वारा अभिमन्त्रित करके स्नान के समय में भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए क्योंकि आप नारायण के स्वरूप हैं ।४०। ओंकार आदित्य का प्रेक्षण करके जलाशय में तीन बार निमज्जन करे। मन्त्रवेत्ता को निम्न मन्त्र से आचान्त होकर पुनः आचमन करना चाहिए ।४१। मन्त्र—अन्तश्चरसि अमृतम्' यह है अर्थात् विश्वतो मुख आप प्राणियों के अन्तस्थल में गुहा में चरण करते हैं । आप यश रूप हैं वषट्कार—आप—ज्योति—रस और अमृत हैं ।४२। 'द्रुपदा' इस मन्त्र को ३ बार बोले या व्याहृतियों तथा प्रणवसे युक्त सावित्रीका जाप विद्वान को करना चाहिए । एवं अघमर्षण मन्त्र का उच्चारण करें ।४३।

तयः सम्मार्जनं कुर्यादापोहिष्ठामयो भुवः ।
इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च ।
ततोऽभिमन्त्रितं तोयमापोहिष्ठादिमन्त्रकैः ।४४
अन्तर्जलमवागग्नौ जपेत्त्विदमघमर्षणम् ।
द्रुपदां वाथ सावित्री तद्विष्णोः परम पदम् ।
आवर्त्तयेद्वा प्रणवं देवदेव स्मरेद्धरिम् ।४५
आपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते ।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकैः ।४६
सन्ध्यामुपास्य वाचम्य संस्मरेन्नित्यमीश्वरीम् ।
अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वंपुष्पान्विताञ्जलिः ।४७
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुदयस्थं न शक्यते ।
उदुत्यं चित्रमित्येव तच्चक्षुरिति मन्त्रतः ।४८
हंसः शुचिः सदेतेन सावित्र्या च विशेषतः ।
अन्यैः सौरैर्वैदिकैश्च गायत्रीञ्च ततो सपेत् ।४६
मन्त्रांश्च विविधान् पश्चात् प्राक्कुले च कुशासने ।
तिष्ठेश्च वीक्ष्यमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः ।५०

इसके उपरान्त 'आपो' हिष्ठामयो भुवः' इत्यादि मन्त्र समार्चन करे 'इदमापः प्रवहत' इससे तथा व्याहृतियों से एवं 'आपोहिष्ठा आदि मन्त्रों से जल को अभिमन्त्रित करे ।४४। जल के मध्य में चुपचाप अघ मर्षण मन्त्र का तीन बार जप करे। या 'द्रुपदा इसका या सावित्री का 'तद्विष्णोः परम पद्म' इसका अथवा प्रणव का आवर्त्तन करे और देवों के भी देव श्री हरि का स्मरण करना चाहिए ।४५। हाथ में जल लेकर अघमर्षण मन्त्र का जप करके मार्जन करने पर विन्यास करके उस जल को समस्त पातकों के सहित छोड़ देना चाहिये ।४६। सन्ध्या की उपासना करके आचमन करे और ईश्वरी का नित्य ही स्मरण करना चाहिये। इसके बाद ऊपर की ओर पुष्पांजलि लेकर अञ्जलि को प्रक्षिप्त करके देव का आलोकन करे। उदयाचल में स्थित को नहीं किया जा सकता है। 'उदुत्य चित्रवं' और 'तच्चक्षु- 'इत्यादि मन्त्रों से हसः शुचिः सदेत' इससे तथा विशेषतया सावित्रा से एवं अन्य सौर तथा वैदिक मन्त्रों द्वारा उपस्थान करे। इसके अनन्तर गायत्री का जाप करे ।४८-४९। तट पर पूर्व की ओर मुखकर स्थित होकर सूर्यका दर्शन करते हुए अति समाहित होकर कुशासन पर बैठकर विविध मन्त्रों का जाप करे ।५०।

स्फटिकाब्जाक्षरुद्राक्षैः पुत्रञ्जीवसुदभवैः ।
कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता ।५१
यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वास्मिध्यगतश्चरेद् ।
अन्यथा च शुचौ भूम्यां दर्भेषु च समाहितः ।५२।
प्रदक्षिणं समावृत्य नतस्कुर्यात्ततः क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ।५३
ततः सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च ।५४
देवान् ब्रह्मर्षिश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ।
पितॄन् देवान् मुनीन् भक्तया स्वसूत्रोक्तविधानतः ।

देवर्षीस्तर्पयद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन् ।५५
यज्ञोप्रवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे ।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत ।५६
निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभिः ।५७

अब जाप करने की माला के विषय में बतलाते हैं कि माला स्फटिक-कमल गट्टा-रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीवाकी निर्मित होनी चाहिए । वह, अन्तरा अक्षमाला कही गई है ।५१। यदि गीले वस्त्रों वाला हो तो जल के मध्य में स्थित होकर ही जप करे अन्यथा शुचि भूमि में दर्भासन पर स्थित होकर समाहित होते हुए जप करे ।५२। फिर प्रदक्षिणा करके भूमि में नमस्कार करे और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचमन करके अपनी शक्ति के अनुरूप स्वाध्याय करे ।५३। इसके उपरांत देवगण ऋषिवर्ग और पितरों का संतर्पण करना चाहिए । आदिमें ओंकार का उच्चारण करके अन्त में नमः तर्पयामि'—इसे बोलकर तर्पण करना चाहिए । देवों को और ब्रह्म ऋषियों को तर्पण अक्षत मिश्रित जल से करे । अपने सूत्रोक्त विधान से भक्ति में साथ पितर देव और मुनियों का तर्पण करना चाहिए । उदकांजलियों के द्वारा श्री मान पुरुष को देवर्षियों का तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिए । हे भारत ! देवों का तर्पण करते समय में यज्ञोपवीती रहे— ऋषियों के तर्पण के समय में निवीती रहे और पितृगण के तर्पण में प्राचीनावीती रहते हुए उस तीर्थों से तर्पण करे ।५४-५५। स्नान के वस्त्र को निष्पीड़न कर आचमन करे और वाग्यत अर्थात् मौन होकर अपने मन्त्रों के द्वारा पुष्पों से, पत्रों से तथा जलों से देवों का अर्चन करना चाहिए ।५७।

ब्रह्माण शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतात् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हरः ।५८
प्रदद्याद्वाथ पुष्पादि सूक्तेन पुरुषेण तु ।
आपो वा देवतः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चितः ।

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वं देवं परिसमाहितः ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक् ।६०
नर्ते ह्याराधानां पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्माच्चर्दिमध्यान्ते चेतसा धारयेद्धरिम् ।६१
वद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेणं तु ।
निवेदयच्च आत्मानं विष्णवेऽमलतेजसे ।६२
तदध्यातमनाः शास्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रितः ।
देवयज्ञं भूतयज्ञं पितृयज्ञं तथैव च ।
मानुषं ब्रह्मयज्ञं च पंच यज्ञान् समाचरेत् ।६३
याद स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञं कुतो भवेत् ।
कृत्वा मानुषज्ञ वै ततः स्वाध्यायमाचरेत् ।६४

ब्रह्मा, शंकर, सूर्य तथा मधुसूदन एवं जो अपने अभिसत् माने हुए देवगण हों उनका क्रोध रहित होकर भक्ति भाव से समर्चन करे ।५८। पुरुष सूक्तों के मन्त्रों के द्वारा पुष्पाक्षत गन्धादि सम्पूर्ण उपचारों को समर्चित करे । अथवा जल के हीं समस्त देव समर्चित करे ।५९। परि-समाहित होकर प्रणव पूर्वक देव का ध्यान करें और नमस्कार के द्वारा पृथक्-पृथक् पुष्पों का विन्यास करे ।६०। इनकी आराधना करना पुण्य नहीं किन्तु यह एक वैदिक कर्म है । इसलिए आदि, मध्य और अन्त में चित्त से भगवान् हरिको धारण करें ।६१। अमलतेज युक्त भगवान्विष्णु के लिए 'तद्विष्णोः' परम पदम'—इत्यादि मन्त्र से और पुरुष सूक्त से अपनी आत्मा को निवेदित करे ।६२। उसका ध्यान मन में रखने वाला परम शान्त रहते हुए 'तद्विष्णो'—इत्यादि मन्त्रसे मन्त्रित होकर देवयज्ञ' भूतयज्ञ, पित्रयज्ञ मानुषयज्ञ और ब्रह्म यज्ञ इन ५ यज्ञो को करे ।६३। यदि तर्पण करे तो इसके पीछे महायज्ञ कैसे होगा । मानुष यज्ञ करके इसके अनन्तर स्वाध्याय करे ।६४।

वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञः स तु स्मृतः ।
भूतयज्ञः स विज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वयं वलिः ।६५

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्नं पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तमः ।६६
एकं तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सत्तमः ।
नित्यश्राद्धं तानुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रदः ।६७
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किंचिदन्नं समाहितः ।
वेद तत्वार्थ विदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ।६८
पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चयेद् द्विजम् ।
मनोवाक्कर्मभिः शान्तं स्वागतैः स्वगृहं ततः ।६९
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुर्गुणम् ।
पुष्कलं हस्तमात्रन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते ।७०
गोदोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथिः स्वयम् ।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेतिथिः तथा ।७१
भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिविद् ब्रह्मचारिणे ।
दद्यान्नं यथाशक्ति अर्थिभ्यो लोभवर्जितः ।
भुञ्जीत वन्धुभिः साद्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।७२

वैश्वदेव करना चाहिए । यह देवयज्ञ कहा गया है । भूत यज्ञ उसे ही समझना चाहिए जिसमें भूतों के लिए बलिका आहरण किया जाता है ।५५। द्विज श्रेष्ठ को श्वानों के लिए—श्वपत्रों के लिए और पतित आदि को वाहिप भूमि में अन्न देना चाहिए, पक्षियों के लिए भी अन्न देना चाहिए । श्रेष्ठतम पुरुष पितरों का उद्देश्य करके एक ब्राह्मण को भोजन करावे । इसे नित्य श्राद्ध कहते हैं जो कि पितृगण के उद्देश्य से किया जाता है । वह पितृयज्ञ गति के प्रदान करने वाला होता है ।६६-६७। अथवा सावधान होते हुए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ अन्न उद्मृत करके वेदों के तत्वों के विद्वान् द्विज के लिए उपपादित करना चाहिए ।६८। अतिथि का नित्य ही पूजन करे । अपने घर पर समागत शान्त द्विज को मन-वाणी और कर्म से किए हुए स्वागत सत्कारों के द्वारा नमस्कार करे और अर्चना करे ।६९। ग्रास मात्र अन्न को भिक्षा

कहते हैं। उसका चतुर्गुण पुष्कल कहलाताहै और उसका चतुर्गुण हस्त मात्र कहा जाता है।७०। अतिथि का जितने समय में एक गाय का दोहन होता है उतने काल तक स्वयं प्रतीक्षा करे अभ्यागतों को अपनी शक्ति भर पूजन करना चाहिए।७१। ब्रह्मचारी भिक्षु के लिए विधि पूर्वक भिक्षा देवे। लोभ से रहित अर्थियों (याचकों) के लिए यथा शक्ति अन्न का दान रना चाहिए। अन्न की बुराई न करते हुए मौन होकर अपने बन्धुओं के साथ भोजन करे।७२।

अकृत्वा तु द्विजः पंच महायज्ञान् द्विजोत्तम्।
भुञ्जते चेत् मूढात्मा तिर्यग्योनि च यच्छति।७३
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमः।
नाशयन्त्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा।७४
यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरादेव जायते।७५
अशौचं संप्रवक्ष्यामि अशुचिः पातकी सदा।
अशौचं चैव संसर्गाच्छुचिः संसर्ग वर्जनात्।७६
दशाह प्राहु राशौचं सर्व विप्रा विपश्चितः।
सृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमः।७७
आदन्तजननात्सद्य आचूड़ादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपननादादशरात्रमतः परम्।७८
क्षत्रियो द्वादशान्हेन दशभिः पंचभिर्विशः।
शुद्धवेमासेन वै शूद्रो यतीनां नास्ति पातकम्।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिनं भभक्तव शौचकम्।७९

द्विजों के श्रेष्ठ द्विज।५। महायज्ञोंको न करके यदि स्वयं भोजनकर लेतीहैं तो वह मूढ़ आत्मा वाला है और दूसरे जन्ममें वह तिर्यग् योनि में जन्म ग्रहण करता है।७३। नित्य प्रति वेदोंका अभ्यास और शक्तिसे महायज्ञों की क्रिया में समर्थ तथा देवों का अर्चन ये पापों को शीघ्र

ही नष्ट कर देते हैं ।७४। जो भी मोह से अथवा आलस्य से देवताओंकी अर्चना न करके भोजन कर लेता है वह नरक को प्राप्त होता है और शूकर की योनि में जन्म ग्रहण करता है ।७५। अब मैं अशौच को बताऊँगा । पातक करने वाला पुरुष सर्वथा अशुचि रहता है । संसर्ग से भी अशुचि हो जाता है । यदि शुचि का उसे कभी संसर्ग ही न होता हो । ।७६। विद्वान् पुरुष हे द्विज श्रेष्ठ ! मृत होने पर और जन्म होने पर ब्राह्मण को दस दिन पर्यन्त आशौच कहते हैं ।७७। जब तक बालक के दांत नहीं निकलते हैं और उसकी मृत्यु हो जावे तो उसका अशौच तुरन्त ही दूर हो जाता है । जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक रात्रि का मृतक का आशौच होता है । उपनयन संस्कार हो जानेपर ३ रात्रि का मृतक का अशौच होताहै और इसके आगे तो दश रात्रि तक मृतक का अशौच होता है ।७८। यह ब्राह्मण के अशौच के विषय में बताया गया है । किन्तु क्षत्रिय वर्ण वाले पुरुष का आशौच बारह दिन तक रहता है तथा वैश्य आशौच पन्द्रह दिन तक होता है और शूद्र का अशौच एक मास पर्यन्त रहा करता है । यतियों को पातक नहीं होता है । गर्भ के स्राव हो जाने पर जितने भी मास का गर्भ हो उतनी ही रात्रियों तक उसका आशौच रहता है और इसके पश्चात् ही वह शुद्ध होता है ।७९।

२५—दान धर्म वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि दान धर्ममनुत्तमम् ।
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।१
दानन्तु कथितं जज्ञै भुंक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत् ।२
अध्यापनं याजनंन वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम् ।
कृषीद कृषिवाणिज्यं क्षत्रवृत्तोऽथवार्जयेत् ।३
यद्दीयते पात्रेणभ्यस्तद्दानं सात्विकं विदुः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं दानमीरितम् ।४

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः ।५
यत्तु पापोपशांत्यै च दीयते विदुषां करे ।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्ट दानं सद्भिरनुष्ठितम् ।६
अपत्यविजयैश्वर्य्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते ।
दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ।७

ब्रह्माजी बोले—इसके अनन्तर मैं सर्वश्रेष्ठ दान के धर्म के विषय में बतलाऊँगा । किसी समुचित दान देने के पात्र पुरुष की श्रद्धा-पूर्वक किया हुआ दान का प्रतिपादन विज्ञ पुरुषों के द्वारा भक्ति एवं मुक्ति का प्रदान करने वाला दान बताया गया है । न्याय से उपार्जन करे यही बित्त दान के फल का भाग कहा गया है ।१-२। ब्राह्मण के लिए अध्यापन करना, याजन करना और प्रतिग्रह ग्रहण करना ये ही वृत्ति बताई गई है । कुषीद (ब्याज), कृषि और वाणिज्य कर्म यह क्षत्रियों की वृत्ति है । इसके द्वारा अर्जन करे । जो दान किसी भी योग्य पुरुष को दिया जाता है वही दान सात्विक कहा गया है । दान कितने ही प्रकार का होता हैं-नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल दान होता है । जो नित्य प्रतिहर एक दिन कुछ भी किसी अनुपकारी को अर्थात् जिनसे किसी भी अपने उपकार की आशा न हो, दान दिया जाता है वह नित्य दान होता है । किसी फल का उद्देश्य न रखकर ब्राह्मण को नित्य दान दिया जाता है ।३-५। जो किसी पाप की उपशान्ति के लिए विद्वान पुरुषों के हाथ में दान दिया जाता है सत्पुरुषों ने उस दान को नैमित्तिक दान बतलाया है।६। सन्तति,विजय, ऐश्वर्य और स्वयं प्राप्ति में उद्देश्य चिन्तन करने वाले ऋषियों ने इसे कामना की पूर्ति के लिए किया गया काम्यदान कहा है ।

ईश्वरप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसा सत्वयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ।८
इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।

दद्यात् वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ।
भूमिदानात्परं दानं न भविष्यति ।६
विद्यां दत्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते ।
दद्यादहरहस्तास्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ।
सर्वपाप विनिर्मुक्तो ब्रह्म स्थानमवाप्नुयात् ।१०
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पंच च ।
उपोष्याभ्यर्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत् ।११
प्रीयतां धर्मवाचाभिस्तथा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।१२
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसर्पिषा ।
ददाति लस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ।१३
घृतान्नमुदकं चैव वैशाख्यां च विशेषतः ।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ।१४

केवल भगवत्प्रीति प्राप्त करने के लिए ब्रह्म वेत्ता पुरुषों में जो दान दिया जाता है और सत्व सम्पन्न चित्त से जिसको दिया जाता है वह परम शिव विमल दान कहा गया है। ईख को सदा उपज से सम्पन्न भूमि, यव, गोधूम गेहूँ के उपज वाली भूमि का जो किसी वेद के विद्वान् को दान देताहै वह परम पदको प्राप्त होजाता है और फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता है। भूमि का दान सबसे परम एवं श्रेष्ठ दान होता है। ऐसा उत्तम अन्य कोई भी दान अब तक हुआ है और न भविष्य में भी होंगे।६। जो विद्या का दान है जिसको कि ब्राह्मण के लिए दिया जाता है उसका बड़ा आदर ब्रह्मलोक में होता है। उस विद्या के दान प्रति श्रद्धा से ब्रह्मचारीको देना चाहिए। ब्रह्मचारी को विद्या का दान करने वाला पुरुष समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर ब्रह्म स्थान को प्राप्त किया करता है।१०। वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन बाहर ब्राह्मणों को उपवास कराकर विद्वान्

को मधु और तिल पिष्टि से उनका अभ्यर्चन करना चाहिए। गन्धाक्षत पुष्पादि से भली भाँति अर्चना करके उनसे बचवाये या स्वयं बोले ।११। धर्म वाणियों से प्रसन्न होवे उस प्रकार से मन में वर्त्तमान होता है, परे जीवन में जो भी पाप किये हैं वे सब उसी क्षण में नष्ट हो जाते हैं ।४२। कृष्णांजिन में तिलों को रखकर हिरण्य, मधु और घृत के सहित जो ब्राह्मण के लिए दान देता है वह सब दुष्कृतोंसे तर जाता है ।१३। वैशाखी पूर्णमासी के दिन घृत, अन्न और जल विशेष रूप से धर्मराज का निर्देश करके ब्राह्मणों को दान देता है वह भय से मुक्त हो जाता है ।१४।

द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुमुपोष्लाघप्रणाशनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो भवति निश्चितम् ।१५
यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः ।
ब्रह्माणान्पूजयेद्यत्नाद्भोजयैद्योषितः सुरान् ।१६
सन्तानकामः सततं पूजयेद् वै पुरन्दरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मानिश्चयात् ।१७
आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम् ।
कर्मणां सिद्धि कामस्तु पूजयेत् वै विनायकम् ।१८
भोगकामो हि शशिनं बलकामः समीरणम् ।
मुमुक्षुः सर्वसंसात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम् ।
अकामः सर्वकामो वा पूजयेत्त गदाधरम् ।१९
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।२०
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि विश्वानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।२१

द्वादशी के दिन में पापों के प्रनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु की उपोषित होकर जो अर्चना करता है वह मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विनिर्मुक्त निश्चय ही हो जाया करता है ।१५। जो मनुष्य जिस देवता को

आराधना करने की इच्छा रखता है वह ब्राह्मणों का पूजन करे और उन्हें भोजन करावे तथा स्त्रियों को भी भोजन करावे एवं सुरों का यजन करे ।१६। जो सन्तति प्राप्त करने की कामना रखता है उसे इन्द्र देव का पूजन करे । जो ब्रह्मवर्चस प्राप्त करने का इच्छुक है उसे ब्रह्म में निश्चय से ब्राह्मणों का यजन करे ।१७। आरोग्य की कामना वाले को सूर्यदेव की और धन की प्राप्ति करने की इच्छा वाले को हुताशन की पूजा करे । जो अपने किए हुए कर्मों की सिद्धि की कामना करता है वह विनायक देव का पूजन करे ।१८। विविध भोगों के पाने की कामना रखने वाले को चन्द्रदेव का यजन करे । वलके प्राप्त करने की इच्छा वाला समीरण अर्थात वायुदेव का यजन करे । समस्त संसार के बन्धनों से छुटकारा पाने की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुष को प्रयत्न पूर्वक श्रीहरि भगवान् का यजन करे । किसी भी कामना के न रखने वाला या सभी कामनाओं वाला पुरुष भगवान् गदाधर का पूजन करे ।१६। जल के दान करने वाल। तृप्ति की प्राप्ति करता है । अन्न का दान करने वाला कभी क्षय न होने वाला सुख पाताहै । तिलों का दान देने वाला अभीष्ट प्रजा का लाभ करता है । दीप दान करने वाला उत्तम चक्षुओं को पाता है ।२०। भूमिका दान करने वाला समस्त पदार्थों की प्राप्ति करता है । सुवर्ण का दान करने वाला पुरुष दीर्घ आयुको प्राप्त होता है । गृह का दान देने वाला उत्तम विश्वों को पाताहै और रौप्य (चांदी) का दाता उत्तम रूप का लाभ करता है ।२१।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदोव्रध्नस्य पिष्टपम् ।२२
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वर्य्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतः सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ।२३
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते ।
गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ।२४

औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये ।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ।२५
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारसमन्वितम् ।
तीक्ष्णातपंच नरति क्षत्रोपानत्प्रदानतः ।२६
यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ।२७

वसु (धन) का दान करने वाला चन्द्र देव के सायोक्य की प्राप्ति करना है और अश्वका दाता अश्विके लोक को प्राप्त करता है । वृषभ का दाता पुष्ट श्रीं को प्राप्त करता है । गौ का दाता ब्रध्न विष्टप को पाता है ।२२। यान तथा शय्या के दान करने वाला पुरुष भार्या को पाता है । अभय के दान देने बाला ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है । धान्य का दाता शाश्वत सुख प्राप्त किया करता है । ब्रह्म का दान करने वाला शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति करता है ।२३। वेदोंके ज्ञाताओं में दिया हुआ ज्ञान स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है । गौओं को घास देने से मनुष्य समस्त पापों से प्रमुक्त होता है । ईंधन के दान के मानव दीप्त अग्नि वाला वाला होता है ।२४। औषध–स्नेह और आहार रोग वाले के रोग को शान्त करने के लिए जो दान करने वाला है वह सदा रोगों से रहित–परम सुखी तथा लम्बी उम्रवाला होता है ।२५। छाता और उपानत् अर्थात् जूती के प्रदान करने पर असिपत्र वन नाम वाले नरक के मार्ग को जो कि छुरा की धारा से युक्त होता है उसे अत्यन्त तीव्र आतप के कष्ट को तैर जाया करता है ।२६। जो-जो भी वस्तु संसार में अपने आप को घर में अभीष्टतम और प्रिय हों वही वस्तु किसी गुण वाले प्रिय को दान करनी चाहिए । इससे अक्षय सुख की प्राप्ति हुआ करती है ।२७।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो ।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ।२८
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायांच विशेषतः ।
दानधर्मात्परो धर्मो भूमानां नेह विद्यते ।२९

स्वर्गादच्युतिकामेन दानं पापोपशान्तये ।
दीयमानन्तु यो मोहाद्विप्राग्निष्वध्वरेषु च ।
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनि व्रजेन्नरः ।३०
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति ।
भ्रममाणेषु विप्रेषु व्रह्महा स तु गर्हितः ।३१

अयन में—विषुव अर्थात सक्रान्ति के समय में तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के अवसर पर एव अन्य संक्रान्ति आदि के समयों पर जो दान किया जाता है वह कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला होता है ।२८। प्रयाग आदि महान तीर्थों में और विशेष रूप से गया नामक तीर्थ में दान करने के धर्म से बड़ा धर्म प्राणियों का अन्य कोई भी धर्म इस संसार में नहीं होता है ।२९। स्वर्ग प्राप्त करके फिर वहाँ से कभी भी च्युति न हो अर्थात् स्वर्ग लोक का त्याग न करना पड़े एवं किए हुए समस्त पापों के उपशमन करने के लिए दिये हुए दान को मोह बश होकर जो विप्र-अग्नि और अध्वरों में निवारण कर देता है वह पापी-पुरुष तिर्यग् योनि को प्राप्त हुआ करता है ।३०। जो दुर्भिक्ष (अकाल) के समय में अन्न आदि का दान नहीं दिया करता है अर्थात् जो अन्न प्राप्ति न होने के कारण विप्रगण भूख से मर रहे हों उन्हें अन्न नहीं देता है वह ब्रह्म हत्यारा ही होताहै और बहुतही निन्दित होता हैं।३१।

सप्तद्वीप उत्पत्ति और वंश वर्णन

अग्निध्रश्चाग्निवाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधा तथिर्भव्यः शवलः पुत्र एव च ।
ज्योतिष्मांदशमो जातः पुत्रा ह्यते प्रियव्रतात् ।१
मेधाग्निवाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ।
विभज्य सप्त द्वीपारि सप्तानां प्रददौ नृपः ।२
योजनानां प्रमाणन पञ्चाशत्कोटिराल्पुता ।
जलोपरि महो याता नौरिवास्ते सरिज्जले ।३

जम्बूप्लक्षयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर ।
कुश: क्रौञ्चस्तथा शाक: पुष्करश्चैव सप्तम् ।४
एते द्वीप: समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृता: ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तका: ।५
द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीप: समुद्रश्च वृषध्वज ।
जम्बूद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षयोजनविस्तृत: ।६
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैरस्य चोच्छ्रय: ।
प्रविष्ट: षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्धिध्नविस्तृतं ।७
अध: षोड्शसाहस्र कर्णिकाकसंस्थित: ।
ह्मिवान्हेत्रकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नील: श्वेतश्च शृगीं च उत्तरे वर्षपर्वता: ।८

श्रीहरि भगवान् ने कहा-राजा प्रियव्रत से दश पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके अग्निध्र अग्निबाहु-द्युतिमान्-मेधातिथि-भव्य-शबल पुत्र और ज्योतिमान थे ।१। मेधा-अग्निबाहु और पुत्र ये तीनों योगाभ्यास से परायण और महान् भाग वाले जातिस्मर हुए थे जिन्होंने कभीं भी अपना मन राज्य के सुखों का उपभोग करने में नहीं लगाया था । केवल प्रियव्रत नृप के सात ही पुत्र ऐसे थे जिनके लिए राजा ने सातों को भूमि की सात द्वीपों में विभाजन करके दे बिया था ।२। पचास करोड़ योजनों के प्रमाण से युक्त यह पृथिवी नदी के जल में नौका की भाँति आलुप्त थी ।३। सात द्वीपों के नाम-जम्बु द्वीप-प्लक्ष-शाल्मल द्वीप-हे हरे ! कुश-क्रौञ्च-शाख द्वीप और सातवाँ पुष्कर द्वीप है ।४। ये सातों द्वीप सात समुद्रों से आवृत्त थे । हे वृषध्वज ! उन सात समुद्रों के नाम ये है-लवण समुद्र-इक्षु-सुरा-सर्पि (घृत) दधि-दुग्ध सागर और जल सागर हैं ।५। एक द्वीप से दूसरा द्वीप तथा इसी भाँति एक सागर से दूसरा समुद्र दुगुना विस्तार वाला होगा जम्बूद्वीप में स्थित मेरु गिरि एक लाख योजन के विस्तार वाला है ।६। चौरासी

सहस्र योजम वाली इस मेरु पर्वत की ऊँचाई होती है। षोडश योजन नीचे के भाग में प्रविष्ट है और वत्तीस योजन मूर्द्धा में विस्तृत है ।७। सोलह सहस्र नीचे कर्णिकों के आकार में संस्थित है। हिमवान् और हेमकूट इसके दक्षिणमें निषध है। उत्तर दिशामें नील और शृङ्गी पर्वत संस्थित है ।८।

प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातनाः ।
शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन ।९
जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निध्रादभवन्नव ।
नाभिः किंपुरुषश्चैत्र हरिवर्ष इलावृतः ।१०
रैभ्यो हिरण्वान्षठश्च कुरुभद्राश्व एव च ।
केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्संज्ञान्खन्डकान्ददौ ।११
नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूहषभो हर ।
तत्पुत्रो भनतो नाम शालग्रामे स्थितो व्रती ।१२
सुमतिर्भरतस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत् ।
इन्द्रद्युम्नश्च तत्पुत्रः परमेष्ठी ततः स्मृतः ।१३
प्रतीहारश्चात्पुत्रः प्रतिहर्त्ता तदात्मजः ।
सुतस्तस्मादथो ज्ञातः प्रस्तारस्सुतो विभुः ।१४
पृथुश्च तत्सुतो नक्तो नक्ष्यस्यापि गयः स्मृतः ।
नरो गयस्य नमयस्तत्पुत्रौ बुद्धिराट् ततः ।१५
ततो घीतान्महातेजा भौवनस्तस्य चात्मजः ।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्सुतः ।
शतजिद्रजगस्तस्य विष्वग्ज्योतिः सुतः स्मृतः ।१६

हे रुद्र ! प्लक्ष आदि द्वीपों में जो सनातन मनुष्य निवास किया करते हैं हे शङ्कर ! उनमें युवावस्था किसी भी प्रकार से नहीं होती है ।९। जम्बूद्वीप के अधिपति नृप से जिसका नाम अग्निध्र था उससे नौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनके नाम नाभि-किं पुरुष-हरि वर्ष इलावृत

रैभ्य-हिरण्वान्, कुरु-भद्राश्व और केतुमाल थे। राजा ने उनके लिए उन्हीं के संज्ञा वाले खण्डों को दे दिया।१०-११। हे हर ! नाभि से मेरु देवोंमें ऋषभ नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था। उसका पुत्र भरत नाम वाला था जो शालग्राम की उपासना में स्थित और व्रतधारी था।१२। भरत का सुमति पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र तेजस हुआ। तेजस का तनय इन्द्रद्युम्न हुआ और फिर इनसे परमेष्ठी नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी।१३। परमेष्ठी का आत्मज प्रतीहार हुआ था प्रस्तार का पुत्र विभु हुआ।१४। विभु का आत्मज नक्त हुआ और भक्त का गय तथा गय का सुतनर और इसका पुत्र बुद्धिराट् उत्पन्न हुआ।१५। इससे महान् तेजस्वी धीमान् भौवन पुत्र हुआ और इसका आत्मज त्वष्टा हुआ त्वष्टा का पुत्र विरजा और विरजा का रज हुआ था। रज का पुत्र सतजित् हुआ और इसका पुत्र विष्वग्ज्योति हुआ था।१६।

२७—वर्ष और कुल पर्वत वर्णन

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतो भवेत्।
पूर्वदक्षिणतो वर्षौ हिरण्वान्वृषभध्वजः।१
ततः किम्पुरुषो वर्षो मेरोदक्षिणतः स्मृतः।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे।
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे।२
उत्तरे च कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः।
सिद्धिः स्वाभाविकी रुद्र वर्जयित्वा तु भारतम्।३
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।४
पूर्वे किरातास्यस्यास्ते पश्चिमे यवना स्थिताः।
आन्ध्रा दक्षिणो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः।५

महेन्द्रो मलयः सह्यःशुक्तिमानृक्षपर्वताः ।
विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।६
वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरुसा शिवा ।
तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा ।७
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी ।
केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागां सरस्वती ।८
ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी ।
विदर्भा च शतद्रुश्च नद्यः पापहराः शुभाः ।
आसां पिवन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जनाः ।९

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषध्वज ! इलावर्त्त वर्ष मध्य में स्थित है। इसके पूर्व दिशा में भद्राश्व वर्ष है। पूर्व और दक्षिण में हिरण्यवान् वर्ष है। इसके अन्तर किम्पुरुष वर्ष मेरु के दक्षिण में स्थित कहा गया है। दक्षिण में भारत वर्ष बताया गया है तथा दक्षिण और पश्चिम में हरि वर्ष स्थित है। पश्चिम में केतुमाल हैं। और पश्चिम उत्तर में रम्यक वर्ष है ।१-२। उत्तर दिशा में कुरु वर्ष है जो कि कल्प वृक्ष से समावृत है। हे रुद्र ! भारत को वर्जित करके सर्व स्वाभाविकी सिद्धि होता है ।३। इन्द्रद्वीप कणेरुमान् ताम्रवर्ण-गभल्तिमान्—नागद्वीप और कटाह-सिंहल तथा वारुण यह उनमें नवम द्वीप है जो कि सागर में संवृत होता है ।४। इसके पूर्व में किरात लोग निवास किया करते हैं और पश्चिम में यवन जाति वाले मानव रहते हैं। दक्षिण दिशा में आन्ध्र लोग तथा हे रुद्र ! उत्तर दिशा में कुरुष्क निवास करते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र अनन्तर में वास करने वाले हैं ।५। यहाँ पर सात कुल पर्वत हैं जिनके नाम—महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमान-ऋक्ष पर्वत-विन्ध्या और पारिभद्र हैं ।६। वेदस्मृति-नर्मदा-वरदा-सुरजा शिवा-तापी-पयोष्णी-सरयू-कावेरी-गोमती—गोदावरी—भीमरथी कृष्णवर्णा-महानदी-केतुमाला-ताम्रपर्णी चान्द्रभागा-सरस्वती-ऋषिकुल्या-कावेरी-मृत गङ्गा-पयस्विनी विदर्भा और शतद्रु हैं। ये सभी नदियाँ

परम शुभ एवं पापों के हरण करने वाली है। इन समस्त नदियों का जल मध्य देशादि के मानव पान किया करते हैं।९।

पांचालाः कुरवो मत्स्या यौधेयाः सपटच्चराः।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजनाः स्मृताः।१०
वृषध्वज जनाः पाद्माः सूतमागधचेदयः।
काषायाश्च विदेहाश्च पूर्वस्यां कोशलास्तथा।११
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा।
विन्ध्यान्तर्निलया देशाः पूर्वदक्षिणतः स्मृताः।१२
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिनः।
कार्णाटाः काम्बोजाः घाटा दक्षिणापथवासिनः।१३
अम्बष्टद्रविड़ा लाटाः कम्बोजा स्त्रीमुखाः शकाः।
आनर्त्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिणपश्चिमे।१४
स्त्रीराज्याः सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा।
पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधैः सह।१५
माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्चमसाः खशाः।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे।१६
लम्बकास्तननगाश्च माद्रगान्धारवह्लिकाः।
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीची दिशमाश्रिताः।१७
त्रिगर्त्तनीलकोलाभब्रह्मपुत्राः सटङ्कणाः।
अभीषाहाः सकाश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्त्तिताः।१८

पांचाल–कुरु-मत्स्य-यौधय सपटच्चार-कुन्ति और शूरसेन ये मध्य देश के मनुष्य कहे जाते हैं।१०। हे वृषध्वज ! पाद्म सूत-मागधचेदि-काषाय-विदह तथा कौशल ये देश के पूर्व में स्थित है।११। कलिंग-वंग-पुण्ड्र-अङ्ग वदर्भ-मूलक ये देश विन्ध्य के अन्तर्निलय रहते हैं और पूर्व तथा दक्षिण में स्थित हैं।१२। पुलिन्द अश्मक-जीमूत, राष्ट्र निवासी कार्णाट काम्बोज और घाट ये दक्षिणापथ के निवासी होते हैं

।१३। अम्वष्ठ द्रविड़-लाट कम्बोज-स्त्रीमुख-शक और आनर्त्त वासी लोग दक्षिण तथा पश्चिम में जानने के योग्य हैं ।१४। स्त्री त्याज्य-सैन्धव म्लेच्छ–नास्तिक तथा यवन पश्चिम दिशामें समझना चाहिए। नैषधों के साथ माथुर:ताण्डव्य-तुषार-मूलिक चमस-खशर-सहाकेश-महानाद ये देश सत्तर-पश्चिम में स्थित होते हैं ।१६। लम्वक-स्तव नाग-माद्र: गान्धार–वाह्लिक–हिमाचल में आलय रखने वाले तथा म्लेच्छ येदेश उत्तर दिशा का आश्रय लेने वाले हैं ।१७। त्रिगर्त्त–नील–कौलाभ–ब्रह्मपुत्र सटङ्कण–अभीषाह–सकाश्मीर ये देश उत्तर–पूर्व में स्थित बताए गए हैं ।१८।

५८-प्लक्ष द्वीपादि वर्णन

सप्त मेधातिथे पुत्रा: प्लक्षद्वीपेश्वरस्य च ।
ज्येष्ठ: शान्तभवो नाम शिशिरस्तदनन्तर: ।१
सुखोदयस्तथा नन्द: शिव: क्षेमक एव च ।
ध्रुवदश्चैव सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ।२
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
सोमक: सुमना शैलो वैभ्राजश्चात्र सप्त: ।३
अनुतप्ता शिखो चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमु: ।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगा: ।४
वपुष्मान्शल्भलस्येशम्तत्सुमा वर्षनाम्नक: ।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव संप्रभश्चापि सप्तम: ।५
कुमुदश्चोन्यतो द्रोणो महिषोऽथ वलाहक: ।
कांच: ककुद्मान्ह्येले वै गिरय: सरितस्त्विमा ।६
योनिस्तोया पितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी ।
विधृति: सप्तमी तासां स्मृता: पापप्रशान्तिदा: ।७

श्रीहरि भगवान् ने कहा—प्लक्ष द्वीपके अधिपति मेधातिथि के साथ पुत्रहुए थे सबसे बड़ा जो उसका पुत्रथा उसका नाम शान्त अथवा इसके

पीछे दूसरे का नाम शिशिर था ।१। मुखोदय, नन्द, शिव, क्षेमरू, ध्रुव, सातवाँ पुत्र था । वे सब प्लक्ष द्वीप के स्वामी हुए थे ।२। गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभिसोमक, सुमना, शैल, यह सातवाँ वैभव हुआथा ।३। इसी प्रकार के निम्नग भी ७ हुए थे । उनके नाम अनुतप्ताशिखी, विशाखा, त्रिदिव, क्रमु,अमृत और सुकृत ये हैं।४। वपुष्मान् शाल्मल द्वीपकास्वामी था । उसके पुत्र वर्ष नामधारी है । श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित,वैद्युत, मानस और सातवां सप्रम था ।५। कुमुद, उन्नत, द्रोण, महिष, बलाहक, क्रौंच, ककुद्मान् ये सब गिरि हैं और नदियाँ ये हैं-योनिस्तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी विधृति सातवी है। और ये सब पापों की शांति प्रदान करने वाली कही गई हैं ।६-७।

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व ताम्
उद्भिदो वेणमांश्चैव द्वैरथो लम्बनोः धृतः ।
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धतिः ।८
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमांपुष्पवांस्तथा ।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ।९
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ।
विद्युदंभा मही काशा सर्वपापहरास्त्विमाः ।१०
क्रौंचद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः ।
कुशला मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ।
मुनिश्च दुंदुभिश्चैव सप्तैते सत्सुता हर ।११
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
देवावृच्च महाशैलो दुन्दुभिः पुण्डरीकवान् ।१२
गौरी कुमुद्वतीं चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा ।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ।१३
शाकद्वीपेश्वराद्भव्यात्सप्तपुत्राः प्रजज्ञिरे ।

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मशीवक: ।
कुसुमोद: समोदार्कि: सप्तमश्च महाद्रुम: ।१४

कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए थे उनका श्रवण करो । उद्भिव, वेणुमान्-द्वैरथ, लम्बन,धृति, प्रभाकर,कपिल ये उनके ७ नाम हैं । इनके नामों से ही वर्षों की पद्धतिकी रचना हुए थी । विद्रुम, हेम-शैल द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय,हरि और सातवाँ मन्दराचल ये सात पर्वत हैं ।८-९। धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति-विद्युदम्भा-मही और काशा। ये ७ नदियाँ हैं जो समस्त प्रकार के पापों के हरण करने वाली है । क्रौंचद्वीप में महान् आत्मा वाले द्युतिमान् के सात पुत्र हुएथे उनके नाम कुशल-मन्दग, उष्ण, पीवर-अन्धारक, मुनि और दुन्दुभिहेहर ये ७ उसके पुत्रों के शुभ नाम है । क्रौंच, वामन-तीसरी-अन्धारक, देवावृत्, मनशैल दुन्दुभि और पुण्डरीकवान् ये ७ पर्वत हैं ।१०-१२। गौरी कुमुद्वती सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा ख्याति और पुण्डरीका ये सात उस क्रौंच द्वीप में बहने वाली नदियाँ हैं । शाक द्वीप के स्वामी भव्यसे सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे उसके नाम जलद, कुमार सुकुमार-मशीदक, कुसमोदकि सातवे पुत्र का नाम महाद्रुम था ।१३-१४।

सुकुमारीं च नलिनी धेनुका च या ।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।१५
शबलात्पुष्करेशाच्च महानीरश्च घातकि ।
अभूद्वर्षयञ्चैव मानसोत्तरपूर्वत: ।१६
योजनानां सहस्राणि उर्ध्वं पंच शदुच्छ्रित: ।
तावच्चैव च विस्तीर्णं सवेत: परिमंडल: ।१७
स्यादूदकेनोवधिना पुष्कर: परिवेष्टित: ।
स्वादूदकस्य परतो दृश्यते लोकसंस्थिति: ।१८
द्विगुणा काचनी भूमि: सर्वजन्तुविवर्जिता ।१९
लोकालोकस्तत: शैलो योजनायुतविस्तृत: ।
तमसा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽप्यन्डकटाहत: ।२०

उस द्वीप में सात नदियाँ हैं उनके नाम सुकुमारी-कुमारी-नलिनी धेनुका, इक्षु वेणुका, गभस्ती ये हैं ।१५। शबल और पुष्करेशसे महावीर और धेतकि ये मानस के उत्तर-पूर्व में दो वर्ष हुए थे ।१६। पचास सहस्र योजन ऊपर को ऊँचे और उतना ही सब ओर से परिमण्डल विस्तार वाला था ।१७। पुष्कर समुद्र के जल से परिवेष्टित है । उदक् के आगे लोक संस्थिति दिखलाई देती है ।१८। दुगुनी स्वर्णमयी भूमिहैं, जो कि सब प्रकार के जन्तुओं मे रहित है ।१९। वहाँ पर लोकालोक पर्वत है जोकि दश हजार योजन के विस्तार वाला है । वह पर्वत अन्ध कार मे व्याप्य है और अन्धकार अण्डकटाह से व्याप्त है ।२०।

२६—पाताल नरकादि वर्णन

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रायोऽपि कथ्यते ।
दशसहस्रमेकैक पातालं वृषभध्वज ।१
अतलं वितलञ्चव नितलञ्च गभस्तिमत् ।
महाख्यं सुतलञ्चाग्रयं पातालं चापि सप्तमम् ।२
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकांचना ।
भूमयस्तत्र दैतेया वसन्ति च भुजङ्गमाः ।३
रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरकाः सन्ति तान् शृणु ।
रौरवः शूकरो बोधन्तालो विशसनस्तथा ।४
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विमोहितः ।
रुधिरोऽथ वैतरणी क्रमशः कृमिभोजनः ।५
असिपत्रवनः कृष्णो नानाभक्षश्च दारुणः ।
तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालोद्भवोऽशिवः ।६
सदंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चवीचिरेव च ।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोष्णवीचिर्नरकाः स्मृतः ।
पापिनस्तेसु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिनः ।७
उपर्युपरि वै लोका रुद्र भूतादयः स्थिताः ।८

वारि वह्न्यनिलालोके वृतं भूतादिना च तत् ।
तदण्डं महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ।
अण्डं दशगुणं व्याप्तं व्याप्य नारायणः स्थितः ।९

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषध्वज ! इस भूमिकी ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन कही जाती है और एक-एकका दश सहस्र वाला पाताल हैं पाताल भी सात हैं उनके नाम अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत, महाख्य सुतल और अग्र्य पाताल सातवाँ है ।१२। कृष्ण, शुक्ल, अरुणा, पीता, शर्करा और शैलकाञ्चना ये वहाँ पर भूमियां हैं। दैत्य और भुजङ्गम वहाँ निवास किया करते हैं ।३। रौद्र पुष्कर द्वीप में नरक हैं अब उनके नामों का श्रवण करो । रौरव, शूकर, रोधस्ताल विशसन, महाज्जवाल तप्त कुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिर, वैतरणी । कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्र वन, कृष्ण, नानाभक्ष,पूय वह,पाप वह्नि ज्वालो{ भव, अशिव सदंश, कृष्ण सूत्र,तत । अवीचि,श्वभोजन, अप्रतिष्ठ उष्णवीचि, ये नरक कहे गये हैं । पापी लोग इन उक्त नरकों में अपने किए हुए पापों के फलों की पीड़ा भोगा करते हैं जो कि विष्ठा, शस्त्र तथा अग्नि के देने वाले होते हैं । हे रुद्र ! इनके ऊपर, उत्तर में लोक हैं जहाँ पर भूतादि स्थित रहा करते हैं । जल,अग्नि, वायु और प्रकाश में वह भूतादि से वृत है । हे रुद्र ! वह अण्ड महान प्रधान के द्वारा वेष्टित है यह अण्ड दश गुना व्याप्त है और वहाँ नारायण व्याप्त होकर स्थित है ।४ से ९।

३०—ज्योतिष शास्त्र वर्णन

षडादित्ये दशा ज्ञेया सोमे पंचदश स्मृताः ।
अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदशः स्मृताः ।१
शनैश्चरे दश ज्ञेया गुरोरेकोनविंशतिः ।
राहुर्द्वादशवर्षाणि एकविंशति भार्गवे ।२
रवेर्दन्शा दुःखदा स्यादुद्वेगनृपनाशकृत् ।
विभूतिदा सोमदशा सुखमिष्टान्नदा तथा ।३

दु:खप्रदा कुजदशा राज्यादेः स्याद्विनाशिनी ।
दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोशवृद्धिदा ।४
शनेर्दशा राज्यनाशबन्धुदु:खकरी भवेत् ।
गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखधर्मादिदायिनी ।५
राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत् ।
हस्त्यश्वदा शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत् ।६
मेषमङ्गारकक्षेत्रं वृषं शुक्रस्य कीर्त्तितम् ।
मिथुनस्य बुधो ज्ञेयः सोमः कर्कटस्य च ।७

श्रीहरि भगवान् बोले—छै आदित्यक दशा जाननी चाहिए । चन्द्रमा की पन्द्रह दशा बताई गई है । मँगल में आठ, बुध की सत्रह कही गईहै ।१। शनीचर की दश और गुरु की उन्नीस तथा राहु की बारह वर्ष की और शुक्र की इक्कीस वर्ष की दशा होती है ।२। रवि की दशा दुःख दायिनी होती है । यह उद्वेग और नृप का नाश करने वाली होती है । चन्द्रमा की दशा विभूति प्रदान करने वाली होती है और यह सुख तथा मिष्ठान्न देने वाली है ।३। मंगल की दशा दुःख देने वाली और राज्य आदि के विनाश करने वाली है—बुध की दशा दिव्यता की का प्रदान करने वाली, राज्य देने वाली तथा कोषकी वृद्धि करने वाली है ।४। शनि की दशा राज्यका नाश करने वाली और बन्धुओं को दुःख करने वाली होती है । गुरु की दशा राज्य प्रदान करने वाली तथा सुख एवं धर्म आदि के देने वाली होती है । राहु की दशा राज्य का नाश करने वाली, व्याधि देने वाली और दुःख दायिनी होती है ।५। शुक्रदेव की दशा हाथी,घोड़े देने वाली और राज्य,स्त्री एवं लाभ कराने वाली हुआ करती है ।६। मंगल का क्षेत्र मेष है और शुक्रका क्षेत्र वृष होता है । मिथुन का बुध जानना चाहिए तथा कर्क का सोम होता है ।७।

सूर्य्यक्षेत्रं भवेत् सिंहः कन्याक्षेत्रं बुधस्य च ।
भार्गवस्य तुलाक्षेत्रं वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च ।८

धनुः सुरगुरोश्चैव शनेर्मकरकुम्भको ।
मीनः सुरगुरुःश्चैव ग्रहक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।९
पौर्णमास्यां द्वयं यत्र पूर्वाषाढ़ाद्वय भवेत् ।
द्विराषाढ़ः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ।१०
अश्विनी रेवतीं चित्रा धनिष्ठा स्यादलङ्कृतौ ।११
मृगाहिकपिमार्जारश्वानः शूकरपक्षिणः ।
नकुली मूषिकश्चैव यात्रायां दक्षिणे शुभः ।१२
विप्रकन्याशिवो रुद्रः शंखभेरीबसुन्धराः ।
वेणुस्त्रापूणकुम्भानां यात्रायां दर्शनं शुभम् ।
जम्बुकोष्ट्रखराद्यश्च यात्रायां वामके शुभाः ।१३
कार्पासोषधितैलं च पक्वाङ्गारभुजङ्गमाः ।
युक्तकेशी रक्तमाल्यं नग्नाद्यशुभमीक्षितम् ।१४

सिंह का स्वामी सूर्य होता हैं और कन्या का अधिपति बुध होता है । अंगार का अर्थात् मंगल का क्षेत्र वृश्चिक होता हैं । तात्पर्य यह है कि मेष और वृश्चिक दोनों का स्वामी भौम है तथा तुला और वृष दोनों का स्वामी शुक्र होता है । बृहस्पति धनका स्वामी है तथा मकर और कुम्भ इन दोनों का स्वामी शनि होता है । मीन का भी धन के जाथ स्वामी गुरु होता है । इस तरह ये ग्रहों के क्षेत्र बता दिए गए है ।८-९। पौर्णमासी में जहाँ पर दो पूर्वाषाढ़ा हो वह दो आषाढ़ वाला जानना चाहिए । विष्णु कर्कट में शयन किया करते हैं ।१० अलँकृति में अश्विनी, रेवती, चित्रा और घनिष्ठ लक्षण लिए जाते हैं ।११। मृग, अहि, कपि, मार्जार, श्वान, शूकर पक्षी, नकुल और मूषक ये यात्रा में दक्षिण रहने वाले शुभ होते हैं ।१२। विप्र की कन्या, मृत देह, शङ्ख भेरी, बसुन्धरा, वेणु पूर्ण कुम्भ ये हे रुद्र ! यात्रा के समय में दर्शन देने वाले शुभ माने जाते हैं । जम्बूक, ऊंट और खर आदि यात्रा में बाँई ओर हों तो शुभ कहे गये हैं ।१३। कपास, औषधि, तैल पय व

अंगार भुजंगम, मुक्तकेशों नाली-रक्त वर्ण की माला और नान (नंगा-शरीर) आदि ये सब अगर दिखलाई देते हैं तो अशुभ होते हैं ।१४।

हिक्काया लक्षणं वक्ष्ये लभेत्पूर्वं महाफलम् ।
आग्नेये शोकसन्तापी दक्षिणे हानिमाप्नुयात् ।१५
नैऋर्त्ये शोकसन्तापो मिष्टान्नैव पश्चिमे ।
अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत् ।
ईशाने मरणं हिक्कायाश्च फलाफलम् ।१६
विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभः ।
यस्मिनृक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके ।१७
त्रयं वक्त्रे प्रदातव्यमेकं स्कन्धयोर्न्यसेत् ।
एकैकं बाहुयुग्मे तु एकैकं हस्तयोर्द्वयोः ।१८
हृदये पञ्च ऋक्षाणि एक नाभौ प्रदापयेत् ।
ऋक्षमेकं न्यसेद् गुह्ये एकैकं जानुके न्यसेत् ।१६
नक्षत्राणि च शेषाति रविपादे नियोजयेत् ।
चरणस्थेन ऋक्षेण अल्पायुर्जायते नरः ।२०
विदेशगमनं जानौ गृहस्थे परदारवान् ।
नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टो हृत्स्थेन स्यान्महेश्वरः ।२१
पाणिस्थेन भवेच्चोरः स्थानभ्रष्टो भवेद् भुजे ।
स्कन्धस्थिते धनपतिर्मुखे मिष्ठान्नमाप्नुयात् ।
मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्रं स्याद्यदि स्थितम् ।२२

अब हिचकी के लक्षण बताये जाते हैं । यदि हिचकी पूर्व दिशा में होवे तो इसका महान फल होता है । अग्निकोणमें यहशोक एवं सन्ताप को देने वाली होती । दक्षिण दिशा में होने वाली हिचका हानिप्रद होती है ।१५। नैऋर्त्य कोणकी हिक्का शोक एए सन्ताप की देनेवाली है । पश्चिम में होने वाली मिष्ठान्न प्रदान करने वाली हैं । वायव्य दिशाकी अर्थ प्रदा है और उत्तरमें होनेसे कलह होता है । ईशानमें होने

से मरण होता है। इस प्रकार से हिक्का के ये फलाफल होते हैं ।१६। रवि का चक्र लिखे। भास्कर एक नर के सदृश होता है। जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से आदि लेकर तीन नक्षत्र मस्तक पर विन्यस्त करे। तीन मुख में न्यस्त करे और एक-एक दोनों कन्धों पर विन्यस्त करे। एक-एक दोनों बाहुओं में और एक-एक दोनों हाथों में न्यस्त करे ।१७-१८। उस नराकृति रविचक्र के हृदय में पाँच नक्षत्र उसी क्रम से लिखे और एक नाभि में विन्यस्त करना चाहिए। एक नक्षत्र गुह्य में रक्खे और एक-एक दोनों घुटनों में विन्यस्त करे ।१६। शेष नक्षत्रों को रवि के चरणों में विन्यस्त कर देना चाहिए। चरण में स्थित से विदेश में गमन तथा गुह्य में स्थित नक्षत्र है उससे पराई स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला होता है। नाभि में स्थित नक्षत्र से अल्प सन्तोष वाला होता है तथा हृदय में स्थित नक्षत्र से महेश्वर हुआ करता है। हाथ में स्थित से चोर होता है औ भुजा में स्थित नक्षत्र से स्थान भ्रष्ट होता है तथा मुखमें स्थित नक्षत्रसे मिष्टान्न की प्राप्ति वाला है। मस्तक में स्थित से स्थित नक्षत्र से पट्ट वस्त्र वाला है ।२२।

३१—चन्द्र शुद्धि कथन

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्र शोभनः।
शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पंचमी नवमस्तथा।
सम्पूज्यमानो लोकैस्तु गुरुवद् दृश्यते शशी ।१
चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणुत अपि।
त्रिषु त्रिषु नक्षत्रे अश्विन्यादि वदाम्यहम् ।२
प्रवासस्थं पुनर्नष्टं मृतावस्थं जयावहम्।
हास्यावस्थ क्रीड़ावस्थं प्रमोदावस्थमेव च ।३
विषादावस्थभोगस्थो ज्वरावस्थं व्यवस्थितम्।
कम्पावस्थं सुस्थावस्थं द्वादशावस्थां भवेत् ।४

प्रवासो हानिमत्युश्च जयो हासो रतिः सुखम् ।
शोको भोगो ज्वरः कम्पः सुस्थावस्थां क्रमात् फलम् ।५
जन्मस्थः कुरुते तुष्टि द्वितीये नास्ति निर्वृतिः ।
तृतीये राजसम्मानं चतुर्थे कलहागमः ।६
पञ्चमेन मृगाङ्केण स्त्रीलाभो वै तथा भवेत् ।
धनधान्यागमः षष्ठे रतिः पूजा च सप्तमे ।
अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोषसञ्चयः ।७
दशमे कार्य्यं निष्पत्तिध्रुवमेकादशे जयः ।
द्वादशेन शशाङ्केन न मृत्युरेव न संशयः ।८

श्री हरि ने कहा सप्तम उपच्यादि में स्थित चन्द्रमा सब जगह शोभन होता है । शुक्लपक्षमें द्वितीय-पंचम और नवम लोकों के द्वारा सम्पूज्यमान तथा गुरु के समान चन्द्र दिखलाई देता है ।१। चन्द्र की बारह अवस्थाये होतीं हैं उनका भी अब श्रवण करो । अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रों में वह होती है जिसका मैं अब बतलाता हूँ ।२। वे बारह अवस्थायें ये हैं-प्रवासावस्था—पुनः नंष्टावस्था—मृतावस्था-जया-वस्था— हास्यावस्था—विषादावस्था—भोगावस्था—ज्वरावस्था—कम्पावस्था—स्वस्थावस्था ये बारह अवस्थायें हैं । इस प्रकार से द्वादश अवस्थाओं में चन्द्र गमन करने वाला होता है ।३-४। इन अवस्थाओंका क्रम से फल भी कहा जाता है प्रवास का होंना-हानि, मृत्यु, जय, प्राप्त करना—हास—रति सुख—शोक—भोग—ज्वर—कम्प और सुख ये हुआ करते हैं ।५। जन्म में रहने वाला चन्द्र तुष्टि किया करता है । द्वितीय चन्द्र निवृत्ति (आनन्द) नही करने वाला होता है । तीसरे घर में रहने वाला चन्द्र राज सम्मान का प्रदान करने वाला होता है । चतुर्थ चन्द्र कलह कराने वाला है ।६। पाँचवाँ चन्द्र स्त्री का लाभ देने वाला है और छटवें चन्द्रमें धन धान्यादिका आगमन होता है । सातवें चन्द्र में रति और पूजा होती है । आठवें घर में स्थित चन्द्रमा मारक होता है और इससे प्राणों का भी सन्देह रहा करता है । नवम चन्द्र में

कोष का संचय होता है ।७। दशम चन्द्र में कार्यों की सिद्धि होती है तथा ग्यारहवें चन्द्रमें जय होता है । बारहवाँ चन्द्र अत्यन्त अशुभ है । इसमें निश्चय ही मृत्यु होती हैं और कुछ भी संशय नहीं होता है ।८।

कृत्तिकादौ च पूर्वेण सप्तर्क्षाणि च वै व्रजेत् ।
मघादौ दक्षिणे चच्छेदनुराधादि पश्चिमे ।९
प्रशस्ता चोत्तरे यात्रा धनिष्ठादि च सप्तसु ।१०
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा समलङ्कृतौ ।
मृगाश्विचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभाः सदा ।
कन्याप्रदाने यात्रायां प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ।११
शुक्रचन्दौ जन्मस्थौ शुभद्रौ व द्वितीयके ।
शशिज्ञशुक्रजीवाश्व राशौ चाथ तृतीयके ।१२
भौममन्दशशाङ्कार्का बुधः श्रेष्ठश्चतुर्थके ।
शुक्रजीवौ पञ्चमौ च चन्द्रकेतुसमाहितौ ।१३

अब यात्रा के लिए प्रशस्त नक्षत्रों के विषय में विभिन्न दिशायें बतलाई जाती है—कृत्तिकादि सात नक्षत्रों में पूर्व दिशामें यात्रा करे—मघामि सात में दक्षिण दिशा में यात्रा करे—अनुराधा आदि नक्षत्रों में यात्रा शुभ होती है तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रों में उत्तर दिशा में यात्रा प्रशस्त होती है ।९-१०। अश्विनी—रेवती—चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र समलङ्करण क्रिया में शुभ होते हैं । मृगशिरा—अश्विनी—चित्रा मूल-हस्त ये नक्षत्र कन्या के दान करने में—यात्रा में और प्रतिष्ठा—शुक्र और चन्द्र तथा दूसरे गृह में स्थित होने पर शुभ फल देने वाले होते हैं । चन्द्र-बुध-शुक्र और गुरु तीसरे घर में स्थित होने पर शुभ फल प्रदान करने वाले हैं ।१२। मङ्गल-शनि-चन्द्र-सूर्य और बुध चौथे घर में हों तो श्रेष्ठ हैं । शुक्र और बृहस्पति पाँचवे घर में हों तथा

चन्द्र एवं केतु से समाहित होवे तो श्रेष्ठ होते हैं ।१३। शनि और सूर्य तथा मंगल छटे हों और गुरु चन्द्र सप्तम हों बुध और शुक्र अष्टम हों तो श्रेष्ठ कहे गये हैं । नवम घर में स्थित बृहस्पति सदा शुभ होता है ।१४।

अर्कार्किचन्द्रा दशमदशेऽखिला ग्रहाः ।
बुधोऽथ द्वादशे चैव भांगे वः सुखदो भवेत् ।१५
सिंहेन मकरः श्रेष्ठः कन्यया मेष उत्तम ।
तुलया स मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कटः ।१६
धनुषा वृषः श्रेष्ठो मिथुनेन च वृश्चिकः ।
एतत्षडष्टकं प्रीत्यै भवत्येव-न न संशयः ।१७

सूर्य और सूर्यका पुत्र अर्की तथा चन्द्रमा दशम घरमें एवं ग्यारहवें घर में स्थित समस्त ग्रह शुभ होते हैं । बारहवें घर में बुध तथा शुक्र सुख देने वाले होते हैं ।१५। अब उच्च स्थानीय ग्रहों के विषय में बतलाते हैं-सिंह से युक्त मकर श्रेष्ठ पोता है । कन्या से युक्त मेष उत्तम होता है । तुया से मीन और कुम्भ से कर्क उत्तम है ।१६। धनसें वृषभ और मिथुन से वृश्चिक यह षडष्टकं प्रीति ने लिए होता है और कुछ भी संशय की बात नहीं है ।१७।

द्वादश राशि वर्णन

उदयात्तु समारभ्य राशी भानुः स्थितो हर ।
स्थराश्याद्यै र्ब्रजेदहिनषड्भिः षड्भिस्तथा निशाम् ।१
मीने मेषे च पञ्च स्युश्चतस्रो वृषकुम्भयो ।
मकरे मिथुने तिस्रः पञ्च चापे च कर्कटे ।२
सिंहे च वृश्चिके षट् च सप्त कन्यातुले तथा ।
एता लग्नप्रमाणेनं घटिकाः परिकीर्त्तिताः ।३
रसपूर्वामसानेषु रसाब्धिष्वरिमागराः ।
लङ्कोदया हि तद्वत्त लग्ना मेषादयोऽथवा ।४

मेषलग्ने भवेद् बन्ध्या वृषे भवति कामिनी ।
मिथुने सुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे ।५
सिंहे चैवाल्पपुत्रा च कन्यायां रूपसंयुता ।
तुलायां रूपमैश्वर्य्यं प्रश्चिके कर्कशा भवेत् ।६
सौभाग्यं धनुषि स्याच्च मकरे नीचगमिनी ।
कुम्भे चैवाल्पपुत्रा स्यान्मीने वैराग्यसंयुता ।७

श्री हरि भगवान् बोले—हे हर ! उदय काल में जिस राशि पर सूर्य स्थित होता है उस अपनी राशि से छै राशियाँ दिन में और छैः राशियाँ रात्रि में गमन किया करता है ।१। इस प्रकार से छै-छै राशियों में गति किया करता है। इस रीतिसे अब भिन्न-भिन्न राशियों की लग्न घड़ियाँ बताई जाती हैं । और मेष की पाँच घड़ी होती हैं वृश और कुम्भ की चार घड़ी होयीं है—मकर और मिथुन की तीन-तीन घड़ियाँ होती हैं तथा धन एवं कर्क की पाँच धड़ी हुआ करती हैं ।२। सिंह और वृश्चिक की छै घड़ी हैं तथा कन्या और तुला की सात घड़ी होती हैं । इस प्रकार से अहोरात्रमें लग्न के प्रमाणसे सम्पूर्ण राशियों की घटनाये बताई गई हैं ।३। आदि और अन्त में रस संख्यक अर्थात् छै-छै घड़ियों की तथा पाँच चार और तीन घड़ियों की मेष आदि राशियों की लग्न होती हैं ।४। मेष लग्न में जो कन्या हो वह वन्ध्या होती है—वृष लग्न में कामिनी—मिथुन में परम सुभग और कर्क लग्न में जन्मग्रहण करने वाली वेश्या वृत्ति बाली अल्प पुत्रों वाली होती है—कन्या लग्न में उत्पन्न कन्या रूप लाबण्य से समन्वित होती है । तुला लग्न में जन्म ने पाली के रूप और एश्वर्य दोनों ही होते हैं । वृश्चिक लग्न में समुत्पन्न कन्या बहुत ही कर्कशा हीती है ।६। धन लग्न में उत्पत्ति वाली कन्या सौभाग्य शालिनी होती है, मकर लग्न में पैदा होने वाली कन्या नीच का गमन करने वाली होती है । कुम्भ में उत्पन्न अल्प पुत्र वाली तथा मीन लग्न में समुत्पन्न कन्या वैराग्य से संयुत होती है ।७।

तुलाकर्कटको मेषो मकरश्चैव राशयः ।
चरकार्य्याणि कुर्य्याच्च स्थिरकार्य्याणि चैव हि ।८
पञ्चाननो वृषः कुम्भो वृश्चिकः स्युस्थिराणि हि ।
कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुनं द्विस्वभावतः ।९
द्विस्वभावानि कर्माणि कुर्य्यात्तेषु विचक्षणः ।
यात्रा चरेण कर्त्तव्या प्रवेष्टव्यं स्थिरेण तु ।
देवस्थापननैवाह्यः द्विस्वभावेन कारयेत् ।१०
प्रतिपच्चाथ षष्ठीं च नन्दा चैकादशी स्मृता ।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी वृषध्वजः ।११
जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रुद्रा त्रयोदशी ।
चतुर्थी नवमी रिक्ता सा वर्ज्याऽथ चातुर्दशी ।
पञ्चमी दशमी पूर्णिमा च शुभाः स्मृताः ।१२
चरः सौम्यो गुरुः क्षिप्रो मृदुः शुक्रो रविर्ध्रुवः ।
शनिश्च वारुणो ज्ञेयो भौम उग्रः शशी समः ।१३

तुला-कर्क, मेप और मकर ये राशियाँ चर काम वाली है क्योंकि ये चर स्वभाव वाली है । इनमें चर कार्य ही करने चाहिए । सिंह-वृष-कुम्भ और वृश्चिक ये स्थिर राशियाँ होती हैं । इनमें स्थिर कार्य करने चाहिए । कन्या-धन-मीन और मिथुनसे द्विज्वभाव वाली राशियाँ होती हैं । इन राशियों में विचक्षण पुरुपको ऐसे ही कार्य करने चाहिए जो द्विभाव वालेहैं । यात्रा सर्वदा चार लग्नोंमें कर और वह गृह प्रवेश आदि कार्य स्थिर लग्नों में ही करना चाहिए । देवता की स्थापना और वे वाह्य कार्य द्वि-स्वभाव वाली लग्नों में करने चाहिए ।८-१०। अब तिक्षियों की शुभाशुभ संज्ञा बताते है-प्रतिपदा षष्ठी और एकादशी इन तिथियों की नन्दा संज्ञा है । द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी-उन तिथियों को हे वृषभध्वज ! भद्रा संज्ञा होती है । अष्टमी तृतीया और त्रयोदशी हे रुद्र ! इन तिथियों को जया नाम वाली कहा जाता है । चतुर्थी-नवमी और चतुर्दशी-ये तिथियाँ रिक्ता कही जाती हैं और

ये वर्जित मानी जाती है अर्थात् कोई भी शुभ कार्य रिक्ता तिथियों में नहीं किया जाता है। पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा ये तिथियाँ पूर्ण संज्ञा वाली होती हैं तथा परम शुभ कही गई हैं।२१-२२। अब ग्रहों के स्वभाव और स्वरूप बताए जाते हैं—गुरु चर एवं सौम्य है शुक्र क्षिप्र तथा मृदु होता है। रवि ध्रुव हैं। शनि परम दारुण जानना चाहिए। भौम उग्र होता है। चन्द्र सम है।१३।

चरक्षिप्रैः प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवैः।
दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैर्जयकाङ्क्षिभिः।
नृपाभिषेकोऽग्निकार्य्यञ्च सोमवारे प्रशस्यते।१४
सोम तुले प्रमाणञ्च कुर्य्याच्चैव गृहादिकम्।
सैनापत्यं शौर्य्ययुद्धं शस्त्राभ्यासः कुजे स्मृतः।१५
सिद्धिकार्यञ्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृता।
पठनं देवपूजा च वस्त्राद्याभरण गुरौ।१६
कन्यादानं गजारोहः शुक्रे स्यात्समयः स्त्रियाः।
स्थाप्य गृहप्रवेशश्चा गजबन्धः शनौ शुभः।१७

चर और क्षिप्र ग्रहों के दिन प्रयाण करे और मृदु तथा ध्रुव में प्रवेश करना चाहिए। दारुण तथा उग्र में जय की आकाङ्क्षा रखने वाले क्षत्रियों को युद्ध करना चाहिए। नृप का अभिषेक का कार्य तथा अग्नि कार्य चन्द्रवारमें ही परम प्रशस्त होता है।४। सोम तुलामें प्रयाण और गृहादिक का कार्य करना चाहिए। सैनापत्य (सेना से सम्बन्धित कार्य) शूरतापूर्ण युद्ध और शस्त्रादि के अभ्यास का काम मंगल में बताया गया है। सिद्धि कार्य मन्त्र सम्बन्धी कार्य—यात्रा बुध में करे। पठन-देवों की पूजा तथा वस्त्रादि एवं—आभरण धारणादि का कार्य गुरुवार में करे।१५-१६। कन्या दान, गज पर आरोहण अर्थात् हाथी की सवारी करना—ये कार्य शुक्रवार में करे। स्त्री के समय-स्थापना के योग्य कार्य तथा गृह प्रवेश गजबन्ध शनिवार में शुभ होते हैं।१७।

६३—पुरुष और स्त्री लक्षण

नरस्त्रीलक्षणं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शंकर ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ।१
श्लिष्टांगुली ताम्रनखौ सुगुल्फौ शिरयोज्झितौ ।
कूर्मोन्नतौ च चरणौ स्यातां नृपवरस्य हि ।२
विरूक्षापाण्डरनखौ वक्रञ्चैव शिरोन्नतम् ।
शूर्पाकारौ च चरणौ संशुष्कौ चरणाङ्गुली ।
दुःखदारिद्रयदौ स्यातां नात्र कार्य्या विचारणा ।३
अल्परोमयुतां श्रेष्ठा जंघा हस्तिकरोपमा ।
रोमैकैकं कूपके स्याद् भूपानान्तु महात्मनाम् ।४
द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तथैव च ।
रोमत्रयं दरिद्राणां रोगी निर्मासजानुकः ।५
अल्पलिंगे च धनवान् स्याच्च पुत्रादिवर्जितः ।
स्थूललिंगो दरिद्रः स्याद् दुःख्येकवृषणो भवेत् ।६
विषमे स्त्रीचलो वै नृपः स्यात्वृणे समे ।
प्रलम्ववृषणोऽल्पायुर्निद्रव्यः कुमणिर्भवेत् ।
पाण्डरैर्मलिनैश्चैव मणिभिश्च सुखी नरः ।७

श्री हरि भगवान् बोले—हे शंकर ! अब हम नर और स्त्रियों के लक्षण संक्षेप से बताते है उनका श्रवण आप करें। जो परम श्रेष्ठ नृप होते हैं अर्थात् नृप के समकक्ष पुरुष होते हैं उनके चरण मृदु तले वाले होते हैं ओर उनके तलोंमें कभी भी पसीना नहीं होता है। इसके चरण कमल पुष्प के मध्य भागके सदृश हुआ करते हैं। इन चरणों की अंगुलियाँ एक दूसरे से श्लिष्ट अर्थात् संटीं हुई हुआ करती है। इन चरणों के नाखून ताम्र के समान होते हैं शिर से उज्झित एवं सुन्दर गुल्फों वाले होते हैं। चरण कूर्म के सदृश उन्नत हुआ करते हैं ।१२। विशेष रूप से रूक्ष पाण्डर वर्ण के नखों वाले-शिरोन्नम वक्त्र-सूप के समान फल हुए आकार वाले चरण-संशुष्क अंगुलियों वाले चरण जिनके होते

हैं ये लक्षण दुःख और दरिद्रता के देने वाले हैं इसमें तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।३। हाथी के सूंडके समान उतार-चढ़ाव वाली और बहुत ही कम रोमों वाली जाँघ श्रेष्ठ होती है । महान् आत्मा वाले नृपों के कूपकों में एक-एक ही रोम हुआ करता है ।४।सद् एवं असद् बुद्धि वाले पण्डितों के तथा श्रोत्रियों के रोमों के छिद्रों में दो-दो रोम हुआ करते हैं । जो दरिद्र होते है उनके वृषभोंमें तीन-तीन रोम होते हैं । बिना माँस वाले जिनके जानु होते हैं वे रोगी हुआ करते हैं ।५। स्वल्प लिंग वाला पुरुष धनी होता हैं किन्तु पुत्रादि से रहित हुआ करता है । जो स्थूल लिंगधारी पुरुष होता है वह दरिद्र हुआ करता हैं । एक ही वृषण होता है वह दुःखी होता है ।६। वह असम होने पर स्त्री के समान चंचल होता है तथा सम वृषण होने पर वह पुरुष नृप होता है । जिनके वृषण लम्बे होते है वह मनुष्य अल्प आयु वाला होता है द्रव्यहीन और कुमणि होता हैं । पान्डर और मलिन मणियों में मनुष्य सुखी होता है ।२।

निःश्वस्य शब्दमूत्रः स्युर्नृपा निःशब्दधारयः ।
भोगाढ्य समजठरा निःस्वा स्युर्घटसन्निभाः ।८
सर्पोदरो दरिद्राः स्थू रेखाभिश्चरुच्यते ।
ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिताः ।
सुखी पुत्रसमायुक्तः स षष्टि जीवते नरः ।९
चत्व त्रिच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नरः ।
विंशत्यव्मसेकरेखा आकर्णासित गतायुषः ।
आकर्णान्तरिता रेखास्तिस्रश्च स्युः शतायुषः ।१०
सप्तत्यायुर्द्विरेखा तु षष्ट्यायुस्तिसभिर्भवेत् ।
व्यक्ताव्यक्ताभी रेखाभिर्विंशत्यायुर्भवेन्नरः ।११
चत्वारिंशच्च वर्षाणि हीनरेखस्तु जीवति ।
भिन्नाभिश्चैव रेखाभिरपमृत्युर्नरस्य हि ।१२

त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते ।
धनुपुत्रसमायुक्तः स जीवेच्छरदः शतम् ।१३

निःश्वास लेकर शब्द युक्त मूत्र वाले नृप निःशब्द धारी होते हैं । भोगों से युक्त-समान जठर वाले निःस्व घट के सदृश होते हैं । सर्प के समान उदर वाले मनुष्य दरिद्र होते हैं । अब रेखाओं के द्वारा आयु बताई जाती है । जिसके ललाट में समाहित तीन रेखायें दिखाई दिया करतीहै वह मनुष्य परम सुखी पुत्रोंसे युक्त और साठ वर्ष जीवित रहा करता है ।८-९। जिसके ललाट पर दो रेखाए दिखलाई है वह चालीस वर्ष तक जीवित रहा करता है और केवल एक ही रेखा दिखलाई देती है वह बीस वर्ष जीवित रहा करता है । कर्ण पर्यन्त जो रेखायें होती हैं वह शतायु होता है जिसके तीन रेखायें आकर्णान्तरित होती हैं वह शतायु अर्थात् सौ वर्ष की उम्र वाला पुरुष होता है ।१०। इसी प्रकार की यदि दो रेखायें हों तो सत्तर वर्षकी उम्र होती है और तीन रेखाओं से युक्त यदि ललाट होता है तो साठ वर्ष तक जीवित रहता है । जो रेखायें कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्त हो तो बीस वर्ष की आयु वाला मनुष्य होता है ।११। हीन रेखा वाला मानव चालीस वर्ष तक जीवित रहता है। जिसके ललाट में भिन्न रेखायें होती हैं उनसे मनुष्य की अप-मृत्यु होती है ।१२। जिस मनुष्य के ललाट में विशाल और पट्टिका का चिन्ह दिखाई देते हैं वह धन पुत्रों से युक्त सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ।१३।

तर्जन्या मध्यमांगुल्या आयुरेखा तु मध्यतः ।
संप्राप्ता या भवेद्रुद्र जीवेच्छरदः ।१४
प्रथमा ज्ञानरेखा तु ह्यंगुष्टादनुवर्त्तते ।
मध्यमा मूलगा रेखा आयुरेखा अतःपरम् ।१५
कनिष्ठायां समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत् ।
अच्छिन्नावा विभक्ता वा सा जीवेच्छरदः शतम् ।१६

यस्य पाणितले रेखा आयुतस्तस्य प्रकाशयेत् ।
शतवर्षाणि जीवेच्च भोगी रुद्र न संशयः ।१७
कनिष्ठकां समाश्रित्य मध्यमायामुपागता ।
षष्टियर्षायुषं कुर्यादायुरेखा तु मानवः ।१८

हे रुद्र ! तर्जनी और मध्यमा अंगुलिके मध्य के आयुकी रेखा जो समाप्त हो तो वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहा करता है ।१४। प्रथम ज्ञान की रेखा होती है जो अँगूठेसे अनुवर्तित होती है । मध्यका मूल में गमन करने वाली रेखा है । इसके आगे फिर आयु की रेखा होती है ।१५। कनिष्ठिका अँगुलि से समाश्रित होकर आयु की रेखा समाविष्ट होती है । वह अच्छिन्न हो या विभक्त हो किन्तु मानव सौ वर्ष के जीवन की आयु वाला है ।१६। हे रुद्र ! जिस मनुष्य के हाथ के तल में रेखा होती है वह भी आयु को प्रकाशित किया करती है वह परम भोग करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१७। कनिष्ठिका अँगुलि का समाश्रय लेकर जो मध्यमा अँगुलि में आ जाता है वह आयु को प्रकट करने वाली रेखा बतलाई जाती है कि मनुष्य साठ वर्ष की आयु वाला होता है ।१८।

३४—स्त्री लक्षण

यस्यास्तु कुञ्चिताः केशाः मुखञ्च परिमण्डलम् ।
नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता सा कन्या कुलवर्द्धिनी ।१
या च काञ्चनवर्णाभा रक्तहस्तसरोरुहा ।
सहस्राणान्तु नारीणां भवेत्सापि पतिव्रता ।२
वक्रकेशा च या कन्या मण्डलाक्षी च या भवेत् ।
भर्त्ता च म्रियते तस्या नित्यं दुःखभागिनी ।३
पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्य्यसमप्रभा ।
विशालनेत्रा बिम्बोष्ठीं सा कन्या लभते सुखम् ।४
रेखाभिर्बहुभिः क्लेश स्वल्पाभिर्धनहीनता ।

रक्ताभिः सुखमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत् ।५
कार्येपि मन्त्री पत्नी स्यात्सखी स्यात्करणेषु च ।
स्नेहेषु भार्या माता स्यात् वेश्या च शयने शुभा ।६
अंकुशं मण्डलं चक्रं यस्याः पाणितले भवेत् ।
पुत्रं प्रसूयते नारी नरेन्द्रं लभते पतिम् ।७

श्री हरि ने कहा जिस कन्या के केश तो कुंचित (घुंघराले) हों और मुख परिमण्डल अर्थात् वर्तुलाकार हो तथा नाभि दक्षिणकी ओर आवर्त्त वाली हो वह कन्या कुल के बढ़ानें वाली है।१। जिस कन्या का वर्ण के समान हो और हस्त रक्त कमल के सदृश हो वह सहस्रों नारियों में एक ही परम पतिव्रत धर्म वाली हुआ करती है।२। जिस कन्या के टेड़े-तिरछे तो केश हों और मण्डलवत् गोल नेत्र हों उसका स्वामी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है और वह निश्चय ही दुःखों के भोगने वाली हुआ करती हैं।३। जो कन्या पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली और प्रातःकालीन सूर्य के प्रभा वाली हो–जिसके विशाल (बड़े) नेत्र हो तथा बिम्ब के फल के सदृश रक्त वर्ण के ओष्ठ हों वह कन्या परम सुखों का उपभोग किया करती है।४। बहुत सी रेखाओं के होने से क्लेश प्राप्त होता है और अत्यन्त स्वल्प रेखाओं के होने पर धनकी कमी हुआ करती है। रक्त रेखाओं से सुख प्राप्त होता है और कृष्ण वर्ण वाली रेखाओं से प्रेष्यता को प्राप्त होती है।५। कार्य के करने में वह पत्नी मन्त्रों के समान होती है और साधनों वह एक सुखी अर्थात् मित्र के तुल्य होती है। स्नेह में भार्या माता और शयन में शुभ वेश्या के तुल्य होती है।६। जिसके हाथ में अंकुश–मण्डल चक्रके चिन्ह होते हैं ऐसी स्त्री पुत्र का प्रसव किया करती हैं और वह नृपति को अपना स्वामी प्राप्त करती है।

यस्यास्तु रोमशौ पार्श्वौ रोमशौ च पयोधरौ ।
उन्नतौ चाधरोष्ठौ च क्षिप्रं मारयते पतिम् ।८

यस्याः पाणितले रेखा प्रकारं तोरणं भवेत् ।
अपि दासकुले जाता राज्ञात्वमुपगच्छति ।९
उद्धृत्ता कपिला यस्या रोमराजी निरन्तरम् ।
अपि राजकुले जाता दासीत्वमुपगच्छति ।१०
यस्या अनामिकांगुष्ठौं पृथिव्यां नैव तिष्ठतः ।
पतिं मारयते क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते ।११
यस्या गमनमात्रेण भूमिकम्पः प्रजायते ।
पतिं मारयते क्षिप्रं म्लेच्छाचारेण वर्त्तते ।१२
चक्षु स्नेहेन सौभाग्यं दन्तस्नेहेन भोजनम् ।
त्वचः स्नेहेन शय्याञ्च पादस्नेहेन वाहनम् ।१३
स्निग्धोन्नतौ ताम्रनखौ नार्य्याश्च चरणौ शुभौ ।
मत्स्यडांकुशाब्जचिह्नौ च चक्रलाङ्गललक्षितौ ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ प्रशस्तौ चरणौ स्त्रिया ।१४
शुभे जंघे विरोमे च ऊरू हस्तिकरोपमौ ।
अश्वस्थपत्रसदृशं निपुलं गुह्यमुत्तमम् ।१५
नाभिः प्रशस्ता गम्भीरा दक्षिणावर्त्तिका शुभा ।
अरोमा त्रिवली नार्या हृतस्तनौ रोमवर्जितौ ।१६

जिसके पार्श्व भाग रोमों वाले हों और स्तन भी रोमों से युक्त हों तथा अधरोष्ठ उन्नत हों यह कन्या शीघ्र ही अपने पति को मारने वाली होती है ।८। जिस कन्या के पाणितल रेखाओं का आकार तोरण जैसा ही वह दास कुल में भी उत्पन्न हुई राज्ञी के पद [illegible] प्राप्त किया करती है ।९। जिसकी रोमों की पंक्ति उद्वृत्त और कपिल होती है वस चाहे राजकुल में भी क्यों न समुत्पन्न हुई हो दासी के पद को ही प्राप्त किया करती हैं जिस कन्या की अनामिका अँगुलि और पैर का अँगूठा भूमि पर टिकता है वह कन्या शीघ्रही अपने पतिको मारने वाली होती है तथा स्वेच्छा चारिणी हो जाती है । जिसके गमन करने से मार्ग में भूमिकम्प होताहै वह भी शीघ्र पति के मारने वाली होती

हैं फिर वह म्लेच्छों जैसे आचार वाली हो जाया करती है ।११-१२। चक्षुओं के स्नेह से सौभाग्य—दाँतों के स्नेह भोजन-त्वचा के स्नेह से शय्या सुख और पादों के स्नेह से वाहन होता है ।१३। स्निग्ध एवं उन्नत ताम्र के समान नखों वाले—मत्स्य, अंकुश, कमल के चिन्हों वाले—चक्र, लाञ्छन के चिन्हों से उपलक्षित—मृदु तलों से युक्त-प्रस्वेद से रहित नारी के परम शुभ एवं प्रशस्त हुआ करते हैं।१४। जिन जाँघों में रोम न हों वे शुभ हैं और जो उरू हाथी के कर के समान हो तथा पीपल के पत्र के तुल्य विपुल उत्तम गुह्य भाग हो—नाभि दक्षिण की ओर आवर्त्तित होने वाली गम्भीर होतीहै वह शुभ मानी जाया करती है । नारी की त्रिवली जो कि उदरपर पड़ा करती है विना रोमोंवाली होनी चाहिए तथा हृदय और स्तन भी रोमों रहित शुभ हुआ करते हैं ।१५-१६।

३५,—सामुद्रिक शास्त्र

समुद्रोक्त प्रवक्ष्यामि नरस्त्रीलक्षणं शुभम् ।
येन विज्ञातमात्रेण अतीतानागताश्रमा: ।१
वस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ।
श्लिष्टांगुली ताम्रनखौ पादावृष्णौ शिरोज्झितौ ।
कूर्मोन्नितौ गूढ़गुल्फौ सुपार्ष्णी नृपते: स्मृतौ ।२
शूर्पाकारौ विरूक्षौ च वक्रौ पादौ शिरालकौ ।
संशुष्कौ पाण्डरखौ नि:श्वस्य विरलांगुली ।३
मार्गायोत्कटकौ पादौकषायसदृशी तथा ।
विच्छिद्यौ चैव वंशस्य ब्रह्मघ्नौ शङ्कुसन्निभौ ।४
युगस्यायतने तुल्या जंघा विरलरोमिका ।
मृदुरोमा समा जंघा तथा करिकरप्रभा ।
ऊरवो जानवस्तुल्या नृपस्योपचिता: स्मृता: ।५
नि:स्वस्य शृ गालजंघा रोमेकैकञ्च कूपके ।
नृपाणां श्रोत्रियाणाञ्च द्वे द्वे श्रिये च धीमताम् ।
त्र्याद्यैर्नि:स्वा मानवा: स्यु दु:खभाजश्च निन्दिता: ।६

विकटैश्च दरिद्राः स्युः समांसै राज्यमेव च ।७
केशाश्चैव कुञ्चिताश्च प्रयासे म्रियते नरः ।
निर्मांसजानुः सौभाग्यमल्पैर्निम्नैरतः स्त्रियाः ।

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब इस समुद्र के द्वारा कथित नर और स्त्रीके लक्षण बताते हैं जिनके ज्ञान मात्रसे अतीत और आगे आने वाले आश्रमों की पूर्ण जानकारी हो जाती है । अस्वेदी अर्थात् प्रस्वेद न आने वाले—कोमल तलों वाले—कमल के पुष्प के मध्य भाग के समान-मिली हुई अँगुलियों वाले—ताम्र के वर्ण के तुल्य नखों से युक्त उष्ण, शिरोंज्झित—कूर्म के समान उन्नत-गूढ़ गुंल्भों (टकनों) वाले और सुन्दर पार्ष्णि भागों वाले चरण नृपति के बताए गये हैं अर्थात् इस प्रकार के पैर शुभ होते हैं ।२। सूप के आकार के समान आकृति वाले विशेष रूप से रूखे वक्र (तिरछे) शिरालक-सशुष्क-पाण्डर वर्ण के नखों से युक्त-दूर-दूर अंगुलियों वाले—मार्ग के लिए उत्कटक अर्थात् उचक कर उठने वाले-कषाय के सदृश पैर वंश के विच्छेद करने वाले होते हैं और शंकु के समान पैर ब्रह्मघ्न होते हैं । ये अशुभ पैरों के लक्षण बताये गये हैं ।३-४। युग के आयतन में समान हों और विरल रोमों वाली हों—जो रोम हो वे भी अत्यन्त मृदु होने चाहिए और हाथी की सूँड के समान उतार चढ़ाव की सुडौल हों—दोनों ही समान जाँघें होती है यह नृपति का होना सूचित करती है । ऊरु और घुटने भीं तुल्य हों तो नृप के लिए ही ऐसे लक्षण बताये गये हैं ।५। निःस्व होकर शृंगाल के समान जो जंघा होती है जिनके रोम कूपों में एक-ही रोम होता है ऐसी जंघा नृपों तथा श्रोत्रियों की हुआ करती है। जो श्रीमान् लोग कहते हैं उनके रोम-कूपकों में दो-दो रोम होते हैं। यह भी चिन्ह श्री के लिए शुभ हैं । तीन और इनसे अधिक जिनके रोम होते हैं वे मानव धन हीन, दुःखों के भोगने वाले और समाज में निन्दित ही हुआ करते हैं ।६। जिनके कुंचित केश होते हैं वह मनुष्य प्रयत्न में मरता है । कृश जानुओं वाला सुखी होती है । स्त्री के

निकट हो तो दरिद्रा होती हैं निम्न और अल्पों से भी सौभाग्य राज्य प्राप्ति का लक्षण होता है ।७।

महाद्भिरायुराख्यायं ह्यल्पलिङ्गो धनी नरः ।
अपत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गो धनोज्झितः ।८
मेढ्रे वातनते चैव सुतार्थरहितो भवेत् ।
वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्स्याद्दारिद्रयं विनते त्वघः ।९
अस्ते तु तनया लिगे· शिरालेऽथ सुखी नरः ।
स्थूलग्रन्थियुते लिगे भवेत्पुत्रादिसंयुतः ।१०
कोषगूढ़ नृपो दीर्घभुग्नेश्च धनवर्जितः ।
बलवान्युद्धशीलश्च- लघुशेफः स एत च ।११
दुर्बलस्त्वंक्वृषणो विषमाभ्यांचलस्त्रियः ।
समाभ्यां क्षितिपः प्रोक्तः प्रलम्वेन शताब्दवान् ।।१२
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां वहुष्वायू रूक्षैणिभिरीश्वरः ।
पाण्डरैर्मणिर्भिर्नि स्वा मलिनैः सुखभगिनः ।१३
सशब्दनिः शब्दमूत्राः स्युर्दरिद्राश्च मानवाः ।
एकद्वित्रिचतु पंचषड्भिर्धाराभिरेव चा ।१४
दक्षिणावर्त्त चलितमूघाभिश्च नृपाः स्मृताः ।
विकीर्त्रैणा निःस्वाश्चा प्रधानसुखदायिकाः ।१५

महान् होने से आयु बतलाई गई है । छोटी उपस्थित वाला पुरुष धनी होता में किन्तु वह सन्तति से हीन रहा करता है । जो स्थूल लिंग धारी पुरुष होता है वह धर्म से रहित होता है ।८। बांई ओर नत मेढ़ के होने पर अर्थात् जननेन्द्रियों वाम भाग में झुकी हुई रहने पर सुत और अर्थ हीन रहता है । अन्यथा अर्थात् दाहिनी ओर वक्र रहने पर मनुष्य पुत्र वाला होता है किन्तु यदि उपस्थ नीचें की ओर झुका हुआ हो तो वह दरिद्र रहा करता है ।९। अल्प लिंग के होने पर तनय हैं और शिराल होने पर सुखी होता है । स्थूल और ग्रन्थि युक्त उपस्थ के होने पर मानव पुत्रादि से संयुत हुआ करता है ।१०। केशों के गूढ़

होने पर नृप होता है तथा दीर्घ और भुग्न होने से वह धन रहित होता है। लघु शेफ वाला पुरुष बलवान् और बुद्धशील हुआ करता हैं ।११। एक वृषण वाला पुरुष-दुर्वल होता है। जिनके विषम वृषण होते हैं वह चल स्त्री वाला हुआ करता है। सम वृषणों वाला पुरुष राजा अर्थात् भूमिका स्वामी होता है। प्रलम्ब वृषण से शतायु हुआ करता है ।१२। दो से ऊर्ध्व-वहुलों में आयु और रूक्ष मणियों से ईश्वर तथा पाण्डर मणियों से निःस्व (धन-हीन) और मलिनों से सुख भागी होते है ।१२। शब्द के सहित और बिना शब्द के मूत्र वाले पुरुष दरिद्र होते हैं। एक-दो-तीन-चार-पाँच और छै-धाराओं से तथा दक्षिण की ओर आवृत्त से चलने वाली मूत्र धाराओं से भी नृप कहे गये हैं विकीर्ण मूत्र वाले निर्धन होते हैं। प्रधान धारा सुखदायी होती है ।१४-१५।

एकाधाराश्च वनिताः स्निग्धैर्मणिभिरुन्नतैः।
समैः स्त्रीरत्नधनिनो मध्ये निम्नैश्च कन्यका ।१६
शुक्रैर्निस्वा विशष्कैश्च प्रकीर्त्तिताः।
पुष्पगन्धे नृपाः शुक्रे मधुगन्धे धनं बहु ।१७
पुत्राः शुक्रे मत्स्यगन्धे तन्त्र शुक्रे च कन्यकाः।
महाभोगीमांसगन्धे यज्वा स्यान्मदगन्धिनि ।१८
दरिद्रः क्षारगन्धे च दीर्घायुः शीघ्रमैथुनी।
अशीघ्रमैथुन्यल्पायुः स्थूलस्फिक्स्याद्धनोज्जितः ।१९
मांसलस्फिक्सुखी स्याच्च भ्हिस्फिभूपतिः।
भयेत्सिहकटी राजा निःस्वः कपिकटिर्नरः ।२०
सर्पोदरा दरिद्राः स्युः पिठरैश्च घटैः समाः।
धनिनो विलै- पार्श्वैनिःस्वा सक्तैश्च निम्नगैः ।२१

एक धारा वाली वनिता-उन्नत एवं स्निग्ध तथा सम मणियों में स्त्री रूप रत्न के धनी मध्य में निम्नों से कन्या होती हैं ।१६। शुक्रों से निःस्व-विशेष रूप से शुक्रों से दुर्लभा कही गई है। पुष्प के समान गन्ध वाले शुक्र(वीर्य)में नृप-मधुके तुल्य गन्ध वाले शुक्रमें बहुत अधिक होता है ।१७। मत्स्य के समान गन्ध वाले वीर्य में बहुत से पुत्र और शुक्र में

ऐसा न हों तो कन्यायें होती हैं माँस के सदृश गन्ध होने पर वह पुरुष महान भोगी होता है तथा मद के तुल्य होने पर यज्वा होता है ।१८। क्षार के समान यदि शुक्र में गन्ध होती है तो दीर्घ आयु और मैथुन वाला होता है । स्थूल स्फिक वाला और अशीघ्र मैथुन करने वाला—अल्प आयु वाला और धनहीन होता है ।१९। माँसल स्फिक् वाला सुखी होता है तथा सिंह के तुल्य स्फिक् अर्थात् फलों वाला भूपति होता है । सिंह के तुल्य कटि वाला पुरुष राजा होता हैं और कपि (बन्दर) के सदृश कटिवाला मानव धनी हुआ करता है ।२०। सर्प के समान उदर वाला दरिद्र हुआ करता है । घटों के तुल्य पिठारों से धन युक्त होतेहैं । विपुल पार्श्वों से निःस्व होतेहैं और निम्नगामी रक्तपार्श्वों से भी निर्धन होते हैं ।२१।

समकक्षाश्च भोगाढ्या निम्नकक्षा धनोज्झिताः ।
नृपाश्चोन्नतकक्षाः स्युर्जिह्वा विषमकक्षकाः ।२२
मत्स्योदरा बहुधना नाभिभिः स्मृताः ।
विस्तीर्णाभिबहुलाभिनिम्नाभिः क्लेशभागिनः ।२३
बलिमध्वगतो नाभिः शूलबाधां करोति ह ।
वातादत्तश्च साध्यं वै मेधां दक्षिणतस्तथा ।२४
पार्श्वायिता चिरायुः स्याद् भूपरिष्ठाद्धनेश्वरः ।
अधो गवाढ्यं कुर्य्याच्च नृपत्व पद्मकर्णिका ।२५
एकबलिः शतायुः स्याच्छीभोगी द्विबलिः स्मृतः ।
त्रिबलिः क्ष्माप आचार्य्य ऋजुभिर्बलिभिः सुखी ।
अगम्यागामी जिह्मबलिः पार्श्वश्च मांसलैः ।२६
मृदुभिः सुसमैश्चैव दक्षिणावर्त्त रोमभिः ।
विपरीतैः परप्रेष्या निर्द्रव्याः सुखवर्जिताः ।२७
अनुद्धतैश्चूचुकैश्च भवन्ति सुभगा नराः ।
निर्धना विषमैर्दीर्घैः पीतोपचितकैर्नरः ।२८

जिन मनुष्यों के कक्ष समान होते है वे भोगों से युक्त हुआ करते हैं

और जिनके कक्ष निम्न होते है वे धन से उज्झित अर्थात् हीन होते हैं उन्नत कक्षों वाले नृप एवं बिषम कक्षों बाले पुरुष कुटिल प्रकृतिसे युक्त होते हैं ।२२। मत्स्य (मछली) के समान उदर वाले पुरुष बहुत अधिक धनी होते हैं । मत्स्यके तुल्य नाभियोंसे युक्त मनुष्य सुखी बताये गयेहैं । विस्तीर्ण-बहुत और निम्न नाभियोंसे युक्तक्लेशोंक भोगनेबाले होतेहैं।२३ जिस नाभि के मध्य में बलि होती हैं वह शूल की बाधा करने वाली होती है । वाम भाग की ओर जिसका आवर्त्त होता है वह साध्य में आयत चिरायु देने वाली होती है । भूपरिष्ठ होने से धनों का स्वामी होता हैं । नीचे की ओर होने वाली गौओं से सम्पन्नता प्रकट करतीहै तथा पद्म की कर्णिका के तुल्य नाभि नृपत्व की सूचक है ।२५। एक बलि जिसमें हो बह शतायु प्रदान करने वालीहै दो बलि जिसमें हों वह पुरुष श्री का भोग करने वालाहै । तीन बलि भुमिका पति एवं आचार्य होना सूचित करतीहै और ऋजु अर्थात् सरल बलियों से पुरुषोंको सुखी कहा गया है जिसकी बलि जिह्म (कुटिल) हो वह अगम्या स्त्रीसे गमन करने वाला होता है और माँसल पार्श्वों से युक्त भूप होते हैं ।२६। मृदु और सुसमान तथा दक्षिण की ओर आवर्त्त वाले रोमों संयुक्त भी भूप होते हैं । इसके विपरीत जिनके हैं वे परिप्रेक्ष्य—द्रव्यहीन और सुख से हीन हुआ करते ।२७। अनुद्धत चूचुको से मनुष्य सुभग अर्थात् अच्छे भाग वाले होते हैं । विषम-दीर्घ पीतोपचितको से मनुष्य निर्धन हुआ करते है ।२८।

समोन्नतं च हृदयमकम्पं मांसलं पृथु ।
नृपाणामधमानांच खररोमशिरालकम् ।२९
अर्थवान्समवक्षः स्यात्पीनैर्वक्षोभिरूर्जितः ।
वक्षोभिर्विषमैर्निस्ताः शस्त्रेण निर्धनास्तथा ।३०
विषमैर्जत्रुभिर्निस्वा अस्थिनद्धैश्च मानवाः ।
उन्नतैर्भोगिनो निम्नैर्निःस्वाः पीनैर्धनान्विताः ।३१
स्ववक्षिपिटकंठ स्याच्छराशष्कगलः सुखी ।
शिरः स्यान्महिषग्रीवः शास्त्रतो मृगकंटकः ।३२

कम्बुग्रीवश्च नृपतिलम्बकण्ठोऽतिभक्षकः ।
अरोमशाभुग्नपष्ठं शुभं च शुभमन्यथा ।३३
कक्षाऽ वत्थदला श्रेष्ठा सुगंधिमृगरोमिका ।
अन्यथा त्वर्थहीनानां दारिद्रकृस्य च कारणम् ।३४
समांसौ चैव भुग्नाल्यौ श्लिष्टौ च विपुलौ शुभौ ।
आजानुलम्बितौ बाहू वृत्तौपीनी नृपेश्वरे ।
निःस्वानां रोमशौ ह्रस्वौ श्रेष्ठौ करिकरप्रभौ ।३५

नृपों का हृदय कम्प से रहित—सम एवं उन्नत होता है एवं मांसल और पथु भी हुआ करता है । जो अधम श्रेणी के मनुष्य होते हैं उनका हृदय खर—रोमों वाला तथा शिरालक होता है ।२७। समा वक्ष—स्थल वाला पुरुष अर्थवान् हुआ करता हैं । जिसका वक्षःस्थल पीन होता है वह ऊर्जित होता हैं विषम अर्थात् नतोन्नत वक्ष वाले पुरुष निःस्व अर्थात् निर्धन होते हैं तथा वे शास्त्र से भी निर्धन हुआ करते हैं ।३०। जिनसे जत्रु (हसली) विषम होतेहैं वे भी निःस्व होतेहैं । अस्थिनद्ध उन्नत होने पर मनुष्य भोगी हुआ करते हैं । निम्न होने पर निर्धन एवं पीन होने से धन युक्त हुआ करते हैं ।३१। विपिट कण्ठ वाला पुरुष भी निःस्व होता है शिरा शुष्क गले वाला पुरुष सुखी होता है । महिष के समान ग्रीवा (गरदन) वाला मानव शूरवीर होता है और मृग के तुल्य जिसका कण्ठ होता है वह शास्त्रों को साद्यन्त जानने वाला हुआ करता है ।२३। कम्बु के सदृश जिनकी ग्रीवा होती है वह नृपति का लक्षण होता है । जिनका कण्ठ लम्बा होता है वह अत्यन्त भक्षण करने वाला होता है । विना रोमों वाला और अभुग्न पृष्ठशाला शुभ एवं अशुभ दोनों ही हुआ करते हैं । पीपल के पत्र के तुल्य सुन्दर गन्ध वाली एवं मृग के सदृश रोमों वाली कक्षा शुभ एवं श्रेष्ठ होती है अन्यथा अर्थ से हीनों के दारिद्रय का कारण हुआ करती है ।३३-३४। समान अंस (कन्धे) थोड़े के भुग्न एवं श्लिष्ट तथा विपुल शुभ हुआ करतेहैं । घुटनों तक लम्बे-वृत्त एवं पीन भुजायें नृपेश्वरकी हुआ करती

जो निःस्व होते हैं। उनकी बाहुएं रोमों वाली—ह्रस्व (छोटी) होती है हाथी की सूंड की प्रभा वाली श्रेष्ट हुआ करती है।३५।

हस्ताङ्गुलय एव स्युर्वायुद्वारनिभाः शुभाः।
मेधाविनां च सूक्ष्माः स्युर्भृत्यानां चिपिटाः।
स्थूलाङ्गुलीभिर्निः स्युर्नताः स्युः सुकृशैस्तदा।३६
कपितुल्यकरा निःस्वा व्याघ्रतुल्यकरैर्वलम्।
पितृवित्तविनाशश्च निम्नात्करतलान्नराः।३७
मणिबन्धैर्निगूढैश्च सुश्लिष्टैः शुभगन्धिभिः।
नृपा होमाः करच्छेदः सशब्दर्धनवर्जिताः।३८
संवृतैश्चैव निम्नैश्च धमिनः परिकीर्त्तिताः।
प्रोत्तानकरदातारो विषमैर्विषमा नराः।३९
करैः करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनैः।
परदाररताः पौते रूक्षीनिःस्वा नरा मताः।४०
तुषतुल्यनखाः क्लीवा कुटिलैः स्फुटितैर्नराः।
निःस्वाश्च कुनखैस्तद्वक्रर्णे परतर्कंकाः।४१
ताम्रैर्भूपा धनाढयाश्च अङ्गुष्ठैः सयवस्तथा।
दीर्घायुः सुभगश्चैव निर्धनो विरलाङ्गुलिः।४२
धनाङ्गुलिश्च सधनस्तिस्रोरेखाश्च यस्य वै।
नृपतेः करतलगा मणिबन्धात्समुत्थिताः।४३

हाथों की अंगुलियों जो वायु द्वार के सदृश होती हैं वे शुभ हुआ करती हैं। जो मेधावी पुरुष होते हैं उनकी हाथों की अंगुलियां सूक्ष्म हुआ करती हैं जो भृत्य श्रेणी के मानव हुआ करते है उनकी अंगुलिया चिपटी कहीं गई हैं। जिनकी अंगुलियाँ स्थूल होतीहैं वे निःस्व हुआ करते हैं और सकृश अंगुलियों वाले नत होते हैं।३६। बन्दर के समान कर वाले मानव निर्धन होते हैं। व्याघ्र के तुल्य हाथों वाले पुरुष वली होते हैं। निम्न (नीचे) करतल वाले मनुष्योंके पिताके वित्त का विनाश हो जाया करता है।३७। सुश्लिष्य-निगूढ और शुभ गन्ध

वाले मणिबन्ध (कनिष्ठा अंगुलियों पर्यन्त करके भाग का नाम)से होने में नृप होता है। सशब्द कर खेदों से हीन एवं धन से वर्जित होता है ।३८। वृत और निम्नकरों वाले धनी बताये गयेहैं वे मनुष्य भी विषय वाले पुरुष दाता होते हैं। जिनकेकर विषम होते हैं वे मनुष्य भी विषम प्रकृति वाले होते हैं ।३९। लाक्षा (लाख) के समान आभा वाले जिनके कर एवं करतल होते हैं वे ईश्वर अर्थात स्वामी हुआ करते हैं । पीत वर्ण वाली पराई स्त्रियों से रति करने वाले रूक्षता युक्त जिनके करतल होते हैं वे मनुष्य निःस्व अर्थात निर्धन हुआ करते है ।४०। जिन पुरुषों के तुष से तुल्य नख होते हैं वे क्लीब अर्थात् पुंसत्व हीन हुआ करते हैं। जिनके नाखून कुटिल एवं स्वयं स्फुटिक होते हैं वे निःस्व होते हैं। कुनखों वाले और विवर्ण युक्त नखों वाले मनुष्य पराया तर्क करने वाले हुआ करते हैं ।४४। ताम्र वर्णो के नखों वाले भूप तथा धनाढ्य होते हैं। जिसके अंगूठे में यवकी रेखा होती है वे भी धन सम्पन्न होते हैं। अंगुष्ठ के मूल यव हो तो पुत्री दीर्घाङ्गुलि पदों वाला पुरुप दीर्घ आयु वाला सुभग होता है। विरल अंगुलियों वाला निर्धन होता है। जिसकी अंगुलियाँ बनीं होती है वह भी धन समन्वित हुआ करता है और जिनके तीन रेखाएं होती हैं वह धनी होता है ।४०। नृपति की अंगुलियाँ करतल में गमन करती हुई मणि बन्ध तक समुस्थित हुआ करती हैं ।४३।

युगमीनाङ्कितनरो भवेत्तत्वप्रदो नरः ।
वज्राकाश्च धनिनां मत्स्यपुच्छनिभा बुधे ।४४
शंखातपत्रशिविकागजपद्मोपमा नृपे ।
कुम्भङ्कुशपताकाभ मृणालाभा निधीश्वरे ।४५
दाभश्च गवाढ्यानां स्वस्तिकाभा नृपेश्वरे ।
चक्रासितोमरधेनुर्दन्ताणत्नृपतेः करे ।४६
उलूखलाभा यज्ञाढ्या वेदाभाच्चाग्निहोत्रिणि ।
वापीदेवकुल्याभश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके ।४७
अङ्गुष्ठमूलगा रेखाः पुत्राश्च सुखदायकाः ।
प्रदेशिनीगतारेखा जिन्नवा तरते भयम् ।४८

दो मीन की रेखाओं से युक्त मनुष्य सत्रपद हुआ करता है। वज्र के समान आकार की रेखाऐं धनियो के हुआ करती हैं। बुध पुरुष के मत्स्य की पूंछके समान रेखा हुआ करती हैं।४४। शङ्ख-आतपत्र (छत्र) शिविका (पालकी) गज और पद्म के तुल्य रेखाऐं नृप होना सूचित किया करती हैं। कुम्भ-अंकुश-पताका और मशाल के सदृश आभा वाली रेखाऐं निधीश्वर के करतलमें हुआ करती हैं।४५। दाम (रज्जु) की आभा वाली रेखा गवाढ्यो के होती है स्वस्ति (सातियाँ) की आभा से युक्त रेखा नृपेश्वर के करतल में हुआ करती है चक्र-असि-(खंग)-तोमर-धनुष और दन्त की आभा वाली रेखाऐं राजा के कर-मूल में होती है।४६। उलूख के समान वाले पुरुष धनाढ्य होते हैं और वेदी के तुल्य रेखा अग्निहोत्री के सर में हुआ करती है। वावड़ी-देव कुल्या के सदृश रेखाऐं तथा त्रिकोण की रेखा धार्मिक पुरुष के करतल में हुआ करती है।४७। जिनके अंगुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा होती है उसके पुत्र परम सुख देने वाला हुआ करतेहैं। कनिष्ठिका अंगुलि के मूल में वमन करने वाली प्रदेशिनी अँगुलि गत रेखा पुरष के होती है वह उसे सौ वर्ष की आयु वाला किया करती है और यदि वह रेखा छिन्न हो तो भी भयो से पार करने वाली है।४८।

निःस्वाश्च बहुरेखाः स्युर्निर्द्रव्येश्चिबुकैः कृशै।
मांसलैश्च धनोपेता अरक्तैरधरैर्नृपाः।४६
विम्योपमैश्च स्फुटितसेष्ठरूक्षैश्चखण्डितैः।
विषमैर्धनहीनाश्चदन्ताः स्निग्धा धनाः शुभः।५०
तीक्ष्णा दन्ताः समा श्रेष्ठा जिह्वा रक्ता समा शुभः।
श्लक्ष्णा दीर्घा च विज्ञेया तालुः श्वेतो धनक्षये।५१
कृष्णा च पुरुषा वक्त्र सम सौम्यं च संवृतम्।
क्षूपानाममलं श्लक्ष्णं विपरीत च दुःखिनाम्।५२

बहुतसी रेखाऐं जो किसीके करमें होतो वे उसे निर्धन कियाकरती है, कृश चिबुक (ठोड़ी) वाले पुरुषभी द्रव्य हीन होतेहैं। जिनकी चिबुक

मांसल होती है वे मानव धन-सम्पन्न हुआ करते हैं। जिनके अधर थोड़े-थोड़े रक्तिम लिए हुए होते हैं वे नृप होते हैं।४९। बिम्ब के फलके समान रक्त वर्ण वाले अधर जिनके हुआ करते हैं वे भी नृप होते हैं स्फुटित-खंडित और रूक्ष एवं विषम ओष्ठों वाले पुरुष धन हीन हुआ करते हैं दांत स्निग्ध और धने परम शुभ होते हैं ।५०। तीक्ष्ण और समान दांत भी श्रेष्ठ होते हैं और जिह्वा रक्तवर्ण वाली एवं सम शुभ होती है। सफेद ताल और श्लक्षण एवं दीर्घ जिह्वा धन-क्षय सूचित करने वाली होती है ।५१।धनसे क्षय सूचित करने वाली पुरुष (कठोर) और कृष्ण वर्ण वाली जिह्वाभी हुआ करतीहै। मुख-सवृत सौम्य होता है। भूपों का मुख अमल एव श्लक्ष्ण होता है जो दुःखिया होतेहै उसका मुख इसके विपरीत अवस्था वाला हुआ करता है ।५२।

महादुःखं दुर्भगाणां स्त्रीमुखं पुत्रमाप्नुयात् ।
आढ्यानां बत्तुलं वक्त्रं निर्द्रव्याणां च दीर्घकम् ।५३
भीरुवक्त्रः पापकर्मा धूर्त्तानांचतुरस्रकम् ।
निम्न वक्रमपुत्राणां कृपणानां च ह्रस्वकम् ।५४
ससम्पूर्णं भोगिनां कान्तं श्मश्रास्निग्धं शुभं मृदु ।
संहतञ्चास्फुटिताग रक्तश्मश्रुश्च चोरकः ।
रक्तालपपरुषश्मश्रः कर्णाः पापमृत्यवः ।५५
निर्मांसैश्चिपिटभोंगाः कृपणा ह्रस्वकर्णका ।
शंकु कर्णाश्च राजानो रोमकर्णा गतायुषः ।५६
बृहत्कर्णाश्च धनिनो राजानः परिकीर्त्तिताः ।
कर्ण स्निग्धैरनधैश्च व्यालम्बमांसलैनृपा ।५७
भोगो बौ निम्नगंड स्यान्मन्त्री सम्पूर्णगंडकः ।
शुकनाशः सुखी स्वश्च शुष्कनाशोऽतिजीवनः ।५८
छिन्नाग्रकूपनाशः स्यादगम्य गमने रतः ।
दीर्घनासे च सौभाग्यं चौरश्चाकुर्ञ्चितेन्द्रियः ।५९
मृत्युश्चिपिटनासः स्याद्धीनभाग्यवतां भवेत् ।
स्वल्पच्छिद्रा सुपटा च अवक्रां च नृपेश्वरः ।६०

जो दुर्भाग्य वाले मानव होते हैं उनका मुख महा दुःख पूर्ण होता है और स्त्री-सुख की प्राप्ति किया करता है। जो आढ्य मनुष्य होते हैं उनका मुख वर्तुलाकार गोल होता है और जो द्रव्यहीन हुआ करता है उनका मुख दीर्घता वाला होता है अर्थात् लम्बा होता है।५३। पाप कर्मों के करने वाली के मुख भीरुता से परिपूर्ण रहा करते हैं। धूर्तों का मुख चारों ओर की चेष्टाओं से सम्पन्न होते हैं। पुत्र रहित मानवों का मुख निम्न होता है तथा कृपणों का मुख छोटा होता है।५४ सम्पूर्ण और कान्त भोगी पुरुषों का होता है। श्मश्रू (दाढ़ी-मूँछ स्निग्ध और मृदु शुभ होती है। जिसकी श्मश्रू संहृत और अस्फुटित भाग वाली हो तथा रक्त-श्मश्रू हो यह चोर होता है। जिनके रक्त अल्प पुरुष श्मश्रू तथा कर्ण होते हैं वेपाप मृत्यु वाले पुरुष हुआ करते है।५५। निर्मांस अर्थात विना मांस वाले चिपिटे कानों वाले पुरुष भोगी होते हैं। ह्रस्व (छोटे) कानों वाले मनुष्य कंजूस होते हैं। शंकु (कील) के सदृश जिनके कान होते हैं। वे राजा होतेहैं। जिनके कानों पर रोम होते हैं वे सतायु हुआ कर हैं। बड़े-बड़े कानों वाले पुरुष धनी हुआ करते हैं तथा स्निग्ध-अनद्ध और व्यालम्ब कानों वाले एवं मांसल पुरुष नृप होते हैं।५६-५७। जिनके गण्ड कपोल निम्न होते हैं वे भोगी होते हैं और जिनके गन्ड स्थल सम्पूर्ण होते हैं वे मन्त्री पद के प्राप्त करने वाले होते हैं। शुक (तोता के समान जिनकी नासिका होती है वे सुखी हुआ करते हैं।५८। जिसकी नासिका के अग्रकूप छिन्न होते हैं वे पुरुष अगम्या (गमन न करने के योग्य) स्त्री के साथ गमन-करने में रति रखने वाले हुआ करते हैं। दीर्घ नाक वाला पुरुष सौभाग्यशाली होता है और अकुञ्चित इन्द्रिय (नाक) वाला मानव चोर होता है।५९। चिपिट नासिका वाला मनुष्य मृत्यु मुक्त होता है तथा हीन भाग्य वाला भी होता है स्वल्प छिद्र वाला नासिका वाले तथा सुन्दर पर वाले एवं अवक नाक वाले नृपेश्वर हुआ करते हैं।६०।

क्रूरे दक्षिणवक्रा स्याद्वलिनां च क्षतं सकृत्।
स्याद्विनिष्पिन्डितं ह्लादी सानुनादश्च जीवकृत् ।६१

विक्रान्ति: पद्मपत्राभैर्लोचनैः सुखभागिनः ।
मार्जारलोचनैः पाप्मा दुरात्मा मधुपिङ्गलः ।६२
क्रूराः केकरनेत्राश्च हरिताक्षाः सकल्मषाः ।
जिह्मैश्च लोचनैः शूराः सेनान्यो गजलोचनाः ।६३
गम्भीराक्षा ईश्वराः स्युर्मन्त्रिणः स्थूलचक्षुषः ।
नीलोत्पलाक्षा विद्वांसः सौभाग्यं श्यामचक्षुषाम् ।६४
स्यात्कृष्णतारकाक्षाणामक्ष्णामुत्पाटनं किल ।
मण्डलाक्षाश्च पापाः स्युर्निःस्वाःस्युर्दीनलोचनाः ।६५
त्वत् स्निग्धा विपुला भोगा अल्पायुर्नाभिरुन्कतः ।६६
विशालोन्नताः सुखिनो दरिद्राः विषभ्रुवः ।
धनी दीर्घासंसक्तभ्रूर्वालेन्दूनतसुभ्रुवः ।६७

दक्षिण की ओर वक्र रहने वाली नासिका क्रूर पुरुष का लक्षण होता है । बलियों को एक बार छींक होती है जो कि विनिष्पिण्डित होती है । अनुवाद के सहित और हलाद वाली जीव कृत हुआ करती हैं ।६१। चक्र जिनका अन्त भाग हो पद्म पत्र के समान आभा वाले जो नेत्र होते हैं वे पुरुष सुख भाग हुआ करते है । मार्जार बिल्ली की आँखों जैसी जिन मनुष्य की आंखें होतीं है वे पापी हुआ करते । मधु के सदृश पिङ्गल वर्ण वाले नेत्र होते हैं वे पुष्ट आत्मा वाले मानव होते हैं ।६२। केकर भेड़े (फिरती हुई आँख वाले) नेत्र वाले पुरुष क्रूर स्वभाव के होते हैं । हरित्र नेत्र वाले मनुष्य कलमष युक्त हुआ करते है जिह्म नेत्रों वाले शूरबीर होते हैं । हाथी समान आँखों वाले पुरुष सेनानी (सेनाधिप) हुआ करते हैं।६३। गम्भीर नेत्रों वाले ईश्वर स्वामी होते हैं और स्थूल चक्षुओं वाले पुरुष मन्त्री हुआ करते हैं । नील कमल के समान नेत्रों वाले मानव बड़े विद्वान् हुआ करते हैं श्याम वर्ण की चक्षुओं वाले का वहुत अच्छा भाग होता है । जिनके नेत्रों के तारका कृष्ण वर्ण के हों तथा आँखों का उत्पाटक ही अर्थात् उभार हो और मण्डल के तुल्य नेत्र हों ऐसे मनुष्य पापी निःस्व और दीन लोचनों वाले हुआ करते है । जिनकी त्वचा स्निग्ध होती है वे बहुत भोगों के

भोगने वाले होते हैं। उनकी नाभि उन्नत होती हैं वे अल्पायु होते हैं।३४-६६। विशाल और उन्नत भौंहें जिन मनुष्यों की होती है वे संसार में सुखी होते है और विषम भृकुटियों वाले दरिद्र होते हैं। दीर्घ-ससक्त भ्रू वाला पुरुष धनी हुआ करता।६७।

आढ्यो निःस्वश्च खंडभ्रुर्मध्ये च विनतभ्रुवः।
स्त्रीष्वगम्यास्वासक्ताः स्युः सुतार्थे परिवर्जिताः।६८
उन्नतैःविपुलैः शंखैर्ललाटार्विषयैस्तथा।
निर्धना धनवन्तश्च अर्द्धेन्दुसदृशैर्नराः।६९
आचार्याः शक्तिविशालैः शिरालैः पापकारिणः।
उन्नताभिः शिराभिश्च स्वस्तिकाभिश्च ईश्वराः।७०
निम्नैर्ललाटैर्बधार्हाः कनकनंरतःस्तथा।
सवतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः।७१
अनश्रुस्निग्धरुदितमदीनमशुभं नृणाम्।
प्रचुरस्वेदीनं रूक्ष रुदितञ्च सुखावहम्।७२
अकम्पं सहितं श्रेष्ठं निमीलितमघावहम्।
असकृद्धसितं दुष्ट सोन्मादस्य ह्यनेकधा।७३
ललाटोपसृतास्तिस्रो रेखाः स्युः शतवर्षिणाम्।
नृपत्वं स्याच्चतसृभिरायुः पचपवत्यथ।७४

खण्ड भ्रू वाला पुरुष आढ्य और निस्वः होता है। जिसकी भ्रू मध्य में विनत हों वह अगम्य स्त्री में आसक्त होता है और सुतार्थ परिवर्जित होता है।६७। उन्नम-विशाल-शङ्ख तथा ललाटों वाले पुरुष निर्धन होते है। अर्द्धचन्द्रके समान ललाटों वाले मनुष्य धन वाले हुआ करते हैं।६९। मुक्ति के समान ललाटों से युक्त आचार्य होते हैं। विशाल ललाट वाले पुरुष पाप कर्मों के करने वाले होते हैं। उन्नत शिराओंको समन्वित ललाटों वाले और स्वस्तिकके सदृश ललाटों वाले मनुष्य धनेश्वर हुआ करते हैं।७०। जिनके ललाट निम्न हों वे वध के योग्य हैं तथा क्रूर रस करने में रति रखने वाले हुआ करते है संवृत

ललाटों वाले मनुष्य कंजूस होते हैं तथा उन्नत ललाट वाले नृप होते हैं ।७१। विना शत्रुओं वाला स्निग्ध रुदित अदीन तथा अशुभ होताहै। जिस रुदन में अधिक प्रस्वेद होता है और रूक्ष होता है वह रुदित सुखावह हुआ करता है ।७२। बिना कम्प वाला हसित श्रेष्ठ होता है । वार-बार हँसना दोष युक्त होता है । उन्मादि युक्त का हसित माना गया है । जो निमीलित हसित होता है । उन्माद युक्त का हसित अनेक बार हुआ करता ।२२। ललाट पर अमृत तीन रेखायें वह सूचित करती हैं-कि ऐसे पुरुष सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले होते हैं । चार रेखायें भूपति होना प्रकट किया है और पाँच रेखायें नब्वे वर्ष की आयु बतलाया करती है ।७४।

अरेखेनायुर्नवतिर्विच्छन्नाभिश्च पुंश्चला: ।
केशान्तोपगताभिश्च अशीत्यायुर्नरो भवेत् ।७५
पंचभि: सप्तभि: षड्भि: पंचाशद्बहुभि तथा ।
चत्वारिंशच्च रक्ताभिस्त्रिशद्भ्रूलग्न गामिभि: ।
विंशतिर्वामवक्रोभिरायु: क्षुद्राभिरल्पकम् ।७६
छत्राकारै: शिरोभिस्तुनृप: शिवमयो धनी ।
चिपटैश्च पितुर्मृत्युधनाढ्य: परिवर्जित: ।७७
कृष्णैराकुञ्जितै: केशै: स्निग्धैरेकैकसम्भवै: ।
अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्न जातिबहुभिर्नृपा: ।७८
वहुमूलैश्च विषमै: स्थूक्षाग्रै कपिलैस्तथा ।
निम्नैश्चवातिकुटिलैर्घनैरसितनूर्द्धजै: ।७९
यद्यद्गात्र महारूक्ष शिराल मांसवर्जितम् ।
तत्तत्स्यादशुभं सर्वं शुभंस्यात् ततोऽन्यथा ।८०
विपुलस्त्रिषु गंभीरो दीर्घ: सूक्ष्मश्च पंचसु ।
षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वो रक्त: सप्त: समोनृप: ।८१
नाभि: स्वरश्च बुद्धिश्च त्रयं गंभीरमीरितम् ।
पुंस: स्यादतिविस्तीर्णं ललाटं वदनमुर: ।८२

चक्षुः कक्षदन्तनासा षट्स्यमुंखक्ककाटिकाः ।
उन्नतानि च ह्रस्वानि जंघाः ग्रीवा च लिंगकम् ।८३
पृष्ठचत्वारि रक्तानि करताल्वधरा नखाः ।
नेत्रान्तपादजिह्वौष्ठां पंच सूक्ष्माणि संति वै ।८४

अरेख ललाट से भी नव्वे वर्ष की आयु प्रकट होती है । विच्छिन्न रेखाओं से मनुष्य पुंश्चल होते हैं । केशान्त मैं उपगत रेखाओंसे अस्सी वर्ष की आयु व्यक्त होती है ।७५। पाँच, छैः सात से पचास वर्ष की आयु बहुत सी रेखाओं से चालीस साल की रक्त रेखाओं से जो भ्रू लग्न गामी हो तीस सालकी आयु प्रकट होती है । बांई ओर वक्र रहने वाली रेखाओं से बीस वर्ष की उम्र तथा क्षुद्र रेखाओं से अल्प आयु प्रकट हुआ करती हैं ।७६। छत्र के समान आकार वाले शिरों से मनुष्य शिवमय, धनी एवं नृप होते हैं । चिपिट शिरों से पिता की मृत्यु होती है और परिमण्डल शिर से मानव धनी होता है । घट के समान मूर्धा वाला पुरुष पाप में रुचि वाला होता है और धनादि से रहित होता है अर्थात् सुख प्रदायक वस्तुओं का उसे अभाव रहता है ।७७। कृष्ण वर्ण वाले–थोड़े कुञ्चित-स्निग्ध-एक-एक उत्पन्न जिनके अग्र भाग अभिन्न हों तथा मुलायम और अत्यन्त घने हों ऐसे केशों वाले पुरुष नृप होते हैं ।७८। बहुमूल-विषम स्थूल अग्र भाग वाले कपिल वर्ण से युक्त निम्न अत्यन्त कुटिल घने तथा केशों वाले पुरुष अशुभ होते हैं । अङ्ग जो-जो भी हो वह महान रूखा-शिराल अर्थात् जिसमें शिराएं चमक रही हों तथा मास से रहित हो वे सभी अशुभ होते हैं । इसके विपरीत सब शुभ कहें गये हैं ।७९-८०। तीन से विपुल-दीर्घ और गम्भीर-पाँच में सूक्ष्म छै उन्नत-चार ह्रस्व और सात रक्त हो तो वह मनुष्य नृप होता है ।८१। नाभि,स्वर और बुद्धि ये तीन गम्भीर बताये गए है । पुरुष का ललाट-वदन और स्थल विस्तीर्ण होना चाहिए जांघ सीना ग्रीवा (गर्दन) और लिङ्ग तथा पृष्ठ ये ह्रस्व होने चाहिए ।८३। कर-तालु-अधर और नख ये चार रक्त वर्ण वाले परम शुभ होते

हैं। नेत्रान्त जिह्वा ओष्ठ और ये पाँच सूक्ष्म मुख एवं प्रशस्त होते हैं ।८४।

दशनाङ्गुलिपर्वाणि नखकेशत्वचः शुभाः ।
दीर्घाः स्तानान्तरं बाहुदन्तलोचननासिकाः ।८५
नराणां लक्षणं प्रोक्तं वदामि स्त्रीषु लक्षणम् ।
राज्ञः स्निग्धौ समौ पादो तलौ ताम्रो नखौ तथा ।
श्लिष्टाङ्गुली चोन्नताग्रौ तां प्राप्य नृपतिर्भवेत् ।८६
निगूढ़गुल्फोपचितौ पद्मकान्तितलौ शुभौ ।
अस्वेदिनो मृदुदलौ मत्स्याङ्कुशध्वजार्चितौ ।
वज्राब्जहलचिह्नौ च राज्ञ्याः पादौ ततोऽन्यथाः ।८७
जंघे च रोमरहिते सुवृत्ते विशिरे शुभ ।
अनुल्वणं सन्धिदेशं समं जानुद्वयं शुभम् ।८८
ऊरू करिकराकारावरोमौ च समौ शुभौ ।
अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम् ।८९
श्रोणीललाटकं स्त्रीणां उरः कूर्मोन्नतं शुभम् ।
गूढ़ो मणिश्च शुभदो नितम्बश्च गुरुः शुभः ।९०

दशन, अंगुल, पर्व, नख, केश, त्वचा ये शीघ्र शुभ होते हैं। स्तनों का मध्यान्तर भान-बाहु-दन्त लोचक और नासिका ये भी दीर्घ प्रशस्त होते हैं ।८५। अब तक पुरुषों के लक्षण बताए गए हैं इससे आगे अब स्त्रियों के लक्षण बताते हैं। रानी के पाद स्निग्ध सम होते हैं तथा उनके पद तल और नख ताम्र वर्ण के हुआ करते हैं। अंगुलियाँ एक दूसरे से सटी हुई श्लिष्ट होती हैं तथा अग्र भाग उन्नत होता है। ऐसे लक्षणों वाली नारी प्राप्त कर पुरुष नृपति हो जाता है ।८३। राज्ञी के चरणनिगूढ़ गुल्फ वाले-उचित पद्म के समान कान्तिके युक्त तलों वाले विना स्वेद (पसीना) वाले-अन्त, मुलायम-मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वज्र, अब्ज और हलके चिह्नों से युक्त परम शुभ हुआ करते हैं। इसके विप-

रीत अशुभ हैं ।८७नारी की जाघें रोमोंसे रहित सुवृत्त-बिना शिराओं वाली अर्थात् जिनमें शिरायें न चमकती हो ऐसी परम शुभ होती हैं। नारी का सन्धि भाग उल्बण नहीं होना चाहिए। दोनों जानु (घुटने) समान हों—ये लक्षण शुभ बताये गए हैं ।८८। नारी के उरू के सूढ़ के समान उतार-चढ़ाव वाले बिना रोमों वाले और शुभ होतेहैं। अश्वत्थ (पीपल) के पत्र के समान विपुल गुह्य भाग उत्तम बताया गया है। ।४१। नारियों की श्रेणी-ललाट उर-स्थल कूर्म के समान उन्नत शुभ होता है। मणि नारियों का गूढ़ शुभ प्रदान करने वाला होता है तथा नारियों के नितम्ब गुरु होना ही शुभ माने गये हैं ।९०।

विस्तीर्णा मांसोपचिता गम्भीरा विपुला शुभा।
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता मध्य त्रिवलिशोभितम् ।९१
अरोमशौ स्तनौ पीनौ घनाविषमौ शुभौ।
कठिना रोमशा शस्ता मृदुग्रीवा च कम्बुभा ।९२
आरक्तावधरौ श्रेष्ठो मांसलं वर्त्तु लं मुखम्।
कुन्दपुष्पसमा दन्ता भाषितं कोकिलासमम् ।९३
दाक्षिण्ययुक्तमशठं हंसशब्दसुखावहम्।
नासा समा समपुटा स्त्रीणान्तु रुचिरा शुभा ।९४
नीलोत्पलनिभं चक्षुर्नासिलग्नं शुभावहम्।
न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रुवौ चाथ ललाटकम्।
शुभमर्द्धेन्दुसंस्थानमतुङ्गं स्यादतावकम् ।९५
अमांसल कर्णयुग्मं समं मृदु समाहितम्।
स्निग्धनीलाश्च मृदवो मूर्द्धजाः कुञ्चिताः शुभाः ।९६
स्त्रीणां समं शिरः श्रेष्ठं पादे मणितलेऽथवा।
वाजिकुञ्जरश्रीवृक्षयूपेषुयवतोमरः ।९७
ध्वजचामरमालाभिः शैलकुंडलवेदिभिः।
शङ्खातपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वास्तिकसप्रथै।
लक्षणैस्तु शुभाश्च स्त्रियःस्यू राजवल्लभाः ।९८

विस्तीर्ण-मांस से उपचित विपुल और गम्भीर नाभि स्त्रियों की शुभ होती है जो दाहिनी ओर आवर्त वाली हो और मध्यभाग त्रिवली से सुशोभित होना चाहिए।९१। नारी के स्तन रोमों से रहित-पीन और अविषम शुभ होते हैं। नारी की ग्रीवा कठिन-रोमों से युक्त कम्बु के सदृश आकार वाली मृदु प्रशस्त होती है।९२। थोड़ी-सी रक्तिमा से युक्त अधर नारी के श्रेष्ठ होते हैं। स्त्री का मुख वर्तुल और माँसल शुभ होता है। कुन्द की कली के समान श्वेत एवं सुन्दर नारी के दाँत प्रशस्त माने गये हैं तथा नारी का भाषित कोकिला की कण्ठ की ध्वनि के समान मधुर एवं श्रुत प्रिय होना ही परम शुभ बताया गया है।९३ नारी के भाषण की प्रशस्तता तभी मानी जाती है जब उसका भाषण दाक्षिण्य से युक्त-शाठ्य से रहित हो और हंस की ध्वनि के समान सुख देने वाली हो। स्त्रीकी नासिका सम एवं सतान पुटों वाली रुचिरऔर शुभ होती है।९४। नील उत्पल के सदृश नारी के नेत्र शुभ वह होते हैं जो असंलग्न हो बहुत बड़ी नहीं बल्कि बाल चन्द्र के समान भौहें शुभ होती हैं। नारी का ललाट अर्धचन्द्रके समान संस्थान वाला जो अधिक तुङ्ग न हो और रोमों से रहित शुभ होती हैं।९४। नारीके दोनों कान मांसल न होकर समान, मृदु एवं समाहित होने चाहिए। ऐसे ही कान शुभ बताए गए हैं। स्त्री के केश स्निग्ध-नील-मृदुल और घुघराले शुभ होते हैं।९६। स्त्रियों का मस्तक समश्रेष्ठ होता है। स्त्रियों के चरण और कर में अश्व गज-श्री वृक्ष-यूप-यव-तोमर-ध्वजा-चामर-माल शैल-कुण्डल-वेदी शङ्ख-छत्र-पद्म-मत्स्य, स्वस्तिक, सद्रथ और अंकुश आदि शुभ चिन्हों में से अधिकाधिक लक्षण प्राप्त हो ऐसी नारी राज वल्लभा होती है।९७-९८।

निगूढमणिबन्धौ च पद्मगर्भोपमौ करौ।
न निम्नं नोन्नतं स्त्रीणां भवेत्करतलं शुभम्।
रेखान्वितां त्वविधवां कुर्यात्संभोगिनी स्त्रियम्।९९।
रेखा या मणिबन्धपोस्था गता मध्यांगुलींकरे।
गता पाणितले या च योर्ध्वपादतले स्थिता।

स्त्रीणां सां तथा सा स्याद्राज्यांय च सुखाय च ।१००
कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम् ।
प्रदेशिनींमध्यमाभ्यामन्तरागता सती ।१०१
ऊना ऊनायुषं कुर्य्याद्रेखा चांगुष्ठमूलगा ।
बृहत्थः पुत्रास्ताः क्षीणाः प्रमदाः परिकीर्तिताः ।१०२
स्वल्पायुषी बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुषः ।
शुभन्तु लक्षणं स्त्रीणां प्रोक्तन्त्वशुभमन्यथा ।१०३
कनिष्ठिकाऽनामिका वा यस्या न स्मेषते महीम् ।
अङ्गुष्ठं वा गतातीन्य तर्जनी कुटिला च सा ।१०४
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां पिण्डितकाम्यां जंघे चातिशिरालके ।
रोपशे चातिर्मसे च कुम्भाकारं तथोदरम् ।
वामावर्त्तं निम्नमल्प दुःखितानां च गुह्यकम् ।१०५
ग्रीवया ह्रस्वयानिःस्वां दीर्घया च कुलक्षयः ।
पृथुलया प्रचंडाश्च स्त्रियः स्युर्नात्र संशयः ।१०६

नारियों के मणिबन्ध निगूढ़ शुभ होते हैं । स्त्रियों के कर पद्म के मध्य भाग के समान प्रशस्त होते हैं । स्त्रियों के करतल न अधिक निम्न और न अधिक उन्नत ही शुभ होता हैं । ये लक्षण नारी का रेखान्वित और अविधवा अर्थात सौभाग्य वाली एवं सम्भोग शालिनी किया करते हैं ।९९। जो रेखा नारि के मणिवन्ध से उठकर कर को मध्यमांगुलि तक आने वाली हैं उर्ध्व पाद दल में रेखा स्थित होती है। ऐसी रेखा स्त्रियों के कर या पाद में हो या पुरुषों के हों वह राज्य और सुख के देने वाले हुआ करती है ।१००। कनिष्ठिका अंगुलि के मूल भाग में उठी हुई रेखा शतायु बनाती है प्रदेशिनी और मध्यमा अंगुलियों के अन्तराल में जाने वाली रेखा शतवर्ष की आयु और सतीत्व की सूचिका होती है ।१०१। कुछ कम हुई तो कम आयु बढ़ाने वाली होती है । अंगुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा यह बतलाती है कि उसके बहुत पुत्र होते हैं किन्तु वे प्रमदाएं क्षीण बताई गई हैं ।१०२। बहुत सी छिन्न होने वाली रेखाएं स्वल्प आयु प्रकट किया

करती हैं तथा दीर्घाच्छिन्ना रेखाएं महायुष प्रकट करती हैं। यहाँ तक स्त्रियों के समस्त शुभ लक्षण बताए गए हैं। इन उपर्युक्त लक्षण के जो विपरीत लक्षण नारियों के होते हैं वे अशुभ हुआ करते हैं जिस नारी को कनिष्ठिका यां अनामिका पैर की अंगुलि भूमि का स्पर्श नहीं किया करती है अथवा अंगुष्ठ स्पर्शन करता हो यह अतीत होकर जाने वाली होती है जिसको यर्जनी भूमि को स्पर्श न करे वह कुलटा नारी होती है दोनों पिण्डितको (पिण्डलियों) से ऊपर जिसकी जाँघें रोमों वाली एवं अत्यन्त शिरालक हो एवं अत्यन्त मांसल हो और कुम्भ के आकारके सदृश उदर हो,गुह्यभाग वामावर्त्त निम्न और कल्प हो वह दुःखिया होती है, ह्रस्व ग्रीवा वाली निःस्वा होती है और दीर्घ ग्रीवा वाली के कुल का क्षय हो जाता है ! यदि ग्रीवा पृथुल हो तो वह प्रचन्ड स्वभाव की स्त्री होती हैं इसमें तनिक भी संशय नहीं हैं।१०६।

केकर पिङ्गले नेत्रे श्यामे योलेक्षणाऽसती ।
स्मिते कूप गण्डयोश्च सा ध्रुवं व्यभिचारिणी ।१०७
प्रलम्बिनी ललाटे तु देवर हन्ति चाङ्गना ।
उदरे श्वशुरं हन्ति पति हन्ति स्फिचोर्द्धयोः ।१०८
या तु रोमात्तरौष्टो स्वान्न शुभा भर्त्तुरेव हि ।
स्तनौ सरोमावशुभौ कर्णो घ विषमौ तथा ।१०९
कपाला विषमा दन्ताः क्लेशाय च भवन्ति ते ।
चौर्य्याय कृष्णमांसाश्च दीर्घा भर्त्तुश्च मृत्यवे ।११०
क्रव्यादरूपहस्तैश्चिककादिसन्निभैः ।
शिरालैर्विषमैः शुष्कैं वित्तहीना भवन्ति हि ।
समृन्नतोत्तरोष्टो या कलहं रूक्षभाषिणी ।१११
स्त्रोषु दोषा विरूपासु यत्राकरो गुणास्ततः ।
नरस्त्रीलक्षण प्रौक्तं वक्ष्ये तु ज्ञानदायकम् ।११२

जिस नारी के नेत्र केकरे (भैड़) हो, पिंगल तथा श्याम वर्ण वाले हों और चंचल नेत्रों वाली हो वह नारी असती होती है । जब कोई

नारी हँसती या मुस्कराती है उस समय में जिसके कपोलों में गड्ढे पड़ जाते हों तो निश्चय ही समझ लेना चाहिए कि वह व्यभिचारिणी होती है।१०७। ललाट में जो प्रलम्बिनी होती है अर्थात जिसका ललाट लम्बा होताहै अङ्गना देवर का हनन करने वाली होती है। जिसनारी का उदर लम्वा होता है वह श्वशुर को मारने वाली होती है। ऊर्ध्व स्फिक् वाली नारी पति का हनन किया करती है।१०७। जिसके होठों पर रोम होते हैं वह स्त्री अपने स्वामी के लिए शुभ नहीं हुआ करतीं है। रोमों से युक्त स्तन के भी अशुभ होते हैं और विषम करना अशुभ हुआ करते हैं। कराल एवं विषम दांत नारी के क्लेश के लिए बताने वाले होतें हैं। दीर्घ दाँतों वाली भर्त्ता की मृत्यु के लिए होती है।१०९-११०। राक्षस जैसे हाथ हों वृक, काक आदि के तुल्य-शिराल विषम और शुष्क जिनके हाथ होते हैं वे वित्तहीन होती है। उत्तर ओष्ठ जिसके समुन्नत होते हैं वह कलह कारिणी और रूक्ष भाषण करने वाली होती।१११। ये विरूपा स्त्रियों में दोष हुआ करते हैं। जहाँ आकार सुन्दर होता है वहाँ गुण भी हुआ करते हैं। इस प्रकार से यहाँ तक नर और नारियों के लक्षण बताये गये हैं। अब ज्ञानदायक विषय बतलाया जायेगा।११२।

३६-पवन विजय स्वरोदय

हरेः श्रुत्वा हरो गौरी देहस्थं ज्ञानमब्रवीत्।१
कुजो वह्नी रविः पृथ्वी शोरिरापः प्रकीर्त्तितः।
वायुसंस्थः स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रविभासकः।२
गुरुः शुक्रस्तथा सोम्यश्चन्द्रश्चेव चतुर्थकः।
वामनाङ्कान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा।३
यदा चार इडःयुक्तस्तथा कर्म समाचरेत्।
स्थानसेवां तथा ध्यानं वाणिज्यं राजदर्शनम्।
अप्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नतः।४
दक्षनाड़ीप्रवाहे तु शनिभौमश्च संहिकः।

इनश्चैव तथाप्येथ पापानामुदयो भवेत् ।५
शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात् ।
देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहूरूपाः सुविस्तराः ।६
नाभेरघस्ताधः स्कन्दअड्कुरास्तत्र निर्गताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः ।७
चक्रवच्च स्थितास्तास्तु सर्वाः प्राणहराः स्मृताः ।
तासां मध्ये त्रयः श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमाः ।८

सूतजी ने कहा—हरि के कथन का श्रवण करके हर में गौरी को देह में स्थित ज्ञान बतलाया था। कुज (भौम) वह्नि, रवि, पृथ्वी, सौरि आप कहे गए हैं। वायु में स्थित रहने वाले राहु है जो दक्षरान्घ्रवभासक होता है। गुरु, शुक्र तथा चतुर्थ सौम्य चन्द्र वाम नाडीमें अपने मध्यस्थ करावे और सब चार इडासे युक्त हो तब उस प्रकार के, स्थान, सेंवन, ध्यान, वाणिज्य और राजदर्शन कर्मो का फल समारम्य करना चाहिए एवं अन्य भी शुभ कर्म प्रयत्न पूर्वक कराने चाहिए।१-४। दक्ष नाड़ी प्रवाह मैं शनि,भौम और सिंह का इन (सूर्य) उस प्रकार से पापों को उदय होता है ।५। स्वरोदय से इस तरह शुभ एवं अशुभ का बिवेक जाना जाता हैं। इस देह के मध्य ये वहुत से रूपों वाली सुविस्तार से युत्त नाड़ियाँ स्थित रहती है ।६। नाभि के नीचे के भाग में जो स्कन्द है वहाँ पर से अंकुर निर्गत होते हैं जो सहस्र नाभि के मध्य में व्यवस्थित है। वे सब चक्र की भाँति वहाँ पर स्थित हैं और सभी प्राणों को हरण करने वाली तीन श्रेष्ठ बताई गई हैं ।८।

वामा सोमत्मिका प्रोक्ता दक्षिणा रविसन्निभा ।
मध्यमा च भवेदग्निः फलता कालरूपिणी ।
वामा ह्यमृतरूपा च रूपा च जगदाप्यायने स्थिता ।९
दक्षिणा रोद्रभागेन जगच्छोषयते सदा ।
द्वयोर्वहे तु मृत्युः स्यात् सर्वकार्यविनाशिनी ।
निर्गमे तु भवेद्वामा प्रवेशे दक्षिणा स्मृता ।१०

इडाचारे तथा सौम्यं चन्द्रसूर्य्यंगतस्तथा ।
कारयेत्क्रूरकर्माणि प्राणे पिंगलसंस्थितते ।११
यात्रायां सर्वकार्य्येषु विषापहरणे इड़ा ।
भोजने मैथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका ।१२
उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिंगला ।
मैथुने चैव संग्रामे भोजने सिद्धिदायिका ।१३
शोभनेषु च कार्येषु यात्राया विषकर्माणि ।
शान्तिमुक्त्यर्थसिद्धयै च इडा योज्या नराधिपैः ।१४
द्वाभ्याश्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने ।
विषुवं तं तु जानीयात् संस्मरेत्त विचक्षणः ।१५

वाम भाग में स्थित सोम (चन्द्र) स्वरूप कही गई है और दक्षिण भाग में स्थित नाड़ी रवि के तुल्य होती है तथा मध्यमा काल रूपिणी अग्नि है जो फल देने वाली है। वामो असृत रूप वाली होती है जो जगत आप्यायन करने में अर्थात् संतृप्त करने के लिए स्थित होती है जो कि शोषण किया करती है। दोनों के पार होनेमें मृत्यु होती है जो कि समस्त कार्यों के विनाश करने वाली होती है। निर्गम करने में वामा होती है और प्रवेश करने में दक्षिणा वताई गई है षडचार में जब सौम्य करे तथा चन्द्र सूर्यगत हो तब प्राणों के पिंगल संस्थित होने पर क्रूर कर्मो को करना चाहिए। यात्रामें समस्त कार्यों में और विषों के अपहरण करने में इड़ा होती है तथा भोजन में, मैथुन में और युद्ध में पिंगला नाड़ी सिद्धि प्रदान करने वाली होती है। उच्चाटन और मारण आदि कार्यों में पिंगला मैथुन, संग्राम और भोजनमें सिद्धि प्रदा-यिनी होती है। राजाओं के शोभन कार्यों में, यात्रा में, विष कर्म में, शान्ति और उक्त अर्थों की सिद्धि के लिए इड़ा का योजन करना चाहिए। दोनों के प्रवाह में और क्रूर तथा सौम्य कार्य के विसर्जन में उसको विषुव जानना चाहिए तथा विचक्षण पुरुष को भली-भाँति स्मरण रखना चाहिए।१०-१५।

सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते ।
गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ।१६
युद्धाद्यौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु संगमे ।
प्रशस्ता दक्षिणा नाड़ीं प्रवेशे क्षुद्रकर्माणि ।१७
शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयजयो ।
जीवो जीवनायपृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा ।
वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायकः ।१८
तनुस्थः पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न संशयः ।
वैच्छन्दो वामनेन्तु सदा वहति चात्मनि ।
तत्र भागे स्थितः पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ।१९
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवा ।
घोरे घोराणि कार्याणि सोम्ये वै सर्वत्राहिनी ।२०
प्रस्थिपे भागतो रसे द्वाभ्यां वै मध्यमानि च ।
तदा मृत्यु विजानीयाद्योगी योगविशारदः ।
यत्र यत्र स्थितः तृच्छेद्व मदक्षिसंसुखः ।२१
तत्र तत्र सम दिश्याद्वातस्योदयने सदा ।
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
वामेन बामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ।२२

सौम्य आदि शुभ कार्यों में तथा लाभ आदि जय एवं जीवित में गमन और आगमन में सब जगह वामा ही पूजित होती है ।१६। युद्ध आदि में, भोजन में, घात में तथा स्त्रियों के सङ्गम करने के कार्य में, प्रवेश करने में एवं अन्य क्षुद्र कर्ममें दक्षिणा नाड़ी को प्रशस्त बताया गया है ।१७। शुभ और अशुभ कार्य, जात-लाभ तथा अलाभ, जय और अजय एवं जीव के लिए कभी भी न पूछे। वहाँ मध्यमा नाड़ी सिद्ध हुआ करती है। वामाचार में अथवा दक्षिणाचार में जिसमें नायक को विश्वास हो ।१८। तनु में स्थित होता हुआ जो पूछता है वहाँ पर सिद्धि अवश्य ही होती है इसमें कुछ भी संशय नहीं है जब आमत में

वैच्छन्द वामदेव वहन किया करता है। उस राग में स्थित होता हुआ पूछता है तो सम्पूर्ण सिद्धि फल रहित हो जाया करता है।१६। वाम भाग से अथवा दक्षिण भागसे यहाँ पर शिवा संक्रमण किया करती है तो घोर में कार्य और सौम्य से मध्यम कार्य करे। भाग से हंस के प्रस्मित होने पर दोनों से सर्व वाहिनी हो तो उस समय में योग के महामनीषी योग को निश्चय ही मृत्यु जाननी चाहिए। जहाँ-जहाँ पर वाम दक्षिण सम्मुख स्थिति होता हुआ पूछे वहाँ-वहाँ पर सदा घात का उदयन सम बतावे। अग्र भाग में वामिका श्रेष्ठ होती है और पृष्ठ भाग में दक्षिणा शुभा हुआ करती है। वाम से वामिका कही गई दक्षिण में दक्षिणी शुभ बताई गई।२०-२२।

जीवो जीवति जीवेन तच्छून्यं मत् स्वरो भवेत्।
यत्किञ्चित्कार्य्यमुद्दिष्ट जयादिशुभ लक्षणम् २३
तत्सर्वं पूर्णनाड्यान्तु जायते निर्विकल्पतः।
अन्यनाड्यादिपर्य्यन्तं पक्षत्रयमुदामुदामृतम् ।२४
यावत्षष्ठीन्तु पृच्छांया पूर्णायां प्रथमो जयेत्।
रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु कथयेत्तदशङ्कितः।२५
वामाचारसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिदः।
प्रवृत्ते दक्षिणे मार्गे विषमे विषमाक्षरम्।२६
अन्यत्र वामावाहे तु नाम वै विषमाक्षरम्।
तदासो जयमाप्नोति योध्रः संग्राममध्यतः।२७
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम्।
जायते नात्र संदेहो नाडीमध्ये तु लक्ष्यते।२८
पिंगलान्तर्गते प्राणे शमनोयाहवञ्जयेत्।
यावन्नाड्योदयं चारस्तां दिशं यावद्रापयेत्।२६
न दातुं जायते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा।
अथ संग्राममध्ये तु यत्र नाडी सदा वहेत्।३०
सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्गं विनिर्दिशेत्।

जाताचारे जय विद्यान्मृतके मृतमादिशेत् ।
जयं पराजयं चैव यो जानाति स पण्डितः ।३१

जीव-जीव मे ही जीवित रहा करता है । जो शून्य है वह स्वर होता है । जय आदि का शुभ लक्षण वाला जो कुछ भी कार्य एदिष्ट होता है यह सभी निर्विकल्प रूप में पूर्ण नाड़ी में होता है । अन्य गाड़ी पर्यन्त तीन पक्ष बतलाये हैं ।६६-२७। षष्ठी तक पृच्छा में पूर्णा में प्रथम जव प्राप्त करता है और रिक्ता में द्वितीय को अशङ्कित होता हुआ कह देवे ।२४। वामाचार के समान वायु कर्म की सिद्धि देने वाली होती है । दक्षिण मार्ग के प्रवृत्त होने पर ही होता है । विपम होने में तो विपमअक्षर होता है ।२६। अन्त स्थान में वाम वाह होने पर जो नाम विषम अक्षर वाला होता है तव यह योद्धा संग्राम के मध्य में जय की प्राप्ति किया करता है ।२७। दक्ष वात के प्रवाह में यदि नाम में सम अक्षर हों तो अवश्य ही होता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । नाड़ी के मध्य में लक्षित करना चाहिए ।२७। प्राण के पिङ्गला में अन्तर्गत हो पर शमनीय युद्ध में जय प्राप्त करता है । जव तक नाड़ी का उदय हो तब तक चार होता है । जवतक उस दिशा को प्राप्त करे ।२६। इस विषय में कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए । इसके अनन्तर संग्रामके मध्य में जहाँ नाड़ी सदा वहन करती है । वही दिशा जय प्राप्त होती है । शून्य होने पर भंग का निर्देश होता है । जाता-चार में जय समझना चाहिए और मृतक में मृत का आदेश कर देना चाहिए । इस प्रकार से जय और पराजय को जो जानताहैं वह पण्डित होता है ।३०-३१।

बामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम् ।
कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सन्ततशोभना ।३२
शशिसूर्यप्रवाहे तु सति युद्धं समाचरेत ।
तत्रस्थः पृच्छते यस्तु स साधुर्यते ध्रुवम् ।३३
यां दिशं वहते वायुस्तां दिशं यावदाजयेत् ।
जायते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रतः स्थितः ।३४

मेष्याद्या दंश या नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिताः ।
दरस्थिरद्विमार्गे तातादृशे तादृशः क्रमात् ।३५
निर्गमे निर्गमं याति संग्रहे संग्रहं विदुः ।
पृच्छकस्य वचः श्रुत्वा घण्टाकारेण लक्षयेत् ।३६
वामे वा दक्षिणे वापि पंचतत्वस्थितः विशे ।
ऊर्ध्वेग्निरध आपश्च तिर्यक्संस्थः प्रभंजनः ।
मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा ।३७
उर्द्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधीः ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्मोक्षं सर्वत्र सर्वते ।३८

वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में जहाँ शिव संचरण करते हैं यहाँ यह करके जो पाद को प्राप्त करता है वह यात्रा सन्तत शोभन अर्थात् अच्छी हुआ करती है ।३२। चन्द्र और सूर्य के प्रवाह होने पर युद्ध करे। वहां पर स्थितको पूछता है वह साधु निश्चय ही जय प्राप्त करता है अर्थात् विजयी होता है ।३३। जिस दिशा की ओर वायु वहन करता है उस दिशा को तव तक विजय करता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है वह चाहे सामने इन्द्रदेव ही क्यों न खड़े हो ।३४। मेषो आदि जो दश नाडियाँ हैं जो कि दक्षिथ एवं नाम भाग में स्थित हैं वे चर-स्थिर और द्विमार्ग में क्रमसे वैसा ही होता है। निर्गममें निर्गमको प्राप्त करता है और संग्रह में संग्रह जानना चाहिए। पृच्छक के वचन का श्रवण कप घण्टाकार से देखना चाहिए ।३५-३६। हे णिवे ! वाम भाग में अथवा दक्षिण भागमें पंच तत्व स्थित हैं। उर्ध्व भागमें अग्नि है, नीचे भाग से जल है तिर्यक् संस्था वायु है, मध्य भाग में पृथ्वी मृत्यु है, अधोभाग में शान्त होती है तिर्यक् भागों में उच्चाटन होताहै मध्य में स्तम्भन जानना चाहिए और सर्वत्र में मोक्ष होता है ।३८।

३७-रत्न परीक्षा वज्र परीक्षा

परीक्षां वच्मि रत्नानां वलो नामासरोऽभवत् ।
इन्द्राद्या निर्जितास्तेन निर्जेतु तैर्न शक्यते ।१

वरव्याजेन पशुतां याचिताः स सुरैर्मखे ।
बले ददौ स्वपशुतामतिसत्वो मखे हतः ॥२
पशुवत्प्रविशेत्स्म्भे स्ववाक्पाशनियन्त्रितः ।
बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया ॥३
तस्य सत्वविशुद्ध स्यविशुद्धेन च कर्मणा ।
कायस्वावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमाययुः ॥४
देवानामथ यत्राणां सिद्धानां पवनशिनाम् ।
रत्नबीजमयीग्राहः सुमहानभवत्तया ॥५
तेषां तु पततां वेगाद्धिमानेन विहायसा ।
यद्यत्पपात रत्नानां बीज क्वजन किञ्चन ॥६
महोदधौसरिति वा पर्वते काननेऽपि वा ।
तत्तदाकारतां यातं स्थानमाधेयगौरवात् ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं रत्नों की परीक्षा बतलाता हूँ। बल नाम धारी एक असुर हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त देवगणों को जीत लिया था और वह इनसे नहीं जीता जा सकता था ।१। देवगणों के द्वारा मख में उससे वरके बहानेसे पशुता की यांचना की गई थी। बल ने अपने आपको पशुता प्राप्त करने के लिए दे दिया था और अत्यन्त सत्य वाला वह मख में मारा गया था ।२। अपने वचन रूपी पाश से नियन्त्रण में प्राप्त हुआ वह पशुके समान स्तम्भ में प्रवेश कर गयाथा। बल ने यह कार्य लोकों के उपकारके लिए और देवोंके हित की कामना से ही किया था ।३। सत्व ये विशुद्ध उसके शरीर के समस्त अवयव रत्नों के बीजत्व को प्राप्त हो गए ।४। इसके अनन्तर देवी के, यक्षों के सिद्धों के और पवन के अशन करने वालोंके रत्न बीजमय ग्राह उस समय में सुमहान् हो गया था ।५। आकाश मार्ग से विमान के द्वारा उनके महान् वेग से गिरने वाले रत्नों का जो-जो भी कुछ बीज गिरा था वह समुद्र में, नदी में, पर्वत में अथवा कानून में स्थान एवं आधेय के गौरव से वहीं वह स्थान उसका आकार बन गया था ।६-७।

तेषु रत्नं विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च ।
प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च ॥८
वज्रमुक्ता तु मणयः सपद्मरागाः समरकतः प्रोक्ताः ।
अपि चेन्द्रनीलमणिवरवैदूर्य्याश्च पुष्परागाश्च ॥९
कार्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं यथा स्फटिकम् ।
विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्ट संग्रहे तज्ज्ञैः ॥१०
आकारवर्णौ प्रथम गुणदोषौ तथलं परीक्ष्य च ।
मूल्यं च रत्नकुशलैर्विज्ञेयं सर्वशास्त्रणाम् ॥११
कुलग्नेषूपजायते यादि चोहहतेऽहनि ।
दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा ॥१२
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानां पृथिवीभुजा ।
धारणं संग्रहो वापि कार्य्यः श्रियमभीप्सता ॥१३
शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः ।
त एव मूल्यमात्रांता वेत्तारः परिकीर्त्तिताः ॥१४
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम् ।
वज्रपूर्वा परीक्षे यं तत्तोऽस्माभिः प्रकीर्त्यते ॥१५

उनमें रत्न पैदा होता है और उनमें राक्षस विष, व्याल, व्याधियों के नाशक तथा अघों के हनन करने वालेभी उत्पन्न होते हैं तथा विगुण भी होते हैं ।८। वज्र (हीरा) मुक्ता (मोती), पद्मराग, मरकत ये मणियाँ कही गई हैं । इन्द्र, नीलमणि, वैदूर्य पुष्पराग, कर्केत सपुलक, रुधिराख्य, समन्वित स्फटिक, विद्रुत मणि इनके संग्रह में मणियो के ज्ञाताओं ने यत्न से कहा है ।९-१०। सर्व मणियों के आकार और वर्ण फिर उनके गुण एवं दोष तथा उनके फलों का परीक्षण करे । इसके पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रों के विद्वान् रत्नों की विद्या में परमकुशल लोगों ने उसका मूल्य भी जानना चाहिए ।११। बुरी लग्नों में तथा अपहृत दिन में जो रत्न उत्पन्न होते है वे दोषों से उत्पन्न हुआ करते हैं और गुणों की सम्पत्ति से हीन होते हैं ।१२। श्री की अभीप्सा रखने वाली

पृथ्वी के स्वामी के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके परम परिशुद्धि रत्नों का धारण करना या संग्रह करना चाहिए ।१३। शास्त्रों के ज्ञाता और परम कुशल रत्नों के रखने वाले पुरुष ही इनकी परीक्षा करने वाले हुआ करते हैं और वे ही इन रत्नों की मूल्य मात्रा के जानने वाले बताये गये हैं ।१४। विविध लोगों ने महान् प्रभाव वाले वज्र (हीरा) को बतलाया हैं । यह वज्र परीक्षा सर्वप्रथम होती है जो कि इस समय में हमारे द्वारा परिकीर्त्तित की जाती है ।१५।

तस्यास्थिलेशो निपपात येषु भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव ।
वज्राणि वज्रायुधनजिगोषोर्भवन्ति नानाकृतिमन्तितेषु॥१६
हैममातङ्गसौराष्ट्राः पौन्ड्रकालिंगकौशलाः ।
वेंन्वायटाः ससौवीरा वज्रस्याष्टविहारकाः ॥१७
आताम्रा हिमशैमेजाश्च शशिभा वेंन्वातटीयाः स्मृताः
सौवीरे त्वसिताब्जमेंधसदृशास्ताम्रश्च सौराष्ट्रजाः ।
कालिगाः कनकाबदातरुचिराः पीतप्रभाः कोशले
श्यामाः पुण्ड्रभवा मतंगविषये नात्यन्तपीतप्रभाः ॥१८
अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पश्वेंषु सम्यक्समं ।
रेखाविन्दु कलङ्ककाकंपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद् दृश्यते ।
तस्मिन्देव समाश्रयो ह्यवितथं तीक्ष्णाग्रधार यवि ॥१६
वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपि विग्रहः प्रोक्तः ।
वर्णेभ्यश्च विभागः कार्य्यो वर्णाश्रयादेव ॥२०
हरितश्वेतपी पिंगश्यामताम्रः स्वभाक्तो रुचिरा ।
हरिश्वरुणक्रत्लवहपितृपतिमरुतां स्वका वर्णाः ॥२१
विप्रस्य शंखकुमुदस्फटकावदातः
स्यात्क्षत्रियस्य शशबभ्रु विलोचनाभः ।
वैश्यस्य कान्तकदलीदलासन्निकाशः शूद्रस्य
धौतकरबालसमानदीप्तिः ॥२२

जिनमें भूमि के प्रदेशों में किसी भी प्रकार से ही उसका अस्थिलेश गिर गया था उनमें बज्रायुद्ध (इन्द्र) के निर्जिणषु के अनेक आकृति वाले बज्र हुआ करते हैं ।१६। हेम, मातंग, सौराष्ट्र, पोण्ड्र, कलिंग कौशल, वेण्बातट, ससौवीर ये आठ बज्र के विहारक होते हैं ।१७। हिमशैल में समुत्पन्न बज्र (हीरा) थोड़े ताम्र वर्ण वाले हुआ करते हैं । वेण्वातटीय बज्र चन्द्रमा की सी आभा से युक्त होते हैं । सौवीर बज्र असिताब्ज एवं मेघ के सदृश हुआ करते हैं । जो सौराष्ट्र में समुत्पन्न बज्र होते हैं वे ताम्र वर्ण के हुआ करती हैं कालिंग बज्र कनकके समान अवदात एवं रुचिर होते हैं । कोशल देश में उत्पन्न हुए बज्र पीत वर्ण की प्रभा से समन्वित होते हैं । पुण्ड्र में जिनकी उत्पत्ति होती है वे श्याम होते हैं । मतंग में प्रभाव होने वाले अत्यन्त पीत वर्ण की प्रभा से युक्त नहीं होते हैं ।१८। बहुत ही अधिक लघु वर्ण से युक्त गुण वाला बज्र होता है जिसके पार्श्व भागों में भली-भाँति समान रेखा, विन्दु, कलङ्क, काक पदक और त्रासादि से जो रहित होता है । ऐसा बज्र इस लोक में कहीं पर एक परमाणु के बराबर भी दिखलाई देता है और यदि अग्रधारा जिसमें तीक्ष्ण हो तो निश्चय ही उसमें देवों का समाश्रय होता है । यह पूर्णतया सत्य बात है ।१६। बज्रों में वर्णों की युक्ति से देवों का भी विग्रह बतलाया गया है । वर्णों के आश्रम से ही वर्णों से विभाग करना चाहिए ।२०। हरित्, श्वेत, पीत, पिंग, श्याम और ताम्र ये वर्ण स्वाभाविक रूप से ही रुचिर हुआ करते हैं । ये वर्ण हरि, वरुण, इन्द्र, अग्नि, पितृपति और मरुत् देवों के अपने वर्ण होते हैं ।२१। विप्रका वर्ण शङ्ख कुमुद और स्फटिक के समान अवदात होता है । क्षत्रिय का वर्ण शङ्ख, बभ्रु और विलोचन के सदृश आभा वाला होता है वैश्य का वर्ण कांत कदली (केला) के दल के तुल्य होता है और शूद्र का वर्णधौत करवालके सदृश दीप्ति से युक्त हुआ करता है ।२२।

द्वौ बज्रवर्णौ पृथिवीपतीनां सद्भिः प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ ।
यः स्याज्जवादिद्रुमभङ्गशोणो यो वाहरिद्रारससन्निकाशः ॥२३

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम् ।
कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योऽन्यः कथञ्चन ॥२४
अधरोत्तरवृत्तो हि याद्दक्त्याद्वर्णसङ्करः ।
ततः कष्टतरो वज्री वर्णानां सङ्करो मतः ॥२५
न च मार्गविभागमात्रवृत्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः ।
गुणवद्‌गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः॥२६
एकमपि यस्य शृङ्गं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा ।
गुणवदपि तन्न धार्य्यं श्रेयोऽर्थिभिर्भवने ॥२७
स्फुटताग्निविशीर्णशृङ्गदेश मलवर्णं वृषतर्व्यपेतमध्यम् ।
नहि वज्रभृतोऽपिवज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलालसां नकुर्य्याद्॥२८
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम् ।
नतत्रकुर्य्याद्द्धिनवमाणमाशुस्वच्छमृत्योरपिजीवितान्तम्॥२९

वज्रके दो वर्ण पृथिवी पतियोंके लिए सत्पुरुषों ने बतलाए हैं और ये वर्ण सर्व साधारण पुरुषोंके लिए नहीं कहे गए हैं । एक वर्ण तो वह होता है जो जवा विद्रुम के भय के समान शोण हो और दूसरा इसके बिकल्प में हरिद्रा के रसके समान होता है ।२३।समस्त वर्णोका स्वामी होने के कारण सभी वर्णो के गुणों से वह युक्त होता है । इसलिए स्वेच्छा से राजा धारण कर सकता है । किन्तु राजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी वर्ण वाला किसी भी प्रकारसे धारण न करे ।२४। अधरोत्तर वृत्त वाला जैसा कि वर्ण सङ्करता वाला हो इससे वज्र रखने या धारण करने वाला कष्टतर होता है । ऐसा वर्णोका संकर माना गया है ।२५। मार्ग के बिभाग मात्र की वृत्ति से ही विद्वान् पुरुष को वज्र का परिग्रह कभी नहीं करना चाहिए । जो गुणों से समन्वित वज्र होता है वह गुण और सम्प्रदायों की विभूति होती है । इसके विपरीत वज्र व्यसनों (कष्टों) के उदय का कारण है । ।२६। जिस वज्र का एक भी शृंग विचलित अथवा विशीर्ण यदि दिखलाई देता है, तो चाहे अन्य गुणों के युक्त भी क्यों न हो उसे श्रेय के चाहने वाले पुरुषों को भवन में कभी धारण नहीं करना चाहिए ।२७। स्फुटित अग्नि के सदृश

विशीर्ण जिस हीरा का श्रृंग देश हो और मल वर्ण वाले पृथ तो (विन्दु रेख) से मध्य भाग न्यतेत हो, ऐसे वज्र के धारण करने वाले का वह बज्र शीघ्र भी नहीं करता है और उसे अन्याश्रय की लालसा को नहीं करनी चाहिए ।२८। जिसका एक भाग क्षतजा के समान अवभासित होते हैं अथवा लोहित वर्ण से विचित्र सा हो उसे शीघ्रता में ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि वह स्वच्छन्द मृत्यु के भी जीवित का अन्त करने वाला होता है ।२९।

कोटयः पार्श्वानि धाराश्च षष्टौ द्वादशेति च ।
उत्तुङ्गमतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणाः ।।३०
षट्कोटिशुद्धममलं स्फुटतीक्ष्णधारं
वर्णान्वित लघु सुपार्श्वं मपेतदोषम् ।
इन्द्रायुधाशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेव विष
भुवि भवेत्सुलभं न वज्रम् ।।३१
तीक्ष्णाग्रं विमलमपेतसर्वदोषं धत्ते यः प्रयततनुः सदैव वज्रम्
वृद्धिस्तंप्रतिदिनमेत्रियाबदायुस्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम्।३२।
व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभयानिच ।
दूरात्तस्ये निवर्त्तन्ते कर्मान्याथर्वणानि च ।३३
यदि वज्रमपेतसर्वदोषं निभृयात्तन्डुलर्विंशति गुरुत्वे ।
मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुणं रूपं लक्षणमग्रमूल्यम् ।।३४
त्रिभागहीनार्द्ध तदर्द्ध शेषं त्रयोदशं त्रिंशदतीऽर्द्ध भागः ।
अशीतिभागोऽथ शतांशभागः सहस्रभोऽल्पसमानयोगः ।।३५
यत्तन्डुलैर्द्वादशभिः कृतस्य वज्रस्य मूल्यं प्रथमं प्रविष्टम् ।
द्वाभ्यांक्रभाद्धानिमपागनस्य त्वंकावसानाय विनिश्चयोऽयम्।।३६

जिस वज्रकी कोटियाँ,पार्श्व भाग और धाराएँ छैं आठ तथा बारह हों तथा उत्तुग,सम और तीक्ष्ण अग्रवाली हो ये हीरे के आकार (खान) में उत्पन्न होने वाले गुण हुआ करते हैं ।६०। छै कोटियों में युक्त, शुद्ध, अमल, स्फुट एवं तीक्ष्ण धाराओं वाला, वर्ण से युक्त, लघु, अच्छेपार्श्व भागों वाला, सम्पूर्ण दोषोंसे रहित और इन्द्रायुधकी किरणोंको बिभूति

से छुरित अन्तरिक्ष वाला इस प्रकार का वज्र (हीरा) इस भूलोक में सुलभ नहीं हुआ करता है।३३। तीक्ष्ण अग्रभाग से समन्वित, बिना मल वाला, समस्त दोषों से विवर्जित वज्र को जो कोई प्रयत शरीर वाला सर्वदा धारण किया करता है उसकी आये दिन वृद्धि होती है और यह जब तक जीवित रहता है उसे स्त्री, सुत, धन, धान्य, गौ और पशुओं का पूर्ण सुख रहता है।३४। उस पुरुष से व्याल (सर्प) अग्नि, विष, व्याघ्र, तस्कर और जल के भय तथा आथर्वण कर्म अर्थात् मारणोच्चाटनादि कर्म दूर से ही निवृत हो जाया करते हैं।३५। यदि ऐसा वज्र अर्थात् हीरा जो सब प्रकार के दोषों से रहित हो और बीस तन्डुल (चावल) के बराबर गुरुत्व वाला हो उसे कोई पुरुष धारण करता है तो मणि शास्त्र के विद्वान् लोग उसका द्विगुण रूप का लक्षण और अग्र मूल्य कहा करते हैं।३७। विभाग होने का अर्ध ! और उसका अर्धशेष, त्रयोदश, तीस का अर्ध भाग, अशींति भाग, शतांत भाग, सहस्र भाग इसका समान योग वाला होता है। बहुत बारह के द्वारा किया वज्रका मूल्य प्रथम ही बताया गया हैं। कम से दो के द्वारा हानि को उपागत एकावसान का यह विनिश्चय होता है।३६।

न चापि तुन्डुलैरेव बज्राणां धारणक्रमः।
अष्टाभिः सर्षपगौरैस्तण्डुलं परिकल्पयेत् ॥३७
यत्तु सर्वगुणैर्युक्तं वज्रं तरति वारिणि।
रत्नवर्गे समस्तेऽपि तस्य धारणमिष्यते ॥३८
अल्पेनापि हि दोषेण लक्ष्यालक्ष्येण दूषितम्।
स्वमूल्याद्दशमं भागं वज्रं लभति मानवः ॥३९
प्रकटानेकादोषस्य स्वल्पल्य महतोऽपि वा।
स्वमूल्याच्छतशो भागो वज्रय न विधीयते ॥४०
स्पृष्टदोषमलङ्कारे वज्र यद्यपि दृश्यते।
रत्नानां परिकल्पार्थं मूल्यं तस्य भवेत्लघु ॥४१

केवल तांडूलों(चावल)से ही जो गुरुत्व पहिले बताया गया है यही इस वज्र (हीरा) के धारण का कम नहीं होता है। बल्कि आठ सफेद

सरसों से उस तण्डुल की परिकल्पना कर लेनी चाहिए।३७ जो समस्त गुणों से युक्त जल में तैर जाया करता है और सम्पूर्ण रङ्ग वर्ण के होने पर भी उसका धारण करना अभीष्ट होता है।३८। लक्ष्य और अलक्ष्य अल्प दोष से भी दूषित अपने मुल्य से दशम भाग जहाँ मानव प्राप्त करता है तथा प्रकट अनेक दोषों वाले छोटे अथवा वड़े का अपने मूल्य से सौवां भाग बज्र का नहीं होता है।३९-४०। दोषोंसे स्पष्ट वज्रयद्यपि अलंकारों में दिखाई दिया करता है। किन्तु रत्नों के परिकल्पत मूल्य से उसका मूल्व थोड़ा ही होता है।४१।

प्रथमं गुणसम्पदाभ्युपेतं प्रतिबद्धं समुपैति यच्च दोषम्।
अलमाभरेणेन तस्यराज्ञो गुणहीनोऽपि मणिनं भूषणाय।।४२
नार्य्या वज्रमधार्य्यं गुणवदपि सुतप्रसूतिमिच्छन्त्या।
अन्यत्र दीर्घचिपटह्लस्वाद गुणैर्विमुक्ताच्च।।४३
अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च।
वैदूर्यस्फटिकाभ्याञ्च काचैश्चपि पृथग्विधैः।।४४
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः।
परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्धद्भि सुपरीक्षकैः।
क्षारोल्लेखनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम्।।४५
पृथिव्यां यावि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः।
सर्वाणि विलिखद्वज्र तच्चं तैर्न विलिख्यते।।४६
गुरुता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम्।
जातिरजाति विलिखन्ति वज्रकुरुविन्दाः।
वज्रैर्वज्रांद्विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम्।।४८
वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन जातयः।
न तेषां प्रतिबद्धानी भा भवत्यूर्ध्वगामिनी।।४९
तिर्य्यक्षतत्वाकेषाञ्चित्कथञ्चिद्यदि दृश्यते।
तिर्य्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते।।५०

यद्यपि विशीर्णकोटिः स बिन्दुरेखान्वितो विवर्णो वा ।
तदपि धनधान्य पुत्रान्करोति सेन्द्रायुधो वज्रः ॥५१
सौदामिनीविस्फुरिताभिरामोराजा दथौक्तं कुलिशंदधानः ।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रतापः समस्तसामन्तभुवं भुनक्ति ॥५२

सर्व प्रथम गुणों की सम्पदा से जो युक्त हो उसको ही ग्रहण करना उचित है । जहाँ पर दोष दिखाई देता हो उस वज्र को राजा के द्वारा आभरण के स्वरूप में धारण नहीं करना चाहिए क्योंकि गुणों से हीन मणि कभी भी भूषण के लिए उपयुक्त नहीं हुआ करता है ।४२। पुत्र के प्रसव की इच्छा वाली नारी को गुणों से युक्त ही वज्र को धारण करना चाहिए । अन्यत्र दीर्घ चिपिट (परमल) के समान ह्रस्व और गुणों से वियुक्त अलंकरण किया जाता है ।४३। अय (लौह)-पुष्पराग-गोमेदक, वैदूर्य, स्फटिक और पृथक् प्रकारके कांचों के द्वारा कुशल पुरुष वज्र के प्रतिरूप अर्थात् इमिटेशन नकली हीरा) किया करते हैं । अतएव भली भाँति परीक्षा करने वाले रत्नशास्त्रके विद्वानों को इसका परीक्षा (जाँच) कर लेनी चाहिए । क्षाराल्लेखनशालाओं के द्वारा परीक्षण कार्य करना चाहिए ।४४-४५। पृथिवी मण्डल में जितने रत्न हैं और अन्य जो लौह धातुएँ हैं वे सब वज्र के द्वारा विलिखित होती है किन्तु उनमें किसीके भी द्वारा वज्र विलिखित नहीं हुआ करताहै ।४६। समस्त रत्नो में वज्र की गुरुता होती है । इस गौरव के आधार का कारण भी होता है । सूरि वृन्द वज्र में अन्य सबसे विपरीत धर्मता बताते हैं ।४७। वज्र को कुरुविन्द जाति अजाति को विलिखित करते हैं । वज्र द्वारा ही वज्र विलिखित होता है । अन्य किसी के भी द्वारा वज्र विलिखित नहीं किया जाता ।४८। वज्र मुक्तामणि जो कोई भी जातियाँ है उनके प्रतिवद्ध करने पर उनकी भी उर्ध्वगामिनी नहीं होती हैं ।४९। तिर्यक (तिरछा) क्षत हो से यदि कुछ भी किसी प्रकार से दिखलाई देती है तो तिर्यक् आलिख्य मानों के यह पार्श्वों में विहन्यमान हो जाता है ।५०। यद्यपि विशीर्ण कोटियों वाला-बिन्दु रेखा से युक्त अथवा विवर्ज हो तो भी सेन्द्रायुध वज्र धन-धान्य और पत्रों के

करने वाला होता है । सौदामिनी (विद्युत्) की विस्फुरित के समान सुन्दर विस्फुरण वाला हीरा को जैसा कि बताया गया है, धारण करने वाला राजा पराक्रम से आक्रान्त पर प्रताप वाला सम्पूर्ण सामन्तों की भू का उपभोग किया करता है ।५०-५२।

३८—मुक्ता परीक्षा

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशंखमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि ।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषां च शुक्त्युद्भवमेव भूरि ।।१
तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निर्विश्यते रत्नपरस्य जातु ।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भव तेषां शेषान्यवे यानिवदन्ति तज्ज्ञाः ।।२
त्वक् सारनागेन्द्रतिमिप्रसूतं यच्छघज यच्च वराहजातम् ।
प्रायोवियुक्तानि भवन्ति भासा शस्तानि माङ्गल्यतया तथापि ।३
यामौक्तिकानामिह जातयोऽष्ठौ प्रकीर्त्तिता रत्नविनिश्चयज्ञैः ।
कम्बद्भवं तेप्वधमं प्रतिष्ठमुत्पद्यते यच्च गजेन्द्रकुम्भात् ।।४
स्वयोनिमध्यच्छवितुल्यवर्णं शाङ्खं वृहत्कोणपलप्रमाणम् ।
उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्णं प्रभयां विहीनम् ।।५
ये कम्बवः शाङ्खं मुखावमर्षपीतस्य शङ्खप्रवस्य गोत्रे ।
मतङ्गजाश्चापि तिशुद्धवंस्यास्ते मौक्तिकानां प्रभवाः प्रदिष्टाः
उत्पद्यते मौक्तिकमेषु वृत्तमापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ।।६
पाठीनपृष्ठस्य समानवर्णं मीनात् सुबृतं लघु चातिसूक्ष्मम् ।
उत्पद्यते वारिचराननेषु मत्स्याश्च ते मध्मचराः पयोधेः ।।७

सूतजी ने कहा—मुक्ताफल अर्थात् मोती द्विपेन्द्र—जीमूत—वराह—शङ्ख—मत्स्य—अहि (सर्प) और शुक्ति से उत्पन्न तथा वेणु से जन्म ग्रहण करने वाले प्रसिद्ध है । उन सबमें संसार में शुक्तियों सीपों से उद्गम प्राप्त करने वाले मोती ही अधिक है।१। उसमें रत्न पर एकाकी ही मूल यात्रा विनिवेशित की जाती है । जो सीप से समुत्पन्न मोती होते हैं उन सबमें वे ही मोती विद्ध हुआ करते हैं बाकी अन्य प्रकार से समुत्पन्न मुक्ताओंतब को इस शास्त्र के ज्ञाता लोग अवध्यही बतलाते हैं

।२। त्वक्सार-नागेन्द्र (हाथी)-तिमि (रोहू मछली) से समुत्पन्न मोती और जो शङ्ख से उद्भूत मोती तथा वराह से उत्पन्न होने वाला मुक्ता ये प्रायः प्रभा से बिमुक्त ही होते हैं तो भी माङ्गल्य से इनको प्रशस्त कहा जाता है ।३। रत्नों के विशेष निश्चय करनेके ज्ञान को रखने वाले विद्वानों ने जो मौक्तिकों की आठ जातियाँ बतलाई हैं उन सब में शङ्ख से समुत्पन्न मोती अधम प्रकार का बताया गया है जो मुक्ता गजेन्द्र के कुम्भ स्थल से उत्पन्न होता है वह अपनी योनि के मध्य भाग की छवि के तुल्य वर्ण वाला होता है। शङ्ख से समुत्पन्न मोती जो है वह बृहत्कोण पल के बराबर होता है। हाथी के कुम्भस्थल के मध्य से जो मुक्ता उत्पन्न होता है वह थोड़ा सा पीत वर्ण का और प्रभा से रहित होता है ।४-५। जो कुम्बु से उत्पन्न होने वाले होते हैं वे शार्ंगमुखाव-मर्षपीत शङ्खों में श्रेष्ठ गोत्र में हुआ करते हैं। मतङ्ग हाथी से उत्पन्न भी विशुद्ध वंश में होने वाले मुक्ता होते हैं। ये मोतियों की और पाठीन (मछली) की पीठ के समान वर्ण वाला-लघु और अत्यन्त सूक्ष्म हुआ करता है। जलचरों के मुखों में वह मोती उत्पन्न होता है। वे मछलियाँ समुद्र के मध्य में विचरण करने वाली हुआ करती हैं ।७।

वराहदंष्ट्राग्रभवं प्रदिष्ट तस्यैव दंष्ट्रांकुरतुल्यवर्णम् ।
क्वचित् कथञ्चिद् स भुवः प्रदेशे प्रजायते शूकरवद्विशिष्टः।८
वर्षोपलानां समवर्णशोभ त्वक् सारपर्वप्रभव प्रदिष्टम् ।
ते वेढवो भव्यजनोरभोग्ये स्थाने प्ररोहन्ति सार्वजन्ये ।।९
भौजङ्गमं मीनविशुद्धवृत्तं संस्थानतोऽत्युज्ज्वलवर्णशोभम् ।
नितान्तप्रीतविकल्पमानरित्रशधारासमवर्णकान्ति ।।१०
प्राप्यातिरत्नानि महाप्रभाणि राज्यं श्रियवा महतीं दुरापाम् ।
तेजोऽन्विताः पुण्यकृतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिशिरोभवस्य ।११
जिज्ञातया रत्नधनं विधिज्ञैः शुभे मुहुर्त्तैः प्रयतैः प्रयत्नात् ।
रक्षाविधानं सुमहद्विधाय हर्म्योपरिष्ठं क्रियते यदा तत् ।।१२

तदा महादुन्दुभिमन्द्रघोषैर्विद्युल्लताविस्फुरितान्तरालै ।
पयोधरक्रान्तिविलम्बिनम्रै धैनैयतेऽन्तरिक्षम् ॥१३
न तं भुजंगा न तु यातुधाना न व्याधयो नाप्युपसर्गदोषाः ।
हिंसन्ति यस्या हि शिरः समुत्थं मुक्ताफलंतिष्ठतिकोषमध्ये ॥१४

वराह (शूकर) की दाढ़ से उत्पन्न मोती उसी की दाढ़ अंकुर के समान वर्ण वाला बताया गया है । कहीं पर किसी प्रकार से भूमण्डल भाग में वह शूकर की भाँति विशिष्ट हुआ करता है ।८। वर्षा के उपलों के समान वर्षा की शोभा वाला बाँस के पर्व से प्रभव होने वाला मोती बताया गया है । वे बाँस भी सर्व साधारण मनुष्यों के उपभोग में आने वाले स्थान में नही हुआ करते हैं जिनके पर्वों के मोती होते है बल्कि परम भव्य जनों के उपभोग्य स्थान में ही ऐसे बाँस होते हैं ।९। जो सर्प से उत्पन्न होने वाला मुक्ता होता है वह मीन के समान विशुद्ध वृत वाला होता है और संस्थान से अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण की शोभा से सम्पन्न होता है । वह बहुत ही धौत और प्रविकल्शाभान वज्रको धारा के तुल्य वर्ण तथा कान्तिमान हुआ करता है ।१०। समस्त रत्नों को अतिक्रमण कर देने वाले ऐसे महा प्रभा से युक्त रत्नों को प्राप्त करके राज्य और बहुत ही दुर्लभ श्री को मानव प्राप्त कर लेते हैं सर्पके शिर में उत्पन्न मुक्ताफल अर्थात् मणि का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य तेज से युक्त और परम पुण्यधारी हो जाते हैं ।११। ऐसे रत्न धन को प्राप्त करने के लिए बड़ी ही जिज्ञासा होती है और विधि के जानने वाले किसी शुभ मुहूर्त में प्रयत्नोंसे युक्त होकर प्रयत हुआ करते हैं । लोग अपनी सुरक्षा का बड़ा भारी विधान पहिले कर लेते हैं जो विजली की चमक से आकाश का अन्तराल परिपूर्ण होता है तथा पयो-धरों की आक्रान्ति से नीचे झुके हुए एवं नम्र घने मेघों से आकाश आच्छिन्न होता है । जिस पुरुष के कोष के मध्य में सूर्य से समुत्पन्न मणि रहती है उसे भुजंग, यातु धान, व्याधियाँ, उपसर्ग दोष पीड़ित नहीं रहते ।१२-१४।

नाभ्येति मेघप्रभवं धरित्री वियद्गतं तद्विबुधा हरन्ति ।
अर्चिःप्रभावावृतदिग्विभागमादित्यवद् दुःखनिभाव्यविम्बकम्।१५
तेजस्तिरस्कृत्य हुताशनेन्दुनक्षत्रताराभव समग्रम् ।
दिवा यथा दीप्तिकरं तथैव तमोऽवगाढ़ास्वपि तन्निशासु ।।१६
विचित्ररत्नद्युतिचारुतोया चतुःसमुद्रा भुवनाभिरामा ।
मूल्यं न वा स्यादितिनिश्चयो मे कृत्स्ना महीतस्य सुवर्णपूर्णा।१७
हीनाऽपि यस्तल्लभते कदाचिद्विपाकयोगान्ममः शुभस्य ।
सापत्न्यहीनां स महीं समग्रां भुनक्ति तत्तिष्ठति यावदेव ।।१८
न केवल तच्छुभकृत्नृपस्य भाग्यैः प्रजानामपि तस्य जन्म ।
तद्योजनानां परितः सहस्रं सर्वाननर्थान् विमुखीकरोति ।।१९
नक्षत्रमालेव दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य ।
विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयःसु पत्यः पयसां पपात ।।२०
सम्पूर्णचन्द्रांशुकलापकान्तेर्मणिप्रवेकस्य महागुणस्य ।
तच्छुक्तिमत्सु स्थितिमाप बीजमासन् पुराऽन्यभवानियाति।२१

मेघ से समुत्पन्न मौक्तिक इस धरित्री तल तक आ नही पाताहै । उसे तो देवगण आकाशसे ही हरण कर लिया करते हैं । जिसकी अर्चियों की प्रभा से समस्त दिशाओं के भाग प्रावृत होते हैं वह सूर्य के समान बड़े कष्ट से देखने के योग्य बिम्ब वाला होता है।१५। वह अन्धकार से परिपूर्ण रात्रियों में भी दिन के समान दीप्ति करने वाला हुआ करता है ।१६। विचित्र रत्नों की द्युति से सुन्दर जल वाले वनों में परम अविराम चारों समुद्रों वाली और सुवर्ण से भरी पूरीं यह सम्पूर्ण मही भी उस रत्न का मूल्य नहीं हो सकती है ।१७। यदि कोई हीन पुरुष इस महादुर्लभ रत्न को प्राप्त कर लेता है तो वह फिर सम्पन्न भाव से रहित इस समय भूमण्डल को भोगा करता हैं ।१८। वह केवल राजा को ही शुभ करने वाला नहीं होता बल्कि प्रजाओं के भाग्य से भी उसका जन्म हुआ करता है । उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है

कि चारों ओर सहस्रों योजन तक समस्त अनर्थों को दूर भगा दिया करता है ।१९। उस महासुर की दन्तावलि आकाश में नक्षत्रों का माला के समान विस्तीर्ण हुई है । विचित्र वर्ण वाले जल के स्वामी के जल में विशुद्ध वर्ण वाली वह गिरी थी ।२०। सम्पूर्ण चन्द्र के अंशु कलाप के समान कान्ति वाले—महान् गुणोंसे समन्वित मणियों में श्रेष्ठ के बीज ने शुक्ति वालों में स्थिति प्राप्त की थी पहिले भी जो अन्य भवन थे ।२१।

यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम् ।
तस्मिन्पयस्तोयधरावकीर्ण शुक्तौ स्थितंमौक्तिकतामवाप।२२
सैंहिलकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णपारशवाः ।
कौवेरपान्ड्यहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ ।।२३
शुक्त्युद्भवं नाति निकृष्टवर्णप्रमाणसंस्थानगणप्रभाभिः ।
उत्पद्यते व[illegible]नपारसीकपाताललोकान्तरसिंहलेषु ।।२४
चिन्त्या न[illegible]स्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाणे यतेत् विद्वान ।
नं च व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाकृतयोभवन्ति ।।२५
एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शाणेन सप्रन्मितस्य ।
मूल्यं सहस्राणि तु रूपकाणां त्रिभिःशतेनायधिकानि पच।२६
यन्माषकार्द्धेन ततो विहीनं तत्पञ्चभगद्वयहोनमूल्यम् ।
यन्माषकानांस्त्रीन् विभृयात्सस्रे द्वे तस्य मूल्यंपरमंप्रदिष्टम्।।२७
अर्धाधिकौ द्वौ वहतोऽस्य मूल्यं त्रिभिः शतैरप्यधिकं सहस्रकम् ।
द्विमाषकोन्मापित गौरवस्य शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम्।२८

जिस प्रदेश में अम्बुनिधि में मुक्तामणि बीज गिरा उसमें जल के नीचे बिखरी शक्ति (सींप) में स्थित हो मोती बन गया था ।२२। उसको सैंहिलक, पारलौकिक, सौराष्ट्रिक, ताम्रवर्ण, पारशव, कौवेर, पाण्ड्य हाटक, हेमक ये आठ आकार हैं ।२३। शक्ति से समुत्पन्न मोती प्रमाण, संस्थान, गुण और प्रभा से अति निकृष्ट वर्ण वाला नहीं होता है । यह वर्द्धन पारसीक पाताल लोकान्तर सिंहलों में उत्पन्न होता

है ।२४। उसके आकारमें उत्पन्न होने वाली विशेषताओंका कोई चिंतन नहीं करना चाहिए उसके गुण और दुर्गुणों की कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई है क्योंकि सभी जगह सब प्रकार की प्राकृति वाले हुआ करते हैं ।२५। शक्तिसे गपुन्नान्न एक मोतीका सहस्रों रुपये मूल्य होता है ।२६। जो एक उर्द के आधे भाग के बराबर हो या उससे भी कमहो तो वह उसके पञ्च भाग द्वय से हीन मूल्य वाला होता है । तीन भापकों के बराबर का मूल्य दो सहस्र रुपये होता है ।२७। दो अर्ध अधिक वहन करने वाले इसका मूल्य एक सहस्र से तीन सौ, अधिक हुआ करता है । दो माषक और उन्मापन से गौरव युक्त का मूल्य आठ सौ से अधिक कहा गया है ।२८।

अर्द्धाधिकं माषकमुन्मितस्य सपंचविंशत्त्रितयं शतानाम् ।
गुञ्जाञ्च षड् धारयत:शते द्वे मूल्यं परं तस्य वदतितज्ज्ञा:
अध्यर्क्षदमुन्मापकृत शतं स्यान्मूल्यगुणैस्तस्तसमन्वितस्या।२६
यदि षोडशभिर्भवेदनूनं धरषं तत्प्रवदन्ति द्वाविकाख्यम् ।
अधिक:दशभि:शतं च मूल्यं समाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात्।३०
द्विगुणै दशभिर्नवेदननं धशंण तद्भवप वदन्ति तज्ज्ञा: ।
नवसप्ततिमापनुयात्स्वमूल्य यदि स्याद्गुणसम्पदाविहीनम् ।।३१
त्रिशतां धरण पूर्ण शिक्यन्तस्तेति कीर्तयत ।
चत्वारिंशद् भवेत्तस्या: परो मूल्यो विनिश्चय: ।।३२
चत्वारिंशद् भवेच्छक्तो त्रिशन्मूल्यं लभेत् सा ।
षष्ठनिकरशीष स्यातस्य मूल्यं चतुर्दश ।।३३
अशीतिर्नवतिश्चैव कूप्येति परिकीर्त्तिता ।
एकादश स्यान्नव च तयोर्मूल्यमनुक्रमात् ।।३४
आदाय तत्लकलमेव ततोऽन्नभन्डं जम्बीरजातरसयोजनया।
विपक्वम् धृष्टं । ततो हदुतनकृतपिन्डमूलै: कुष्य द्यिथेष्टमनु मौक्तिकमाशुविद्धम् ।।३५

आधा अधिक माषक और उन्मित मोती का मूल्य तीन सौ बीस होता है। इस विषय के ज्ञाता लोग छै गुँजा के प्रमाण को परम मूल्य दो सौ रुपये बतलाते हैं। इसके आधे प्रमाण वाला यदि उन्माषकृत हो और गुणों से समन्वित हो तो उसका मूल्य एक सौ रुपये होता है ।६। यदि सोलह से अनून धारण हो तो उसे दार्विकाख्य कहते हैं। दश से अधिक सौ रुपये भी किसी बालिश (मूर्ख) के हाथ से प्राप्त हो जाता है ।१०। दुगुने दश से अनून धारण हो तो उसके ज्ञाता लोग उसे भवक कहा करते हैं। यदि नृपों की सम्पदा से विहीन न हो तो उसका अपना मूल्य नौ सप्तति (नौ-सत्तर) प्राप्त हो जाता है ।३१। तीन सौ का पूर्ण धरण शिक्यन्तस्या उसका सबसे अधिक मूल्य चालीस होता है ।३२। जो चालीस शिक्य होता है उसका मूल्य तीस रुपये ही प्राप्त होते हैं। साठ निकर शीर्ष जो ही उसका मूल्य चौदह होता है ।३३। अस्सी और नब्बे कूप्या-यह परिकीर्त्तित किया है। इन दोनों का मूल्य एकादश और नौ अनुक्रम से होता है ।३४। उन सबको लेकर अन्न के पात्र में जम्बीर जात रस की योजना द्वारा विपक्व करे फिर कोमल तनूकृत हिण्ड मूलों से घर्षण करे तो फिर तुरन्त ही अपनी इच्छा के अनुसार मोती वेध के योग्य हो जाता है ।३५।

मृल्लित्तमत्स्यपुटमध्यगतन्तुकृत्वापश्चात्पचेत्तनुततश्चवितानपत्या
दुग्धेयतःपयासितर्विपचेत्सुधायांपक्वततोऽपि पयसाशुचिचिक्कणे
शुद्ध ततोः विभलवस्त्रनिघर्षणेन स्यान्मौक्तिकं विपुलसद्गुण
कान्तियुक्तम् ।।३६

व्याडिर्जगाद जगताहि महप्रभायसिद्धोविदग्धिाहितितत्परया।
दयालु ।

श्वेतकाचसमं तारं हेमांशतयोजितम् ।।३७
रसमध्ये प्रधार्य्येत मौश्रिक देहभूषणम् ।
एव हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जनाः ।।३८
यस्मिन्कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके ।
उष्णेर्हिलवणे स्नेहे निशां वासयेज्जले ।।३६

व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् ।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम् ॥४०
सितं प्रमाणवत् स्निग्धं गुरु स्वच्छं सुनिर्मलम् ।
तेजोऽधिकं सुवृत्तञ्च मौक्तिकं गुणवत्स्मृतम् ॥४१
प्रमाणवद् गौरवरश्मियुक्तं सितं स वृत्तम समसूक्ष्मवेधम् ।
अक्रेतुरप्यावहति प्रमोदं यन्मौक्तिकं तदगुणवतप्रदष्टिम् ॥४२
एवं समस्तेन गणोदयेन यन्मौक्तिकं योगमुपागतं स्यात् ।
न तस्य भर्त्तार मनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः।४३

मृत्तिका से लिप्त करके मत्स्य पुटमें रक्खे और फिर वितान पत्ती से थोड़ा पाचन करे। फिर दुग्धमें तथाइसके पश्चात् जलमें पाचन करे सुधा में शक्व करे और फिर शुचि चिक्कण पयके साथ पकावे। इसके करने के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से मोतियों का निघर्षण करे तो वे मोती परम शुद्ध और बहुत सद्गुण एवं कांति से युक्तहो जाते हैं। महाप्रभाव सिद्धि एवं दयालु व्याडिने संसारके लोगों पर कृपा करके चतुरोंके हित पर घ्यान देकर ऐसा कहाथा। श्वेत कांचके सम चाँदी और जो हेमांश शतसे योजितहो ऐसे देहके भूषण मौक्तिकको रसके मध्यमें धारण करे। इसी प्रकार से सिंहल देशमें कुशल पुरुष किया करते हैं।३६-३८। जिस मौक्तिक में बनावटी होने का सन्देह हो उसे उष्ण लवण सहित स्नेह में एकरात्रि जलमें वासित करे अथवा शुष्क वस्त्रसे उपवेष्टित कर व्रीहियों के साथ मर्दन करे। ऐसा करने पर जिसमें कोई भी विवर्णता न आवे तो समझ लेवे कि वह अकृत्रिम अर्थात् असली मौक्तिक ही है बनावटी नहीं है सित्, प्रमाणवप्, स्निग्ध, गुरु, स्वच्छ, सुविमल, अधिक तेज से युक्त और सुवृत मौक्तिक गुणों से समन्वित कहा गया है। प्रमाणवत्, गौरव और रश्मियों से युक्त सित, सुवृत तथा सम एवं सूक्ष्म वेधवाला जो न ख़रीद दारी करने वाले के मनको भी प्रमोद देने वाला हो वही मोती गुणगण से समन्वित बताया गया है ।३९-४२। इस प्रकार से सम्पूर्ण गणों के उदय से जो मौक्तिक योग को प्राप्त हुआ हो उस मोती

के स्वामी यथा धारण करने वाले को अनर्थ से समुत्पन्न कोई भी दोष उपस्थित नहीं होता है ।४३।

३९—पद्मराग परीक्षा

दिवाकरस्तत्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नजीवम् ।
असृग् गृहीत्वा चरितु प्रतस्थे निस्त्रं शनीलेन नभःस्थलेन ॥१
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्र वीर्य्यावलेपोद्धतमानसेन ।
लङ्काधिपेनार्द्ध पथे समेत्यस्वर्भानुवेव प्रसभं निरुद्धः ॥२
तत्सिंहलीचारुनितम्बविम्वविक्षोभितागाधमहाह्लदायाम् ।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम् ॥३
ततः प्रभृति गङ्गातुल्यपुण्यफलोदया ।
नाम्ना रावणगंगेति प्रथिमामुपागता ॥४
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैचितानि तस्याः ।
सुवर्णनाराचशतैरिबान्पवहिःप्रदीप्तैर्निशितानिभान्ति ॥५
तस्यास्तटेपूज्ज्वल चारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः ।
सौगन्धिकोत्थाः कुरुबिन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसंप्रसूताः ॥६
वन्धूकगुंजासकलेन्द्रगोमजवासमासूक्तमवर्णशोभाः ।
भ्राजिष्णवो दाड़िमबीजवर्णास्तथापरे किंशुकपुष्पभासाः ॥७

सूतजी ने कहा—उस महान् महिमा से युक्त महासुरका उत्तम रत्न बीज यह दिवाकर है जो ग्रहण करके निर्स्त्रिश नील इस नभस्थल के द्वारा विचरण करने हेतु प्रयत्न करता था । समरों में निरन्तर सुरों को जीतने वाले, वीर्य, पराक्रम के गर्व से उद्धत मनवाले लङ्का के स्वामी ने अर्ध पथ में आकर स्वर्भानु की ही भाँति इसे बलात् रोक दिया था ।१-२। सिंहल द्वीप की ललनाओं के अति सुन्दर नितम्ब बिम्वों से विक्षोभित और अगाध महान् ह्रद वाली दोनों ओर के तटों पर पूगों की वृक्षावली से सुशोभित सरिताओं में परमोत्तम में सूर्य ने मोचन किया था ।३। तभी से लेकर वह सरिता गङ्गा के समान पुण्यों

के फलोदय वाली 'रावण गङ्गा' इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी ।४। तब से ही आरम्भ करके उसके कूल रात्रियों में रत्नों से निश्चित रहा करते हैं। सुवर्ण नाराचशतों के समान भीतर-बाहिर से प्रदीप्तों से निशित भाषित होते हैं ।५। उस नदी के तटों और जलों में उज्ज्वल एवं चारु राग वाले पद्मराग होते हैं। सौगन्धिक और कुरु विन्दज—महान् गुणों वाले तथा वे स्फटिक सम्प्रसूत होते हैं ।६। बन्धूक पुष्प, गुञ्जाफल, सक्लेन्द्रगोप और जवा के समान तथा असृत रक्त के समान वर्ण की शोभा वाले भ्राजिष्णु तथा अनारके दाने तुल्य वर्ण वाले ओर अन्य ढाक के पुष्प के समान दीप्ति वाले हैं ।७।

सिन्दूरपद्मोत्पलकुँकुमानां लाक्षारसस्यापि समानवर्णाः ।
सांद्रेऽपिरागे प्रभया स्वयैव भान्ति स्वलक्ष्याः स्फुटमध्य शोभाः ॥८
भानोश्च भासामनुवेधयोगमासाद्य रश्मिप्रकरेण दूरम् ।
पार्श्वानि सर्वाण्यनुरञ्जयन्ति गुणोपपन्नाः स्फटिकप्रसूताः ॥९
कुसुम्भनीलव्यतिमिश्ररागप्रत्युग्ररक्ताबुजतुल्यभासः ।
तथापरेऽरुष्करकण्टुकारीपुष्पत्विषी हिंगुलगत्त्विषोऽन्यै ॥१०
चकोरपुँस्कोकिलसारसानाँ नेत्राबभासश्च भवन्ति केचित् ।
अन्ये पुनः संति च पुष्पितानां तुल्यविषः कोकनदोत्तमानाम् ।११
प्रभावकाठिन्यगुरुत्वयोगैः प्रायः समानां स्फाटिकोद्भवानाम् ।
आनीलरक्तोत्पलचारुभासः सौगन्धिकोत्था मणयो भवन्ति ।१२
कामं तु रागः कुरुविन्दुजेषु स नैवचाहक्स्फटिकोद्भवेषु ।
निर्चिषोऽन्तर्बहुला भवन्ति प्रभाववन्तोऽपि नतै समस्तः ॥१३
ये तु रावणगङ्गायां जायन्ते कुरुविंदकाः ।
पद्मरागधनं रागं विभ्राणाः स्फटिकार्चिषः ॥१४

सिन्दूर, पद्मोत्पल, कुंकुम और लाक्षारस के समान वर्ण वाले हैं सांद्र राग के होने पर भी अपनी ही प्रभा से स्वलक्ष्य तथा स्पष्ट मध्य की शोभा वाले होते हैं ।८। दूर से ही सूर्य की दीप्तियों की किरणों के

समुदाय से अनुवेध के योग को प्राप्त कर गुणों से सम्पन्न तथा स्फटिक से समुत्पन्न समस्त पार्श्व भागों को अनुरंजित किया करते हैं ।६। कुछ कुसुम्भ और नील के व्यतिमिश्रित रङ्ग से प्रत्यग्र रक्त कमल की तुल्य दीप्ति वाले हो हैं। अन्य अरुष्कर कण्टकारी के पुष्प के समान कांति वाले हैं और कुछ हिंगुल के तुल्य कान्ति से युक्त हुआ करते है ।१०। चकोर, पुष्कोकिल और सारस के नेत्रों के समान अवभाषित होने वाले कुछ हुआ करते हैं कुछ उत्तम एवं पुष्पित कोकनद के समान कान्ति वाले होते हैं ।१५। प्रभाव, कठिनता और गुरुत्व के भोग से प्रायः स्फटिक से उद्‌भव होने वाले समान ही होते हैं । सौगन्धिकोत्थ मणियाँ थोड़ी नील, रक्तोपल के समान दीप्ति वाली हुआ करती है ।१२। जो कुरुविन्दु से समुत्पन्न हैं । उनमें राग यथेष्ट होता है वह स्फटिक ने उद्‌भव प्राप्त करने वालों में जंसा होता है वैसा नहीं है । वे उन सम्पूर्णो से प्रभाव वाले होते हुएभी बिना अर्चियों वाले और अन्त-बंहल होते हैं ।१३। जो रावण गङ्गा से कुरुविन्तक उत्पन्न होते हैं वे पद्‌म रागके समान धना राग धारण करने और स्फटिक जैसी अर्चियों को धारण करने वाले हुआ करते हैं ।१४।

वर्णानुयानिरतेषां आंध्रदेशे तथा परे ।
न जायन्ते हि ये केचिन्मूल्यलेशमवाप्नुयुः ॥१५
तथैव स्फटिकोत्थानां देशे तुम्बरुसंज्ञके ।
सधर्माणः प्रजायन्ते स्वल्पमूल्या हिते स्मृताः ॥१६
वर्णाधिक्यं गुरुत्व च स्निग्धता समतच्छिता ।
अर्विष्मत्ता महता च मणीनां गुणसंग्रहः ॥१७
ये कर्करच्छिद्रमलोपदिग्धाः प्रभाविमुक्ता पुरुषा विवर्णाः ।
न ते प्रशस्ता मणयो भवन्तिसमानतोजातिगुणैः समस्ता ॥१८
दोषोपसृष्टं मणिमप्रवोधाद्बिभर्ति यः कश्चन कच्दिेव ।
तं शोकचिन्तामयमृत्युवित्तनाशादयो दोषगणाहरन्ति ॥१६
कामं चारुतराः पञ्च जातानां प्रतिरूपकाः ।
विजायता प्रयत्नेन विद्वांस्तानुपलक्षयेत् ॥२०

कलसपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थभुक्तपाणीयाः ।
श्री पूर्णकांश्च सदृशा विजातयः पद्मरागाणाम् ॥२१
तुषोपसर्गान्कलसाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुत्थम् ।
कार्ष्ण्यात्तथा सिंहल देशजातं मुक्ताभिधानंनभसःस्वभावात्॥२२
श्रीपूर्णकं दातिविनाकृतत्वाद्विजातिलिंगाय एव भेदः ।
यस्ताम्रिका पुष्यतिपद्मरागो योगात्तुषाणमिवपूर्णमध्यः ॥२३

उन्हीं के जैसे वर्ण का अनुकरण करने वाले दूसरे आन्ध्र देशी उत्पन्न नहीं होते जो कोई मूल्य का लेश भी प्राप्त कर सकें ।१५।उसी प्रकार से तुम्वरु नाम वाले देश में स्फटिक से समुत्पन्नों के समान धर्म वाले पैदा होते हैं किन्तु वे वहुत थोड़ी मूल्य वाले कहे गये हैं ।१६। मणियों की वर्ण अधिकता–गुरुता–स्निग्धता–समता–स्वच्छता–अर्चियों वाली होना–महत्ता ये ही गुण हैं जिनका संग्रह होता है ।१७। जो मणियाँ कर्कर–छिद्र और मल से उपदिग्ध होती है तथा प्रभाव (जो कि मणि रत्नों का बताया गया है) से रहित है–कठोर और बिना समुचित वर्ण वाली हैं वे जाति एवं गुणों के पूर्ण होने पर भी प्रशस्त नहीं होती है ।१८। जो कोई पुरुष अज्ञानवश दोषों से उपसृष्ट मणि को धारण किया करता है उसको शोक–चिन्ता–रोग–मृत्यु–वित्तनाश आदि दोषों के समूह हरण कर लेते हैं ।१९। पाँच जातियों के चारुतर यथेष्ट प्रतिरूप विजातीय रत्न होते हैं । विद्वान् पुरुषको चूर्ण प्रयत्न से उसको देख लेना चाहिए ।२०। कलशपुर में उत्पन्न सिंहल और तुम्बरु देश में समुत्पन्न-मुक्त पाणीय और श्री पूर्वक ये विजातीय रत्न पद्मरागों के सदृश ही हुआ करते हैं ।२१। तुषोपसर्ग से कलश नाम वाला और थोड़ा ताम्र भाव होने से तुम्बुरुत्य तथा कृष्णता होने से सिंहल देश में समुत्पन्न नभके स्वभाय होने से मुक्ता नाम वाला है ।२२। दीप्ति के विनाशकृत होने से श्री पूर्णक है और विजातीय चिन्ह का आश्रय प्राप्त करना उसका भेद होता है जो पद्मराग ताम्रिका का पोषण करता है तुषाओं के समान योग से पूर्ण मध्य होता है ।२३।

स्नेहप्रदिग्धः प्रतिभाति यश्च योवा प्रधृष्टः प्रजहाति दीप्तिम् ।
आक्रान्तमूर्द्धा च तथांगुलिभ्यां यःकालिकां पार्श्वगतांविभर्ति।२४
संप्राप्त चोत्क्षिप्य यथानुवृत्ति विभर्ति यः सर्वगुणानवीव ।
तुल्यप्रमाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वे भवेत्त् तुल्यः ।
प्राप्यापि रत्नाकरजां स्वजाति लक्षेद् नृपत्वेन गुणेन विद्वान्।।२५
अप्रणश्यति सन्देहे शाणे तु परिलेखयेत् ।
स्वजातकममुत्थेन लिखित्वापि परस्परम् ।।२६
वज्रं वाकुरुविंदं वा विमुच्यानेन केनचित् ।
काशक्यं लेखन कर्तुं पद्मरागेन्द्रनीलयोः ।।२७
जात्यस्य सर्वेऽपिमाणेस्तु याद्दग् विजायतः सति समानवर्णाः ।
तथापि नामाकरणार्थमेव भेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ।।२८
गुणोपपनेन सहावबद्धो मणिर्न धार्य्यो विगुणो हि जात्यः ।
न कौस्तुभेनापि सहाववद्धं विद्वान्विजातिविभृयात्कदाचित्।।२९

जो स्नेह से प्रदिग्ध प्रतीत होता है अथवा जो प्रधृष्ट हुआ दीप्तिको त्याग देता है और जो अंगुलियोंसे आक्रान्त मूर्धा वाला होकर पार्श्वगत कालिका को धारण कर लेता है ।२४। जो यथानुवृत्ति प्राप्त कर और उत्क्षिप्त होकर समस्त गुणों को अत्यर्थ रूपसे धारण किया करता तथा प्रमाण की समानता से तथा जाति के अनुसार जो गुरुत्व से तुल्य होता हैं और रत्नों के आकार में समुत्पन्न अपनी जाति का होने से ही विद्वान् पुरुष को रत्न की जाँच करनी चाहिए ।२५। सन्देह के प्रवष्ट न होने पर शाण पर रखे जाने पर उसे परिलक्षित करे तथा स्वजातक से समुत्पन्न परस्पर में लिखित करके भी देखना चाहिए । वज्र अथवा कुरुविन्द हो इसका त्याग कर पद्मराग तथा इन्द्र नील पर लेखन इससे यदि नहीं किया जा सकता है तो इस जाति के रत्न समान वर्ण होने वाले सभी विजातीय होते हैं—ऐसे समझ लेना चाहिए । तथापि नामकरण करने के लिए ही यह भेदों का परम प्रकार यहाँ बता दिया

गया है ।२६-२८। गुणों से उत्पन्न होता हुआ भी जो सहावबद्ध होऐसा रत्न मणि जो जातिय विगुणता से युक्त हो कभी धारण नहीं करे । कौस्तुभ मणि की समानता रखने वाला भी भले ही वह मणि क्यों न हो यदि विभातीय है तो विद्वान् पुरुष को कभी ऐसा रत्न धारण नहीं करना चाहिए ।२६।

चाण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भू रीनपि हन्त्ययत्नात् ।
अथौ मणीन्भूरिगुणोपन्नान्शस्नोति विप्लावयितु विजात्यः ।३०
सपत्नमध्येपि कृताधिवासं प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम् ।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्तारमापस्पृशतीह काचित् ।।३१
दोषोरसर्गप्रभाश्च येते नोप द्रवास्त समाभद्रवन्ति ।
गुणैः समुत्तेजितचारुरागः यः पद्मरागं प्रयतो विभर्ति ।।३२
वज्रस्य तत्तण्डुलसंख्ययोक्तं मूल्यं समुत्पादितगौरवस्य ।
तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्माषकभ्याकलितस्य मूल्यम् ।।३३
वर्णदीप्त्युपपन्नं हि मणिरत्नं प्रशस्यते ।
ताभ्यामीषदपि भ्रष्टं मणिमूल्यात्प्रहीयते ।।३४

जिस प्रकार से एक भी चाण्डाल द्विजातियोंके साथ मिलकर बहुत से इनको विना ही किसी यत्न के द्विजातित्व से हनन कर दिया करता है इसी तरह से विजात्य मणि बहुत से गुणों से उपपन्न अनेक मणियों को विप्लावित कर सकता है ।३०। शत्रुओं के मध्य में अधिवास करने वाले और प्रमाद की वृत्त में भी वर्तमान रहने वाले महान् गुण युक्त पद्मराग को धारण करने वाले स्वामी को कोई भी आपत्ति स्पर्श नहीं किया करती है ।३१। दोषों से उपसर्ग से उत्पन्न होने वाले जो भी उपद्रव हुआ करते हैं वे उसको उपद्रुत नहीं किया करते हैं जो गुणों से समुत्तेजित सुन्दर राग वाले पद्म रागमणि को प्रयत्नशील होता हुआ धारण किया करता है ।३२। जो एक तण्डुल की संख्या से वज्र का मूल्य कहा गया है वह समुत्पादित गौरव वाले तथा महान् गुणों से सम्पन्न एक मासक पद्मराग का मूल्य होता है ।३३। वर्ण और दीप्ति

से उत्पन्न रत्न प्रशस्त कहा जाता हैं। इन दोनों गुणों से यदि थोड़ा भी हीन हो तो वह रत्न मूल्य में हीन हो जाता है।३४।

४०—मरकत परीक्षा

दानवाधिपते पित्तमादाय भुजंगाधिपः ।
द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ ।।१
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ ।
राजतः स महानेकः खण्डसेतुरिवाबभौ ।।२
ततः पक्षनिपातेन संहरन्निव रोदसी ।
गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तुमुपचक्रमे ।।३
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाद्युक्ततुरस्कपादपायाम् ।
नलिकावनगन्धवासितायां वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम् ।।४
तस्यप्रपातसमन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रतासमीपे ।
स्थानंक्षितेरुपपयोनिधितीपलेखंतत्प्रत्ययान्मरकतःकरतांजगाम्।५
तत्रैव किंचित्पततस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान् ।
मूर्च्छापरीतःससस्त्रैव घोणारन्ध्रद्वयेन प्रमुमोच सर्वं ।।६
तत्राकठोरशुक्रकंठशिरीषपुरुषखद्योतपृष्ठचरशाद्वलशैवलानाम् ।
कह्लारशष्पकभुजङ्गजांचपत्रप्राप्तत्विषोमरकताःशुभदाभवति७

श्री सूतजी बोले-भुजङ्गों का स्वामी वासुकिनाग दानवों के अधिपति के पित्त को लेकर व्योमके दो भाग मानों करता हुआ शीघ्र चला गया था।१। उस समय से वह अपने शिर के रत्नकी प्रभा प्रदीप्त नभ रूपी अम्बुधिमें पूरक महान् खंड सेतु की भाँति सुशोभित हुआ था।२। इसके अनन्तर गरुड़ पक्षी के निपात से रोदसी का संहार करते हुएकी भाँति पन्नगेन्द्र के ऊपर प्रहार करने को उद्यत हुआ था।३।उस फणींद्र ने सहसा ही उसे सुरसादि के उक्त तुरस्क पादपों वाली—नलिका वन की गन्ध से सुवासित वरमाणिक्य गिरि की उपत्यका में छोड दिया था।४। उसके गिरने के समनन्तर काल में ही रमा के समीप में उसके श्रेष्ठ आलय को व्यतीत कर उसी के समान भूमि के उपपयोनिधि के

तट की लेखा वाला उसके प्रत्यय से वह स्थान मरकत मणि की खान बन गया था ।५। वहाँ पर ही गरुत्मान् ने आकर इस गिरते हुए पित्त से कुछ थोड़ा सा भाग ग्रहण कर लिया था । मूर्च्छा से परीत होकर उसने तुरन्त ही नासिका के दोनों नथुनों से उन सबको त्याग दिया था ।६। वहाँ पर अकठोर शुक कण्ठ-शिरीष पुरुष, खद्योत, पृष्ट, चर,शाद्वल, शैवाल, कह्लार, शष्पक और भुजङ्ग भुज के पत्रों की कान्ति वाले शुभ देने वाले मरकत मणि रत्न होते हैं ।७।

तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभियुक्तं पपात पित्तं दितिजाधिपस्य ।
तस्याकरस्यातितरां स देशो दुःखोपलभ्यश्च गुणैश्चयुक्तः।८
तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते ।
तत्सर्वं विषरोगाणां प्रशमाय प्रकीर्त्तर्यते ।।९
सर्वमन्त्रौषधिगणैर्यन्न शक्यं चिकित्सितुम् ।
महाहिदंष्ट्राप्रभवं विषं तत् तेन शाम्यति ।।१०
अन्यदप्याकरे तत्र यद्दोषैरुपवर्जितम् ।
जायते तत्पवित्राणामुत्तमं परिकीर्त्तितम् ।।११
अत्यन्तहरितवर्णं कोमलमर्चिभिजेदजटिलंच ।
कांचनचूर्णं स्यान्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च ।।१२
युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण ।
सवितुं करसंस्पर्शाच्छुरगति सर्वाश्रयं दीप्तचा ।।१३
हित्वा च हरितभाव यस्यान्तर्विनिहिता भवेत्दीप्तिः ।
अचिरप्रभाप्रभाहतशाद्वलसमन्विता भाति ।।१४

वह जहाँ पर भोगीन्द्र भुजा से अभियुक्त दिति के पुत्रों के अधिप का पित्त गिरा था वह देश भाग उसके आकार का बहुत अधिक बड़ा स्थान है किन्तु वह देश गुणों से युक्त और बहुत दुःखोंसे उपलब्ध करने के योग्य होता है ।८। उस मरकतों के आकार के स्थान में जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सभी कुछ विष रोगों के प्रशमनके लिए कहा जाता है ।९।समस्त औषधि और मन्त्रोंके समूहभी जिसे अच्छा नहींकर सकते

हैं वहाँ की उत्पन्न वस्तुये महान् विषैले सर्प की दाढसे उत्पन्न विषको प्रशमित कर दिया करती हैं।१०। उस आकार में अन्य कुछ भी दोषों से उपवर्जित उत्पन्न होता है वह सम्पूर्ण पवित्रों में भी परम पवित्र होता है, ऐसा कीर्त्तित किया गया है।११। अत्यन्त हरे वर्ण वाला, कोमल, अर्चियों के विभेद से जटिल अर्थात् जिसमें बहुत अर्चियाँ फूटी पड़ती हों। जो मध्य में कांचन चूर्ण दिखलाई देता है। संस्थान के गुणों से युक्त गौरव के समान राग वाला तथा जो सूर्य की किरणों से दीप्ति के द्वारा सम्पूर्ण आश्रम को छुरित कर देता है, जो हरित भाव त्याग अन्दर छिपी दीप्ति प्रकट करता है और अचिर प्रभा से प्रभाहृत शाद्वल 'कोमल हरीथास' से समन्वित है वह मरकत रत्न होता है।१२-१४।

यच्च मनसः प्रसादं विद्धाति निरीक्षितमतिमात्रम् ।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः ॥१५
वर्णस्यातिबहुलत्वाद्यस्यान्तः स्वच्छकिरणपरिधानम् ।
सान्द्रस्निग्धविशुद्ध कोमलवर्हिप्रभादिसमकान्ति ॥१६
वर्णोज्ज्वलया कान्त्या सान्द्राकारो विभासथा भाति ।
तदपि नागुणवत् संज्ञामाप्नोति याहशीं पर्वम् ॥१७
शबलकठोरमलिनं रूक्ष पाषाणकर्करोपेतम् ।
दिग्धं च शिलाजतुना मरकतमेवं विश्वं विगुणम् ॥१८
यत्सन्धिमेषितं रत्नमृन्यं मरकताद्भवेत् ।
श्रेयस्कामैर्नं तद्धार्य्यं क्रेतव्यं वा कथंचन ॥१९
भल्लातकीपुत्रिका च तद्वर्णसमयोगतः ।
मणेर्मरचतस्येते लक्षणीया विजातयः ॥२०
क्षौमेण वासवा मृष्टा दीप्तिं त्यजति पुत्रिका ।
लाघवनैव काचस्य शक्या कर्त्तुं विभावना ॥२१

जो देखने भरसे ही अत्यधिक मनके अन्दर प्रसन्नता उत्पन्न करती है वह मरकत मणि महान् गुणों वाला होता है, ऐसा रत्न शास्त्र के विद्वानों के मन का विचार है।१५। वर्ण के अत्यधिक होने से जिसका

अन्तर्भाग स्वच्छ किरणों का परिधान हो जाताहै और जो सांद्र स्निग्ध और विशुद्ध एवं कोमल बर्हि तथा प्रभादि के समान कान्ति वाला है, और विशेष दीप्त से क्षोभा देता है वह मरकत भी गुण वाला होने की संज्ञाको प्राप्त नहीं किया करता है जैसाकि पहिले बतलाया हुआ मरकत उत्तम होता है ।१६-१७। शवल (चित्रविचित्र वर्ण वाला) कठोर, मलिन, रूक्ष और पाषाण कर्कर से युक्त तथा शिलाजीत से दिग्ध जो मरकत विगुण होता है ।१८। जो सन्धि शेषित मरकत से अन्य रत्न श्रेष्ठ चाहने वाले धारण नही करें और ऐसे रत्न को खरीदना भी नहीं चाहिए ।१९। भल्लातकी पुत्रि का और उसके वर्णके समयोग से मरकत मणि के ये विजातीय लक्षण जान लेवें ।२०। जो पुत्रिका हैं वह यदि क्षोम वस्त्र से मृष्ट की जावे तो अपनी दीप्ति को त्याग देता है । काँच के लाघव से उसकी विभावना की जा सकती है ।२१।

कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपिगुणवर्णोः ।
भल्लातकस्यानिलैर्वैहभ्यमुपैति वर्णस्य ।।२२
वज्राणि मुक्ताः सन्त्यन्ये थै च केद्विजातयः ।
तेषा नाप्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ।।२३
ऋजुत्वाच्चैव केषंचित् कथाचिदुपजायते ।
तिर्य्यगालोच्यमानानां सद्यश्चैव प्रणश्यति ।।२४
स्नानाचमनप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ ।
ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भिः साधनानि च ।।२५
दैवपैत्रातियेषु गुरुसंपूजनेषु च ।
बाध्यमानेषु विविधैदोषजातैर्विषोद्भवैः ।।२६
दोषैहीनगुणैर्युक्तं कांचनप्रतियोजितम् ।
संग्रामे बिरदिभश्च धार्य्यं मरकतं बुधैः ।।२७
तुलया पद्मरागस्य यन्मूल्यमुपजायते ।
लभतेऽत्यधिकं तस्माद्गुणैर्मरकतं युतम् ।।२८

तथा च पद्मरागाणः दोषैर्मूल्यं प्रहीयते ।
ततोऽस्याप्यधिका हानिर्दोषैर्मरकते भवेत् ॥२६

मरकत मणि का अनुकरण करने वाले किसी के अनेक रूपों वाले भल्लातक के अनिल गुण वर्णों से वर्ण की विषमता को प्राप्त होते हैं ।२२। हीरे और मुक्ता (मोती) विजातीय होते हैं उनकी दीप्ति ऊर्ध्वगामिनी हुआ करती है ।२३। कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें सीधा रक्खा जावे तो उनकी दीप्ति उत्पन्न होती है और यदि तिरछा करके देखा जावे तो वह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करती है ।२४। स्नान, आचमन, जाप, रक्षा मन्त्रकी क्रिया विधिमें गौ और सुवर्ण का दान करने वालों के द्वारा दैव, पित्र, आतिथेय, गुरु संपूजन एवं विषोद्भव अनेक दोषोंसे रहित, गुणोंसे समन्वित तथा सुवर्णालंकार में प्रतियोजित मरकत मणि संग्राम में धारण करना चाहिए ।२५-२७। तुला से पद्मराग मणि का जो मूल्य होता है उससे अधिक मूल्य गुणों से युक्त मरकत मणि का होता है ।२८। पद्मराग मणियोंका मूल्यदोषों के होने से कम हो जाता है यदि मरकत मणि में दोष हो तो केवल मूल्य की ही कमी नहीं होती बल्कि उससे भी अधिक, हानि होती है ।२०।

४१—इन्द्रनील परीक्षा

तत्रैव सिंहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबालबलीकुसुमप्रवाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्त प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति
नेत्रयुग्मम् ॥१

तत्प्रत्ययादुभयशोभनवीचिभा विस्तारिणो जलनिधेरुपकच्छ भूमिः । प्रोद्भिन्नकेतकबलप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति।२।तत्रासिताब्जहलमंगसमानि भृङ्गशार्ङ्गयुधांगहर कण्ठकषायपुष्पैः शुभ्रेतरैश्च कुसुमैर्गिरिकर्णिकायास्तस्माद्भवन्ति मणयः सदृशावभासाः ।३।

अन्ये प्रसन्नपयसःतु पयसांनिधारम्बुत्विषः शिखागणप्रतिमाः स्तथान्ये । नीलीरसप्रभवबुद्भाश्च केचित्केचित्तथाः समदकोकिलकण्ठभासः ।।४

एकप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिनः ।
जायन्ते मणयस्तस्मिन्निद्रनीला महागुणाः ।।५
मृत्पाषाणशिलारन्ध्रकर्करात्रासस्संयुताः ।
अभ्रिकापटलच्छायावर्णदोषैश्च दूषिताः ।।६
तत्र एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूरयः ।
शास्त्रसम्बोधितधियस्तान्प्रशंशन्ति सूरयैः ।।७
धार्य्यमाणस्य ये दृष्टाः पद्मरागमणेर्गुणाः ।
धारणादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानवः ।।८

सूतजी ने कहा—वहाँ पर सिंहल देश की वधू के कर, पल्लव द्वारा व्यालून जो बाल लवली कुसुम का प्रवाल जिस देश में है उस देश में दितिज (महासुर) के अत्यन्त सुन्दर विकसित कमल के समान द्युति दोनों नेत्रों का जोड़ा गिरा था ।१। उसके प्रत्यय से दोनों शोभा युक्त वीथियों की भी (दीप्ति) और सान्द्र इन्द्र नील मणि रत्नों से समन्वित शोभित होती है ।२। वहाँ पर असित कमल और वहल भृङ्ग शार्ङ्ग, युद्धाङ्क, हरकण्ठ (शिव की गरदन) कषाय पुष्प शुभ्रोतर गिरि कर्णिका के कुसुमों के सदृश भाषित मणियाँ उस देश में समुत्पन्न होती हैं ।३। अन्य पयोनिधि के प्रसन्न पय के समान हैं, कुम अम्बु के तुल्य कान्ति वाली हैं तथा दूसरी मणियाँ मयूरों के समूह के समान प्रतिभा वाली होती है ।४। उन मणियों में एक ऐसे प्रकार वाली मणि होती हैं जो विशेष रूप से स्पष्ट वर्ण तथा शोभा से अवभासित हुआ करती हैं । उसमें इन्द्र नील मणियाँ महान गुणों से युक्त होती हैं ।५ ये मणियाँ मृत्तिका, पाषाण, शिला, रन्ध्र, कर्करा त्रास से युक्त और अभ्रिका पात्र के छाया ओर वर्ण दोषों से दूषित होती हैं ।६। वहाँ पर तभी से बहुत

सी मणियाँ उत्पन्न होती हैं। शास्त्रों के द्वारा भली-भाँति बोधित बुद्धि वाले विद्वान् पुरुष उनकी प्रशंसा किया करते हैं। पद्मराग मणि ने धारण करने पर जो गुण देखे गये हैं। उन्हीं गुणों को इन्द्रनील मणिसे धारण करने से मानव प्राप्त किया करता है।८।

तथा च पद्मरागाणां जातकृत्रितयं भवेत्।
इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषतः ॥६
परीक्षा प्रत्ययैर्यैश्च पद्मरागः परीक्ष्यते ।
तत्रैव प्रत्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणेरपि ॥१०
यावन्त चक्रमेदग्नि पद्मरागोपयोगतः ।
इन्द्रनीलमणिस्तमात्क्रमेत सुमहत्तरः ॥११
यथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये ।
मणिरग्नौ समाधेयः कथञ्चिदपि कश्चन ॥१२
अग्निमात्रापरिज्ञाने दाहदोषैश्च दूषितः ।
सोऽनर्थाय भवेद्भर्त्तुः कर्त्तुः कारयितुस्तथा ॥१३

किस तरह से पद्मरागों के तीन जातक होते हैं उसी भाँति इन्द्र नीलों में भी बिना किसी विशेषता के देखने योग्य होते हैं।६। प्रत्ययों से परीक्षा पद्मराग की होती है और जिनके द्वारा वह परीक्षित होता है वहाँ इन्द्र नील मणियों में भी वे प्रत्यय देखे गये हैं।१०। पद्मराग के उपयोग से गिरता अग्नि चक्रामित होता है इन्द्र नीलमणि उससे सुमहत्तर क्रमित हुआ करता है।११। तो भी जाँच के लिए और गुणों की अभिवृद्धि के लिए मणि को अग्नि में समाहित न करे।१२। दोषोंसे दूषित वह मणि धारण करने वाले स्वामी को करने वाले को और कराने वाले को अनर्थ के लिए ही होती हैं अर्थात् अनर्थ वाली हो जाती है।१३।

काचोत्पलकरवीरुसंस्फाटिकाद्या इदं बुधैः सवैदूर्य्याः।
कथिता विजातय इमे सदृशा मणिनेन्द्रनालेन ॥१४

गुरुभावकठिनभावावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयौ ।
काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण ॥१५
इन्द्रनीलो यथा कथंचिद् बिभर्त्याताम्रवर्णताम् ।
रक्षणीयौ तथा ताम्रौ करवीरोत्पलावुभौ ॥१६
यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा ।
तमिन्द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम् ॥१७
यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणोस्थितः ।
नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते ॥१८
यत्पद्मरागस्य महागुणस्य मूल्यं भवेन्माषसमन्वितस्य ।
तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्यसंख्याकुलितस्यमूल्यम्।१९

काचोत्पल, करवीर, स्फटिक आदि तथा वैदूर्य बुधों के द्वारा लोक में ये इन्द्र नील मणि के सदृश विजातीय कहे गये हैं ।१४। इनका गुरु भाव और कठिन भाव नित्य ही जान लेने योग्य है । काँच से यथावत् विशेष रूप से उत्तर विवर्द्धमान होते है ।१५। जैसे इन्द्रनील थोड़ा सा ताम्र वर्णता को धारण करताहै उसी भाँति करवीरोत्पल दोनों ताम्रों की रक्षा करनी चाहिए ।१६। जिसके मध्य में रहने वाली नील की इन्द्रायुध प्रभा शोभा देती है उस इन्द्रनील को बहुत अधिक मूल्य वाला और लोक में दुर्लभ कहा गया है ।१७। जिसके वर्णो की अधिकता होने से सौ गुने क्षीर से समास्थित होकर उस समस्त क्षीरकी नीलता प्रदान कर देता है वह महानील कहा जाता है।१८। जो माष समन्वित पद्म राग का गुण हो वही मूल्य होता है गुण से युक्त वर्ण की संख्या से आकुलिय इन्द्रनील का मूल्य होता है ।१९।

४२—वैदूर्य परीक्षा

वैडूर्य्यपुष्परागाणां कर्केतनभीष्मकयोः ।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज ॥१
कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्ह्रादोत्कल्पाद्विदतिजस्य मादात्।
वैदूर्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम् ॥२

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधसः ।
वामभूतिकसांमानमनु तस्याकरो भवेद् ।३

तस्त नादसमुत्थत्वादाकरः सुमहागुणः ।
अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषणः ।।४

तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपाः प्रावृट्पयोदवरदर्शितचारुरूपाः वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासास्तस्मात्स्फुलिङ्गनिवहा इव संबभूवुः ।।५

पद्मरागानुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ ।
सर्वास्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्यानुगच्छति ।।६

तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनील यद्वा भवेद्वेणुदलप्रकाशम् ।
चाषाग्रपक्षप्रतिसश्रियो ये नते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भिः।७

सूतजी ने कहा—हे द्विज! वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन और भौष्मककी परीक्षा ब्रह्माजी के द्वारा प्रोक्त हैं।१। दितिज (महासुर) के नादसे कल्प के अन्त तक के समय में क्षुभित जो अम्बुराशि (समुद्र) उनके निर्ह्लाद कल्पसे अनेक वर्णों वाला वैदूर्य रत्न जो कि शोभा, अभिरामता, द्युति और वर्ण का बीज है समुत्पन्न हुआ था।२। उत्तुङ्ग रोधश वाले विदूर गिरि से निकट ही मैं कामःभूतिक सीमा के पीछे उसका आकार होता है ।३। उसके नाद से समुत्थ होने के कारण सुमहान् गुणों वाला लोकसे उत्तरित और तीनों लोकों का भूषण आकार हुआ था ।४। उन दानवों के स्वामी के नाद से अनुरूप वहाँ के समय में मेघों के श्रेष्ठ दर्क्षित सुन्दररूप वाले अनेक प्रकार की दीप्तिसे युक्त वैदूर्य रत्न मणियाँ उससे स्फुलिंगों के समूह की भाँति उत्पन्न हुए थे ।५। पद्मराग का उपादान करके भूमण्डल में जो मणियों के वर्ण विद्यमान हैं उन सबको वर्णों की शोभाओं से वैदूर्य अनुगमन किया करता है ।६। उन वर्णों में शिखि (मयूर) के कंठ के समान नील वर्ण प्रधान हैं । जो चाषाग्र के पक्षों की प्रतिमा की श्री के आश्रय-वाले हैं उन्हें मणियों के शास्त्र के ज्ञाताओं

गुणवान्वैदूर्य्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः ।
दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत् ॥८

गिरिकाचशिशपालौ काचस्फटिकाश्च धूम्रनिर्भिन्ना ।
वैदूर्य्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति ॥९

लिख्याभावात्काच लघुंभावाच्छेशुपालकं विद्यात् ।
गिरिकाचमदीप्तित्वात्स्फटिक वर्णोज्ज्लवेन ॥१०

यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम् ।
तदेव वैदूर्य्यमणे प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥११

जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग्विजातयः सन्ति समानवर्णाः।
तथापि नमाकरणानुमेयभेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥१२

गुणों से सम्पन्न वैदूर्ग मणि स्वामीको श्रेष्ठ भाग्योंसे योजित करता है । जो दोष युक्त होता है वह अनेक दोषों से स्वामी को दूषित कर देता है । अतएव यत्न पूर्वक परीक्षा अवश्य कर लेनी चाहिए ।८।गिरि काँच–शिशुपाल काँच स्फटिक और घूम्र निर्मित ये इतने वैदूर्य मणि के सदृश विजातीय रत्न हुआ करते हैं ।९। लिख्य के अभाव रहने से काँचका तथा लघुभाव होनेसे शिशुपाल का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । दीप्ति रहित होने से गिरि को और वहाँ की उज्ज्वलता होने से स्फटिक को पहिचान लेना चाहिए ।१०। जो महान् गुणों से युक्त सुवर्ण संख्याकलित का मूल्य होता है वही वैदूर्य मणि का मूल बताया गया है ।११। जात्य मणिके सभी समान वर्ण वाले जैसे विजातीत रत्न होते हैं तो भी नामाकरण से अनुमान करने के योग्य भेदों का प्रकार बहुत अच्छा बताया गया है ।१२।

सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण ।
स्नेहप्रभेदो लघुमा मृदुत्वं विजातलिङ्ग खलुसार्वजन्यम्।१३

कुशलाकुशलैः प्रपूर्य्यमाणा प्रतिबद्धाः प्रतिसङ्क्रियाप्रयोगैः ।
गुणदोषसमुद्भवं लभन्ते मणयोऽर्थान्तरमूल्यमेव भिन्नाः।१४

क्रमशः समतीतवर्त्त माना प्रतिवद्धा मणिबन्धकेन यत्नात् ।
यादनाम भवन्ति दोषहीनामणयःषड्गुणाप्नुवन्ति मूल्यम्।१५
आकरान्समतीतानामुदधेस्तीरसन्निधौ ।
मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतले ॥१६
सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडशमाषकः ।
तस्य सप्तमो भागः संज्ञारूपं करिष्यति ॥१७
शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पंचकृष्णलः ।
पलस्य दशमो भागो धरणः परिकीर्त्तितः ॥१८
इति मणिविधिः प्रोक्तो रत्नानां मूल्यनिश्चये ॥१९

विद्वान् पुरुष द्वारा यह प्रभेद विचार करने के योग्य है—स्नेह, प्रभेद, लघुता, मृदुता और सर्व साधारण में होने वाला विजाति चिह्न ।१३। कुशल और अकुशलों के द्वारा प्रकृष्ट रूप से पूर्यमाण तथा प्रति सक्रिया के प्रयोगों से प्रतिवद्ध मणियाँ गुणों और दोषों के समुद्भव को प्राप्त किया करती है और अर्थान्तर मूल्य से भिन्न होती हैं ।१४। क्रम से समतीत वर्त्तमान वाली और यत्नपूर्वक मणि बन्धन के द्वारा प्रति-बद्ध मथियाँ यदि दोषों से हीन हो जाती हैं तो फिर वे छै गुनी कीमत को प्राप्त होती हैं ।१५। सागर के तट के समीप में आकर (खान) से समतीत (निकलती हुई) मणियों का मूल्य भूमण्डल में सर्वत्र निश्चय ही नहीं हुआ करता है ।१६। षोडश माषाक सुवर्ण मन्त्र के द्वारा कहा गया है इसका सातवाँ भाग संज्ञा के स्वरूप को करेगा ।१७। चार माष मान शाण और पाँच मापक कृष्णल तथा पल का दशम भाग परि-कीर्त्तित किया गया है ।१८। यही रत्नों के मूल्य के निश्चय करने की विधि है ।१९।

४३—अन्य रत्न परीक्षा

पतितताया हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विषः ।
प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः ॥१

आपीतपाण्डुरुचिरः पाषाणः पद्मरागसंज्ञकः ।
तौरुण्डकनामां स्यात्या एव स्रहि लोहितस्तु पीतः ॥२
आलोहितस्तु पीतः स्वच्छः काषायकः स एवोक्तः ।
आनीलशुक्लवर्णः स्निग्धः सोमानकः सगुणः ॥३
अत्यन्तलोहितो यःस एव खलु सुनील पद्मरागसंज्ञकःस्यात्।
अपि चेन्द्रनीलसंज्ञ स एव कथितः सन् ॥४
मूल्यं वैदूर्यमणेरिव गदितं ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा ।
धारणफलञ्च तद्वत्किन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवति ॥५

सूतजी बोले—उस महासुर की त्वचा जब हिमाद्रि में गिरी तो उससे महान गुणों वाले पुष्पराग रत्न का प्रादुर्भाव हुआ ।१। आपीत पाण्डु और सुन्दर वर्ण वाला पद्मराग संज्ञा वाला पाषाण कौरुण्डक नाम वाला होता है । वह ही यदि लोहित एवं पीत होता है आलीहित पीत और स्वच्छ ही काषायक तथा आनील शुक्ल वर्ण वाला गुणों से युक्त एवं स्निग्ध सोभाजनक कहा जाता है ।२-३। जो बहुत ही अधिक लोहित होता है तो पद्मराग और इन्द्रनील की संज्ञा वाला वह सुनील ऐसा कहा नया है । रत्न शास्त्र के विद्वानों के प्रारा इसका मूल्य वैदूर्य मणि का जैसा ही कहा गया है तथा इसके धारण करने का फल भी उसी के समान होता है किन्तु स्त्रियों को यह सुत के प्रदान करने वाला होता है ।४-५।

वायुर्नखान्दोत्यपतेगृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्टः ।
ततः प्रसूतं पवनोपपन्नं कर्केतनं पूज्यतमं पृथिव्याम् ॥६
वर्णेन तद्रुधिरसोममधुप्रकाशमाताम्रपीतदहनोज्ज्वलितंविभाति।
नीलं पुनः खलु सित परुषं विभिन्न व्याधादिदोषकरणे न च तद्विभाति॥७
स्निग्धा विशुद्धाः समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरवो विचित्राः ।
त्रासव्रणव्यालविवर्जिताश्च कर्केतनास्ते परमं पवित्राः ॥८

पात्रेण काञ्चनमयेन तु वेष्टयित्वा तप्तं यदा हुतवहैर्भवति प्रकाशम् ।रोगप्रशाशमनकरं कालनाशनं तदायुष्करं कुलकरञ्च सुख प्रदम् च ।६। एवविधं बहुगुणं मणिमावहन्ति कर्केतनं शुभमलंकृतये नरा ये। ते पूजिता बहुधना वहुबान्धवाश्च नित्योज्ज्वलाः प्रमुदिता क्षपि ते भवन्ति ।।१०

एकेऽपनह्य विकृताकुलनीलभासः प्रम्लानरागलुलिताः कलुषा विरूपाः । तेजोऽतिदीप्तिकुलपुष्टिविहीनवर्णाः कर्केतनस्य सदृशं वपुरुद्वहन्ति ।११। कर्केतनं यदि परीक्षितवर्णं रूपं प्रत्यग्रभास्वरदिवाकरसुप्रकाशम् । तस्योत्तमस्य मणिशास्त्रबिदा महिम्ना तुल्यन्तु मूल्यमुदितं तुलितस्य कार्यम् ।।१२

सूतजी ने कहा—दैत्यों के स्वामी के नखों को वायु ने पद्मों के वन में डाल दिया और वहाँ से पवनोपन्न वह मही मण्डलमें पूज्यतम कर्केतन समुत्पन्न हुआ था ।६। वह रत्न वर्ण रुधिर—सोम—और मधु के समान द्युति वाला हैं तथा थोड़ा सा ताम्र एवं पीत अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान है । नील—सित और पुरुष (कठोर) होता है तथा व्याधि आदि दोषों के करने में वह कोई प्रभाव नहीं रखता है ।७। स्निग्ध—विशुक्ष—सम राग वाले—आपीत वर्ण वाले गुरुत्व त्रास—व्रण और ज्वाल से रहित कर्केतन परम पवित्र होते हैं ।८। काञ्चन मत पात्र के द्वारा वेष्टन करके जब तक तप्त किया जाता है तो वह हुतवहके द्वारा प्रकाश देता है वह रोगों के नाश करने वाला—कालका नाशक—आयु की वृद्धि करने वाला—कुल कर और सुख प्रदान करने वाला है ।८। जो मनुष्य इसको अलङ्करण के लिए धारण करते हैं वे परम पूजित—धन से युक्त—वान्धवों वाले—नित्य उज्ज्वल और प्रमुदित रहते हैं ।१०। एक ऐसे भी होते हैं जो विकृत, आकुल, नील दीप्ति वाले—प्राम्लान राग से लुलित—कलुष—विरूप तथा तेज, दीप्ति, कुल और पुष्टि से विहीन वर्ण वाले हैं तथा बिल्कुल कर्केतन के समान ही वपु को धारण किया करते हैं

।११। यदि कर्केतन परीक्षित वर्ण एवं रूप वाला है तो वह प्रत्यग्र-भास्कर दिवाकर के समान प्रकाश वाला होता है। उस उत्तम कर्केतन का मणि शास्त्र के विद्वान् महिमा से तुलित का मूल्य तुल्य कहते हैं ।१२।

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्यं सुरद्विषस्तस्य ।
संप्राप्तमुत्तमानाभकरतां भीष्मरत्नानाम् ॥१३
शुक्ला, शङ्खाब्जनिभा, स्योनाकसन्निभाः प्रभावन्तः ।
प्रभवन्ति ततस्तरुणा वज्रनिभा भीष्मपाषाणाः ॥१४
हेमादिप्रतिवद्धाः शुद्धमपि शुद्धया विधत्ते यः ।
भीष्ममणिं ग्रीवादिषु सम्पदं सर्वदा लभते ॥१५
निरीक्ष्य पलायन्ते ये तमरण्यनिवासिनः समीपेऽपि ।
द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रादयो हिंसाः ॥१६
तस्योत्कलभक्तिनोर्भयं नचास्तीशमुपहसन्ति ।
भीष्ममणिगुणयुक्तो सम्यक्प्राप्यांगुलीयकलत्रत्वम् ॥१७
पितृतर्पणेनापि पितृणां तृप्तिर्बल्वाषिका भवति ।
शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पाण्डजाखुवृश्चिक्त विषाणि ।
सलिलाग्निवैरितस्काभयानि भीमानि नश्यन्ति ॥१८
शैबलाबलाहकाभं पुरुषं प्रीतप्रभं प्रभाहीनम् ।
मलिनद्युति च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञः ॥१९
मूल्यं प्रकल्प्यमेषां बिबुधवरंर्देशकालविज्ञानात् ।
दूरे भूतानां बहु किञ्चिन्निकटप्रसूतानाम् ॥२०

सूतजी ने कहा—हिमवान् के उत्तर देश में उस महासुर का वीर्य पतित हुआ था और वह वीर्य उत्तम भीष्म रत्नों की आकारता को प्राप्त हुआ था ।१३। वहाँ पर भीष्म पाषाण शुक्ल-शङ्ख और कमल के तुल्य—स्योनाक के सदृश प्रभा वाले—वज्र के समान और तरुण उत्पन्न होते हैं ।१४। सुवर्ण आदि से प्रतिबद्ध शुद्ध विधि से शुद्ध किया हुआ

भीष्म मणि को जो ग्रीवा आदि अंकों में धारण करता है वह सर्वदा सम्पदा को प्राप्त किया करता है ।१५। इस रत्न के धारण करने से हाथी–भेड़िया–शरभ–कुञ्जर–सिंह और व्याघ्र आदि हिंसक जीव भी देखते ही दूर भाग जाया करते हैं ।१६। उत्कंलभकृति उसको भय नहीं होता है । गुणों से युक्त भीष्म मणि को अँगूठी में धारण मनुष्य के करों से पितृगण को किया तर्पण भी बहुत वर्षों तक तृप्ति दिया करता है । सर्पाडज–आखु और वृश्चिक के विष भी उपशान्त होते हैं तथा भयानक जल-अग्नि-शत्रु-तस्कर के भय नष्ट हो जाते हैं ।१७-१८। प्राज्ञ पुरुष भी पुरुष (कठोर) पीली प्रभा से युक्त-प्रभा से रहित-मलिन कान्ति वाला एवं वर्ण रहित रत्नमणि का दूर से त्याग कर देना चाहिए ।१९। देश और काल के विज्ञान से इन रत्न मणियों का मूल्य प्रकल्पित करना चाहिए ।२०।

पुण्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासु स्थानान्तरेषु च तथात्तरदेशगासु
संस्थापिताश्च नखरा भुजजैःप्रकाशं संपूज्यदानवपतिप्रथितेशे२१
दशार्णवागदवमेकलकागादौ गुञ्जांजनक्षौद्रमृणवर्णाः ।
गन्धर्ववह्निदलीसदृशावभाषा एते प्रशस्ताः पुलकाः प्रसूता ।२२
शङ्खाब्जभङ्गार्कविचित्रभङ्गाः सूत्रैर्व्यपेताः परमाः पवित्राः ।
माङ्गल्युक्ता बहुभक्तिचित्रा वृद्धिप्रदास्ते पुलका भवन्ति ।।२३
काकैश्वरासभश्रृङ्गालवृकोग्ररूपैर्गृध्रैः समांसरुधिरार्द मुखैरुपेता
मृत्युप्रदाश्चविदुषा परिवर्जनीयामूल्यंहलस्यकथितंचशतानिपा२४
हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम् ।
नर्मदायां निचिक्षेप किंचिद्धीनादि भूमिषु ।।२५
तत्रेन्द्रगोपकलितं कशवक्त्रवण संस्थानतः प्रकटपीनसमानमात्रं ।
नानाप्रकारविहितंरुधिराख्यरत्नमुद्धत्ययस्यखलुसर्वसामानमेव२६
मध्येन्दुपांडरमतीवविशुद्धवर्णं तच्चन्द्रनीलसदृश पटलं तुलेस्यात्।
सैश्वर्य्यभृत्यजनतंकथितंतदैवपक्वंचतत्किकलभावेसुरवज्रवर्णा।२७

सूतजी कहते हैं—परम पुण्य श्रेष्ठ पर्वतों में—स्थानान्तरों में तथा उत्तर देश में रहने वाली नदियों में और प्रथित प्रदेश में दानव-पति का भली-भाँति पूजन करके भुजङ्गों के द्वारा प्रकाश में नखरों को संस्थापित किया था ।२१। दाशार्णवा गदवमेकल कालगादि में गुंजा—अंजन—मंहद और मृणाल के समान वर्ग वाले गन्धर्व -अग्नि—कदली के सदृश अवभासित होने वाले ये प्रशस्त पुण्य समुत्पन्न हुए थे ।२२। शङ्ख—अव्ज—भृङ्ग और अर्क के तुल्य विचित्र भङ्ग वाले और सूत्रों से व्येपेत परम पवित्र होते हैं । मांङ्गल्य से समन्वित—वहुत भक्तियों से चित्रित वे पुलक वृद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं ।२३। कौआ-कुत्ता रासभ—शृगाल—वृक—से उग्र रूप वाले गिलों से जो कि माँस एवं रुधिर से आर्द्र मुख हैं इनसे पमुपेत रत्न मृत्यु प्रद होते हैं । इसके एक पल का मूल्य पाँच सौ रुपये कहा गया है ।२४। सूतजी ने कहा—दानव का यथेप्सित हुतभुक् का रूप लेकर कुछ हीनादि भूमियों में नर्मदा में डाल दिया था ।२५। वहाँ पर इन्द्र गोप के समान सुन्दर-शुक के मुख के सदृश वर्ण वाला—प्रकट पीन समान मात्र—अनेक प्रकार का विहित रुधिक संज्ञक रत्न का उद्धरण कर उसका सब समान ही मध्यममें इन्द्र के समान पाण्डरप अत्यन्त विशुद्ध वर्ण वाला और इन्द्रनील के तुल्य—तुल में पटल होता है । यह परम ऐश्वर्य एवं भृत्यके जनन करने वाला है । वह पक्व होकर सुरवज्र से तुल्य वर्ण वाला हो जाता है ।२६-२७।

काव्रेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु ।
लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः ।।२८
आकाशयुद्धं तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिकं ततः ।
मृणालशंखधवलं किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ।।२९
न तत्तुल्यं हि रत्नञ्च सर्वथा पापनाशनम् ।
संस्कृतं शिल्पिना सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः ।।३०
आदाय शेषस्तस्यान्त्र-बलस्य केरलादिषु ।
चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः ।।३१

तत्र प्रधानं शशिलोहिताभं गुञ्जाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम् ।
सुनीलकं देवकरोमकञ्च स्थानानि तेषु प्रथमं सुरागम् ।
अन्यत्रं जातंच न यत्प्रधानंमूल्यंभवेच्छिल्पिविशेषयोगात्३२
प्रसन्नं कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हि तत् ।
धनधान्यकरं लोके विषार्त्तिभयनाशनम् ।
स्फटिकस्य विद्रुमस्य रत्नज्ञाय शौनकः ।।३३

उस महा दानव का भेद लाङ्गली ने प्रयत्न पूर्वक कावेर विन्ध्य–यवन–चीन और नेपाल देश की भूमि में बखेर दिया था ।२८। वहाँ तैलाख्य आकाश युद्ध स्फटिक समुत्पन्न हुआ था । यह मृणाल एवं शङ्ख के समान धवल होता है और कुछ अन्य वर्णो से भी युक्त होताहै ।२६। इसके समान सर्वथा पापों के नाश करने वाला अन्य रत्न नहीं है । शिल्पी के द्वारा तुरन्त ही संस्कार किए जाने वाला हो तो उसका कुछ मूल्य भी प्राप्त किया जाता है ।३०। शेष ने उस अन्न को लेकर केरल आदि देशों में क्षिप्त कर दिया था । वहाँ विद्रुम समुत्पन्न होते है ।३१ उनमें प्रधान शश और लोहित की आभा वाला है तथा गुंजाजवा के पुष्प के तुल्य वर्ण वाला भी बताया गया है । सुनीलक और देवक रोमक स्थान है उनमें सुन्दर राग वाले का प्रभाव होता है । इसका शिल्पी के योग से मूल्य हुआ करता है ।३२। प्रसन्न कोमल, स्निग्ध और सुन्दर रङ्ग वाला वह विद्रुम होताहै । यह धन-धान्य वर्धक तथा विष पीड़ा नाशक है ।३३।

---

४४ तीर्थ माहात्म्य

सर्वतीर्थानि वक्ष्यामि गङ्गा तीर्थोत्तमोत्तमा ।
सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्नानेषु दुर्लभा ।।१
हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे ।
प्रयागं परमं तीर्थं मृतानां मुक्तिमुक्तिदम् ।।२

सेवनात्कृतपिण्डानां पापजित्कामदं नृणाम् ।
वाराणसी परं तीर्थं विश्वेशो यत्र केशवः ॥३
कुरुक्षेत्रं परं तीर्थं दानाद्यै भुक्तिमुक्तिदम् ।
प्रभासं परम तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च ॥४
द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ।
प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वतं परम् ॥५
केदारं सर्वपापघ्नं शम्भलग्राम उत्तमम् ।
नारायणं महातीर्थं मुक्त्यै वदरिकाश्रमम् ॥६
श्वेतद्वीपं पुरी माया नैमिष पुष्करं परम् ।
अयोध्या चार्य्यतीर्थन्तु चित्रकूटञ्च गोमती ॥७

सूतजी ने कहा—अब हम समस्त तीर्थों को वतलाते हैं गङ्गा उन समस्त तीर्थों में उत्तम तीर्थ है । यह गङ्गा सर्वत्र ही सुलभ होती हैं केवल यह तीन स्थानों मे दुर्लभ हुआ करती है ।१। वे तीन स्थान हैं, हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गा सागर सङ्गम । प्रयाग परम तीर्थहै जो मृत पुरुषों को मुक्ति एवं भुक्ति प्रदान करने वाला होता है ।२। वाराणसी भी परम तीर्थ हैं जहाँ विश्व के नाथ केशव विद्यमान रहते हैं । इसके सेवन करने से तथा यहाँ पिण्डदान करने से प्राणी पापों पर विजय प्राप्त कर लेता है और यह मानवों की अभीष्ट कामनाओं को देने वाला है ।३। कुरुक्षेत्र भी एक परमोत्तम तीर्थ है । यहाँ दान आदि देने पर इनके द्वारा मनुष्य भुक्ति एवं मुक्ति दोनों की प्राप्ति किया करता है । प्रभास क्षेत्र अति श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ पर भगवान सोमनाथ बिराजते हैं । द्वारकापुरी परम सुन्दर है जो भोग और मोक्षको प्रदान करने वाली है । प्राची सरस्वती पुण्या है और सप्त सारस्वत परम तीर्थहै।५। केदार तीर्थ समस्त प्रकारके पापोंका हनन करने वाला है तथा शम्भल ग्राम अति उत्तम है नारायण महान तीर्थ है । मुक्ति के प्राप्त करने के लिए वदरिकाश्रमहै ।६। श्वेतद्वीप, मायापुरी, नैमिष और पुष्कर परम तीर्थ है । अयोध्या आर्य्यों का श्रेष्ठ तीर्थ है । चित्रकूट, गोतमी तीर्थ हैं ।६।

वैनायकं महातीर्थं रामगिर्याश्रमं परम् ।
काञ्चीपुरी तुङ्गभद्रा श्रीशैलं सेतुबन्धनम् ॥८
रामेश्वरं परं तीर्थं कार्त्तिकेयं तथोत्तमम् ।
भृगुतंगं कामतीर्थं कामरं कटकं तथा ॥६
उज्जयिन्यां महाकाल कुब्जके श्रीधरो हरिः ।
कुब्जाम्रकं महातीर्थं कालसर्पिश्च कामदः ॥१०
महाकेशी च कावेरी चन्द्रभाग विपाशया ।
एकाम्रञ्च तथा तीर्थं ब्रह्माणं देवकोटकम् ।
मथुरा च पुरी रम्या शोणश्चैव महानदः ॥११
जम्बूसरो महातीर्थं तानि तीर्थानि विद्धि च ।
सूर्यः शिवो गणो देवी हरिर्यत्र च तिष्ठति ॥१२
एतेषु च तथान्येषु स्नानं दानं जपस्तपः ।
पूजा श्राद्धं पिण्डदानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१३
शालग्रामं सर्वदं स्यात् तीर्थं पशुपतेः परम् ।
गोकामुखञ्च वाराह भाण्डीर स्वामिसंज्ञकम् ॥१४
मोहदंडे महाविष्णुर्मन्दारं मधुसूदनः ।
कामरूपं महातीर्थं कामाख्या यत्र तिष्ठति ।
पुण्ड्रवर्द्धनकं तीर्थं कार्त्तिकेयश्च तत्र च ॥१५

वैनायक महान तीर्थ है । रामगिरि-आश्रम भी परम तीर्थ है । कांचीपुरी- तुङ्गभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध, रामेश्वर तथा कार्तिकेय ये सब बहुत बड़े तीर्थ हैं । भृगु तुङ्ग, कामतीर्थ, कामर, कटक ये सभी श्रेष्ठ-तम तीर्थ हैं ।८-६। उज्जयिनी पुरी विशाल तीर्थ है जहाँ पर भगवान् महाकालेश्वर विद्यमान हैं । कुब्जक तीर्थ में श्रीधर हरि बिराजमान रहते हैं । कुब्जाम्र महान तीर्थ है । काल सर्पि तीर्थ कामनाओंकी पूर्ति करने वाला है ।१०। महाकेशी कावेरी, चन्द्रभागा, विपाशा, एकाम्र, ब्राह्मणं, देवकोटक ये सब महान तीर्थ है । मथुरापुरी परम रम्य तथा उत्तमतीर्थ है । महानद शोण है ।११। जम्बूसर भी महान् तीर्थ है । उन समस्त तीर्थों को भली-भाँति समझ लो जहाँ पर सविता देव, शिव

गणेश, साक्षात् शक्ति देवी और भगवान् हरि संस्थित रहा करते हैं ।१२। उन उपर्युक्त तीर्थों में तथा जो नहीं बताये गये हैं ऐसे अन्य तीर्थों में किया हुआ स्नान, दान, जाप, तप, पूजा,श्राद्ध और पिण्डदान आदि सभी सत्कर्म अक्षय हो जाया करते हैं ।१३। शालग्राम का अर्चन सभी कुछ प्रदान करने वाला है। पशुपति का परम तीर्थ है। गौ का मुख वाराह, भाण्डोर, स्वामी संज्ञा वाला है। भोह दण्ड में महा विष्णु हैं तथा मन्दार में मधुसूदन हैं। कामाख्या काम रूप एक महान तीर्थ है जहाँ पर भगवती कामाख्या विराजमान रहती है। तुण्ड्र वर्द्धनक तीर्थ है जहां पर स्वामि कार्तिकेय विद्यमान हैं ।१४-१५।

विरजस्तु महातीर्थं तीर्थं श्रीपुरुषोत्तम् ।
महेन्द्रपर्वतस्तीर्थं कावेरी च नदी परा ॥१६
गोदावरी महातीर्थं पयोष्णी वरदा नदी ।
विन्ध्यः पापहरं पुण्यं नर्मदाभेद उत्तमः ॥१७
गोकर्णं परमं तीर्थं तीर्थं माहिष्मती पुरी ।
कालञ्जरं महातीर्थं शुक्रतीर्थ मनुत्तमम् ॥१८
कृते शोचे मुक्तिदश्च शार्ङ्गधारी तदन्तिके ।
विरजं सर्वदं तीर्थं स्वर्णाक्षं तीर्थमुत्तमम् ॥१९
नन्दितीर्थं मुक्तिदञ्च कोटितीर्थं फलप्रदम् ।
नासिक्यञ्च मसातीर्थं गोवर्द्धनमतः परम् ॥२०
कृष्ण वेणी भीमरथा गण्डकी या त्विरावती ।
तीर्थं विन्दुसरः पुण्य विष्णु पादोदकं परम् ॥२१

विरज महान तीर्थ है और श्री पुरुषोत्तम तीर्थ है। महेन्द्र पर्व भी तीर्थ है तथा कावेरी परम नदीहै। गोदावरी नदी भी महान तीर्थ स्वरूपा हैं तथा पयोष्णी वर देने वाली नदी है। विन्ध्य पापों के हरण करने वाला तीर्थहै तथा नर्मदा भेद उत्तम है ।१६-१७।गोकर्ण परमोत्तम तीर्थ है और माहिष्मती पुरी तीर्थ है। कालञ्जर महान् तीर्थ है तथा

सर्वोत्तम शुक्रतीर्थ है ।१८।ये सम्पूर्ण प्रकार के पापों से शुद्ध करके मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। उनके पास में ही शार्ङ्ग धारी तीर्थ है। विरज नामधारी तीर्थ सभी कुछ देने वाला है स्वर्णाक्ष अति उत्तम तीर्थ है ।१९। नन्दि तीर्थ मुक्तिदायक है और करोड़ों तीर्थों के फलों को देने वाला है। नासिक्य महा तीर्थ है और इससे भी परमतीर्थ गोवर्द्धन है। बिन्दुसार परम तीर्थ तथा विष्णुपादोदक परम तीर्थ है ।२०-२१।

ब्रह्मध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
तमस्तीर्थं तु परमं भावशुद्धिः सरस्तथा ॥२२
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥२३
इदं तीर्थमिदं नेति ये नरा भेददर्शिनः ।
तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलञ्च यत् ।
सर्वं ब्रह्मेति याऽवैति नातीर्थं तस्य किंचन ॥२४
एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् ।
सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेवितम् ॥२५
श्रीरङ्गश्च हरेस्तीर्थं तापी श्रेष्ठा महानदी ।
सप्तगोवरीं तीर्थं तीर्थं द्रोणगिरिः परम् ॥२६
महालक्ष्मीर्यत्र देवी प्रणीता परमा नदी ।
सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीरः सुरेश्वरी ॥२७
गङ्गाद्वारे कुशावर्त्ते विन्ध्यके नीलपर्वते ।
स्नानं कनखले तीर्थेस भवेन्न पुनर्भवो ॥२८
एतान्यन्यानि तीर्थानि स्नानाद्यैः सर्वदानि हि ।
श्रुत्वाऽब्रवीद् हरेर्ब्रह्मा व्यासं दक्षादिसंयुतम् ॥ २९
एतान्युक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
गयाख्यं प्राह सर्वेषमक्षयं ब्रह्मलोकदम् ॥३०

ब्रह्म ध्यान अर्थात् नितान्त एकान्त स्थान में एकाग्र मन से ब्रह्म का ध्यान करना सबसे उत्तम एवं श्रेष्ठ तीर्थ है। अपनी समस्त इन्द्रियों

पर पूर्ण नियन्त्रण कर देना भी तीर्थ के समान हैं इन्द्रियों का दमन करना परम तीर्थ है तथा अपनी भावनाओं की शुद्धि कर लेना हर के समान है ।२२। ज्ञानरूपी ह्रद में और राग तथा द्वेष के मल का अपहरण करने वाला ध्यान रूपी जल में जो नित्य प्रति इस मानस तीर्थ में स्नान करता है वह मनुष्य परमगति को प्राप्त हो जाता है ।२३।यह तो तीर्थ है और यह तीर्थ स्थान नहीं हैं जो मनुष्य इस प्रकार से भेद के देखने वाले हैं उनको ही तीर्थों के गमन करने का विधान है और उनकी ही तीर्थों का फल भी प्राप्त होता है जो कि ऊपर में बतलाया गया है । जो सभी को ब्रह्ममय ही मानता है उसकी दृष्टि तथा बुद्धि में अतीर्थ कुछ भी नहीं है ।२४। इन तीर्थों में किये हुए स्नान, दान, श्राद्ध और पिंड सब अक्षय ही जाते हैं । सम्पूर्ण नदियाँ और सम्पूर्ण शैल देवादि से सेवित और तीर्थ स्वरूप है ।२५। श्री रंग हरि का तीर्थ ताप्ती महानदी श्रेष्ठ है । सप्त गोदावरी तीर्थ है और द्रोणागिरि परम तीर्थ है ।२६। जहाँ पर महा लक्ष्मी देवी है वहाँ पर परमा प्रणीता नदी है सह्याद्रि में देवदेवेश एक वीर हैं और पुरेश्वरी है ।२७। गंगाद्वार में, कुशावर्त्त में, विन्धक में और नील पर्वत में तथा कनखल तीर्थ में जो स्नान किया जाता है वह स्नान करने वाला इस संसार में पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता है ।२८। तीर्थों में स्नानादि के द्वारा सभी कुछ प्राप्त हो जाता है । यह वृत्तान्त श्री हरि भगवान् से श्रवण करके ब्रह्माजी दक्षादि से व्यासजी बोले, इन समस्त तीर्थों को कहकर फिर तीर्थों में परम श्रेष्ठ गया नामक तीर्थ के विषय में कहा था जो कि सब में अक्षय है ब्रह्म लोक को प्रदान कराने वाला है ।२९-३०।

४५—गया माहात्म्य

सारात्सारतरं व्यास गयामहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ॥१
गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्य्यवान् परमः स च ।
तपस्तप्यन्महाघोरं सर्वभूतोपतापनम् ॥२

तत्तपस्तापिता देवास्तद्वधार्थं हरिं गता ।
शरणं हेरिरूचे तान्भवितव्यं शिभात्मभि ।।३
पातितेऽस्य महादेहे तथेत्यूचः सुरा हरिम् ।
कदाचिच्छिवपूजार्थं क्षीराब्धेः कमलानि च ।।४
आनीय कीटके देशे शयनं चाकरोद्‌बली ।
विष्णुमायाविमूढ़ोऽसौ गदया विष्णुना हतः ।।५
अतो गदाधरो विष्णुर्गयायां मुक्तिदः स्थितः ।
तस्य देहो लिंगरूपी स्थितः शुद्धे पितामहः ।।६
जनाद्दर्नश्च कालेशस्तथाऽन्यः प्रपितामहः ।
विष्णुराहाथ मर्य्यादां पुण्यक्षेत्रंभविष्यति ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास देव ! सोरों में भी परम सार स्वरूप और अत्युत्तम गया तीर्थंका माहात्म्य है । हम उसे अब तुमको संक्षेप में बतलाते हैं । यह सांसारिक सम्पूर्ण सुखों के उपभोग और संसार में आवागमन के वन्धन से छुटकारा दोनों का प्रदान करने वाला है । इस का श्रवण करो ।१। पहिले प्राचीन समय में गया नाम धारी एक परम पराक्रमी असुर हुआ था । उसने समस्त प्राणियों को उपताप देने वाला महान घोर तप किया था ।२। उसकी इस घोर तपश्चर्या के ताप में परम तापित देवगण उसके वध के लिए श्री हरि की शरण में गये थे । तब भगवान् हरि उन देवों से बोले कि इस महान् देह के पतित करने में शिव की आत्माओं का होना चाहिए देवों ने ऐसा होगा—यह श्रीहरि से कहा था । किसी समय है भगवान् शिव की पूजा के लिए क्षीर सागर में कमलों को लाकर कीकट देश में यह बलवान शयन कर रहा था । विष्णु की माया से विमूढ़ हुआ यह गदा के द्वारा विष्णु से हत किया गया था ।३-५। इससे गदाधर विष्णु मुक्ति देने वाले गया में स्थित है । उसका लिंग रूपी देह स्थित है । शुद्ध में पितामह जनार्दन तथा अन्य प्रपितामह कालेश है । इसके अनन्तर विष्णु ने मर्यादा बतलाई थी कि महापुण्य क्षेत्र हो जाएगा ।६-७।

यज्ञं श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादि कुरुते नरः ।
स स्वर्गं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरकं नरः ॥८
गयातीर्थं परं ज्ञात्वा यागं चक्रे पितामहः ।
ब्राह्मणान्पूजयामास ऋत्विगर्थमुपागतान् ॥६
महानदीं रसवहाँ सृष्ट्वा वाप्यादिकं तथा ।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनुं तथासृजत् ।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्र ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रभुः ॥१०
धर्मयोगेषु लोभात्तु प्रतिगृह्य धनादिकम् ।
स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयायां ब्राह्मणास्ततः ॥११
माभूत्त्रै पुरुषी विद्या माभूत्त्रै पुरुष धनम् ।
युष्माकं स्याद्वारिवहा नद्वी पाणाणपर्वतः ॥१२
शप्तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्माऽनुग्रहं कृतवान् प्रभुः ।
लोकाः पुण्या गयायां हि श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ।
युष्मान् वै पूजयिष्यन्ति तैरह पूजितः सदा ॥१३
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषां चतुर्विधा ॥१४

जो मनुष्य यहाँ पर यज्ञ, श्राद्ध, पिण्ठदान और स्थान आदि किया करता है वह मनुष्य स्वर्ग और ब्रह्मलोक चला जाताहै और फिर नरक में कभी नहीं जाया करता है ।८। पितामह ने इस तीर्थ में स्नान करके योग किया था । जो ब्राह्मण ऋत्विक् के कार्य के लिए आये थे उन सब का पूजन किया था ।९। रस का वहन करने वाला महानदी की रचना करके वापी आदि का सृजन किया था तथा भक्ष्य, भोज्य फलादि को एवं कामधेनु को पूजा था । प्रभु ने पाँच कोश के विस्तार वाला गया तीर्थ ब्राह्मणों को दे दिया था तब से गया में विप्र शप्त हो गये हैं ।१० ११। उन विप्रों को ऐसा शाप था कि तीन पीढ़ियों तक विद्या नहीं होगी, और न धनवैभव रहेगा । इस प्रकार से जब शाप दिया गया

तो उन शप्त विप्रों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी तव प्रभु ने उन पर अनुग्रह किया था कि परम पुण्यशाली लोग गया में श्राद्ध करने वाले होंगे और फिर वे ब्रह्म लोक में गमन करने वाले हो जायेंगे । उनके द्वारा मैं पूजित होऊँगा और वे आप सब की पूजा किया करेंगे ।१२-१३। ब्रह्मज्ञान, गया में श्राद्ध, गो गृह में मरण तथा कुरुक्षेत्र में पुरुष का निवास करना यह चार प्रकार की मुक्ति कही गई है ।१४।

समुद्राः सरितः सर्वा वापीकूपह्रदानि च ।
स्नातुकामा गयातीर्थं व्यास यान्ति न संशयः ।।१५
असंस्कृता मृता ये च पशुचौरहताश्च ये ।
सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते ।।१६
गयायां पिंडदानेन यत्फलं लभते नरः ।
न तच्छक्यं मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ।।१७

हे व्यास देव ! सब समुद्र, सभी नदियाँ और सभी वापी, कूप और ह्रद स्नान करने की इच्छा वाले गया तीर्थमें जाया करतेहैं-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१५। जो बिना ही संस्कार वाले मृत हो गये हैं या जो पशु तथा चोरों के द्वारा हत हुए हैं एवं जिनकी मृत्यु सर्प दंशन से हो गई वे सब गया के श्राद्ध से मुक्त होकर स्वर्ग लोकमें जाते हैं । तात्पर्य यह है कि उक्त प्रकार की अपमृत्यु वाले पुरुष गयामें किए गए श्राद्ध से ही विमुक्त हुआ करते हैं ।१६-१७। गया में पिंड दान से जो फल मनुष्य प्राप्त किया करता हैं वह मैं भी सैकड़ों करोड़ों वर्षो में भी नहीं बतला सकता हूँ अर्थात् मेरी इतनी शक्ति नहीं हैं कि मैं उनके महान् फलों का वयान कर सकूँ ।१८।

४६—गया में तीर्थ माहात्म्य

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् ।
विषयश्चारणः पुण्यो नदीनाञ्चैव पुनः पुनः ।।१
मुण्डपृष्ठं तु पूर्वस्मिन्यपश्चिमे दक्षिणोत्तरे ।
सार्द्धं कोशद्वयं मानं गयायां परिकीर्त्तितम् ।।२

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ।
तत्र पिंडप्रदानेन पितृणां परमा गतिः ।
गयागमनमात्रेण पितृणामनृणोभवेत् ।३
गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्द्दनः ।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् ।४
रथमार्गं गयातीर्थं दृष्टवा रुद्रं पदाधिके ।
कालेश्वरं च केदारं पितृणामनृणी भवेत् ।५
दृष्ट्वा पितामह देवं सर्वपापः प्रमुच्यते ।
लोकं त्वनामयं याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ।६
तथा गदाधरं देव माधवं पुरुषोत्तमम् ।
तं प्रणम्य प्रयत्नेन न भूपो जायते नरः ।७

ब्रह्माजी ने कहा—कीटकों-में गया पुण्य स्थल है । राजगृह वन परम पुण्यस्वरूप है । नदियों में पुनः पुनः धारण विषय पुण्यमय है ।१। पूर्व पश्चिम में मृत्यु पृष्ठ है और दक्षिणोत्तर में ढाई कोस पर्यन्त गया का मान बताया गया हैं ।२। पाँच कोश तक गया क्षेत्र है और एक कोश गया का शिर है वहाँ पर पिंड प्रदान करने से पितरों की परम गति होती है ।३। गया में पितृ रूप से देवों के भी देव भगवान् जनार्दन स्थित है । पुण्डरीकाक्ष उसको देखकर ही कि गया में आ गया है उसे तीनों ऋणों से मुक्त कर दिया जाता है अथवा पुण्डरीकाक्ष का वहाँ दर्शन प्राप्त करते ही वह तीनो ऋणोंसे छुटकारा हो जाता है तथा तीर्थ में रथ के मार्ग को और पदाधिक पर रुद्र को कालेश्वर और केदार को देखकर अर्थात इन सबका दर्शन प्राप्तकर मनुष्य पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है ।४-५। पितामह देवका दर्शन करके समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है । प्रपितामह का दर्शन-कर निरामय लोक की प्राप्ति करता है तथा गदाधर देव-पुरुषों में उत्तम माधव को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करके मनुष्य फिर इस संसार में जन्म नहीं ग्रहण करता है ।६-७।

मौनादित्यं महात्मानं कनकार्कं विशेषतः ।
दृष्ट्वा मौनेन विप्रर्षे पितृणामनृणी भवेत् ।८
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
गायत्री प्रातरुत्थाय यस्तु पश्यति मानवः ।९
संध्यां कृत्वा प्रयत्नेन सर्वदेवफलं लभेत् ।
सावित्रीं चैव मध्यान्हे दृष्ट्वा दानफलं लभेत् ।१०
नगस्थमीश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत् ।
धर्मारण्य धर्ममीशं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ।११
देवं गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्येत् बन्धनात् ।
धेनुं दृष्ट्वा धेनुवने ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ।१२
प्रभासेशं प्रभासे च दृष्ट्वा याति परां गतिम् ।
कोटीश्वरं चाश्वमेध दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ।१३
स्वर्गद्वारेश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ।
रामेश्वरं गदालोलंदृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।१४

गया में ब्राह्मण की अर्चना करके मनुष्य सीधा ब्रह्मलोक को जाता है ।८। प्रातःकाल शैया से उठकर जो मनुष्य गायत्री माता का दर्शन करता है वह समस्त देवोंके समर्चन का फल प्राप्त करता है ।९। मध्याह्न में जो सावित्री देवी का दर्शन अर्थात् ध्यान करता है वह यज्ञ फल को प्राप्त करता है और सायाह्न में सरस्वती का दर्शन करता है वह महान् दान का फल प्राप्त करता है ।१०। नग, पर संस्थित ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य पितृ से मुक्त हो जाता है । धर्मारण्य-धर्म और ईश का दर्शन करने से भी ऋणका नाश हो जाता हैं ।११। गृध्रेश्वर देव को देखकर कौन पुरुष है जो बन्धनसे मुक्त नहीं होता है धेनुवन में धेनु का दर्शन कर मनुष्य अपने पितृगण को ब्रह्मलोकमें ले जाया करता है ।१२। प्रभास के स्वामी का दर्शनकर मनुष्य परागतिको प्राप्त करता है । कोटीश्वर और अश्वमेधका दर्शनकर ऋणका नाश कर दिया जाता

है ।१३। स्वर्गद्वार के ईश्वर का दर्शन मनुष्य भवबंधन से मुक्त हो जाता है । रामेश्वर और गदालोक का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य स्वर्गको प्राप्ति करता है ।१४।

ब्रह्मेश्वरं तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
मुण्डपृष्ठे महाचण्डी दृष्ट्वा कामानवाप्नुयत् ।१५
फल्ग्वीश फलगुचण्डीच गौरीं दृष्ट्वा च मंगलाम् ।
गोमेक गोपति देव पितृणामनृणो भवेत् ।१६
अंगारेशं च सिद्धेशं गयादित्यं गजं तथा ।
मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत् ।१७
फ़ल्गुतीर्थे सरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
एतेन किं पर्य्याप्तं नृणां सुकृतिकारिणाम् ।
ब्रह्मलोक प्रयान्तीह पुरुषानेकविंशतिम् ।१८
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्रा सराँसि च ।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिनेदिने ।१९
पृथिव्यां च गया पुण्या गयायां च गयाशिरः ।
श्रेष्ठं यथा फल्गुतीर्थं तन्मुखं च सुरस्य हिं ।२०
उदीचि कनकानद्यो नाभितीर्थन्तु मध्यतः ।
पुण्य ब्रह्मसरस्तीर्थं स्नानात्स्याद्ब्रह्मलोकदः ।२१

तथा ब्रह्मेश्वर का दर्शन कर ब्रह्म हत्या से मुक्ति पा जाता है । मुण्डपृष्ठ पर महाचन्डी का दर्शन कर मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति करता हैं ।१५। फल्गु के स्वामी और फल्गु की चन्डी तथा मंगला गौरी, गोभण, गोपति देव का दर्शन करके पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है ।१६। अंगारेश, सिद्धेश, गयादित्य, अज, मार्कण्डेयेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य से पितृगण के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ।१७। फल्गु नद में सर-स्नान कर के तथा गदाधर देव का दर्शन करके इतने ही से क्या पर्याप्त नहीं होता ? जो मनुष्य सुकृत करते वाले हैं उनको इतने से ही सब कुछ प्राप्त होता है । ये लोग

अपने इक्कीस पूर्व पुरुषों को ब्रह्मलोक इस पुण्य फल से दिया करते हैं ।१८। इस महि मण्डल में गो तीर्थ हैं, जितने सागर और सरोवर हैं सभी प्रतिदिन एक फल्गु तीर्थ में जाया करते है ।१६। भू-मण्डल में गया क्षेत्र परम पुण्यमय है और गया में भी गया का शिर परम श्रेष्ठ है तथा फल्गु तीर्थ और सुर का मुख अतीव उत्तम है ।११। उत्तम में कनका नदियाँ और मध्य में नाभि तीर्थ और ब्रह्म तीर्थ परम पुण्यमय है ।२१।

कूपे पिंडादिकं कृत्वा पितृणामनृणो भवेन् ।
तथा क्षयवटे श्राद्ध ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ।२२
हंसतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
कोटितीर्थे गयालोके वैतरण्यां च गोमके ।
ब्रह्मलोकं नयेत् श्राद्धीपुरुषानेकविंशतिम् ।२३
ब्रह्मतीर्थे रामतीर्थे आग्नेये सोमतीर्थके ।
श्राद्धीं रामह्लदे ब्रह्मलोके पितृकुलं नयेत् ।२४
उत्तरे मानसे श्राद्धी न भयो जायते नरः ।
दक्षिणे मानसे श्राद्धी ब्रह्मलोकं पितृन् नयेत् ।२५
भीष्मतर्पणकृत्तस्य कूटे तारयते पितृन् ।
गृध्रेश्वरे तथा श्राद्धी पितृणामनृणो भवेत् ।२६
श्राद्धी च धेनुकारण्ये ब्रह्मलोकं पितृन्नयेत् ।
तिलधेनुप्रदा स्नात्वा दृष्ट्वा धेनु न संशयः ।२७
ऐन्द्रेषु वा न तीर्थेषु वासवे वैष्णवे तथा ।
महानद्यां कृतश्राद्धो ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन् ।२८

कूप पिण्ड करके पितृऋण से मुक्त होता है । क्षय वट पर श्राद्ध कर पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त करा दिया करता है ।२२। हँसतीर्थ में स्नान करके सभी पापों से मुक्ति पा जाता है । कोटितीर्थ में, गयालोक में वैतरणी में और गोमक में श्राद्ध करने वाला अपने इक्कीस पूर्व

पुरुषों को ब्रह्मलोक प्राप्त करा देता हैं।२३। ब्रह्मतीर्थ में, रामतीर्थ में, आग्नेय में और सोम तीर्थ में तथा रामह्लद में श्राद्ध करने वाला अपने पितृकुल को ब्रह्मलोक प्राप्त करादिया करता है।२४। उत्तर मानस में श्राद्ध करने वाला मानव फिर इस लोक में जननी के जठर निवास की पीड़ा प्राप्त नहीं करता। दक्षिण मानस में श्राद्ध विधान को सांग सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने नितरों को ब्रह्मलोक में ले जाया करता है।२५। कूटमें भीष्म तर्पण करने वाला अपने पितरों का उद्धार कर देता है। गृध्रश्वर में श्राद्ध करने वाला पितरों के ऋणसे उऋण हो जाता है।२६। धेनुकारण्य में श्राद्ध कर्त्ता पितृगणों को ब्रह्मलोक में पहुँचा देता है तिल और धेनुका दान करने वाला धेनुका दर्शन करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।२७। ऐन्द्र-नरतीर्थ वासव तथा वैष्णव में एवं महानदी श्राद्ध करने वाला पितरों का ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता है।२८।

गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा।
स्नानसंध्यातर्पणकृत् श्राद्धी चैकोत्तरं शतम्।
पितृणां तु कुलं ब्रह्मलोके नयति मानवः।२९
ब्रह्मयोनिं विनिर्गच्छेत्प्रयतः पितृमानसः।
तर्पयित्वा पितृन् देवान्न विशेद्योनिसङ्कटे।३०
तर्पणे काकजंघायां पितृणां तृप्तिरक्षया।
धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्यां श्राद्धी दिवं व्रजेत्।३१
धर्मयूपे च कूपे च पितृणामनृणी भवेत्।
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाच साक्षिणः।
मयाऽऽगत्य मतङ्गस्मिन्पितृणां निष्कृतिः कृताः।३२
रामतीर्थं नरः स्नात्वा श्राध्दं कृत्वा प्रभासके।
शिलायां प्रेतभाषाः स्युर्मुक्ता पितृगणाः किलः।३३
श्राध्दकृच्च स्वपुष्टायां त्रिःसप्तकुलमुध्दरेत्।
श्राध्दकृन्मुपृष्ठादौ ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन्।३४

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थो न विद्यते ।
पंचकोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तुपिण्डदः ।
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्वितृन् ।३५

गायत्र, सावित्र, तथा सारस्वत तीर्थ में स्नान-संध्या और तर्पण कर श्राद्ध को करने वाला एक सौ एक पितरों के कुल को ब्रह्मलोक को प्राप्ति करा देता है ।२६। अपने पितरों के समुद्धार के लिए प्रयत्नशील ब्रह्मयोनि का विनिर्गमन करता है। पितरों और देवों को तृप्त करके वह फ़िर जन्म नहीं लेता है ।३०। अपने पितृगण को तृप्ति करने की रक्षा से काकजंघा में तर्पण करने पर तथा धर्मारण्य में मतङ्ग की वाणी में श्राद्ध करने वाला पुरुष दिवलोक की प्राप्ति करता है ।१३। धर्म कूप में श्राद्ध करने वाला भी पितरों से उऋण हो जाता है । मैंने वहाँ मतङ्ग में आकार अपने पितृगण की निष्कृति है ।३२। रामतीर्थ में स्नान करके मनुष्ल प्रभासक में श्राद्ध करे तो शिला में प्रेत भाव को प्राप्त पितृगण मुक्त हो जाते हैं । स्वपुष्टा में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उध्दार कर लेता है मुण्डपृष्ठ में श्राद्ध करने वाला पुरुष पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा दिया करता है ।३३-३४। गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जो तीर्थ स्वरूप वाला न हो । पाँच कोस वाले गया के क्षेत्र में जहाँ-तहाँ पिंडदान करने वाला पुरुष कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला फल प्राप्त करता है और पितरों को ब्रह्मलोक में पहुंचा दिया करता है ।३५।

जनार्दनस्य हस्ते पिंडं दद्यात्स्पकं नरः ।
एष पिंडो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ।३६
परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति पितृभिः सह निश्चितम् ।३७
गयायां धर्मपृष्ठं च सरिस ब्रह्मणस्तथा ।
गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितृणां दत्तमक्षयम् ।३८

धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च ।
दृष्टैतानि पितुश्चार्घ्यं वंशान्विशतिमुध्दरेत् ।३६
ब्रह्मारण्यं मयनद्याः पश्चिमो भाग उच्यते ।
पूर्वे ब्रह्मसदो भागो नागाद्रिर्भरताश्रमः ।४०
भरतस्याश्रमे श्राध्दी मतङ्गस्य पदे भवत् ।
गय शीर्षात्दक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिमः ।४१
तत्स्मृतंचम्पकवनं तत्र पांडुशिलास्ति हि ।
श्राद्धी तत्र तृतीयायां निश्चिरायाश्च मण्डले ।
महाह्लदे च कौशिक्यामक्षयं फलमाप्नुयात् ।४२

जनार्दन के हाथ में मनुष्य अपना पिंड देवे और प्रार्थना करे कि हे जनार्दनदेव ! यह पिंड मैंने आपके हाथमें दिया है अब परलोक वाले पर मुझे आप अक्षम्य मोक्ष प्रदान करें । ऐसा करने वाला मानव अपने पितरों के सहित निश्चित रूप से ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करताहै । ।३६-३७। गया में ब्राह्मण धर्म पृष्ठ पर सर में—गया के शीर्ष में—अक्षय घट में पितरों को पिंड देने वाला अक्षय पुण्य-फल को प्राप्त करता है ।३८। धर्मारण्य धर्म पृष्ठ और धेनुकारण्य इनका दर्शन करके पितरों को अर्घ्यं देने वाला पुरुष अपने बसी वंशों का उध्दार करता है । ।३९। ब्रह्मारण्य मय नदी का पश्चिम भाग कहा जाता है और पूर्व में ब्रह्मसद भाग हैं तथा नागाद्रि और भरताश्रम है।४०। भरतके आश्रम में श्राध्द करने वाला मतङ्ग के पद में होता है । गया शीर्ष से दक्षिण में और महानदी के पश्चिम में वहाँ पर चम्पक बन बताया गया है । वहाँ पर पांडु शिला है । वहाँ श्राध्द करने वाला तृतीया में और निश्चिरा के मंडप में तथा महाह्लद में एवं कौशिकी में श्राध्दकर्त्ता अक्षय फल का भागी होता है ।४१-४२।

बैतरन्याश्चोत्तरतस्तृतीयाख्यो जलाशय ।
पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धी स्वर्गं नयेत्पितॄन् ।४३
क्रौंचपादादुत्तरतो निश्चिराख्यो जलाशयः ।

सकृत् गयाभिगमनं सकृत्पिडप्रपातनम् ।
दुर्लभं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः ।४४
महानद्यामपः स्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलंचापि समुद्धरेत ।
सावित्रे पठयते संन्ध्या कृता स्याद्वादशाब्दिकी ।४५
शुक्लकृष्णावभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः ।
पुनात्यासप्तमिचैव कुलं नास्त्यत्र संशयः ।४६
गयायां मुण्डपृष्ठं अरविन्दं च पर्वतम् ।
तृतीयं कौञ्चपादच दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।४७
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिंडपातनम् ।४८
महाह्रदे च कौशिक्यां मूलक्षेत्रे विशेषतः ।
गुहायां गृध्रकूटस्य श्राद्धं सप्त महाफलम् ।४९

वैतरणी से उत्तर में तृतीयाख्य एक जलाशय है । वहाँ पर क्रौञ्च के पद हैं । वहाँ श्राध्द करने वाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त करा दिया करता है ।४३। कौंच पाद के उत्तर की ओर निश्चर संज्ञा वाला एक जलाशय विद्यमान है । एक बार गया में गमन करना तथा एक बार पिंडों का प्रपातन करना ही इतना फल देने वाला है कि उस पुरुष को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है ।४४। महा नदी के जलों का स्पर्श करके जो पितृगण और देवर्षियों को तृप्त करता है वह अक्षय लोकों की प्राप्ति करता है और अपने कुल का भी उध्दार कर दिया करता है । सावित्री से पढ़ी हुई संध्या द्वादशाब्दि की हुई होती है ।४५। जो मनुष्य कृष्ण और शुक्ल दोनों ही मास के पक्षों में गया में निवास किया करता है वह सात कुलों को पवित्र कर देता हैं—इसमें तनिक् भी संशय नहीं है ।४६। गया में मुण्ड पृष्ठ,अरविन्द पर्वत,तृतीया क्रौंचपाद इनके दर्शन करके मानव समस्त पापों से प्रमुख होता है ।४७। मकर संक्रान्ति तथा चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण के समय गया में पिन्डों दान

तीनों लोकों में महान दुर्लभ है ।४८। महाह्लद में कौशिकी में और विशेषतया मूल क्षेत्र में–गृध्र कूट करे गुहा में श्राद्ध सात महा फल पाता है ।४९।

यत्र माहेश्वरी धारा श्राद्धी यत्रानृणो भवेत् ।
पुण्यां विशालमासाद्य नदी त्रैलोक्यवि स्रु ताम् ।
अग्निष्टोगमवाप्नोति स्राद्धी प्रायाद्दिवं नरः ।५०
श्राद्धी सोमप स्नात्वा देवाजपेयफलं लभेत् ।
रविपादे पिंडदानात्पतितोद्‌ धारणं भवेत् ।५१
यो गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ।
कांक्षते पितरः पुत्रान् नरकाद्‌ भवभीरवः ।५२
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान् सन्तारयिष्यति ।
गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।५३
पद्मायामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति ।
आत्मजो वा तथान्या वा गयाकूपे यदा तदा ।५४
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तं नयेद्‌ ब्रह्म शाश्वतम् ।
पुण्डरीकं विष्णुलोकं प्राप्नुयात्कोटितीर्थगः ।५५
या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रु ता ।
साऽवतार्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय हि ।५६

जहाँ पर माहेश्वरी धारा हैं वहाँ श्राद्ध करने वाला उऋण हो जाया करता है । परम पुण्यमयी और त्रैलोक्यमें परम प्रसिद्ध विशाला नदी को प्राप्त करके श्राद्ध करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम गया का फल प्राप्त करता है और फिर दिवलोक को चला जाता है ।५०। सोमपद में स्नान करके श्राद्ध के विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष वाजपेय यज्ञ का फल पा जाता है । रविपाद में पिण्डोंके प्रदान करनेसे पतितों का उद्धार होता है ।५१। जो गया में स्थित होकर अन्न का दान करता है उसी पुत्र से पितृगण पुत्र वाले होते हैं ।५२। पितरगण सोचा करते हैं कि हमारे पुत्रादि में से जो कोई भी कभी गया जाएगा

तो वह हमारा उद्धार कर देगा । गया में प्राप्त हुए अपने पुत्रादि को देखकर पितृगण को बड़ी प्रसन्नता होती है ।५३। पैरों से भी जल का स्पर्श करके वह हमारे लिए देगा वह आत्मज हो तथा अन्य कोई हो जब गया के कूप में पिंडोंका पातन करेगा उसी समय उनको शाश्वत ब्रह्म की प्राप्त करा देता है । कोटि तीर्थमें गमन करने वाला पुण्डरीक विष्णु लोक में प्राप्त होता है ।५४-५५। वैतरणी नदी गया के क्षेत्र में पितरों के तारने के लिए अवतीर्ण हुई है ।५६।

श्राद्धद: पिंडदस्तत्र गोप्रदानं करोति य: ।
एकविंशतिवंशान् स तारयेन्नात्र संशय: ।५७
यदि पुत्रो गयाँ गच्छेत्कदाचित् कालपर्य्यंये ।
तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्राह्मणा ये परिकल्पिता: ।५८
तेषां ब्रह्मसद: स्थानं विप्रा ब्रह्मपरिकल्पिता: ।
ब्रह्मप्रकल्पितं स्थानं विप्रा ब्रह्म प्रकल्पित: ।
पूजितै: पूजिता: सर्वे पितृभि: सह देवता: ।५९
तर्पयेत्तु गयाविप्रान् हव्यकव्यैर्विधानत: ।
स्थानं देहपरित्यागे गयायान्तु विधीयते ।६०
य: करोति वृषोत्सर्गं गयाक्षेत्रे ह्यनत्तमे ।
अग्निष्टोमशतं पुण्यं लभते नात्र संशय: ।६१
आत्मनोऽपि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना ।
पिण्डनिर्वपनं कुर्य्यादन्येषामपि मानव: ।६२
यावन्यो ज्ञातय: पित्र्या बान्धवा सुहृदस्तथा ।
तेभ्यो व्यास गयाभूमौ पिंडो देयो विधानत: ।६३

यहाँ पिंडदान करने वाला और गौ दान करने वाला पूर्वजों की इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करता है ।५७। यदि पुत्र किसी भी समय गया तीर्थ में जावे तो उन्हीं विप्रों को भोजन करना चाहिए जो ब्रह्मा के के द्वारा प्रकल्पित हुए हैं ।५८। जो विप्र ब्रह्म प्रकल्पित हैं उनका

वह सत्स्थान है। ब्रह्म प्रकल्पित स्थान है और विप्र भो ब्रह्म प्रकल्पित है पूजित पितृगणों के साथ समस्त देवगण पूजित किए गए हैं।५६। गया वासी विप्रों को विधि-विधान से हव्य- व्यों के द्वारा तृप्त करना चाहिए। गया में गेह परित्याग करने में स्थान किया जाता है।६०। परमोत्तम गया क्षेत्र में जो वृषका उपसर्ग करता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।६१। महान् बुद्धिमान पुरुष को अपना भी तिलों के बिना गया में पिंडों का निर्वपन करे और मनुष्य औरों का भी करे।६२। जितने भी ज्ञाति बान्धव और सुहृद्गण पितर हैं हे व्यास देव ! उन सबके लिए विधान के साथ गया की भूमि में पिंड देना चाहिए।६३।

रामतीर्थे वरः स्नात्वा गोशतस्याप्नुयात्फलम्।
मतंगवाप्यां स्नात्वा च गोसहस्रफलं लभेत्।६४
निश्चिरासंगमे स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन्।
बसिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयञ्च विन्दति।
महाकोश्यां समावासादश्वमेधफलंलभेत्।६५
पितामहस्य सरशः प्रसृता लोकपावनी।
समीपे त्वग्निधारेति विश्रुता कपिला हि सा।
अग्निष्टोमफलं श्राद्धी स्नात्वाऽत्र कृतकृत्या।६६
श्राद्धी कुमारधारायामश्वमेधफलं लभेत्।
कुमारमभिगम्याथ महामुक्तिमवाप्नुयात्।६७
सोमकुन्डे नरः स्नात्वा सोमलोकञ्च गच्छति।
संवर्त्तस्य नरो वाप्यां सुभगः स्यात्तु पिंडदः।६८
धूतपापो नरो याति प्रेतकुन्डे च पिंडदः।
देवनद्यां लेलिहाने मथने जनुगर्त्तके।६९
एवमादिषु तीर्थेषु पिंडदस्तारपेत् पितृन्।
नत्वा देवं वसिष्ठेशं प्रभूतमृणसंक्षयम्।७०

रामतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सौ गौओं का दान का फल प्राप्त करता है। मातङ्ग वापी में स्नान करने से एक सहस्र गौ के दान का फल मिलता है।६४। निश्चिरा के संगम में स्नान से पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त करा दिया करता है बसिष्ठ के आश्रम में स्नान करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है और महाकोशी में समावास से अश्वमेघ यज्ञ का फल मिला करता है।६५। पितामह के सर से लोक पावनी परम प्रसिद्ध है समीप में ही अग्नि धारा विश्रुत है वह कपिला है। यहाँ पर स्नान करके श्राद्ध करने वाला पुरुष अग्निष्टोम के पुन्य फल का लाभ किया करता है और उसे कृत-कृत्यता हो जाती है।६६। कुमार धारा में श्राद्ध करने वाला मानव अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है। इसके अनन्तर को प्राप्त कर महा मुक्ति का लाभ करता है।६७। सोम कुण्ड में स्नान कर मनुष्य सोम (चन्द्र) के लोक की प्राप्ति कर लेता है। संवर्त्तता वापी में पिंडदान करने वाला परम सुभग हो जाता है।६८। प्रेत कुन्ड में पिंड दान करने वाला मनुष्य धौत पाप अर्थात् समस्त पापों को धो लेने वाला हो जाता है। देव नदी में—लेलिहान में—जानुगर्त्त क कथन में एवमादि तीर्थों में पिन्डों का दान करने वाला मनुष्य अपने पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है। वसिष्ठ देव को नमस्कार करके प्रभूत ऋण का संक्षय कर लेता है।६९-७०।

४७—गया में तीर्थ कर्त्तव्य

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
विधाय कापटं वेश ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम्।१
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः।२
गृहच्चलितमात्रस्य गयायां गमनं प्रति।
स्वर्गारोहणसोपानं पितृणां तु पदे पदे।
मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः।३

वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशाला विरजां गयाम् ।
दिवा च सर्वदा रात्रो गयायां श्राद्धकृद्भवेत् ।४
वाराणस्यां कृतं श्राद्धं तीर्थे शोणनदे तथा ।
पुनः पुनर्महानद्यां श्राद्धी स्वर्गं पितृन्नपेत् ।५
उत्तर मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।
तस्मिन्वित्तं यद् श्राद्धं स्नानञ्चैव निबर्त्तयेत् ।
कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायं च सर्वशः ।६
दक्षिणं मानसं गत्वा मौनी पिन्डादि कारयेत् ।
ऋण त्रयापाकरणं लभेद्दक्षिण मानसे ।७

ब्रह्माजी ने कहा—गया को जाने के लिए उद्यत पुरुष पहिले विधान से श्राद्ध करे और कापट वेश करके ग्राम की भी प्रदक्षिणा करे ।१। इसके अनन्तर अन्य ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष का भोजन करे और फिर प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रह में रहित होता हुआ आगे जाना चाहिए ।२। जो गया को गमन करता है, पितर लोग एक-एक पद पर स्वर्ग के समारोहण के सोपान (सीढ़ी) पर चढ़ा करते हैं। गया क्षेत्र को जाने वाले का मुन्डन और उपवास समस्त मार्ग में आने वाले तीर्थों में होना चाहिए ।३। कुरुक्षेत्र और विशाला विरजा गया को छोड़ कर सर्वदा दिन में और गया में रात्रि में श्राद्ध करने वाला होवे ।४। वाराणसी में तथा शोणनद में किया हुआ श्राद्ध तथा महानदी में पुनः पुनः श्राद्ध करने वाला अपने पितृगण को स्वर्ग प्राप्त करा देता है ।५। उत्तर मानस में जाकर परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है। उनमें ही श्राद्ध का निर्वर्त्तन करे और उसी में स्नान-किया को पूर्ण करना चाहिए। ऐसा पुरुष अपनी परम दिव्य कामनाओं को प्राप्त करता है और सभी मोक्ष के उपायों का भी लाभ करता है ।६। दक्षिण मानस में पहुंच कर मौन धारण कर पिंडदान आदि करे—करावे । दक्षिण मानस में जाकर यह करने तीनों प्रकारके ऋणों का अपाकरण करता है ।७।

सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाँच भयङ्करः ।
लेलिहानै महाघोरैः अक्षतैः पन्नगोत्तमैः ।८
नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
उदीच्यां मुन्डपृष्टस्य देवर्षिगणसेवितम् ।९
तत्र स्नात्वा दिवं याति श्राद्धं दत्तमथाक्षयम् ।
सूर्य्यंनत्वा त्विदं कुर्य्यात्कृतपिण्डादिसत्क्रियः ।१०
कव्यवाहास्तथा सोमो यमश्चैवार्य्यमा तथा ।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपा पितृदेवताः ।
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितस्त्विह ।११
मदीयाः पितरो ते च कुले जाताः सनाभयः ।
तेषां पिण्डप्रदाताहमागतोऽस्मि गयामिह ।१२
कृतपिण्डः फल्गुतीर्थं पश्येद्देवं पितामहंम् ।
गदाधरं ततः पश्येत्पिपतृणामनृणो भवेत् ।१३
फल्गुतीर्थं नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
आत्मानं तारयेत्सद्यो दशपूर्वान्दशपरान् ।१४

सिद्धों की प्रीति को उत्पन्न करने वाले और पापों को भयंकर—लेलिहान—महान् घोर—अक्षत पन्नगों में उत्तमों से युक्त कनखल नाम वाला तीर्थं तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । उदीची में देव-ऋषिगणों के द्वारा सेव्यमान मुण्ड पृष्ठ का तीर्थं हैं ।८-९। वहाँ पर स्नान करके मनुष्य दिवलोक को चला जाता है और दिया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है । सूर्य को नमस्कार करके यह करना चाहिए । पिंडादि की सत्क्रिया करने वाला यह प्रार्थना करे कि—कव्यवाह-सोम-यज्ञ तथा अर्यमा अग्निष्वात्त—वर्हिषद—सोमप पितृ देवता समस्त महाभाग यहाँ आवे और आप लोग यहाँ की रक्षा करें ।१०-११। मेरे जो पितरगण हैं और जो मेरे कुल में सनाभि समुत्पन्न हैं उन सबके लिए पिंड प्रदान करने वाला मैं यहाँ इस गया क्षेत्र में आ गया हूँ ।२। इस प्रकार से पिंडों का प्रदान करने वाला फल्गु तीर्थ में पितामह का दर्शन करे इसके अनन्तर

गदाधर का दर्शन करना चाहिए ।१३। फल्गु तीर्थ में स्नान कर गदाधर देवका दर्शक करे तो दश पहिले तथा दश आगे आने वाले कुलों का उद्धार कर देता है ।४।

प्रथमो हि विधिः प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत् ।
धर्मारण्यं मतंगस्य वाप्यां पिंडादिकृद्भवेत् ।१५
धर्मारण्य समासाद्य वाजपेयफलं लभेत् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलंस्याद् ब्रह्मतीर्थकेः ।१६
श्राद्धं पिंडोदकं कार्य्यं मध्ये व यूपकूपयोः ।
कूपोदकेन तत्कार्य्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ।१७
तृतीयेऽहिन् ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाऽथ तर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्धाद्धिकं पिंड मध्ये वै थूपकूपयोः ।१८
गोप्रचारसमीपस्या आब्रह्म ब्रह्मकल्पिताः ।
तेषां सेवनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः ।
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत् ।।१६
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽहिन स्नात्वा देवादितर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्धं गयाशीर्षे देवरुद्रपदादिषु ।।२०
पिंडान्देहि मुखे व्यास पंचाग्नौ च पदत्रये ।
सूर्य्येन्दुकात्तिकेषु कृत श्राद्दं तथाऽक्षयम् ।
श्राद्धा तु नवदैवत्यं कुर्य्याद् द्वादश दैवतम् ।।२१

प्रथम दिवस की विधि बतलादी गई है अब दूसरे दिन में गमन करे । धर्मारण्य और मतङ्ग वापी में पिंडों का प्रदान करने वाला होवे ।१५। धर्मारण्य को प्राप्त कर वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ब्रह्मतीर्थ में पिंडदान एवं स्नानादि कर राजसूय और अश्वमेघ दोनों यज्ञों के फल की प्राप्ति किया करता है ।१६। कूप यूपके मध्य से श्राद्ध एवं पिंडोदक कार्य करना चाहिए ।१७। अब तीसरे दिन ब्रह्मसद में जाकर स्नान करे तथा तर्पण करे । यूंप और कूप के मध्य में पिंड और श्राद्धादि करके गौ प्रचार के समीप स्थित आब्रह्म ब्रह्म कल्पित हैं

उनके सेवन मात्र से ही समस्त पितरगण मोक्षगामी हो जाते हैं । यूप की प्रदक्षिणा करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं ।१८। ।१६। तीसरे दिन के इस उपर्युक्त कृत्य को समाप्त करके अब चौथे दिन में फल्गु तीर्थ में स्नान करके देवादि का तर्पण करे फिर गया शीर्ष में देव रुद्र पदादि में श्राद्ध करे। हे व्यास देव ! मुख में पंचाग्नि में और पदत्रय में पिंड देव सूर्य चन्द्र और कार्त्तिकेय में किया श्राद्ध अक्षय होता है । वह श्राद्ध एवं दैवत्य तथा द्वादश दैवत करना चाहिए ।२०-२१।

अन्वेष्टकासु वृद्धौ च गयायां मृतवासरे ।
अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ।।२२
स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहम् ।
रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा न चेहावर्त्तते पुनः ।।२३
त्रिवित्पूर्णां पृथिवीं दत्वा यत्फलमवाप्नुयात् ।
स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्धं गयाशिरे ।।२४
शमीपत्र प्रमाणेन पिण्ड दद्याद् गयाशिरे ।
पितरो यान्ति देवत्वं नात्रकार्य्या विचारणा ।।२५
मुडंपृष्ठे पदं व्यस्तं महादेवेन धीमता ।
अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यवाप्नुयात् ।।२६
गयाशीर्षे तु यः पिंडान्नाम्नां येषां तु निर्वपेत् ।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ।।२७
पंचमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा वटतले ततः ।
पिंडं दद्यात्पितृणांच सकलं तारयेत्कलम् ।।२८

अनुवेष्टका में वृद्धि में गया मैं-मृत वासर के समय में यहाँ पर माता का पृथक् श्राद्ध करे और अन्य स्थल में पति के साथ ही करे ।२२। दशाश्व मेध में स्नान करके तथा पितामह देव का दर्शन करे । मनुष्य रुद्रपाद का स्पर्श करके फिर संसार में दुवारा जन्म ग्रहण नहीं करता है ।२३। वित्तों से पूर्ण पृथ्वी का दान कर के जो फल प्राप्त होता है उसे यथा शिर में

श्राद्ध करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है।२४। गया शिर में शमी के पत्र के प्रणाम वाला पिंड देना चाहिए। इससे पितरगण देवत्व को प्राप्तहो जाया करते हैं, इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए।२५। मुण्ड पृष्ठ में धीमान् महादेव ने पद व्यस्त किया है। वहाँ पर अल्प तपसे ही महान पुण्य की प्राप्ति होती है।२६। गया शीर्ष में जो पिंड दान के द्वारा जिनको निर्वपन करता है उसके पितर जो नरक में स्थित हो ये दिवलोक को चले जाते हैं और जो स्वर्गवास करने वाले हैं वे मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं।२७। अब पाँचवाँ दिन का कृत्य बतलाया जाता है। पाँचवें दिन गदालोक में स्नान करे और फिर वट के नीचे पितरों को पिंडदान करना चाहिए। ऐसा करनेसे मनुष्य अपने समस्त कुल को तार दिया करता।२८।

वटमूलं समासाद्य काकेनोष्णोदकेन च।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२९
कृते श्राद्धे ऽक्षयवटे दृष्ट्वा च प्रपितामहम्।
अक्षयान्लभते लोकान्कुलानामुद्धरेच्छतम् ॥३०
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्य कोऽपि गया व्रजेत्।
यजेद्वा अश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥३१
प्रेतः कश्चित्समुद्दिश्य वणिजं कञ्चिदब्रवीत्।
मम नाम्ना गयाशीर्षे पिंडानिर्वपनं कुरु।
प्रेतभावाद्विमुक्तः स्यात्स्वर्गदो दातुरेव च ॥३२
श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम्।
प्रद्ददावनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥३३
सर्वे मुक्ता विशालोऽपि सपुत्रोऽभूच्च पिण्डदः।
विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद द्विजान् ॥३४
कथं पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चोचुर्विशालकम्।
गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति।
विशालोऽयं गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ॥३५

वट के मूलमें प्राप्त होकर शाक और उष्णोदक के द्वारा एक विप्र के भोजन करा देने पर एक करोड़ के भोजन का फल होता है ।२९। अक्षय वट में श्राद्ध के करने पर और प्रपितामह का दर्शन करके अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है तथा अपने सौ कुलों का उद्धार कर देता है ।३०। बहुतसे पुत्रों की इच्छा रखनी चाहिए उनमें यदि कोईभी एक गया चला जाता है अथवा अश्वमेध का यजन करता है या बृषका उत्सर्गकरता है तो परम कल्याणकारी है ।३१। कोई प्रेत किसी वैश्य से बोला कि तुम मेरे नाम से गया में पिंडदान करदो तो मैं प्रेतभावसे मुक्त हो जाऊँ और देने वाले को भी स्वर्ग प्राप्त हो ।३२। वणिक् ने उस प्रेतराज के लिए गया शीर्ष में पिंडदान किया था । इसके पश्चात् अनुजों के साथ अपने पितरों को भी पिंडदान दिया था ।३३। वे सभी मुक्त हो गये थे । इसी प्रकार से पिंडदान करने वाला विशाल भी पुत्रों से युक्त हो गया था । विशाल में विशाला एक राजपुत्र हुआ था । वह ब्राह्मणों से बोला-मेरे पुत्रादि किस प्रकार हो सकेंगे ? तब विप्रगण विशाल से बोले कि गया में पिंड़दान करने से तुमको यह सभी कुछ हो जायगा । तब यह विशाल गया शीर्ष में पिंडदान करके पुत्रों वाला हो गया था ।३४-३५।

दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् ।
के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे शिवालकम् ॥३६
अह सितस्ते जनकं इन्द्रलोकं गतः शुभात् ।
मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्परः ॥३७
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयोऽनेन घातिताः ।
अवीचि नरकं प्राप्तौ मुक्तौ जातौ च पिण्डद ॥३८
मुक्तीकृतास्ततः सर्वे ब्रजामः स्वर्गमुत्तमम् ।
कृतकृत्यो विशालोऽपि राज्यं कृत्वा दिवं ययौ ॥३९
येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिन्डोदकक्रियाः ।
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिसृताः ॥४०

येषां दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्थापरे ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्या यान्तु परां गतिम् ॥४१
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
माता पितामह चैव तथैव प्रपितामही ॥४२
तथां मातामहश्चैव प्रमातामह एव च ।
वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही ततः परम् ॥४३
प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति वै ।
अन्येषाञ्चैव पिन्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥४४

आकाश में विशालक ने सित, रक्त और कृष्ण वर्ण वाले पुरुष को देखा था । उसने पूछा था—आप कौन हैं तब उनमें से एक सित जो था वह बोला ।३६। मैं सित तेरा पिता हूँ और इस शुभ कर्म से इन्द्रलोक को प्राप्त हो गया हूँ । हे पुत्र ! मेरे पिता रक्तवर्ण वाले हैं । यह ब्रह्म हत्यारे और अधिक पाप करने वाले हैं ।३७। यह कृष्ण वर्णवाले पितामह है । इनने ऋषियों को घातित किया था । ये दोनों अवीचि नरक में प्राप्त थे । अब हे पिंड देने वाले ! ये मुक्त होकर नारकीय यातना से छूट गए हैं ।३८। इसके अनन्तर हम सभी मुक्त होकर अब उत्तम स्वर्गलोक में जा रहे हैं । वह विशाल भी परम कृतकृत्य होकर राज्यके सुख भोग कर दिवलोक को चला गया था ।३९। वहां पिंडदान करनेके समय में प्रार्थना करे कि जो हमारे कुल में ऐसे पितृगण हो जिनकी पिंडदान लुप्त हो गई हो अर्थात् कोई भी पिंड तथा उदक देने वाला न रहा हो तथा जो चूड़ा संस्कार रहित हों, और जो गर्भसे ही विनिसृत हो गए हों, तथा अन्य भी जो कोई हों वे सभी भूमि में दिए हुए उदक तृप्त हों और तृप्त होकर परम गति को प्राप्त होवे ।४०-४१। पितामह तथा प्रपितामह, माता पितामही तथा प्रपितामही एवं मातामह-प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह एवं मातामही-प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही तथा अन्य जो भी कोई हों उन सबके लिए यह पिंड अक्षय होवे, यह कह पिंडदान करें ।४२-४४।

५८—मन्वन्तर वर्णन

चतुर्दश मनून्वक्ष्ये तत्सुतांश्च शुकादिकान् ।
मनुः स्वायम्भुवः पूर्वमग्निध्राद्याश्च तत्सुताः ॥१
मीरिचरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महातेजा ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥२
जयाख्याश्चामिताख्याश्च शुको यामास्तथैव च ।
गणा द्वादशकाश्चेति चत्वारः सोमपायिनः ॥३
विश्वभुग्वामदेवेन्द्रो वाष्कलिस्तदरिह्यभूत् ।
स हतो विष्णुना दैत्यश्चक्रैः सुमहात्मना ॥४
मनुः स्वारोचिषश्चाथ तत्पुत्रो मण्डलेश्वरः ।
चैत्रको विनतश्चैव कर्णान्तौ विद्युतो रविः ॥५
वृहद्गुणी नभश्चैव महावलपराक्रमः ।
उर्जस्तम्बस्तथा प्राण ऋषभो निचुलस्तथा ॥६
दम्भोलिश्चार्ववीरश्व ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ।
तुषिता द्वादश प्रोक्तास्तथा पारावताश्च ये ॥७

हरि ने कहा, अब हम चौदह मनुओंको वतलाते हैं और उनके सुत शुकादि को वताते हैं । पहिले स्वायम्भुव मनु हुए थे तथा अग्निध्रादि उनके पुत्र हुए थे ।१। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य,पुलह, क्रतु और महान तेज वाले वसिष्ठ ये साम ऋषिवृन्द कीर्तित किये गये हैं ।२। ज्याख्य, अभिताख्मः शुक्र तथा याम और द्वादश गण ये चार सोमपायी थे । विश्व भुक्, वाम देवेन्द्र, वाष्कलि उनका शत्रु हुआ था । वह दैत्य सुमहात्मा विष्णु के द्वारा चक्रसे मारा गया था ।४। इसके अनन्तर स्वारोचिष मनु हुए थे । उनका पुत्र मण्डलेश्वर चैत्रक, विनत, कर्थान्ति, विद्युत, रवि वृहदगुण और महान बल तथा पराक्रम वाला नभ ये थे । ऊर्ज स्तम्व, प्राण, ऋषभ, निचल,दम्भोलि और अर्ववीर ये सात ऋषि कीर्त्तित किये गए हैं । द्वादश तुषित कहे गये हैं और पारावत बताये गये हैं ।५-७।

इन्द्रो विपश्चिद्देवानां तद्रिपुः पुरुकूत्सरः ।
जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदनः ॥८
औत्तमस्य मनोः पुत्रा आणश्च परशुस्तथा ।
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुवलः शुचिः ।
देवो देवावृधो रुद्र महोत्साहाजितस्तथा ॥९
रथौजा ऊर्ध्ववाहुश्च शरणश्चानघो मुनिः ।
सुतपाः शङ्कुरित्येते ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥१०
वशवर्त्तिः स्वधामानः शिवाः सत्याः प्रतर्दनाः ।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ताः सर्वे द्वादशकास्तु ते ॥११
इन्द्रः स्वशान्तिस्तच्छुक्रः प्रलम्बो नाम दानवः ।
मत्स्यरूपी हरिविष्णुस्तं जघान च दानवम् ॥१२
तामसस्य मनोः पुत्रा जानुजंघोऽथ निर्भयः ।
नवख्यातिर्नयश्चैव प्रियभृत्या विनिक्षिपः ॥१३
हविष्कधि प्रस्तलाक्षः कृतबन्धुः कृतस्तथा ।
ज्योतिर्धामा धृष्टाव्यश्चैत्रश्चेताग्निहेमकौ ॥१४
मुनयः कीर्त्तिताः सप्त सुरागाः स्वधियस्तथा ।
हरयो देवतानाञ्च चत्वारः पञ्चविंशकाः ॥१५

देवों का इन्द्र विपश्चिद् था और उसका शत्रु पुरुकुत्सर था । भगवान मधुसूदन ने हस्ती के रूप सें उसका हनन किया था ।८। औत्तम मनुक पुत्र आज परशु, विनीत, सुकेत, सुमित्र, सुवल, शुचि,देव देवावृध तथा महोत्सा-हाजित रुद्र थे ।९। उस मन्वन्तर में रथोजा, ऊर्ध्व बाहु शरण, अनघ, मुनि, सुलपा, और शकु ये सप्तर्षि बताये गये हैं ।१०। वशवर्ति—स्वधामान-शिवा-सत्य और प्रतर्दन ये पाँच देवगण कीर्त्तित किये गये हैं, वे सब द्वादश थे ।११। स्वशान्ति नामक इन्द्र था और उसका शुक्र प्रलम्ब नामधारी दांनव था । उस दानव को मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले हरि विष्णु ने हनन किया था ।१२। तामस नामक मनु के पुत्र जानुजंघ, निर्णय, नवख्याति-नृप-प्रियभृत्व विनिक्षिप हवकंकधि, प्रस्तला कृतवन्ध कृत थे और ज्योतिधाया धृष्ट काव्य चैत्र

श्वेताग्नि हेमक ये सात मुनि बताए हैं। सुरागा और स्वधिग हरि थे तथा देवताओं के चार पाँच विशक गण हुए थे।१३-१५।

गण इन्द्रः शिविस्तस्य शत्रुर्भीमरथाः स्मृताः।
हरिणा कूर्मरूपेण हृतो भीमरथोऽसुरः ॥१६
रैवत मनोः पुत्रा महाप्राणश्च साधकः।
वनबन्धुर्निरमित्रः प्रत्यङ्गः पारहा शुचिः ॥१७
दृढ़व्रतः केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वर्ण्यते।
देवश्रीर्वेदबाहुश्चऊर्ध्ववाहुर्तथैव च।
हिरण्यरोमा पर्जन्यः सत्यनामा स्वधाम च ॥१८
अभूतरजश्चैवैक स्तथा देवाश्वमेधसः।
वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणाः ॥१९
गणे चतुर्दश सुरा विभरिन्द्रः प्रतापवान्।
शान्तशत्रुर्हतो दैत्यो हंसरूपेण विष्णुना ॥२०
चाक्षुषस्य मनोः पुत्रा ऊरुः पूरुर्महाबलः।
शतद्युम्नस्तपस्वी च सत्यबाहुः कृतिस्तथा ॥२१
अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्च तथा नरः।
हविष्मान्सुतनु श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा।
अभिमानः सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषयः स्मृता ॥२२

उनका इन्द्र शिवि था और उसका शत्रु भीमरथ कहे गए हैं। भगवान् हरि ने कूर्मावतार धारण कर भीम रथ असुर का वध किया था ।१६। रैवत मनु के पुत्र, महाप्राण साधक–वनबन्धु-निरमित्र-प्रयङ्ग–पराहा-शुचि दृढ़व्रत और केतु शृंग हुए थे। अब उसे मन्वन्तर के ऋषि वर्णित किए जाते हैं–देव श्री-वेदबाहु-ऊर्ध्व-हिरण्य रोमा-पर्जन्य-सत्य नामा और स्वधाम थे।१७-१८। अभूतरज देवैश्वमेघ-वैकुण्ठ और अमृत ये चार देवों के गण थे। इस गण में चौदह सुर थे। उनका प्रतापवान् विभु इन्द्र हुआ था। उसका शत्रु शन्तासुर हुआ था। जिस दैत्यको हंस रूप धारी भगवान विष्णुने हनन किया था।१९-२०। अब चाक्षुष मन्वन्तर को बतलाते हैं। चाक्षुष मनु में पुत्र उरु-पूरु-महाबल-शतद्युम्न-

तपस्वी-सत्य बाहु-कृति-अग्निविष्णु-अतिरात्र-सुद्युम्न तथानर ये हुएथे। हविष्मान-सुतनु श्रीमान-स्वधामा-विरज-अभिमान-सहिष्णु और मधु श्री ऋषिगण बताये गये हैं।२१-२२।

आर्य्या प्रसूता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकास्तथा।
अष्टकस्य गणाः पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम्।२३
इन्द्रो मनोजवः शत्रुर्महाकालो महाभुजः।
अश्वरूपेण स हतो हरिणा लोकचारिणा।२४
मनोर्वैवस्वतस्यैते पुत्रा विष्णुपरायणः।
इक्ष्वाकुरथ नाभाख्यो विष्टिः सर्जातिरेव च।२५
हविष्यन्तस्तथा पाशुर्नभो नेदिष्ठ एव च।
करूषश्च पृषध्रश्च सुकृष्नश्च मनोः सुताः।२६
अत्रिर्वसिष्टो भगबान्जमदग्निश्च कश्यपः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ सप्तमः।२७
तथा ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतः परिकीर्त्तिताः।
आदित्यो वसवः साध्या गणा द्वादशकास्त्रयः।।२८

आर्या, प्रसूता, भाव्य, लेख्ा और पृथुक् ये देवों के अष्टक के पाँच गण कहे गए हैं। उनका इन्द्र मनोजव था और इन्द्र का शत्रु महा भुज महाकाल सुआ था। उसका बध लोकों के धारण करने वाले भगवान् हरि ने अश्व का स्वरूप धारण करके किया था।२३-२४। अब वैवस्वत मन्वन्तर को बतलाया जाता है, वैवस्वत मनुके पुत्र सब विष्णु परायण हुए थे। उनके नामये हैं, इक्ष्वाकु-नाभाख्य-विष्टिसर्जाति हविष्यन्त-पाशु-नभ-नेदिष्ट-करूप-प्रद्युम्न है।२५-२६। अत्रि-वसिष्ठ-भगवान्-जाम-दग्नि-कश्यप-गौतम भरद्वाज और विश्वामित्र वे उस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं।२७। उसमें उन चालीस मरद्गण कहे गए हैं। आदित्य-वसु और साध्य ये तीन द्वादशक गण थे। तथा एकादश रुद्र हुएथे और अष्ट वसु थे। दो अश्विनीकुमार विनिर्दिष्ट किएहैं तथा दश विश्वेदेवा हैं।२८।

एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
द्वावश्विनौ विनिर्दिष्टौ विश्वेदेव स्तथा दश ।
दशैवांगिरसो देवा नव देवगणास्तथा ।२९
तेजस्वी नाम वै शक्रौ हिरण्याक्षो रिपुः स्मृतः ।
हतो वाराहरूपेण हिरण्याक्षोऽथ विष्णुना ।३०
वक्ष्ये मतोभविष्यस्य सावर्ण्याख्यस्य वै सुतान् ।
विजयश्चाववीरश्च निर्देहः सत्यवाक्कृतिः ।
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाचः संगयिरेव च ।३१
अश्वत्थामा कृपो व्यासो गालवो दीप्तिमानथ ।
ऋष्यश्रृंगस्तथा रात ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ।३२
सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापितथा सुराः ।
तेषां गणस्तु देवानां एकैको विंशकः स्मृतः ।३३
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति ।
दत्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ।
ऋद्धमिन्द्रपदं हित्वा तपः सिद्धिमवाप्स्यति ।३४
वारुणेर्दक्षसावर्णेर्नवमस्य सुतान् शृणु ।
धृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तो निराकृतिः ।
पृथुश्रवा बृहद्युम्न ऋचीको बृहतो गुणः ।३५
मेधातिथिर्द्युतिश्चैश्व सवलो वसुरेव च ।
ज्योतिष्मान्हव्यकव्यौ च ऋषयो वभ्रुरीश्वरः ।३६
हरो मरीचिर्गर्भश्च स्वधर्माणश्च ते त्रयः ।
देवशत्रुः कालकाक्षस्तद्धन्ता पद्मनाभकः ।३७

दश अङ्गिरस देव हैं तथा नौ देवगण है ।२९। तेजस्वी नाम वाला इन्द्र हुआ था और उसका शत्रु हिरण्याक्ष दैत्य था । उस दैत्य का भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर किया था ।३०। अब सावर्ण्य भविष्य मनु के विषयमें बतलायेंगे । सावर्ण्य मनुके पत्र विषय, अवंवीर निर्देह-सत्य-वाक्-कृति, गरिष्ठ-वाच और सङ्गति थे ।३१। अश्व-

त्थामा-कृप-व्यास-मालव-दीप्तिमान-ऋष्य श्रृंङ्ग-राम थे उस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ।३१। सुतपा-अमृताभा और मुख्या ये उन देवों के गण हैं जो एकैक विशक कहा गया है । उनका इन्द्र विरोचन का पुत्र बलि होगा जिसने भूमि के तीन पैड़ की याचना करने वाले वामन रूपधारी विष्णु को देकर और जो इस ऋद्ध इन्द्र पद का त्याग करके सिद्धि को प्राप्ति करेगा ।३२-३४। अब इसके अनन्तर बारुणि दक्ष सावर्णि नवम के पुत्रों को सुनो-धृष्टि केतु-दीप्ति केतु-पञ्च हस्त-निराकृति-पृथुभवा-वृहद्-द्यु म्न-ऋचीक-वृहतोगुण-मेधातिथि, द्युति, सवल और वासु वासु थे । ज्योतिष्मान्-हव्य-विभ्र और ईश्वर ये ऋषिगण हुए थे । पवे मरीचि-गर्भ और स्वधर्मा ये तीन थे । देवों का शत्रु कालक संज्ञा वाला है । उसका हनन करने वाले पद्मनाम हुए हैं ।३५-३७।

धर्मपुत्रस्य पुत्रांस्तु दशमस्य मनः श्रृणु ।
सुक्षेत्रश्चोत्तमोजाश्च भूरिश्रेण्यश्च बीर्य्यवान् ।३८
लतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।
भूरिद्यु म्नः सुवर्चश्च शान्तिरिन्द्रः प्रतापवान् ।३९
अयोमूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृतश्चाव्ययस्तथा ।
नाभागोऽतिमश्चैव सौरभा ऋषयस्तथा ।४०
प्राणाख्याः शतसंख्यास्तु देवतानां गणास्तदा ।
बलिशवस्तं हरिश्च गदया घातयिष्यति ।४१
रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वक्ष्याम्येकादशस्यातु ।
सर्वत्रयः सुशर्मा च देवानीकः पुरुगुरुः ।४२
क्षेत्रवर्णो दृढ़ेषुश्च आर्द्रकः पुत्रकस्तथा ।
हविष्मांश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तरौ ।४३
विष्णुश्चै वाग्नितेजाश्चऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ।
विहङ्गमा कामगमा निर्माणरुचयस्तथा ।४४
एकैकरुचयस्तेषां गणश्चेन्द्रस्य वै वृषः ।
दशग्रीवो रिपुस्तस्य श्रीरूपो घातयिष्यति ।४५

दशम मनु पुत्रों के ये –सुक्षेत्र–उत्तमौजा-भरिसंण्य-वीर्यवान्–शतानीक–निरामित्र–वृषसेन जयद्रथ–भूरिद्युम्न सुवर्चा : इनका इन्द्र शान्ति नामधारी था ।३७-४१। अयोमूर्त्ति–हविष्मान्–सुकृत–अव्यय–नाभाग-अप्रतिम और सौरभ ये मन्वन्तरि के ऋषिगण थे । बलि के शत्रु को हरि गदा से घातित करेंगे ।४१। अब में ग्यारहवें मनु के पुत्रों को बतलाता हूँ सर्वत्रग–सुशर्मा–देवानीय: पुरु गुरु–क्षत्र वर्ण–दृढषु–आर्द्रक हैं । हविष्यमान हविष्य–वरुण–विश्व विस्तर विष्णु और अग्नि तेजा ये सात ऋषि हैं । विहङ्गम–कामगम–निर्माण रुचि और एकैक रुचि उनके गण है । वृषि इन्द्र हैं दशग्रीव उसका शत्रु है ।४२-४५।

मनोस्तु दक्षपुत्रस्य द्वादशस्यात्मजात् शृणु ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो त्रिदूरथ: ।४६
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रवन्धुश्च वीर्य्यवान् ।
मित्रवाहः प्रवाहश्च दक्षपुत्रमनो: सुता: ।४७
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्त्तिस्तपोरतिः ।
तपोधृतिद्युतिश्चान्यः सप्तर्षयस्तपोधना: ।४८
स्वधर्माण: सुतप्रसो हरितो रोहितस्तथा ।
सुरारयो गणाश्चैते प्रत्येक दशकौ गण: ।४९

ऋतधामा च भद्रेन्द्रस्तारको नाम तद्रिपु: ।
हरिर्नपुंसकौ भूत्वा घातयिष्त शङ्कर ।५०
त्रयोदशस्य रौच्यस्य मनो: पुत्रान्निबोध मे ।
चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मरतो धृति: ।५१
सुनेत्र: क्षेत्रवृत्तिश्च मुनयो धर्मपो दृढ़: ।
धृतिमानव्ययश्चैव निशारूपो निरुत्सक: ।५२
निर्मणिस्तत्वदर्शी च ऋषय: सप्त कीर्त्तिता: ।
स्वरोमाण: स्वधर्माण: स्वकर्माणस्तथामरा: ।५३

त्रयस्त्रिं शद्धिमेदास्ते देवानां तत्र वै गणाः ।
इन्द्रो दिवस्पतिः शत्रु स्त्विष्टिमो नाम दानवः ।५४
मायरेण च रूपेण घातयिष्यति माधवः ।
चतुर्दश्य भौत्यस्य शृणु पुत्रान्मनोर्मम् ।५५
उरुर्गम्भीरो धृष्टश्च तपस्वी ग्रांह एव च ।

अब दक्ष पुत्र मनु के बारह पुत्रों का श्रवंण करो–उनके नाम ये है–देववान्–उपदेव–देव–श्रैष्ठ–विदूरथ–मित्रवाह—मित्रदेव—मित्रविन्दु वीर्यवान्–मित्रवाह–प्रवाह ये सब दक्ष–पुत्र मनु के पुत्र हैं ।४६-४७। तपस्वी–सुतपा–तपोभूर्त्ति–तपोरति–तपोघृत–द्युत और अन्य ये तपोधन सात ऋषि हैं ।४८। स्वधर्मा सुतपा–हरित–रोहित तथा सुरारि ये गण हैं और प्रत्येक के दशक गण हैं ।४६। ऋतधामा भद्र इन्द्र है और उसका शत्रुतारक नाम वाला दैत्य है । हे शङ्कर हरि भगवान नंपुसक होकर उसका हनन करेंगे ।५०। अब तेरहवें रोच्य मनु के पुत्रों को जान लो, मैं उन्हें यहाँ बतलाता हूँ । उनके नाम चित्रसेन–विचित्र–तपोधर्म रत–धृति–सुनेत्र क्षेत्र वृत्ति हैं । धर्मप–हढ़–धृति मान्–अव्यय–निशारूप–निरुत्सुक निर्माण और तत्वदर्शी ये सात ऋषि बताये गयेहैं । स्वरोमाण–स्वणर्माण–स्वकर्म्माण देवगण हैं । उनके तैंतीस विभेद हैं जो कि वहाँ पर देवों के गण होते हैं । उनका दिवस्पति इन्द्र हैं । उस इन्द्र का शत्रु इष्टिम नामक दानव है । इस दानव का माधव मयूर का स्वरूप धारण करके हनन करेंगे । अब चौदहवें भौत्य मनु के पुत्रों को मुझसे श्रवण करो ।५१-५५।

अभिमानी प्रवीरश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ।
तेजस्वी दुर्लभश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ।५६
अग्निवज्रश्चाग्निबाहुश्च मागधश्च तथा शुचिः ।
अजितो मुक्तशुक्रौ च ऋषयः सप्त कीर्तिता ।।५७
चाक्षुषाः कर्मनिष्ठाश्च पवित्रा भ्रान्तिनस्तथा ।
वाचावृथा देवगणाः पञ्च प्रोक्तास्तु सप्तकाः ।५८

शुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम् ।
एको देवश्चतुर्द्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना ।५९
कृतस्ततः पुराणानि विद्याश्चाष्टादशैव तु ।
अंगानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः ।।६०
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ।
धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादशैव ताः ।६१

भौत्य चतुर्दश मनु के पुत्रों के नाम ये हैं—ऊरु, गम्भीर, घृष्ट, तपस्वी; ग्राह, अभिमान्, प्रवीर, विष्णु सकन्दन, तेजस्वी, दुर्लभ ।५६। अग्निध्र, अग्नि वाहु, मागध, शुचि, अजित, मुक्त और शुक्र ये चौदहवें मनु के सात ऋषि हैं । चाक्षुष, कर्मनिष्ठ, पवित्र, भ्रान्तिन और वाचा वृया ये पाँच देवों के गण हैं जो कि सप्तक बताये हैं ।५७-५८। उन देवताओं के इन्द्र का नाम शुचि है । उसका शत्रु महा दैत्य है जिसके हनन करने वाले स्वयं भगवान् हरि हैं एक ही देव हैं । वही चाररूप से विद्यमान है व्यास के रूप वाले विष्णु ने फिर समस्त पुराणों की रचना की है । अठारह विद्या, चार वेद, उन वेदों के छं अङ्ग शास्त्र-मीमांसा, न्यास शास्त्र का विस्तार, पुराण, धर्म शास्त्र, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद ये ही सब अष्टादश विद्यायें कही जाती हैं ।५९-६१।

४९—पित्राख्यान-पितृस्तोत्र

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च ।
मार्कण्डेयः पितृस्तोत्रं क्रोञ्चुकि प्राह तच्छृणु ।१
रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतिः ।
यत्रास्तमितमायी च चचार पृथिवीमिमाम् ।२
अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनास्त्रमम् ।
विमुक्तसंगं तं दृष्ट्वा प्रोचुः स्वपितरो मुनिम् ।३
वत्स कस्मात्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः ।
स्वर्गापवर्गसेतुत्वाद्बन्धस्तेनामिषं विना ।४

गृही समस्त देवान् पितृणाँश्च तथार्चनम् ।
ऋषीणामर्थिनाञ्चैव कुर्वन्लोकानवाप्नुयात् ।५
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चरणः पितृन् ।
विभजत्यन्नदानेन भृत्याद्यानतिथीनपि ।६
सत्वं दैवादृणाद्बन्धमिमस्मदृणादपि ।
अवाप्तोऽसि मनुष्यर्षे भूतेभ्यश्च दिने दिने ।७
अनुत्पाद्य सुतान्सन्तर्प्य च पितृंस्तथा ।
अकृत्वा च कथं मौन्ड्यं स्वर्गंति गन्तुमिच्छसि ।८
क्लेषबोधैकक पुत्र अन्यायेन भवेत्तव ।
सुतस्य नरकं त्यक्त्वा क्लेश एवान्यजन्मनि ।९

सूतजी ने कहा—मार्कण्डेय महर्षि ने क्रौञ्चकी से पितृस्तोत्र कहा था उसे तुम अब श्रवण करो । मार्कण्डेय मुनि ने कहा था—पहिले रुचि नामधारी प्रजापति था जो बिल्कुल निर्मम और बिना अहङ्कार वाला था । जहाँ पर अस्तमित माया वाला होकर वह इस भूमण्डल में किया करता था ।१-२। अनग्नि बिना निकेत वाला -एकही बार आहार करने वाला और आश्रय रहित एवं विमुक्त सङ्ग उसको देखकर स्वपितरों ने मुनि से पूछा था । पितृगण ने कहा—हे वत्स ! तुमने पुण्य क्यों नहीं किया और दारा का संग्रह भी किस कारण से नहीं किया है ? अर्थात् विवाह क्यों नहीं किया है ? दार परिग्रह तो स्वर्ग कौर अपवर्गका सेतु होता है । आमिष के बिना उससे बन्ध होता हैं ।३-४। गृहस्थ आश्रम में रहने वाला व्यक्ति समस्त देवों का, पितरों का, ऋषियों का और अर्थियों का अर्चन सत्कार करता हुआ उत्तम लोकों की प्राप्ति किया करता है ।५। 'स्वाहा' तथा 'स्वधा'—शब्द के उच्चारण से पितृगण को और अन्न के दान से भृत्यादि को विभाजित किया करता है । वह तू दैव ऋण से और हमारे भी ऋण से इस बन्धन को प्राप्त हुआ भी मनुष्य ऋषि और भूतों के लिए सुतों को उत्पन्न न करके देवों और

पितरों का तर्पण न करके तू कैसे स्वर्गगति को प्राप्त करना चाहता है ।६-९।

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा ।
भवत्यतो मयां पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः ।१०
आत्मनः संशयोपायः क्रियते क्षणमन्त्रणात् ।
स्वमुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ।११
प्रक्षाल्यतेऽनु दिवसं य आत्मा निष्परिग्रहः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिर्वरं हि तत् ।१२
अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्किती बुधैः ।
आत्मा तत्वज्ञानतोयैः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः ।१३
युक्त प्रक्षालनं कर्त्तुमात्मनोऽपि यतेन्द्रियैः ।
किन्तु नोपायमार्गोऽयं यतस्त्वं पुत्र वर्तसे ।।१४

रुचि ने कहा—इस संसार में जो भी कुछ परिग्रह होता है । वह अत्यन्त दुःख के लिए हुआ करता है । इसीलिए मैंने दाराओं का संग्रह नहीं किया है ।१०। आत्मा के संशय का उपाय मैं क्षण मन्त्र से किया करता हूँ । यह परिग्रह से स्वमुक्ति का हेतु नहीं होता है ।११। जो निष्परिग्रह होकर अनुदित आत्मा का प्रक्षालन करता है । विद्याम्भ से ममत्वके पङ्क से दिग्ध भी वह श्रेष्ठतर होता है ।१२। अनेक जन्मों में होने वाले कर्मों के पंक से—अधिक आत्मा को नियत इन्द्रियों वाले बुधजन तत्व ज्ञान के जल से प्रक्षालित किया करते हैं ।१३। तब यह सुनकर पितरगण बोले—हे पुत्र ! यह इन्द्रियों वालों के द्वारा अपनी अनेक जन्म में पंकाकित आत्मा का प्रक्षालन कर लेना बहुत युक्त हैं किन्तु यह तुम्हारे लिए कोई उपाय का मार्ग नहीं है जिसे कि तुम कर रहे हो ।१४।

पंचयज्ञै स्तपौदानैरशुभं नोदतस्तव ।
फलाभिसन्धिरहितैः पूर्वकर्म शुभाशुभे ।।१५

एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम् ।
न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनतिसन्निभम् ।१६
पूर्वकर्म कृतः भोगैः क्षीयते ह्यनिशं तथा ।
सुखदुःखात्मकै वत्सपुन्यापुन्यात्मक नृणाम् ।१७
एवं प्रक्षल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते ।
रक्ष्यश्च स्वविवेकेन पापपङ्केन दह्यते ।१८
अविद्या पच्यते वेद कर्म मार्गाः पितामहाः ।
तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ।१९
अविद्या सर्वमेवैतत्कर्मण तन्मृषा वचः ।
किन्तु विद्यापरिव्याप्तौ हेतु कर्म न संशयः ।२०
विहिताकरणानर्थो न सद्भिः क्रियते तु या ।
संयमोमुक्तये योऽन्यः प्रत्यताधोगतिप्रदः ।२१

पाँच यज्ञों से—तप और दानों से अशुभ कर्म का नोदन करने वाले तुम्हारा पूर्व कर्म शुभाशुभ फलों की अभिसन्धि से रहित है इस प्रकार से करणात्मक कर्म करते हुए को बाधा नहीं होती है और वह कर्म बन्ध के लिए भी नहीं होता है क्योंकि वह अनति सन्निभ होता है जो पूर्व कर्म है वह निरन्तर भागों के द्वारा क्षीण होता है । हे वत्स ! मनुष्यों के पुण्यपुण्यात्मक कर्म सुख एवं दुःखस्वरूप भोगों से क्षीयमाण हो जाते हैं । इसी प्रकार से प्राज्ञ पुरुषों के आत्मा प्रक्षालित किया जाता है और बन्ध से रहित किया जाया करता है । और अपने विवेक से ही रक्षा करने के योग्य है जो कि पाप पंक से दह्यमान नहीं होता है ।१५-१८। रुचि ने कहा—हे पितामहो ! आप तो कर्म मार्ग वाले हैं । वेद में इस अविद्या का पाचन किया जाता है । यह सभी जानते हुए आप मुझे पुनः मार्ग में क्यों योजित कर रहे हैं । पितृगण बोले—यह सम्पूर्ण अविद्या ही है । कर्म से है-यह कहना मिथ्या वचन है किन्तु विद्या परिव्याप्ति में कर्म हेतु है इसमें कोई भी संशय नहीं है ।१९-२०। सत्पुरुषों के द्वारा विहित के न करने का अर्थ जो नहीं किया जाता है

वह संयम मुक्तिके लिए होता है बल्कि अन्य जो है वह अधोभाग के प्रदान करने वाला है ।२१।

प्रक्षालयामीति भावान्यवेतन्मन्यते वरम् ।
निहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वमसि दह्यसे ।२२
अविद्याऽप्युपकाराय विषवज्जायतो नृणाम् ।
अनुष्ठानाश्युपायेन वन्धयोग्यापि नो हि सा ।२३
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम् ।
आजन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिककम् ।२४
वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति ।
भार्य्यान्तिथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ।२५
अस्माकं पसन्नवत्स भवतश्च प्यधोगतिः ।
नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः ।२६
इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतां मुनिसत्तम ।
बभूवुः सहसांऽह्रश्य दीपा वातहता इव ।२७
मुनिः कोञ्चुकये प्राह मार्कण्डेयो महातपाः ।
रुचिवृत्तान्तमखिलं पितृसंवादमद्भुतम् ।२८

मैं भावों का प्रक्षालन कर रहा हूँ यहाँ जो तुम श्रेष्ठ मानते हो वह तुम विहिन कर्म न करने में समुत्पन्न पापों से दग्ध हो रहे हो।२२। अविद्या अनुष्ठान के अभ्युदय से वन्ध के योग्य भी नहीं है ।२३। इससे हे वत्स तुम विधिपूर्वक दारा संग्रह करो । आजन्म अन्य लौकिक को सम्प्राप्त करके तेरा जन्म विफल होवे ।२४। इसके पश्चात् रुचि ने कहा—हे विप्रवृन्द ! मैं तो इस समय वृद्ध हो गया हूँ अब मुझें कौन भार्या प्रदान करेगा । मुझ जैसे दरिद्री को इस समय दार संग्रह करना अत्यन्त कठिन कार्य है ।२५। तब पितरों ने कहा हे वत्स ! तुम हमारे वचन को नहीं स्वीकार कर रहे हो तथा अपने भावी जीवन का भी अभिनन्दन नहीं करते हो

इससे हम लोगों का तो पतन होगा और तुम्हारी भी अधो गति हो जायगी ।२६। हे मुनि सत्तम ! उसके पितृगण इतना कह कर उसके देखते देखते ही बात से हत दीपों की भाँति सहसा अदृश्य हो गये थे ।२७। महान् तपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने क्रौञ्चुकि से कहा था यह सम्पूर्ण रुचिका वृतान्त और उसके साथ होने वाला पितरों का सम्वाद है ।२८।

५० —पित्राख्यान-पितृस्तोत्र (२)

पृष्ठः क्रौञ्चुकिनोवाच मार्कण्डेयः पुनश्चतम्।
स तेन पितृवाक्ये भृशमुद्धिग्नमानसः ।१
कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् ।
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्येन दीपितः ।
चिन्तामवाप महतीभतीवोद्विग्नमानसः ।२
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः ।
क्षिप्रं भवेत्पितृणां ममाभ्युदयकारकम् ।३
इति चिन्तयस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
तपसाऽऽराधयान्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।४
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे महामनाः ।
तत्र स्थितश्चिरं कालं वनेषु नियमस्थितः ।
आराधनाय स तदा परं नियमास्थितः ।५
ततः प्रदर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवांछितम् ।६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगती पतिम् ।
पितृणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ।७

सूतजी ने कहा, क्रौञ्चुकि के द्वारा पूछे मार्कण्डेय मुनि ने पुनः उससे कहाकि वह रुचि उस पितरों के वाक्य से बहुतही अधिक उद्विग्न मन वाला हो गया था ।१। अब वह रुचि किसी कन्या प्राप्त करने की इच्छा वाला होकर सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल में भ्रमण करने लगा था ।

उसे जब कहीं भी कोई कन्या प्राप्त नहीं हुई तो वह पितृ वचनसे बड़ा दुःखित हुआ और एक बहुत भारी चिन्ता प्राप्त हो गई थी तथा वह अति उद्विग्न मन वाला हो गया था ।२। वह मनमें सोचने लगा मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ तथा मेरा दार संग्रह किस प्रकार से होवे जो कि शीघ्र ही मेरे पितृगण का तथा मेरा अभ्युदय करने वाला बने ।३। इस प्रकार से चिन्तन करते हुए उस महामाया की बुद्धिमें आया कि मैं तपस्या से कमल से उद्भव प्राप्त करने वाले श्री ब्रह्माजीकी आराधना करूँ ।४। इसके अनन्तर एकसौ वर्ष पर्यन्त उसने परम दिव्य तपश्चर्या की थी । वह वहाँ वन में चिरकाल तक नियममें समास्थित होकर बैठ गया था । उसने ब्रह्मा की आराधना करने के लिए यह ऐसा नियम धारण किया था ।५।इसके अनन्तर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी ने अपना दर्शन उसे दिया था और वे बोले, मैं तुम्हारी तपस्या से परम प्रसन्न हूँ । अब तुम अपना अभिवांछित मनोरथ ही उसे सामने कहो ।६।इतना श्रवण कर इस रुचि ने जगत् के स्वामी ब्रह्माजी को प्रणाम करके उसने प्रार्थना की कि मैंने अपने पितरोंके वचन को शिरोधार्य करके ही कुछ अभिवांछित किया है ।

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्रः समुत्पाद्य क्रियास्तथा ।८
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।
स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ।९
कामञ्चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् ।
तं एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितम् ।
पत्नी सुतांश्च सन्तुष्टाः किं क दद्यु : पितामहाः ।१०
इत्यृषिवचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
नद्या विविक्तं पुलिने चकार पितृतर्पणम् ।११
तुष्टाव च पितृन्विप्रः स्तवैरेभिरथादृतः ।
एकाग्रप्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।१२

नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या ये वसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये श्राद्धेषुस्वधात्तरैः ।१३
नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे ये तर्पन्ते महर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयेर्भक्त्या भक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ।१४

ब्रह्माजी ने कहा—तुम प्रजापति हो जाओ और तुमको प्रजाओं का सृजन करना है । प्रजाओं का सृजन करके तथा सुतों का समुत्पादन करके इसके अनन्तर समस्त क्रियायें पूर्ण करके एवं कृताधिकार हो जाओगे और इसके पश्चात् सिद्धि को प्राप्त करोगे इसलिए पितृगण ने जैसा तुमसे कहा है वह दारु संग्रह करो ।८-९। इस काम का अभिध्यान करके पितरों का अर्चन करो फिर वे ही पितरगण परम सन्तुष्ट होकर आपका सम्पूर्ण अभीप्सित प्रदान कर देंगे । सन्तुष्ट पितामह पत्नी-सुतों को देते हैं और भी वे क्या नहीं दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ प्रदान किया करते हैं ।१०। मार्कण्डेयजीने कहा, ऋषिने इस प्रकार से अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी के वचन का श्रवण कर नदी के परम एकान्त पुलिन के स्थल में उसने फिर अपने पितरों का तर्पण किया था ।११। एकाग्र मन से परम प्रयत होते हुए भक्तिभाव से अत्यन्त विनीत होकर आदर के साथ उस विप्र ने अपने पितरोंको स्तवों के द्वारा संस्तुत किया था।१२ रुचि ने कहा, मैं भक्ति की परमोत्कृष्ट भावना से पितृगण को नमस्कार करता हूँ जो अधि देवता निवास करते हैं । श्राद्धों में जो स्वधोतर देवों के द्वारा भी तृप्त किए जाते हैं ।१३। मैं पितृगण को नमस्कार करताहूँ जो स्वर्ग में महर्षियों के द्वारा तृप्त किए जाया करते हैं । भुक्ति और मुक्ति दोनों की इच्छा रखने वाले भक्तिभाव से मनोमय श्राद्धों द्वारा उन्हें संतृप्त करते हैं ।१४।

नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्तियान् ।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैश्नुत्तमैः ।१५
नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैर्दिवि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्‍भिऋद्धिमात्यंतिकीं पराम् ।१६

नमस्तेऽहं पितृन्मर्त्यै रर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः ।१७
नमस्येऽहं पितृन्विप्रै रर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ।१८
नमस्येहं पितृन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।
वन्यैः श्राद्धैर्यथाहारैस्तपोनिर्द्धूतकल्मषैः ।१९
नमस्येऽहं पितृन्विप्रैः नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ।२०
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धै राजान्यास्तर्पयान्ति यान् ।
कव्यैरशेषविधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ।२१

मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ जिनका स्वर्ग सिद्ध लोग श्राद्धों में समस्त दिव्य और परमोत्तम उपहारों के द्वारा संतृप्त किया करते हैं ।१५। मैं अपने पितृगण की सेवा में प्रणाम करता हूँ जो कि दिविलोक में तन्मयता के साथ परा आत्यन्ति की ऋद्धिकी इच्छा करने वाले गुह्यकों के द्वारा भक्ति-भाव समर्चित किये जाते हैं ।१६। मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सदा इस भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा बड़ी श्रद्धासे अभीष्ट लोक और पुष्टिके प्रदान करने वाले श्राद्धोंमें पूजित किये जाते हैं ।१७। मैं अपने पितृगण को प्रणाम करता हूँ जो पितरगण सर्वदा उस मही मण्डल में आचार्यित्व के प्रदान करने वाले हैं और वांछित अभीष्ट लाभ देने वाले हैं विप्रों के द्वारा समन्वित हुआ करते हैं ।१८। मैं अपने पितृदेवों की सेवा में प्रणाम करता हूँ जो वह वन में निवास करने वाले तपस्या से निर्धूत कल्मष वाले और आहार वाले मनुष्य श्राद्धों के द्वारा सदा तृप्त किया करते हैं ।१९। मैं उन पितरोंको प्रणाम करता हूँ जो धर्मचारी,संयत आत्मा वाले नैष्ठिक विप्रों के द्वारा नित्य ही समाधियों के द्वारा संतप्त किये जाया करतेहै।२०। मैं उनपितृ देवों को नमस्कार करताहूँ जिनको क्षत्रिय लोग लोकद्वयके फलोंको देने वाले होने के कारण विधि पूर्वक सम्पूर्ण श्राद्धों में कृत्यों के द्वारा तृप्त करते हैं ।२१।

नमस्येऽहं पितॄन्वैरर्च्यंते भुवि ये सदा ।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ।२२
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धै रपि च भाक्तितः ।
सन्तर्प्यन्ते जगत्कृत्स्ने नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ।२३
नमस्येऽहं पितॄश्राद्धे पाताले ये महासुरैः ।
सन्त्यर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ।२४
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धै रर्च्यन्ते ये रसातले ।
भोगैरशेषविधिन्नागैः कमानभीप्सुभिः ।२५
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धैः सर्पै सन्तर्पिताः सदा ।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्जमन्वितैः।२६
पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोकेऽथ महीतले वा ।
तथाऽन्तरिक्षे च सुरानिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मनोपनीतम् ।२७
पितॄन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतुम् ।२८

मैं अपने पूज्य पितरों की सेवा में अभिवादन करता जिनकी इस मही मण्डल में सदा अपने कर्मों में निरत पुरुष धूप-अन्न और जल के द्वारा वैश्यों से समर्चना की जाती है ।२२। मैं पितरों की नमस्कार करता हूँ जो नाम से सम्पूर्ण जगत् में सुकाली स्थान है शूद्रों के द्वारा भी श्रद्धा में भक्तिभाव से तृप्त किए जाते हैं ।२३। मैं पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सुधाहार श्राद्ध में पाताल लोक में मद और दम्भ का त्याग करने वाला महासुर के द्वारा भली भाँति संतृप्त किये जाया करते हैं ।२४। मैं अपने पितृगण को नमस्कार करता हूँ जिनकी पूजा एवं संतृप्ति कामनाओं के चाहने वाले समस्त भोग और नागों के द्वारा विधि पूर्वक रसातल में श्राद्धों के माध्यम से की जाया करती है ।२५। मैं पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सप्त श्राद्धों के माध्यम से सर्पों के द्वारा सन्तर्पित हैं । वे सर्प वहाँ पर विधिवत् मन्त्रभोग और सम्पदा से समन्वित है ।२६। मैं उन पितृगणों को नमस्कार करता हूँ जो साक्षात्

देवलोक में महीतल में तथा अन्तरिक्ष में निवास किया करते हैं। वे सुरारि के पूज्य है और वे मेरे मनोपनीत को प्रयत्न करें।२७। मैं पितृ गणों को प्रणाम करता हूँ जो परमार्थ स्वरूप एवं अमूर्त रूप वाले विमान में निवास किया करते हैं।२८।

पितृन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्झितानां विमुक्तकामा येऽनभिसहितेषु।२९
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पतरः सरुपुता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि।३०
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु।३१
येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिन्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः।३२
ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च।
कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु।३३
कथान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मा पूजितानाम्।
तेषाञ्च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्बुभोज्येषु मया कृतेषु।३४
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽच मासांतपूज्या भुवि श्रेष्ठकासु।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्या प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम्।३५

मैं पितरों को नमस्कार करता हूँ जो दिवलोक में मूर्त रूप वाले है और काम्य फल की अभिसन्धि में स्वधा का योग करने वाले हैं तथा समस्त अभीष्टों के प्रदान करने में समर्थ हैं एवं जो किसी फल को आकांक्षी नहीं है उनको विमुक्ति प्रदान करने वालेहै।२९। इच्छा रखने वालों की कामनाओं को जो पूर्ण किया करतेहैं वे समस्त पितृगण इसमें तृप्ति लाभ करे। सुरत्व प्राप्त करने को, इन्द्रके पद पाने की या इससे भी अधिक कोई पद पाने की अभिलाषा हो और गज, अश्व, रत्न एवं महान् गृह पाने की कामना हो पितृगण सभी को पूर्ण किया करते है।३०। जो चन्द्रमा की रश्मियों में, सूर्य के बिम्बमें, शुक्ल विमानमें सदा

पास किया करते हैं वे पितरगण इसमें तृप्त होवें और अन्न-जल तथा गन्ध आदि के द्वारा पुष्टि को प्राप्त होवें ।३१। अग्नि में हवन करने पर जिनकी तृप्ति होती है और जो विप्रों के शरीर में संस्थित होते हुए भोजन करते हैं। जो पिंडदान से प्रसन्नता प्राप्त करते हैं वे पितरगण यहाँ अन्न और जल से तृप्ति करे ।३२। जो खड्ग मांस से देवों के द्वारा अभीष्ट दिव्य मनोहर कृष्ण तिलों से तथा महर्षि वर्यो के द्वारा तत्कालीन शाक से प्रीणित होते हैं वे यहाँ पर मोक्ष को प्राप्त करें ।३३। कथान्य से शेष जो मेरे पूजित वयों को अतीव अभीष्ट हों उन सबका सान्निध्य मेरे द्वारा किए गए यहाँ पर पुष्प गन्ध जल भोज्यों में हो जावे ।३४। जो प्रतिदिन अर्चा को ग्रहण करते हैं और जो अष्ट-काओं में, भूमण्डल में मासान्त में पूज्य होते हैं और जो वत्सर के अन्त में और अभ्युदय के अवसर पर पूजा करने के योग्य होते हैं वे मेरे पितृगण यहाँ पर अब तुष्टि को प्राप्त करें ।३५।

पूज्या द्विजातां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलप्रभाः शूद्रजनस्य ये च ।३६
तेऽस्मिन्नमस्था मम गन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेव ।
तथाऽग्निहोमेन च यान्ति तृप्तिंसदापितृभ्यःप्रणतोऽस्मितेभ्यः।३७
ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि ।
तृप्ताश्चये भूतिसृजो भवन्तितृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः।३८
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्णाशयंतु त्वशिवंप्रजानाम् ।
आद्याःसुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मितेभ्यः३९
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा ।
प्रयान्तु तृप्ति श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ।४०
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ।
तथा बर्हिषदः पांतु याम्यां मे पितरः सदा ।
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः ।४१

रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्थैवासुदोषतः ।
सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः ।४२

द्विजों के जो कुसुद और चन्द्रकी आभाके समान आभो वाले पुरुष हैं जो क्षत्रियों के अग्नि और सूर्य के तुल्य वर्ण वाले हैं तथा वैश्यों के सुवर्ण के समान अवदात हैं और शूद्रों के जो नीलों की प्रभा के तुल्य प्रभा वाले हैं वे समस्त पितृगण इसमें मेरे द्वारा निवेदित किए पुष्प-गन्ध धूप-जल और भोजनीय पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होवे तथा जो अग्निहोम से तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं उन पितरों को मैं प्रणाम करता हूं ।३६-३७। जो देव पूर्व अभितृप्ति प्राप्त करने के लिए शुभ एवं आहुत कव्यों का अशन किया करते हैं जो भूमि के पूजन करने वाले तृप्त है वे वहाँ पर भी तृप्त हो जावे । मैं उनके समक्ष में प्रणत होता हूं ।३८। जो पितृगण हैं वे राक्षस, भूत तथा अन्य उग्र असुरों का एवं प्रजाओं के अशुभ है उसका नाश कर देवे । जो सुरों में सर्व प्रथम है और देवेश के द्वारा पूजा के योग्य है वे पितर इसमें तृप्ति का लाभ करे । मैं उसको प्रणामकरता हूँ ।३९। अग्निष्वात-बर्हिषद-आज्यप तथा सोमपान करने वाले हैं वे इस श्राद्ध से तृप्त हों ।४०। अग्निष्वात्त पितृ मेरी प्राची दिशा की रक्षा करे । आज्य (घृत) का पान करने वाले पितृगण प्रतीची दिशा और सोमपान करने वाले उदीची दिशा में रक्षा करें ।४१। पितरगण सर्वदा नित्य ही राक्षस, भूत पिचाशों से तथा असुरों के लिए हुए दोषों से मेरी रक्षा करें ।४२।

विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ।
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नवः ।४३
कल्याणः कल्यदः कर्त्ता कल्पः कल्पतराश्रयः ।
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ।४४
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिदः पुष्टिदस्तथा ।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः ।४५

महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ।
गणाः पंच तथैवैते पितृणां पापनाशनाः ।४६
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ।
पितृणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ।४७
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
ये एवात्रपितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितम् ।४८
एवन्तु स्वतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्बभूवः सहमा गगनव्याप्तिकारकः ।४९
तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्यः स्थितं जगत् ।
जानुभ्यानवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ।५०

विश्व, विश्व भुक्, आराध्य, धर्म, अन्य, सुभागन, भूतिद, भूति कृत् और भूति ये पितरों के नौ गण हैं ।४३। कल्याण, कल्मद कर्त्ता, केल्य, कल्पतराश्रय, कल्यका हेतु का और अनघ ये छै गण कहे गए हैं ।४४। वर, वरेण्यं, वरद, तुष्टिद, पुष्टिद, विश्वपाता, और घाता ये सात गण कहे गये हैं ।४५। महान् महात्मा, महित, महिमावान्, महा-वल—ये पापों के नाश करने वाले पितरों के उसी प्रकार सें पाँच गण हैं ।४६। सुखद, घनद, अन्य धर्मद और अन्य भूतिद ये उसी भाँति पितरों के चार गण कहे जाते हैं ।४७। इस प्रकार से इकत्तीस पितृ गथ हैं जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है वे सभी यहाँ मेरे निवेदित श्राद्ध में पितरगण तृप्ति को प्राप्त होवे ।४८। मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार से स्तवन करते हुए उसकी तेज की राशि उत्थित हुई और तुरन्त हों गगन में व्याप्ति करने वाली वह प्रादूर्भूत हुई थी ।४९। उस महान् तेज को देखकर जो कि सम्पूर्ण जगत को समाच्छादित कर स्थित था, घुटनों के वल से भूमि पर स्थित होकर रुचि ने इस स्तोत्र का गायन किया था ।५०।

अर्चितानाममूर्त्तानं पितृणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ।५१

इन्द्रादीनांच नेतारो दक्षमारीचयस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नतस्थापि कामदान् ।५२
मन्वादीनांच नेतारः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्हं सर्वापितृनप्सुदुदधार सः ।५३
नक्षत्राणां ग्रहाणांच वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च नमस्यामि कृतांञ्जलिः ।५४
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः ।५५
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।
स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ।५६
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्त्तिधरास्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ।५७

रुचि ने कहा–अर्चित एवं अमूर्त तथा दीप्त तेज वाले–ध्यान और दिव्य चक्षुओं वाले पितृगणों मैं सदा नमस्कार करता हूँ ।५१। इन्द्र आदि देवों के देवा–दवक्ष और मारीच के नेता–सप्तर्षियों के अन्यों नेता उन कामनाओं के देने वालों को मैं नमस्कार करता हूँ ।५२। मनु के नेता तथा सूर्य और चन्द्रके नायक मैं उन सब पितृगण को नमस्कार करता हूँ । उसने समस्त पितरों का उद्धार किया था ।५३। नक्षत्रों, ग्रहों का नेता, वायु और अग्नि का नेता, नभका एवं द्यावा पृथिवी के नेता उनको मैं कृतांजलि होकर प्रणाम करता हूँ ।५४।प्रजापति कश्यप, सोम, वरुण और योगेश्वरों के लिए मैं सदा हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ।५५। सात लोकों में सात गणों के लिए नमस्कार है स्वाम्भू को नमस्कार है और योगचक्षु वाले ब्रह्मा के लिए नमस्कार है ।५६। सोमधार तथा योग मूर्त्तिधर पितृगणों को एवं जगतों के पिता सोम को नमस्कार है ।५७।

अग्निरूपांस्तथैवान्यांन्नमस्यामि पितृ नहम् ।
अग्निसोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ।।५८

येच तेजसि ये चते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ।५९
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्योः यतमानसः ।
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ।६०
एवस्तु तास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः ।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशा दश ।६१
निवेदनच यत्त्ेन पुष्पगन्धानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ।६२
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृतांजलिः ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ।६३
ततः प्रसन्नाः पितरस्तनुचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरं वृणीष्वेति सना द्रवाचानतकन्धरः ।६४

अग्नि रूप अन्य पितरोंको मैं नमस्कार करताहूँ जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि सोममय है ।५८। और जो ये तेज में है तथा जो ये सोम सूर्य और अग्नि की मूर्त्ति वाले है । इस सम्पूर्ण जगतके स्वरूप वाले हैं तथा ब्रह्म के स्वरूप वालेहैं उन समस्व योगी पितरोंकी दत्तचित्त होकर मेरा बारम्बार नमस्कार है मेरा आपके लिए प्रणाम है । सवे स्वधा भोजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ।५९-६०। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर इस प्रकार से उसके द्वारा स्तवन किए गए तेज स्वरूप मुनि सत्तम वे पितृगण दशों दिशाओं का भासित करते हुए निकले थे ।६१। उसके द्वारा जो पुष्प गन्ध और अनुलेपन निवेदित किया गया था उस सबसे विभूषित उनको सामने स्थित उसने देखा था ।६२। रुचि ने फिर हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया और बहुत ही भक्ति के भाव से प्रणिपात किया था । रुचि ने आपको नमस्कार है—आपको नमस्कार हैं—ऐसा पृथक् रूप से सादर के साथ कहा था ।६३। उसके अनन्तर पितरगण उस पर बहुत प्रसन्न हुए और मुनि श्रेष्ठ से बोले तुम अपना अभीष्ट वरदान माँग लो । इसे सुनकर अपनी गरदन नीचे झुकाकर उनसे कहा—।६४।

प्रजानां सर्गकर्त्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ।६५
अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
तस्यां च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम ।६६
मन्वन्तराधिपो धीमांस्तन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचे रौच्य इति ख्याति प्रयास्यति जगत्त्रये ।६७
तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ।६८
त्वं च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ।
क्षीणाधिकारी धर्मस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।६९
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः ।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मजं ध्यानमुत्तमम् ।७०

रुचि ने कहा—प्रजाओं के सर्ग को करने के लिए ब्रह्माजी ने मुझे आदेश प्रदान किया है । इसलिए मैं प्रजा का सृजन करने के लिए परम दिव्य धन्य और प्रजाओं वाली पत्नी चाहता हूँ ।६५। पितृगणको कहा-यहाँ पर ही परन्तु ही अत्यन्त मनोरमा आपकी पत्नी हो जावेगी। हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! उस पत्नी में तुम्हारे एक पुत्र होगा ।६६। वह मन्वन्तर का स्वामी—परम बुद्धिमान् और उसी नाम से उपलक्षित रवि का रौच्य उस ख्याति को तीनों जगत् में प्राप्त करेगा ।६७।उसके भी बहुतसे पुत्र होंगेजो महान् बल और पराक्रम वाले होंगे और महान् आत्मा वाले तथा पृथ्वी के परिपालन करने वाले होगे ।६७। और तुम प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा का सृजन करके क्षीण अधिकार वाले होते हुए धर्म के ज्ञाता होओगे और इसके अनन्तर परम सिद्धिको प्राप्ति करोगे ।६९। इस स्तोत्र से जो मनुष्य हमारी भक्ति के सहित स्तुति करेगा उस पर हम परम सन्तुष्ट होते हैं और उसे समस्त भोग पुत्र तथा उत्तम ध्यान प्रदान किया करते हैं ।७०।

आयुरारोग्यमर्थञ्च पुत्र पौत्रादिकं तथा ।
वाञ्छद्भिः सततः स्तव्याः स्त्रोत्रेणानेन वै यतः ।७१

श्राद्धेषु इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाग्राणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः ।७२
स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधाने परे कृते ।
अस्माभिरक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयः ।७३
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ।
अन्यायोपवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ।७४
अश्राद्धार्हैरुपहारैरुपहारैस्तथा कृतैः ।
अकालेऽप्यथवा देशे विधिहीनमथापि वा ।७५
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य यत्कृतम् ।
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्यैतदुदीरणात् ।७६
यत्रैतप्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ।७७

जो आयु, आरोग्य, अर्थ, और पुत्र पौत्रादिक के प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उन्हें इस स्तोत्र से निरन्तर हमारी स्तुति करनी चाहिए।७१। श्राद्धोंमें जो इस हमारी प्रीतिके समुत्पन्न करने वाले स्तव का भक्ति भाव के साथ पाठ करेगा जबकि श्राद्ध के समय में ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे होंगे उनके समक्ष में स्थित होकर इसको पढ़ेगा तो इस स्तोत्र के श्रवण की प्रीति से हमारे द्वारा सन्निधान की किए जाने पर वह श्राद्ध अक्षय हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।७२-७३। यद्यपि श्रोत्रिय विप्रों से रहित श्राद्ध हो—यद्यपि उपहृत और अन्याय से प्राप्त किए गए धनसे किया गया हो जिसका कि विधान नहीं है—श्राद्ध के अयोग्य एवं उपहत उपहारों से किया गया हो और अकाल एवं आदेश से विधान से रहित किया गया हो—बिना श्राद्ध के दम्भ का आश्रय लेकर पुरुषों के द्वारा किया गया हो किन्तु यदि इस स्तव का पाठ किया जावे तो वह भी हमारी परम प्रीति के लिए हो जाते हैं ।७४-७५। जिस श्राद्ध में हमारे सुख के देने वाले इस स्तव का पाठ किया जाता है तो हमको बारह वर्ष के लिए इससे परम प्रीति एवं तृप्ति हो जाया करती हैं ।७७।

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ।
शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्ति स्तोतृमिदं शुभम् ।७८
वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ।
ग्रीष्मे च षोडशै वैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ।७९
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ।८०
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं परदशाब्दिकीम् ।८१
यस्मिन्गेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ।८२
तस्मादेतत्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पृष्टिचारकम् ।८३

यदि इस प्रकार से इस स्तोत्र के पाठ के साथ हेमन्त ऋतुमें श्राद्ध करे तो बारह वर्ष तक के लिए तृप्ति होती है । शिशिर ऋतु में किए गए ऐसे श्राद्ध से इससे भी दुगुनी तृप्ति अर्थात् चौबीस वर्ष तकके लिए हो गए हैं । ऐसा यह परम शुभ स्तोत्र है ।७८। बन्सत ऋतु में सोलह वर्ष की लिए उसे श्राद्ध कर्म से तृप्ति होती हैं ऋतु में सोलह वर्ष की तृप्ति इस स्तोत्र के पठन करने से समुतपन्न होती है ।७९। श्राद्ध चाहे बिकल भी किया गया हो किन्तु इस स्तोत्र से यदि यह साधित किया जावे तो हे रुचे ! वर्षा ऋतु में किये गए श्राद्ध से हम लोगों की तृप्ति अक्षय होती है ।८०। शरत् ऋतु में किए गये श्राद्ध के समय में इस स्तव के द्वारा हमारी पन्द्रह वर्ष के लिए तृप्ति होती है ।८१। जिस घर में लिखा हुआ स्तोत्र नित्य विद्यमान रहा करता है तो श्राद्ध के सन्निधान करने पर वह हमारे लिए ही हो जायगा ।८२। इसलिए हे महाभाग ! तुमको श्राद्ध के समय में विप्रों के भोजन करने के अवसर पर उनके समक्ष इस स्तोत्र का श्रवण करना चाहिए । इससे हमको परम पुष्टि होती है ।८३।

तयस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समापे वराप्सराः ।८४
सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् ।
प्रसादयामास भूयः प्रम्लोचा च वराप्सराः ।८५
अतीवरूपिणी कन्या मत्प्रसादाद्वरांगना ।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ।८६
तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ।८७
तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उद्दधार ततः कन्यां मानिनी नाम नामतः ।८८
नद्याश्च पुलिने तस्मिन्न मुनिर्मुनिसत्तमाः ।
जग्राह पाणिं विधिवत्समानीय महामुनिः ।८९
यस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महाद्युतिः ।
रुचे रौच्य इति ख्यातो यो मया पूर्वमीरितः ।९०

श्री मार्कण्डेय महामुनि ने कहा—इसके अनन्तर उस नदी के मध्य भाग से परम सुन्दर . म्लोचा नाम वाली एक . तन्वङ्गी उत्थित हुई जो कि एक बहुत ही श्रेष्ठ अप्सरा थी । वह उसके समीप आई ओर उस महान् आत्मा वाले रुचि से अत्यन्त मधुर अक्षरों में बोली तथा उस प्रम्लोचा अप्सरा ने उसको प्रसन्न कर दिया था ।८४-८५। उसने कहा कि वरुण पुत्र पुष्कर के द्वारा मेरी कृपा मे अतीव रूप वाली तथा परम श्रेष्ठ अङ्गों वाली कन्या उत्पन्न हुई है उसे मैं आपकी सेवा में समर्पित करती हूँ आप उसे अपनी भार्या के रूप में वर वर्णिनी को ग्रहण कीजिए उसमें महान् मति वाले मनु आपके समुत्पन्न होंगे ।८६-८७। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा—इस तरह से रुचि ने उसके कथन को स्वीकार कर लिया तो फिर उस जल से एक परम सुन्दरी मानिनी नामवाली कन्या को उसने निकाला था ।८८। हे मुनि-सत्तमो ! उसी नदी के पुलिन में उस मुनि ने उसे लाकर विधि पूर्वक उसका पाणिग्रहण किया था ।८९। फिर उससे उसका एक महान् वीर्य

वाला तथा अत्यन्त द्युति से सम्पन्न पुत्र हुआ था जो कि रुचि का पुत्र रौच्य-इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था जैसा कि हमने पहिले ही आपको बतला दिया है ।९०।

५१—हरिध्यान माहात्म्य

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मणा ।
व्रताचारार्चनाध्यानस्तुतिजप्यपरायणाः ।१
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
आकाशेन विहीनं वै तेजसा परिवर्जितम् ।२
उदकेन विहीनं वै तद्धर्मपरिवर्जितम् ।
पृथिवीरहितंचैव सर्वभूतविवर्जितम् ।३
भूताध्यक्षं तथा बुद्धं नियन्तारं प्रभुं विभुम् ।
चैतन्यरूपतारूपं सर्वाध्यक्षं निरंजनम् ।४
मुक्तसङ्गं महेशानं सर्वदेवप्रपूजितम् ।
तेजोरूप मसत्वं च तपसा परिवर्जितम् ।५
रहितं रजसा नित्यं व्यतिरिक्तं गुणैस्त्रिभिः ।
सर्वरूपविहीनं वै कर्तृ त्वादिविवर्जितम् ।६
वासनारहितं शुद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
पिपासावर्जितं तत्तच्छोकमोहविवर्जितम् ।७

सूतजी ने कहा—व्रत, आचार,अर्चना, ध्यान, स्तुति, और जाप्य में तत्पर स्वायम्भुव आदि मुनिगण कर्म के द्वारा भगवान् श्री हरि का ध्यान करते हैं । वह हरि देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहङ्कार से वर्जित है । पृथ्वी से रहित हैं, आकाश से हीन और तेज से विहीन हैं । जल वे रहित और उसके धर्म से परिवर्जित हैं एवं समस्त भूतों से रहित हैं ।२-३। श्री हरि समस्त भूतों के अध्यक्ष, वृद्ध, नियन्ता-प्रभु-विभु-चैतन्य रूपता के रूप वाले—सबके अधिपति और निरंजन हैं ।४। मुक्त सङ्ग बलि-महेशान और समस्त देवों के द्वारा प्रपूजित है । हरि तेजो रूप वाले—असत्व और तप से परिवर्जित है ।५। रजोगुण से रहित और तीनों गुणों से व्यतिरिक्त हैं । सब

प्रकार के रूपों से विहीन और हरि कर्त्तृत्व आदि से विवर्जित हैं ।६। वे वासना से रहित हैं, सम्पूर्ण दोषों से विवर्जित, प्यास से रहित और सतत् शोक से वर्जित हैं ।७।

जरामरणहीनं वै कूटस्थ मोहवर्त्तिम् ।
उत्पत्तिरहितञ्चैव प्रलयेन विवर्जितम् ।।८
सर्वाबारहीनं सत्यं निष्कलं परमेश्वरम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुपत्यादिवर्जित नामवर्जितम् ।।६
अध्यक्षं जाग्रदादीना शान्तरूपं सुरेश्वरम् ।
जाग्रदादिस्थितंनित्यं कार्य्यकारणवर्जितम् ।।१०
सर्वदृष्ट तथा मूर्त्त सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं परम् ।
ज्ञानदृक्श्रोत्रविज्ञानं परमानन्दशुपकम् ।।११
विश्वेन रहितं तद्वत्तैजसेन विवर्जितम् ।
प्राज्ञेन रहितश्चैव तुरीयं परमाक्षरम् ।।१२
सर्वगोप्तृ सर्वहन्तृ सर्वभूतात्मरूपि च ।
बुद्धिधर्मविहीनं व निराधार शिव हरिम् ।।१३

भगवान् जरा वृद्धावस्था और मरण से रहित, कूटस्थ, मोह से वर्जित उत्पत्ति से रहित और प्रलय से वर्जित हैं ।८। सम्पूर्ण जाग्रति, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओंसे वर्जितहै अर्थात् जाग्रति आदि कोई भी अवस्था उन में नहीं होती है ।६। जाग्रद् आदि के अध्यक्ष है-शान्त स्वरूप हैं और सुरों के ईश्वर हैं—जाग्रन आदि में स्थित—नित्य—कार्य और कारण से वर्जित हैं ।१०। भगवान सर्व दृष्टमूर्त्त सूक्ष्म तथा परम सूक्ष्मतर हैं । ज्ञान, दृक् और श्रोत्र के विज्ञान वाले, परम आनन्द के स्वरूप से समन्वित हैं ।११। वे हरि विश्व से रहित और तैजस से विवर्जित प्राज्ञसे रहित एवं तुरीय तथा परमाक्षर हैं।१२। सबके गोप्ता, सभी के हन्ता और समस्त भूतों के आत्मरूपी बुद्धि, धर्म में विहीन-निराधार, शिव है ।१३।

विक्रियारहितञ्चैव वेदान्तैर्वेद्यमेव च ।
वेदरूपं परं भूत्तमिद्रियेयः परं शुभम् ॥१४
शब्देन वर्जितञ्चैव रसेन च विवर्जितम् ।
स्पर्शेन रहितं देवं रूपपात्र विवर्जितम् ॥१५
रूपेण रहितञ्चैव गन्धेन परिवर्जितम् ।
अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥१६
एवं ज्ञात्वा महादेव ध्यानं कुर्याज्जितेन्द्रियः ।
ध्यानं य कुरुते ह्येवं स भवेद् ब्रह्म मानवः ॥१७
इति ध्यानं समाख्यातमीश्वरस्य मया तव ।
अधुना कथयाभ्यन्यत्किं तद् ब्रूहि वृषभध्वज ॥१८

भगवान् समस्त प्रकार की विक्रियाओं से रहित हैं तथा वेदान्तों के द्वारा जानने के योग्य हैं, वेदों के स्वरूप वाले, पर भूत-इन्द्रियों की पहुँच से पर एवं शुभ स्वरूप वाले हैं। वे शब्द से रस से, स्पर्श से रहित देव है। केवल रूप से रहित हैं।१४-१५। रूप, गन्ध से परिवर्जित हैं, अनादि हैं, ब्रह्म रन्ध्र के अन्त और अहं केवल ब्रह्म हूँ, ऐसे स्वरूप वाले हैं।१६। हे महादेव! जितेन्द्रिय पुरुष को रीति से भगवान् श्री हरि का ज्ञान एवं ध्यान करना चाहिए। जो इस विधि से ध्यान किया जाता है वह मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है। मैंने यह ईश्वर का ध्यान करने का प्रकार सम्पूर्ण तुमको बतला दिया है। अब आगे वह बतलाओ हे वृषध्वज! मैं आपको क्या बताऊँ? ।७-१८।

५२-विष्णु ध्यान माहात्म्य

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ब्रू हि शङ्खचक्रगदाधर ।
येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१
प्रवक्ष्यामि हर ध्यानं मायातन्त्र विमर्दकम् ।
मूर्त्तामूर्त्तादिभेदेन तद्ध्यान द्विविधं हर ॥२
अमूर्त्तं रुद्र कथितं हन्त मूर्त्तं ब्रवीम्यहम् ।
सूर्यकोटियतीकाशो जिष्णुर्भ्राजिष्णुरेकतः ॥३

कुन्दगोक्षीरधवलो हरिर्ध्येयो मुमुक्षुभिः ।
विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वितः ।।४
सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोग्ररूपिणा ।
चक्रेण चान्वितः शान्तो गदाहस्तः शुभाननः ।।५
किरीटेन महार्हेण रत्नप्रज्वलितेन च ।
सायुधः सर्वंगो देवः सरोरूहधरस्तथा ।।६
वनमालाधरः शुभ्रः समांसो हेमभूषणः ।
सुवस्त्रः शुद्धदेहश्च सुकर्णः पद्मसंस्थितः ।।७

श्री रुद्र ने कहा—हे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले ! आप भगवान् विष्णु के ध्यान करने की विधि पुनः बतलाइए जिनके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाया करता है ।१। श्री हरि ने—अब मैं हरि के ध्यान को तुम्हें बतलाता हूँ. जो ध्यान इस माया तन्त्र का विमर्दन करने वाला है । हे हर ! वह हरि का ध्यान मूर्त्त ध्यान एवं अमूर्त्त ध्यान इन भेदों से दो प्रकार का होता है ।२। हे रुद्र ! अमूर्त्त ध्यान होता है वह तो मैंने तुमको बतला दिया है । अब मैं भगवान् हरि के मूर्त्त ध्यानको वतलाता हूँ । उसका श्रवण करो । करोड़ों सूर्यों के समीप प्रकाश वाले—विष्णु और हरि भ्राजिष्णु होते हैं ।३। कुन्द के पुष्प और गाय के समान दुग्ध के धवल वर्ण वाले हरि का ध्यान मुक्ति की इच्छा करने वालों को करना चाहिए । हरि का स्वरूप विशाल एवं परम सौम्य शङ्ख से समन्वित है ।४। भगवान् हरि सहस्रों सूर्यों के तुल्य ज्वालाओं की मालाओं से उग्र रूप वाले चक्र से समंस्वित हैं । हरि का स्वरूप परमशान्त है । उनका परम शुभ है और गदा हाथों में धारण किए हुए हैं ।५। रत्नों की आभा से अतीत जाज्वल्यमान महान कीमती किरीट से सुशोभित है ।६। वनमाला धारी शुभ समान अंसों से युक्त और सुवर्ण के भूषणों के शोभित श्रीहरि हैं । पद्मासन पर विराजमान परम सुन्दर वस्त्रों को धारण किए हुए शुद्ध देह वाले और सुन्दर कानों वाला श्री हरि का स्वरूप है ।७।

हिरण्मयशरीरश्च चारुहारि शुभाङ्गदः ।
केयूरेण समायुक्तो वनमालासमन्वितः ॥८
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो लक्ष्मीवन्द्येक्षणान्वितः ।
अणिमादिगुणैर्युक्त सृष्टिसहारकारकः ॥९
मुनिध्येयोऽसुरध्येयो देवध्येयोऽतिसुन्दरः ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तजातहृदि स्थितः ॥ १०
सनातनोऽव्ययो मेध्यः सर्वानुग्रहकृत्प्रभुः ।
नारायणो महादेवः स्फुरन्मकरकुन्डलः ॥११
सन्तापनाशनोऽभ्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशनः ।
सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशनः ॥१२
चावङ्गरीयसंयुक्तः सुदीप्तनख एवः च ।
शरण्यः सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वरः ॥१३
सर्वालंकारसंयुक्तश्चारुचन्दनचर्चितः ।
सर्वदेवसमायुक्तः सर्वदेवप्रियंकरः ।१४

श्री हरि का सम्पूर्ण शरीर हिरण्यमय है—सुन्दर हार के धारण करने वाले शुभ अंगदों से पहिनने वाले हैं। आप केयूर से समायुक्त और वनमाला से सुभूषित है ।८। श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणि से युक्त हैं तथा महा लक्ष्मी के वन्दना करने के योग्य नेत्रों से समन्वित है अर्थात् लक्ष्मी के द्वारा दर्शनीय है । अणिमा महिमा आदि गुणों से युक्त तथा सृष्टि के संहार करने वाले हैं ।९। भगवान् का मूर्ति स्वरूप महामुनियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य है—असुरों के द्वारा भी ध्यान करने के योग्य है और देवों के द्वारा भी ध्येय हैं। भगवान का स्वरूप अतीव सुन्दर है और ब्रह्मा से आदि लेकन स्तंव पर्यन्त भूत—मात्र के हृदय में बिराजमान रहने वाले हैं ।१०। वे सब पर अनुग्रह करने वाले प्रभु हैं—सनातन अव्यय हैं। महान देव और दीप्तिमान मकर के तुल्य कुण्डलों वाले है ।११। श्री हरि का मूर्त्त स्वरूप सन्तापों का नाश करने वाला है अर्थात् उनके स्वरूप के ध्यान—मात्र से ही सब प्रकार करते हैं ।

अभ्यर्चना करने के योग्य है। परम मंडल प्रदान करने वाला तथा दुष्टों का नाश करने वाला उसका स्वरूप होता है। सबको आत्मा अर्थात् सब में अन्तर्यामी रूप से विराजमान, सबमें गमनशील, सर्व स्वरूप और उनका मूर्त्त रूप ग्रहों का नष्ट करने वाला है ।१२। भगवान् श्री हरि ने अपने हाथों की अंगुलियों में अतीव सुन्दर अंगूठियाँ धारण की हुई है। उनके नख सुदीप्ति से समन्वित है—शरणागति में प्राप्त होने वाले को रक्षा करने वाले सुख करने वाले—सौम्य स्वरूप से युक्त और महान् ईश्वर हैं ।१३। समस्त प्रकार के सुन्दर अलङ्कारों से भूषित,चारु चन्दन से चर्चित, सम्पूर्ण देवों से समायुक्त और सब देवों का प्रिय करने वाले हैं ।१४।

सर्वलोकहितैशी च सर्वेशः सर्वभावनः ।
आदित्यमण्डले संस्थो ह्यग्निस्थो वारिसंस्थितः ।।१५
बासुदेवो जगद्धाता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षिभिः ।
वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरिः ।।१६
ध्यायन्त्येवञ्च ये विष्णुं ते यान्ति परमां मतिम् ।
याज्ञवल्क्यः पुरा ह्येव ध्यात्वा विष्णुं सुरेश्वरम् ।
धर्मोपदेशकर्त्तृत्वं संप्राप्यागात्परं पदम् ।।१७
तस्मात्त्वमपि देवेश विष्णुं चिन्तय शंकर ।
विष्णुध्यानं पठेद्यस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ।।१८

सब लोकों के हित सम्पादन करने वाले-सभी के स्वामी, सब के भावन (प्रिय) सूर्यमंडलमें संस्थितसे अग्निमें स्थित और जलमें विराजमान हैं ।१५। वासुदेव प्रभु सम्पूर्ण जगत का ध्यान रखने वाले, सबके ध्यान करने के योग्य मुक्ति की चाहना करने वालोंके विष्णु हैं। मैं ही वासुदेव हरि हूँ, इस प्रकार से हरि का आत्म रूप से ध्यान करना चाहिए ।१६। जो लोग इस उक्त स्वरूप वाले विष्णु भगवान् का इस रीति से ध्यान किया करते हैं वे परमोत्तम गति को प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य मुनिने पहिले इस प्रकार से सुरेश्वर विष्णु का ध्यान किया

था, अतएव धर्मों का उपदेश करके पद को प्राप्त हुए थें ।१७। हे शंकर ! जो इस मेरे बनाए हुए भगवान विष्णु के ध्यान का पठन किया करता है वह भी परमोत्तम गति को प्राप्त कर लेता है ।१८।

५३—वर्णधर्म कथन (१)

याज्ञवल्क्ये न वै पूर्वं धर्मः प्रोक्तः कथं हरे ।
तन्मे कथय केशिघ्न यथातत्त्वेन माधव ॥१
याज्ञवल्क्य नमस्कृत्य मिथिलायां समास्थितम् ।
अपृच्छनृषयो गत्वा वर्णधर्मानिशेषतः ।
तेभ्यः स कथयामास विष्णु ध्यात्वा जितेन्द्रियः ॥२
यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मं निबोधत ।
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रार्थमिश्रिताः ॥३
वेदाः स्थानरनि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः ।
वक्तारो धर्मशास्त्राणां मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः ॥४
वसिष्ठदक्षसंवर्त्ताः शातातपराशराः ।
आपस्तम्बाशनसाव्यासः कात्यायनबृहस्पती ॥५
गौतमः शङ्खलिखितौ हाराताऽत्रिऋषिस्तथा ।
एते विष्णुसमाराध्या जाताः धर्मोपदेशकाः ॥६
देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्र प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥७

श्री महेश्वर ने कहा—हे माधव ! हे केशी असुर के हनन करने वाले ! यात्रवल्क्य मुनि ने पहले किस प्रकार से धर्म वतलाया था इसे ठीक-ठीक रीति से हमको बतलाने की कृपा करें। श्री हरि ने कहा—ऋषि वृन्द ने मिथिला में विराजमान याज्ञवल्क्य मुनि को प्रणाम करके सम्पूर्ण वर्णो के धर्मों को उनसे पूछा था। उन ऋषियों से इन्द्रियों को जीव लेने वाले याज्ञवल्क्य मुनि ने भगवान् विष्णु तो ध्यान करके कहा था ।१-२। याज्ञवल्क्य महामुनि ने कहा—जिस देश में कृष्ण वर्ण के मृग रहा करते हो, इसी देश में धर्म की स्थिति होती है, ऐसा समझना

चाहिए। पुराण न्याय मीमांसा, अर्थ से मिश्रित धर्म-शास्त्र, वेद समस्त चौदह विद्याओं और धर्म का स्थान होते हैं। इस धर्म शास्त्रों के वक्ता मुन विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत, अत्रिये ऋषि हैं अर्थात् इन सबकी निर्मित स्मृतियां हैं। ये सब विष्णु के समान ही आराधना करने योग्य धर्मों के उपदेश करने वाले हुए हैं।३-६। देशकाल-उपाय से एवं श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो पात्र में प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का लक्षण होता है।

इष्टाचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च।
अयञ्च परमो धर्मो यद्योगेतात्मदर्शनम् ॥८
चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा।
सव्रते सत्स्वधर्मः स्याद्देवाध्यात्मवित्तमः ॥६
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।
निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया ॥१०
गर्भाधानमृतो पुंसः सवनं स्पन्दतस्पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्त प्रसवो जातकर्म च ॥११
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडां कुर्याद्यथाकुलम् ॥१२
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रकः ॥१३

अभीष्ट आचार का होना, दम अहिंसा, दान, स्वाध्याय कर्म और योग के द्वारा आत्म-दर्शन करना यह ही परम धर्म है।८। वेदों के धर्मों की जानने वाले चार होते हैं। दूसरे त्रैविद्य के ज्ञाता हैं वेदों का आराधन करके आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने वाला सुकर्म में अपना धर्म होता है।६। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण होते हैं किन्तु इनमें द्विज कहे जाने वाले तीन ही हुआ करते हैं। इनकी निषेक से आदि लेकर श्मशान के अन्त तक समस्त क्रियाएं मन्त्रों में ही हुआ करती हैं।१०। ऋतुकाल में गर्भाधान संस्कार स्पन्दनसे पुंसवन संस्कार छठवे

या आठवें मास में सीमन्त संस्कार प्रसव और जात कर्म संस्कार ग्यारहवे दिनमें नामकरण संस्कार–तथा जब शिशु चार मास का हो जावे तो उसका बाहर निष्क्रमण करना चाहिए। छठवे मास में अन्न प्राशन करे तथा चूड़ा कर्म संस्कार अपने कुल में समागत प्रथा के अनुसार ही जिस समय और जिस प्रकार से होता हो करना चाहिए। इस प्रकार से पापों का शमन हुआ करता है जो कि वीजाऔर गर्भ से समुत्पन्न होता है ये समस्त क्रियायें चुपचाप ही स्त्रियों के द्वारा हुआ करती हैं किन्तु विवाह संस्कार का कर्म मन्त्रों के द्वारा ही पूर्ण किया जाता है ।११–१३।

५४–वर्णधर्म कथन (२)

गर्भाष्टमाष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ।।१
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ।।२
दिवा सन्ध्यासु कर्मस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ।।३
गृहीतशिश्नोत्थाय मृद्भिरभ्युत्धृतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकरं शौच कुर्यान्महाव्रतः ।।४
अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः ।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन दिजो नित्यमुपस्पृशेत् ।।५
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्युग्रं करस्य च ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदैवतीर्थानिनुक्रमात् ।।६
त्रिःप्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखान्यद्भिश्च संस्पृशेत् ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिः हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।।७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा–गर्भ से आठवे वर्ष में अपना जन्म से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार किया जाता है। क्षत्रियों का उपनयन ग्यारहवें वर्ष में करावे। वैश्यों का भी ऐसा ही संस्कार

करावे ऐसा अनेकोंका मत है तथा कुछ का मत हैकिं वैश्योंमें कुलरीति की जो भीं पद्धति हो उसी समय करावे ।१। गुरु शिष्य का उपनयन करके फिर महा व्याहृतियों के सहित इस शिष्य को वेदों का अध्यापन करे और शौच तथा आचारों की शिक्षा भी देवे ।२। दिनमें और दोनों सन्ध्याओं के समयोंमें कानपर ब्रह्म सूत्र (जनेऊ)चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुख करके मूत्र तथा पुरीष का त्याग करना चाहिए । और यदि रात्रि में मलमूल की उत्सर्ग करना हो तो दक्षिण की दिशा की ओर मुख करके करे ।३। मलमूत्र त्याग करके अपने सिश्नको पकड़े हुए उठे और महान व्रत वाले पुरुष की मिट्टी से उत्धृत जल के द्वारा दुर्गन्ध लेपके नाश करने वाली शुद्धि करनी चाहिए ।४। अन्तर्जानु पवित्र स्थलमें वैठ कर उत्तर या पूर्व की ओर मुख करें, द्विज कों ब्राह्म तीर्थ से नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए ।५। कनिष्ठिका प्रदेशिनो अंगुष्ठ मूल और कर (हाथ) का अग्र भाग ये क्रम से प्रजापति, पितृ, ब्रह्म और दैव तीर्थ होते हैं ।६। फेन और बुलबुलों से रहित प्रकृति में स्थित रहने वाले जलों से उपस्पर्शन करना चाहिए । तीन बार जल आचमन करके और जल से मुखों को दो बार उन्मार्ज्जित करे ।७।

हृत्कण्ठतालुनाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः ।
शुध्येरन्स्त्री शूद्रश्च सकृत्स्पृाभिरन्ततः ।।८
स्नानं तद्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः ।
सूर्य्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ।।९
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिवारं प्राणसंयमः ।।१०
प्राणायामस्य संशुद्धिस्त्रयर्चा तद्दैवतेन तु ।
जपान्नासीत सावित्री प्रत्ययातारकोदयात् ।११
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठन्नासूर्य्यदर्शनात् ।
अग्निकार्य्यंततः कुर्य्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ।।१२
ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन् ।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ।।१३

आहूतश्चाप्यधीयीत सर्वञ्चास्वै निवेदयेत् ।
हितञ्चास्यापरान्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ।।१४

द्विजातियों को हृदय-कण्ठ-तालु और नाभि की संख्या के अनुसार शुद्धि करनी चाहिए । स्त्री और शूद्र को एकबार स्पर्श करके अन्ततः शुद्धि करनी चाहिए ।८। तद्दैवत मन्त्रोंके द्वारा स्नान-मार्जन-प्राणसंयम और सूर्यका उप स्थानकरे तथा प्रतिदिन गायत्री जप करना चाहिए।९। तद्दैवत तीन ऋचाओं से प्राणायाम की भली-भाँति शुद्धि करे तारों के उदय से पहिले तक सावित्री का जप करता रहे । गायत्रीका जाप शिर के साथ व्याहृतियाँ पूर्व में लगाकर प्रतिप्रणव से तीन वार प्राणायाम करना चाहिए ।१०-११। इस प्रकार से प्रातःकाल से सूर्य दर्शन न हो इससे पूर्व ही सन्ध्या कर लेवे । फिर इन दोनों सन्ध्याओं के अवसर में अग्नि कार्य करना चाहिए ।१२। इस सम्पूर्ण कृत्यके करने के अनन्तर अमुक नाम तथा गोत्र वाला हूँ, ऐसा उच्चारण करते हुए अपने से जो वृद्ध हों उनका अभिवादन करे । फिर स्वाध्यायके लिए समाहित होकर गुरुदेव की उपासना करनी चाहिए ।१३। और आहूत (बुलाया गया)भी अध्ययन करे । गुरु सेवामें सभी कुछ निवेदन कर देना चाहिए । गुरुका जो भी हित हो उसे मन, वाणी, शरीर द्वारा ही सम्पादित करे ।१४।

दण्डाजिनोपवीताग्निमेखलाञ्चैव धारयेत् ।
द्विजेषु चाचरेद् भैक्ष्यमनिन्देष्वात्मवृत्तये ।।१५
आदिमध्यावसानेषु भवेच्क्षदोपलक्षितः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियविशां भैक्ष्य चर्याभथाक्रमम् ।।१६
कृताग्निकार्यो भुञ्जीत विनीती गुर्वनुज्ञया ।
आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्याऽन्नमकुत्सयन् ।।१७
ब्रह्मचर्यास्थितोऽनेकमस्त्रमद्यादनापदि ।
ब्रह्मणः काममश्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीड़यन् ।।१८
मधुमांसा तथा स्विन्नमित्यादिं परिवर्जयेत् ।
स तु गुरुर्यः क्रिया कृत्वा वेथमस्मै प्रयच्छति ।।१९

उपनीय ददात्येनमाचार्यः स प्रकीर्तितः ।
एकदेश उपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकदुच्यते ॥२०
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ।
प्रतिवेद ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्चवा ॥२१
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तेचैव षोडशः ।
आषोडशाद् द्विविंशाच्च चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ॥२२
ब्रह्मक्षत्रविशां काल उपनायनिकः पर ।
अतः उर्ध्वं पतन्त्येते सर्वकर्मविवर्जिताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्यं व्रात्यान्तोमाद्दतं क्रतोः ॥२३

ब्रह्मचर्य दशा में स्थित होकर अध्ययनके समयमें दण्ड-अजिन (मृग चर्म—छाला) उपवीत और मेखला धारण करे। आत्म वृत्ति के लिए अर्थात् शरीर पोषण के वास्ते द्विजों के भिक्षा करे जो कि अनिन्दित अर्थात् प्रशस्त हों।१५। चन्दोपलक्षित ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यथा-क्रम आदि-मध्य और अवसानमें भिक्षाचर्या करे।१५। अग्नि-कार्य पूर्ण करके गुरु की आज्ञा प्राप्त कर विनीत भाव से भोजन करे। भोजन के पूर्व आपोशान क्रियाकरे अर्थात् आचमद-करे और फिर अन्नका सत्कार करके उसकी ओरसे कोईभी कुत्साका भाव न रखते हुए भोजन करना चाहिए।१७। ब्रह्मचर्य व्रत में समास्थित होकर अनापत्ति कालमें अनेक अन्न का भोजन करे। श्राद्ध में ब्राह्मण वत को पीड़ित न करते हुए इच्छा पूर्वक भोजन करे।१८।मधु मांस तथा स्विन्न आदिका परिवर्जन करना चाहिए। वह गुरु है जो समस्त् क्रिया करके इसको देव का ज्ञान प्रदाम करता है।१९। जो उपनयन करके उपदेश दिया करता है वह इसका आचार्य कहा गया है। जो एक देश का ही उपदेश करता है वह उपाध्याय कहा जाता हैं और यज्ञ करनेवाला ऋत्विक् कहाजाया करता है।२०। ये ही मान्य होते हैं किन्तु माता इन सबसे विशेष मान्य होती है प्रत्येक वेदके अध्ययन के बाहर व पाँच वर्ष होते हैं।२१। कुछ ग्रह-णान्तिकसमय कहते हैं और केशान्त षोडश करते हैं। सोलह से लेकर

बाईस और चौबीस बर्ष तक ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंका उपनयन का परकाल हैं। इससे आगे ये सब पतित हो जाया करते हैं तथा समस्त धर्मो से हीन हो जाया करते हैं। जो सावित्री से पतित होते हैं। व्रात्य हो जाते हैं और क्रतुके बिना व्रात्यस्तोमसे मुक्ति नहीं होते है ।२२-२३।

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीय मौञ्जिवन्धनम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजातयः ॥२४
यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एवं द्विजातीनां निः यसकरः परः ॥२५
मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद् द्विजः ।
पितृन्मधुघृताभ्यांच ऋचोऽधीते हि सोऽन्वहम् ॥२६
यजु साम पठैतद्वदर्वांगिरस द्विजः ।
सन्तर्पयेत् पितृन्देवान्सोऽवहं घृतामृतैः ॥२७
वेदवाक्य पुराणं च नाराशंसीस्च गाथिकाः ।
इतिहासं वेदान्योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥२८
सन्तर्पयेत्त्पितृन्देवान्मांसक्षीरौदनादिभिः ।
ते तृप्तास्तर्पयन्त्यैनं सर्वकामफलैः शुभैः ॥२९
यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ।
भूमिदानस्य तपसः स्वाध्यायफलभाग् द्विजः ॥३०
नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्य सन्निधौ ।
तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥३१
अनेन विधिना देहं साधयेद्विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥३२

आरम्भमें माता के उदरसे जन्म ग्रहणकिया करते हैं। दूसरा जन्म मौञ्जिवन्धन से हुआ करता हैं। इसीलिए ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य से द्विजाति कहे जाते हैं क्योंकि इनका उपनयन होता है तथा विजातिहोते हैं। यज्ञ तपश्चर्या और अस्य शुभ कर्मों में द्विजातियों का वेद ही परम

निःश्रेयस करने वाला है।२४-२५। द्विज को मधु-पयसे देवों का तर्पण करना चाहिए। घृतऔर मधुसे उसे प्रतिदिन पितरोंका सन्तर्पण करना चाहिए। वह अनुदित ऋचाओं का अध्ययन करता है ।२६। द्विज को यजुर्वेद और सामवेद पढ़ना चाहिए और इसी भाँति अथर्वांगिरस का भी अध्ययन करे। यह अनुदित घृतामृत से पितरों और देवों का तर्पण करे।२७। वेदोंके वाक्य पुराण और नाराशंसी गाथाएँ-इतिहास तथा वेदों का अनुदिन भरसक जो अध्ययन करता है वह पितरों और देवों को क्षीर-ओदन आदि से सन्तृप्त किया करता हैं। वे पूर्ण तथाँ सन्तृप्त होती हैं तो फिर इसको भी शुभ कामनाओं के सन्तुष्ट किया करते हैं।२८-२९। जिस-जिसक्रतु का वह अध्ययन करता है उसी क्रतु के करने का फल इसे प्राप्त हुआ करता है। स्वाध्याय के फल का सेवन करने वाला द्विज भूमिदान और तप के फल को प्राप्त किया करता है ।३०। नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपने आचार्य की सन्निधि में ही वास करना चाहिए। अभाव में शिष्य का आचार्य-भाव आचार्य से पुत्र पत्नी और वैश्वानर में भी होना चाहिए। इस विधि से विजिता इन्द्रियों वालों को देह का साधन करना चाहिए वह फिर ब्रह्मलोककी प्राप्ति किया करवा है और भूमण्डल में दूसरा जन्म ग्रहण नहीं करता है। अर्थात् उसका आवागमन के बन्धन से छुटकारा ही हो जाया करता है।३१-३२।

५५-गृहस्थ धर्मनिर्णय

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यतव्रताः।
गुरवे च धनं दत्वा स्नात्वा च तदनुज्ञया ॥१
समापितब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामस पिण्डां यवीयसीम् ॥२
अरोगिणीं भ्रातृमतीसमानर्षिगोत्रजाम्।
पचमास्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥३
द्विपञ्चनवविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्।
सवर्णः श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च ॥४

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रदारोपसंग्रहः ।
न नन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ।।५
तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वै त्येका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशाद्भार्या शूद्रजन्मनः ।।६
ब्राह्मो विवाह् आहूत दीयते शक्त्यलंकृता ।
तज्जः पुनार्जात्यु भयतः पुरुषानेकविशतम् ।।७

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा—वेदों का सांग अध्ययन सम्पूर्ण समाप्त कर फिर ब्रह्मचारी को गुरु को धन (दक्षिणा) देना चाहिए और गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त कर देवे तथा फिर परम सुलक्षणा स्त्री के साथ विवाह करे । वह कान्ता ऐसी होनी चाहिए कि जिसके पूर्व अन्य कोई न हो असपिण्ड हो अर्थात् अपने गोत्र वाली न हो और उम्र में छोटी होवे ।१-२। जिसके साथ विवाह करे वह रोगों से रहित हो, भाईयों वाली हो और असमान ऋषि गोत्र में समुत्पन्न होने वाली हो । माता और पिता से पाँच या सात पीढ़ी से ऊपर की ही होवें । क्योंकि सात पीढ़ी तक ही सपिण्ड माना जाता है ।३। दो पाँच और नौ से विख्यात श्रोत्रियों के महा कुल से सवर्ण श्रोत्रिय विद्वान् वर दोषान्वित नहीं होता है ।४। द्विजातियों का शूद्र में जो आरोप संग्रह कहा जाता है वह हमको सम्पत नहीं है क्योंकि वहाँ तो यह स्वयं ही समुत्पन्न होता हैं।४। वर्णानुपूर्वों से तीन दो तथा एक ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्य से भार्या है या शूद्र जन्म है । वह ब्रह्म विवाह हैं जिसके आह्वान करके अपनी शक्ति के अनुसार आभरणों से अलंकृता करके कन्या का दान किया जाता हैं । ऐसी कन्या से विवाह होने पर जो भी पुत्र उत्पन्न होगा वह दोनों कुलों (मातृ एवं पितृ) के इक्कीस पूर्वज पितरों को पवित्र कर देता है ।७।

यज्ञस्थायत्विजे देवमादायार्षस्तु गोयु गम् ।
चतुर्दशप्रयमेजः पुनात्यु त्तरजश्च षट् ।।८

इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सहया दीयतेऽर्थिने ।
सकायः पावयत्त्ज्जं षडवंश्यानात्मना सह ॥९
आसुरो द्राविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्य काच्छलात् ॥१०
चत्वारो ब्राह्मास्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसौ । .
राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः ॥११
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीत क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने चाग्रजन्मनः ॥१२
पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थ परः परः ॥१३
अप्रयच्छनसमाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृतौ ।
एषामभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयम्वरम् ॥१४

आर्ष विवाह वह है जिसमें गौ युम को लेकर कन्या दी जाती है । यज्ञ में स्थित ऋत्विज के लिए जहाँ कन्या का दान होता हैं वह देव विबाह कहलाता है । दैव विवाह से समुत्पन्न बालक चौदह पुरुषों को और आर्ष विवाह से उत्पन्न सुत छै पुरुषों को पुनीत करता है ।८। धर्मका आचरण करो वह कहकर जो किसी अर्थी से कन्या दी जाती उस विवाहित स्त्री से उत्पन्न होने वाला अपने साथ छै वंश में हुए पुरुषोंको पवित्र किया करता है ।१९। धन देकरजो विवाह किया जाता है वह असुर, आपस में ही वचन वद्ध होकर जो स्त्री पुरुष विवाह कर लेते है, वह गन्धर्व, युद्ध में जीत कर जो कन्या का हरण कर पत्नी बना लेते हैं, वह राक्षस तथा छलसे कन्या को लाकर विवाह कर लेना पैशाच विवाह कहा जाता है ।१०–११। आदि के चार विवाह ब्राह्मण के लिए वताए गए हैं । गाँधर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रियके होते हैं । असुर विवाह वैश्यका और पैशाचिक विबाह शूद्रका है जो निन्दित होता हैं ।१।सवर्णा स्त्रियों का पाणि (हाथ) का ग्रहण करना चाहिए । क्षत्रियाँ शर का प्रतोद तथा वैश्याकर ग्रहण करे और अग्रजन्माके वेदन

ग्रहण करे। पिता, पितामह भ्राता, संकुल्य तथा माता ये सब कन्या के प्रदान करनेके समुचित अधिकारी होताहै। किन्तु इनमें सबसे प्रमुख पूर्वोक्त होता है उसके नाश होने पर-पद प्रकृतिस्थ हुआ करताहै। यथा पिता न हो तो बावा और बावा भी न रहे तो भाई आदि ।१०। कन्या ऋतुमती हो जाने पर भी उसका प्रदान किसी वर को नहीं दिया जावे तो प्रत्येक ऋतु में भ्रूण हत्या का महा पाप होता है। यदि उपर्युक्त कन्या के देने वालों में कोई भी न रहे तो कन्या स्वयं वर करे अर्थात् किसी श्रेष्ठ समुचित वर को स्वयं हीं ग्रहण कर लेवे ।१४।

सकृत्प्रदीयते कन्या हरस्तां चौरदण्डभाक् ।
अदुष्टां हि त्यजन्दण्डयः सुदुष्टां तु परित्यजेत् ।।१५
अपुत्री गुर्वज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया ।
सपिण्डो वा संगोत्रो वा धृताभ्यक्तो ऋतावियात् ।।१६
आगर्भसम्भवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रपस्थ भवेत्सुतः ।।१७
कृताधिकारां मलिना पिण्डमात्रोपसेविनीम् ।
परिभूतामधः शाय्यां वासरेत् व्यभिचारिणीम् ।।१८
सोमः शोचं ददौ तासां गन्धर्वश्च शुभा गिरम् ।
पावकः सर्वदा मेघ्यो वै योषितो ह्यतः ।।१९
व्यभिचाराहृतेऽशुद्धे गर्भत्यागं करोति यां ।
गर्भभर्त्त वधे तासां तथा महति पातके ।।२०
सुरापी व्याधिता द्वेष्ट्री विहर्त्तव्या प्रियंवदा ।
भर्त्तव्या चान्यथा ह्येन ऋषयो हि भवेन्महत् ।।२१

कन्याका दान एकबारही किया जाता है। उसका हरण करनेवाला चोर को प्राप्तहोने वाले दंडको भोगने वाला होताहै जो अदुष्टा औरसब प्रकारके कोषोंसे रहितहो ऐसी कन्याको ग्रहण करकेभी त्यागदेताहै वह दन्ड देने योग्य होताहै किन्तु वह दुष्ट होतो उसे त्याग देनांचाहिए ।१५

जिसके कोई भी पुत्र न होताहो या हुआ न हो उसका गुरुवर्गकी आज्ञा पाकर देवर सगोत्र या कोईभी सपिंड व्यक्ति घृतसे अभ्यक्तहोकर केवल पुत्र की कामना से ऋतु समय में गमन करे ।१६। जब तक उसको गर्भ धारण न हो तब तक ही उसका गमन करे । अन्यथा गमन करने में तो पतित हो जायगा । इस प्रकार से समुत्पन्न पुत्र क्षेत्रप का होता है।१७ अधिकार करने वाली-मलिन-पिंड मात्र के उपसेव करने वाली-परिभूत और व्यभिचारिणी स्त्री की अधाशय्या कर देनी चाहिए ।१८। उन स्त्रियों को सोम ने शुद्धि दी है और गन्धर्व ने शुभवाणी प्रदान की हैं । पावक सर्वदा मेध्य होता है इसलिए योषित् का भी मेध्य होता है ।१९ व्यभिचार के बिना जो स्त्री अशुद्धिसे गर्भका त्यागकर देती है । उनके गर्भ भर्ता के वध में तथा महान् पातक में सुरापी-व्याधित-द्वेष्ट्री-प्रियस्वदा विहरण करनेके योग्य हैं । अन्यथा इसका भरण करना चाहिए । नहीं तो ऋषिगण कहते हैं कि महान् पाप होता है ।२०-२१।

यत्राविरोधि दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते ।
मृते जीवति या पत्यौ या या ना यमुपगच्छति ।।२२
सैषा कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ।
शुद्धांत्यजँस्तृतीयांशं दद्यादाभरणं स्त्रियाः ।।२३
स्त्रीभिर्भर्त्तृ वचः कार्य्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः ।
षोडशर्त्तु निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ।।२४
ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत् ।
एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामांमघां मूलञ्च वर्जयेत् ।।२५
लक्षं यं जनयेदेवं पुत्रं रोगविवर्जितम् ।
यथाकामो भवेद्वापि स्त्रीणाँ स्मरमनुस्मरन् ।।२६
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतस्ततः ।
भर्त्तृ भ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रू श्वशुरदेवरैः ।।२७
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।।२८

जहाँ पुर दम्पत्ति का अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों का कोई विरोध नहीं वहाँ पर त्रिवर्ग की वृद्धि होती है। पति के मृत हो जाने पर या उसके जीवित रहने पर अन्य पुरुष का उपनयन नहीं करती है वह स्त्री उस लोक में कीर्त्ति प्राप्त करने की भागिनी होती है और अन्तमें उमा देवी के साथ मोद प्राप्त करती है। यदि पूर्णत: परिशुद्धा अर्थात् किसी भी दोष से जो युक्त न हो ऐसा स्त्री का त्याग करे तो स्त्री के आभरणों का तृतीय भाग उसे दे देना चाहिए स्त्रियों को अपने स्वामी के वचनों को पूर्णतया पालन करे। यही स्त्री का परम धर्म है। स्त्री जब ऋतु-मयी हो तो ऋतुकाल से सोलह रात्रियों में जो युग्म रात्रि हों उनमें उसका गमन करे।२४। ब्रह्मचारी को पर्व में और पहिली जो ऋतुकाल की चार रात्रियाँ है उन्हें त्याग देना चाहिए। मघा और मूल नक्षत्र हों तो उसको भी वर्जित कर देवे। इस प्रकार से स्त्री का गमन करे तो कामना की प्राप्ति होती है।२५। इस विधि से स्त्री का गमन करने पर वह स्त्री शुभ लक्षणों से समन्वित और रोगों से रहित पुत्र को उत्पन्न किया करती है। अथवा अभी काम उत्तेजित हो और स्त्रियों का सत् भी अनुस्मृत हो जावे तो गमन करे।२६। अपनी स्त्री में निरत रहे। स्त्रियाँ स्वामी, भाई, पिता, ज्ञाति, सास श्वसुर और देवर के द्वारा सदा रक्षा करने के योग्य होती है।२७। वन्धुओं के द्वारा भूषण-आच्छादन और भोजन के माध्यम से स्त्रियाँ पूज्य हुआ करती है किन्तु स्त्रियों को भी संयतोपस्कार वाली, दक्ष, हृष्ट, और व्यय के पराङ्मुख होना चाहिए।२८।

श्वश्रू श्वशुरयो: कुर्य्यात्पादयोर्वन्दनं सदा।
क्रीडाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवैदर्शनंम्॥२९
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्त्तृका।
रक्षेत्कन्यां पिता वाल्ये यौवने पतिरेव ताम्॥३०
वार्द्धक्ये रक्षते पुत्रो ह्यन्यथा ज्ञातयस्तथा।
पतिं विना न तिष्ठेत दिवा यदि वा निशि॥३१

ज्येष्ठां धर्मविधौ कुर्यान्न कनिष्ठां कदाचन ।
दाहयेदग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवती पतिः ॥३२
आहारेद्विधिवदारानग्निञ्चैवालम्बितः ।
हिता भर्त्तृ दिवं गच्छेदिह कीर्त्तीरवाप्य च ॥३३

स्त्रियों को अपने सास-श्वसुर के चरणों की वन्दना सदा करनी चाहिए। जो प्रोषित भर्तृका स्त्री हो अर्थात् शरीर को वेश-भूषा हो उसे कोई भी क्रीड़ा, शारीरिक संस्कार अर्थात् शरीर को वेश-भूषा से सुसज्जित करना, समाज में सम्मिलित होना, उत्सवों का देखना, हास्य करना, दसरों के घर पर जाना आदि का त्याग कर देना चाहिए। कन्या की रक्षा बचपन में पिता और यौवन में उसकी सुरक्षा पति को करनी चाहिए।२९-३०। वार्द्धक्य की अवस्था में उसकी रक्षा पुत्र को करनी चाहिए। पुत्र न हो तो जातीके लोग उसकी रक्षा करे। पतिके विना स्त्री को कहीं भी दिन या रात्रि में नहीं रहना चाहिए।३१।सर्वदा जो ज्येष्ठा स्त्री हो उसी को धार्मिक विधि से साथ में नियुक्त करे और कनिष्ठा को कभी न करे। पतिव्रत वाली अर्थात् सच्चरित्रा स्त्रीका दाह अग्निहोत्र के द्वारा करे।३२। विधिवत् विलम्ब न करके दाराओं और अग्निका आहरण करे भर्त्ता की हिता स्त्री यहाँ यश पाकर दिवलोक में जाती है।३३।

५६-द्रव्य शुद्धि

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमाः ।
सौवर्णराजताब्जानां शङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम् ।
पात्राणांचासनानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥१
उष्णादिभः स्रुक्स्रु वयोधर्न्याना प्रोक्षणेन च ।
तक्षणाद् दारुश्रृङ्गादेर्यज्ञपात्रस्य मार्जनात् ॥२
सोष्णैरुद्रकगोमूत्रैः शुद्धयत्याविककौषिकन् ।
भक्ष्यं योषिन्मुखं पश्यन्पुनः पाकान्महीमयम् ॥३
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते ।
भस्मक्षेपांद्विशुद्धिः स्याद् भूशुद्धिमार्जनादना ॥४

त्रपुसीस कृताम्राणां क्षाराम्लोदमवारिभिः ।
भस्मादिभिर्लोहकांस्याकामज्ञातञ्च सदा शुचि ॥५

महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा—हे सत्तमो ! अब मैं द्रव्यों की शुद्धि विषय में कहता हूँ उसे लोग भलीभाँति समझलो । सुवर्ण-रजत—अब्ज—शंख-रज्जु आदि तथा चर्म के पात्र एवं आसनों की शुद्धि केवल जल से ही हो जाती है । स्रुक् और स्रुवा की शुद्धि उष्ण जल से होती है । धान्यों की शुद्धि केवल जलसे प्रोक्षण करने पर हो जाती है । काष्ठ और सींग के पदार्थों की शुद्धि लक्षण करनेसे होती है और यज्ञके पात्रों की शुद्धता मार्जन से होती है ।२। गोघ्रात अन्न में तथा केश, मक्षिका और कीटों से दूषित में भस्म के क्षेप करने से शुद्धि होती है । भूमिकी शुद्धता केवल मार्जन तथा लेपन-प्रक्षालन आदि से होती है । आविक और कौषिक पदार्थ उष्ण जल एवं गोमूत्र से शुद्ध होते है । भैक्ष्य और स्त्री का मुख देखकर ही शुद्ध होता है । जो महीमय पदार्थ है उसकी पुनः पाक करने से शुद्धि होती है ।३-४। त्रपु,सीसा और ताम्र के पात्रों की शुद्धता क्षार अम्ल (खटाई) और जल से हुआ करती है । लौह के पात्रों की तथा कांसे के पात्रों की शुद्धि भस्म तथा जलसे होती है । जो अज्ञात पदार्थ या पात्र हैं वह तो सदा ही शुचि होता है ।५।

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धलेपापकर्षणात् ।
शुचि गोतृप्तिदं तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ।
रश्मिरग्निरजच्छाया गौश्चैव वसुधानि च ॥७
अश्वाजविप्रषो मेध्यास्भथा च मलबिन्दवः ।
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे ॥८
आचान्नः पुनरा चामेद्वासोऽन्यत्परिधाय व ।
क्षुते निष्ठीवने स्वापे परिधानेऽक्षु पातने ॥९
पंचस्वेतेषु नाचामेद् दक्षिण श्रवणं स्पृशेत् ।
तिष्ठन्त्यग्न्यादयो देवा विप्रकर्णे नु दक्षिणे ॥१०

अमेध्य (अपवित्र)और अक्त-अर्थात् तैलाद्रिसे युक्त पात्र एवं पदार्थ

की शुद्धि मिट्टी एवं जल से करे जब कि उस पर जो गन्ध तथा लेपन है वह छूट जावें। जो एक गौ की तृषा शान्त कर दे उतना जल शुद्ध होता है और जो जल स्वाभाविक रूप से भूमिगत होता है वह भी शुद्ध होता है।६। कुत्ता चाण्डाल और क्रव्याद आदि के द्वारा निपातित मांस रश्मि, अग्नि, रज की छाया, गौ वसुधा, घोड़ा और बकरी के मुख की बूंदे एवं मल की बूंद सदा मेध्य होती हैं। स्नान करके-पान करके, छींक, लेकर सोकर खाकर और गली में चल-फिर कर आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए। अन्य वस्त्र का परिधान करके क्षुत और निष्ठीवत करते पर, स्वाप में, परिधान में तथा अश्रुपतन में इन पाँच कर्मों में आचमन न करे केवल दक्षिण का श्रवण का स्पर्शकर लेवे। ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में अग्नि आदि देवगण सर्वदा निवास किया करते हैं। अतएव उसके स्पर्श मात्र से ही शुद्धि का विधान बताया गया है।७-१०।

५७—श्राद्ध विधि

अथ श्राद्धविधिं वक्ष्ये सर्वंपापप्रणाशनम्।
अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णपक्षायनद्वयम्।।१
द्रव्य ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सर्य्यसंक्रमः।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालः प्रकीर्त्तितः।।२
अग्र्यो यः सर्वदेवेषु श्रोत्रियो वेदविद्युवा।
तिथिज्ञाने च कुशलः त्रिमधुस्त्रिसर्वर्णिकः।।३
स्वस्रीयऋत्विग्जामाताचार्य्यश्वशुरमातुलाः।
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः।।४
कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः।
पितृमातृ पराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धदेवताः।।५
रोगी हीनातिरक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा।
अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिताः।।६

अवैष्णवाश्च ये सर्वे श्राद्धार्हा न कदाचन ।
निमन्त्रयेच्च पूर्वेद्यु र्द्विजैर्भाव्यं च संयतैः ।।७

श्री याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा–अब मैं श्राद्ध की उस विधि को तुम को बतलाता हूँ जोकि समस्त प्रकारके पापोंका नाश करने वाली होती है । अमावस्या, अंष्टका वृद्धि, कृष्णपक्ष, अयत द्वय-द्रव्य, ब्राह्मण संपति विषुक्त् में सूर्य का संक्रमण, व्यतीपात, गज्छाया तथा सूर्य एवं चन्द्र का ग्रहण और श्राद्ध करनेके प्रति रुचि का होना ये श्राद्धके उत्तमकाल बताए गए है ।१–२। समस्त देवों में वह अग्र होता है जो श्रोत्रिय, वेदों का विद्वान युवा हो । तिथि के ज्ञान में कुशल, त्रिमधु,-त्रिसवर्णिक्-स्वस्रीय (भानजा) ऋत्विक्-जमाता-आर्य-श्वसुर-मातुल-त्रिणाचिकेत-दौहित्र (धेवता)शिष्य-सम्बन्धी और बान्धव-कुछ कर्मनिष्ठ ब्रह्मचारी द्विज जो पंचाग्नि करने वालेहों तथा पितृ परायण और माता परायण हों,ये सव ब्राह्मण श्राद्ध देवता होते हैं ।३-५।जो रोगी हों,हीनाँग या अतिरिक्ताँग हो–पौनभव और अवकरिणी आदि जो हो वे सब आचार से वर्जित होते है, जो विप्र विष्णु के भक्त न हों कभी श्राद्ध के योग्य नहीं होते है श्राद्ध जिस दिन करना हो उसके पहले दिनसे ही ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिए । जैसे ही श्राद्धका निमन्त्रण प्राप्त हो वैसेही विप्रों को भी संयत होकर रहना चाहिए ।६।

आचान्ताश्चैव पूर्वाह्ने ह्यासनेषूपवेशयेत् ।
युष्मन्दैवे तथा पित्र्ये स्वप्रदेशेष्वथभक्तितः ।।८
द्वौ दैवे प्रागुदक्पित्र्ये त्रीण्येकक्रचोभयोः पृथक् ।
मातामहानामप्येव मन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ।।९
हस्तप्रक्षालनं दत्वा विष्टरार्थे कुशानपि ।
आवाह्ये दनुज्ञातो विश्वेदेवा महानृचा ।।१०
यवैरन्न विकार्यांथ भाजने सपवित्रके ।
शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसांति यवाँस्तथा ।।११

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत् ।
गन्धं तथोदकञ्चैव धूपादींश्च पवित्रकम् ॥१२
अपसव्य ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितृन् ॥१३
आवाह्य तदनुज्ञातेर्जपेदायन्तु नस्ततः ।
यवार्थैस्तु तिलैः कार्यः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥१४

श्राद्ध के दिन पूर्वान्ह में आचान्त होते हुए उन्हें आसनों पर उपविष्ट करना चाहिए। उनसे प्रार्थना करे कि आपको दैव-पित्र्य कर्म के लिए आमन्त्रित किया है। आपने प्रदेशों में प्राप्त कराने की शक्ति नहीं है।८। दो को पूर्व में दैव कर्म के लिए, उत्तर दिशा में पित्र्य कर्म के लिए तीन को-इस तरह दोनों को पृथक् रक्खे। इसी रीति से माता महादिक के लिए भी करे। अथवा वैश्वदेविक मन्त्र का प्रयोग करे।९। फिर इसके अनन्तर हस्त-प्रक्षालन देकर विष्टरके लिए कुशाओं को देवे। फिर उनके द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कर महान् ऋचा से विश्वेदेवताओं का आवाहन करे।१०। यवों के द्वारा सावित्री के सहित पात्र में अन्न का विकपण करे। 'शन्नोदेवी'-इस मन्त्र से पय का क्षेपणकर 'यवोऽसीपि' मन्त्र से यवों का विकरण करे। 'या दिव्या' इस मन्त्र के द्वारा उनके हाथों में ही मन्त्र-उदक-धूप और पवित्रक आदिको विनिक्षिप्त करे।११।१२। इसके अनन्तर अपसव्य होकर पितरों अप्रदक्षिणहै द्विगुण कुशाओं के देकर 'उशन्तस्त्वा'-इस मन्त्र से पितृगण का आवाहन करे। फिर उनसे अनुज्ञात होकर 'आयान्तुनस्तत,-इस मन्त्र का जाप करे यवार्थं तिलों के द्वारा करना चाहिए। फिर पूर्व की भाँति अर्घ्य आदि करे।१३-१४।

दत्वार्घ्यं संश्रवं ह्येषां पात्रे कृत्वा विधानतः ।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ॥१५
अग्नो करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
सव्याहृतिञ्च गायत्रीं मधुवातेत्यृचस्तथा ॥१६

मधुरां यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ।
अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनो नरः ॥१७
अतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा ।
अन्नमादाय तृप्ता स्थ शेषञ्चैवान्नमन्वहम् ॥१८
तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापि सकृत्सकृत् ।
सर्वमन्नमुपादाय सलिलं दक्षिणामुखः ॥१९
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डानप्रदद्यापित्पतृ यज्ञवत् ॥२०
स्वस्ति वाच्यस्ततो दद्याद्दक्षय्योदकमेव च ।
दत्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकार मुदाहरेत् ॥२१

अर्घ्य निवेदित करके इनका संभव विधान से पात्रमें करे । पितृभ्य स्थानमभि'–इस मन्त्रसे उस न्युब्ज पात्रको अध' करे।१५। अग्नौकरिष्ये इससे घृत प्लुत अन्न को लेकर पूछे और व्याहृतियोंके सहित गायत्रीका तथा 'मधु वात'-इस ॠचा का जाप करके उनसे कहे आप सुखपूर्वक भोजन करें । उन श्राद्ध में भोजन करने वाले विप्रों को भी मौन होकर भोजन करना चाहिए । श्राद्धकर्त्ता मानव बिना किसी प्रकार का क्रोध किए हुए उन ब्राह्मणोंको इष्ट अन्न और हविष्य समर्पित करे।१६-१७। जब तक उन ब्राह्मणोंकी तृप्तिहो तव उन्हें कुछ अच्छी तरह तृप्तिपूर्वक भोजन करावे और पवित्र मन्त्रोंका जाप करता रहे। जब वे यह कहदे कि हम खूब तृप्तिहो गयेहैं । उन्हें एक-बार देवे और शेष अन्नको लेकर भूमिमें विकीर्णकर देवे । फिर सम्पूर्ण अन्नोंको तिलों सहित लेकर भूमि में विकीर्ण कर देवे । फिर सम्पूर्ण अन्नको तिलोंके सहित लेकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके पितृयज्ञ की भाँति उस उच्छिष्ट के समीप में पिण्ड देवे । इस रीति से मातामह आदि के लिए भी देवे इस प्रकार से यह सम्पूर्ण कृत्य करके फ़िर उन्हें आचमन समर्पित करे । स्वस्ति कर फ़िर अक्षय उदक देवे । इसके पश्चात् दक्षिणा देकर जो भी अपनी शक्ति से हो इसके पश्चात् स्वधाकार का उच्चारण करे ।१८-१९।

वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम् ।
विप्रैरस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ॥२२
प्रीयन्तामिति चौहेवं विश्वेदेवा जल ददत् ।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥२३
श्रद्धा च नो माव्यगमोद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति ।
इत्युक्तोऽपि प्रियं वाचं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥२४
वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्वं विसर्जनम् ।
यस्मिस्ते संश्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिताः ।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥२५
प्रदक्षिणमदुस्तुत्य भुञ्जीत पितशेषितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र रजनी भार्य्यया सह ॥२६
एव सदक्षिणं कुर्य्याद्वृद्धौ नान्दीमुखानाप ।
यजेत्तदधिकर्कन्धुमिश्राः पिंडा यवैः श्रिताः ॥२७
एकोद्दिष्टं दैवहीनं एकान्नैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नीकरणहितं पसभ्यवत् ॥२८
बपतिष्ठतामित्यक्षयस्थाने विप्रान्विसर्जयेत् ।
अभिरम्यतां प्रब्रूयात्प्रोचुस्तेभिरताः स्वहः ॥२९
गंधोदकतिलैर्मिस्र कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥३०
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
एतत्सपिंडीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥३१

स्वधा का वचन करो-इस प्रकार से उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर पितृ गण के लिए स्वधा का वाचन करना चाहिए । विप्रों के द्वारा स्वधा होवे—ऐसा कहने पर उस जल को भूमि पर सिञ्चित कर देवे ।२२। जल देता हुआ विश्वेदेवा प्रसन्न होवे, यह बोले । हमारे दाता—वेद-ख्याति बढ़े । हमारी श्रद्धा का लोप न होवे और हमको देव होवे, इस प्रकार से प्रिय वचन कहकर उनको प्रणिपात करके फिर विसर्जित करे । "बाजे बाजे"—इस का उच्चारण करते हुए प्रीति से पितरों का

विसर्जन करे। पहिले जिसमें वे सश्रव थे और अर्घ्यपात्र में निपातित थे उस पितृपात्र को उतार करके विप्रों का विसर्जन करना चाहिए ।२३-२५। प्रदक्षिणा और अनुस्तुति करके जो पितृ शेष अन्न हो उसका भोजन करे। अपनी भार्या के साथ उस रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।२६। इसी प्रकार से वृद्धि के अवसर पर दक्षिणा के सहित नान्दी मुखों को भी करे अर्थात् नान्दी मुख श्राद्ध करना चाहिए। कर्कन्धु सिश्रित यवों से श्रित पिंडों का उस समय में यजन करना चाहिए ।२७। एकोद्दिष्ट श्राद्ध दैवहीक और एकान्न,एक पवित्रक होता है। अपसव्यवत् आवाहन और अग्नीकरण रहित होता है ।२८। उपतिष्ठताम्—इससे अक्षम्य स्थान में विप्रों का विसर्जन करना चाहिए। फिर 'अभिरभ्यताम'—यह बोले वे 'अभिरता—स्वंहा'—यह बोले ।२९। गन्धोदक तिलों से मिश्रित चार पात्र करे। अर्घ्यके लिए पितृ पात्रों में प्रेत पात्र को प्रसेचित करे ।३०। 'समाना'—इन दो मन्त्रों से शेष सब पूर्व की भाँति ही करना चाहिए। यह सपिण्डीकरण एकोद्दिष्ट स्त्री को भी करना चाहिए ।३१।

अर्वाक्सपिण्डीकरणं संवत्सरात्भवेत् ।
तस्याष्यन्न सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरे द्विजः ।
पिण्डांश्च गोऽजाविप्रभ्यौ दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।।३२
हविष्यान्नेन वै मांसं पायसेन तु वत्सरम् ।।३३
ऐणरौरववाराहशमांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्धयापि तुष्यन्ति दत्तै रिह पितामहाः ।।३४
दद्याद्वर्षंत्रयोदश्यां मघामु च न संशयः ।
प्रतिपत्प्रभृतित्वेवं कन्यादीन्श्राद्धदो लभेत् ।।३५
शस्त्रेण निहतानां तु चतुर्दश्यां प्रदीयते ।
स्वर्णं ह्यपत्ययोगञ्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ।।३६
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां गतिम् ।
धनं विद्याञ्च वाक्सिद्धि कुप्यं गोऽजाधिकं तथा ।।३७

अश्वाना विववद्यः स्राद्धं संप्रतीच्छति ।
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामी प्राप्ययादिमान् ।
वस्त्राद्याः प्रीणयन्त्येव नव श्राद्धकृतं द्विजाः ॥३८
आयुः प्रजा धन विद्या स्वर्गमोक्ष सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीत्या नित्यं पितामहाः ॥३९

सपिंडी कारण के पीछे जिसका संवत्सर से होवे उसका भी सोद कुम्भ अन्न द्विजको संवत्सर में दे देना चाहिये और पिंडों को गो, अजा तथा विप्रों को दे देवे अथवा अग्नि या जल में दे देना चाहिए ।३२। हविष्यान्न से मास में, पायस से वत्सर में पितामह सन्तुष्ट होते हैं । मत्स्यादि के भामिष के तथाक्रम मास वृद्धि में देने पर भी उन्हें परम संतोष हुआ करता है ।३३-३४। त्रयोदशी में और मघामें अर्घ्य देवे । इस प्रकार से प्रतिप्रदा प्रभुति में श्राद्ध दाता कन्यादि की प्राप्त करता है इसमें संशय नहीं है ।३५। जिनका निहनन शस्त्र से हुआ हो उनको श्राद्ध चतुर्दशी तिथि में दिया जाता है । जो विधि-विधान के साथ श्राद्ध देता है उसे स्वर्ग अपत्य योग, शौर्य क्षेत्र, बल आरोगिता, यश, वीतशोकता, परमगति, धन, वित्ता, वाक् सिद्धि, कुप्य, गो अजादिक, अश्व वायु आदि की प्राप्ति होती है ।३६-३७। कृत्तिका से आदि लेकर भरणीके अंततक कामना वाला इन उक्त पदार्थोंको प्राप्त किया करता है । नव श्राद्ध करने वाले पर बस्त्रोंसे अढय द्विज परम प्रसन्न होतेहैं । पितामह प्रीति से नित्य आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख,तथा राज्य को प्रदान किया करते हैं ।३८-३९।

५८. विनायकोषसृष्ट लक्षण

विनायकोपसृष्ट लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतऽत्यर्थं सल मुण्डाश्च पश्यति ॥१
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिर्मित्ततः ।
राजा राज्यं कुमारी च पतिं पुत्रञ्च गुर्विणी ॥२
नाप्नुंयात्स्नपननंतस्य तुन्येऽहिन विधिपूर्वकम् ।

गौरसर्षपगन्धेन साज्यैश्चोत्सारितस्त तु ।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विविक्तशिरस तथा ।।३
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्यं द्विजान्शुभान् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धांगुग्गुलुञ्चाप्सुनिक्षिपेत् ।।४
एकाकृत्याह्यकवर्णैश्चतुर्भि कलशैर्ह्लदात् ।
चर्मण्यानुद्धहे रक्ते स्नाप्य भद्रासने तथा ।।५
सहस्राक्षशतधारमृषिभिः पारणं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।६
भगवांवरुणो राजा भर्ग सूर्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—अब मैं विनायक के द्वारा उपसृष्ट पुरुष का लक्षण बताता हूँ उन्हें समझ लो । ऐसा पुरुष स्वप्न में जल कर अत्यधिक अवगाहन किया करता है । और मुण्डों को भी देखता है ।१। सदा विमना (उदास) रहता है और जो कुछ आरम्भ करता है वह सब विफल होते हैं । राजा राज्य को कुमारी पति को और गर्भवती स्त्री पुत्र को प्राप्त नहीं किया करते हैं । इस उप सर्गके निवारण करने के लिए किसी शुभ दिन में उसका विधि-विधान के साथ स्नान कराना चाहिए । आज्य (घृत) के सहित और सरसों के गन्धसे पहिले उत्सा-रित करके फिर स्नान करावे ।१। सर्वौषधियों से समस्त गन्धों से उसका शिर विलिप्त करे ।२-३। फिर भद्रासन पर उसे बिठाकर शुभ द्विजों से स्वस्ति बाच करावे । मिट्टी, रोचना, गन्ध और गुग्गल को जल में निक्षिप्त करना चाहिए । फिर एक सौ आकृति वाले और एक ही वर्ण से युक्त चार कलशों के द्वारा ह्लद से चर्म में अनुद्वह रक्त भद्रा-सन पर स्नान करना चाहिंए ।४-५। पावमानी से पुनीत करे ।६। भग-वान् वरुण राजा—भग को सूर्य वृहस्पति और भग को इन्द्र तथा भग को वायु और सात ऋषियों ने दिया था ।७।

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमं ते यच्चमूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोर्नाशं तद्यातु ते सदा ॥८
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रवणी मस्तके तथा ।
जुहुयामूर्द्धनि कुशान्साज्यान्सपरिगृह्य च ॥९
मतः संमितचैव तथा शालकटङ्कटे ।
कूष्मांडं राजपुत्रांश्च अन्ते स्वाहासमन्वित ॥१०
तद्याच्चतुष्पथे भमौ कुशानास्तीर्य सर्वशः ।
कृताकृतं तथा चैव तण्डुलौदनमेव च ॥११
पुष्पं चित्रं सुगन्धञ्च सुरञ्चि त्रिविधामपि ।
दधिपायसमन्नञ्च घृतञ्च गुडमोदकम् ॥१२
एतासवर्नानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिवः ।
अम्बिकामुपतिष्ठेच्च दद्यादन्नं कृताञ्जलिः ॥१३
दूर्वासर्षपपुष्पैश्चपुत्रजन्मभिरं ततः ।
कृतस्वस्त्ययनं चैव प्रार्थयेदम्बिकां सतीम् ॥१४
रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि श्रियं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥१५
ब्राह्मणांस्तोषयेत्पश्चाच्छुक्लवस्त्रानुलेपनैः ।
वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात् संपूज्यश्च ग्रहस्तथा ॥१६

जो तेरे केशों में, सीमन्त में और मूर्द्धा में दौर्भाग्य है तथा ललाट में, कानों में और नेत्रों में दौर्भाग्य है वह सदा नाश को प्राप्त होवे ।८। जब स्नान कर लेवे तो उस नहाये हुए के श्रवण में तथा मस्तकमें और मूर्द्धा में घृत सहित कुशाओं पर ग्रहण कर सरसों के तैलकी आहुतियाँ देवें ।९। मित और संयमित हो शाल कटङ्कटों से युक्त कूष्मान्ड तथा अन्न में स्वाहा से समन्वित राज पुत्रों की सद्य से चतुष्पथ पर भूमिमें सब कुशाओंको आस्तृत करे । कृताकृत तण्डुल और ओदन, पुष्प, चित्र, सुगन्ध और तीनों प्रकारकी सुरा, दधि, पायस, अन्न, घृत, गुड़, मोदक इन समस्त वस्तुओंको उपस्कृत करके भूमिमें रक्खे और इसके अनन्तर

शव एवं अम्बिका उप–स्थान कर। हाथ जोड़कर अन्न समर्पित करे। पुत्र के जन्म नन्न दूर्वा और सरसों के पुष्पों से यजन कर तथा स्वस्त्य यन करके सती अम्बिका की प्रार्थना करनी चाहिए।१०-१४। हे देवि! आप मुझे रूप प्रदान करे, सौभाग्य देवें, पुत्र देवें श्री देवें और मेरी समस्त कामनाओं को प्रदान करें। इसके पश्चात शुक्ल वस्त्र तथा अनु-लेपनों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करें। दो गुरु को समर्पित करे और ग्रह की भली-भांति पूजा करे।१५-१६।

५६. ग्रहयोग

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहदृष्ट्यभिचारवान्।
ग्रहयागं समं कुर्याद् ग्रहाश्चते बुधैः स्मृताः ॥१
सूर्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुर्ग्रहगणाः स्मृताः ॥२
ताम्रकांस्यस्फाटिकाच्चा रक्तचन्दनस्वर्णकात्।
रजतादयसः सीसात्कांस्याद् दृष्टिः प्रशाम्यति ॥३
रक्त शुक्लस्तथा शक्तः पीतः सितासितः।
कृष्णः कृष्णः क्रमाद्वर्णं निबोध मुनयस्ततः ॥४
स्नापयेद्धामयेच्चैव ग्रहद्रव्यैर्विधानतः।
सुवर्णानि प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥५
गन्धादिवलयं चैवधूपो देयश्च गुग्गुलुः।
कर्त्तव्यास्तत्र मन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिदेवतः ॥६
आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धादिवः ककुत्।
उद्बुध्यस्वेति जुहुयाद्दिग्भरेव यथाक्रमम् ॥७

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा—श्री की कामना करने वाला शान्ति की अभिलाषा रखने वाला अथवा ग्रहों की दृष्टि के अभिचार वाला पुरुष सम ग्रहयोग करे। बुधजनोंने ये ग्रह बताये हैं—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, और केतु ये ग्रह गण कहे गये हैं।१-२। इन युक्त नौ ग्रहों की दृष्टि ताम्र, कांस्य (कांसा)–स्फटिक, रक्त चन्दन

सुवर्ण, रजत (चाँदी-लोहे-सीसा) से प्रशान्त होती है ।३। रक्त, शुक्ल तथा रक्त-रीत, और सिता-सित-कृष्ण कृष्ण ये क्रम सुवर्ण है। हे मुनि गण ! इनको समझलो ।३। इन ग्रहोंके द्रव्योंसे विधानसे स्नपन करावे । सुवर्ण का दान करे । वस्त्र और कुसुमों को देवे ।५। गन्ध आदि वलय देवे । गूगल की धूप देनी चाहिए । वहाँ पर ग्रह योग में अधि प्रत्यधि दैवत मन्त्रों के द्वारा यह सब कृत्य पूर्ण करने चाहिए ।६। 'आकृष्णेव, इमम्देवा, अग्निमूर्धादिवः कुतुत् उद्बुध्य स्व'—इन ऋचाओं से क्रमानुसार हवन करना चाहिए ।७।

बृहस्पते परिदीयति अन्नात्परिस्नुतोरसम् ।
शन्नोदेवी कथानश्च केतु कृण्वन्निति क्रमात् ॥८
अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाञ्च समिधः क्रमात् ।
होतव्या मधुसर्पिभ्याँ दध्ना चैव समान्वितः ॥६
गुडौंदनौ पायसंच हविष्यं क्षीरषष्टिकम् ।
दध्योदनं हविः पूपान्मांस चित्रान्नमेव च ॥१०
दद्याद् द्विजः क्रमादेतान्ग्रहेभ्यो भोजनं ततः ।
धेनुः शङ्खस्तथानड् वान्हेमवासो हयस्तथा ॥११
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ।
ग्रहाः पूज्याः सदाः यस्माद्राज्ञापि प्राप्यते फलम् ॥१२

'बृहस्पते परिदीय'—इससे' अन्नापरि श्रुतोसेरंन्'—शान्नोदेवी-कथानञ्च केतु कृण्वन्—इनसे क्रम पूर्वक आहुतियाँ देवे ।८। अर्क (आक-) पलाश (ढाक) खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर—शमी (छौंकर) दर्वा दूभ) और कुशा ये इनके हवन करने के लिए क्रम से समिधाएँ होती हैं । मधु, शहद और सपि (घृत) से जो कि दधि (दही) से समन्वित हों हवन करे ।६। गुड़, ओदन, पायस, हविष्य है । क्षीर, षष्टिक, दधि ओदन ये हवि हैं पूप (पुओं)आमिष चित्रान्न यह भोजन द्विज को ग्रहों के लिए देना चाहिए । फिर विप्रों को ग्रहों की सन्तुष्टिके लिए दक्षिणा

देवे। दक्षिणा क्रम से धेनु शङ्ख अनवड्वान्, हेम, वस्त्र, अश्व, श्यामा, गौ आयस छाग यह होती है। इस प्रकार से ग्रहों की सदा पूजा करनी चाहिए। राजा भी इस तरह पूजा से फल की प्राप्ति किया करते हैं।१०-१२।

६०. वानप्रस्थ भिक्षुकाश्रम

वानप्रस्थाश्रमं वक्ष्ये तत्करस्य महर्षयः।
पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥१
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः शमदमक्षमी।
अर्चयेत्साग्निकान्विप्रान्पितृदेवातिथींस्तथा ॥२
भृत्यांस्तु तर्पयेच्छ्श्वज्जटासोमभदात्मवान्।
दान्तस्त्रिसवनं स्नायान्निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ॥३
स्वाध्यायवान्ध्यानशीलः सर्वभूतहिते रतः।
अहनो मासस्य मध्ये वा कुर्य्यात्स्वार्थपरिग्रहम् ॥४
निराश्रय स्वपेद् भूमौ कर्म कुर्य्यात्फलं विना।
ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ॥५
आर्द्र वासास्तु हेमन्ते योगाभ्यासाद्दिन नयेत्।
अक्रुद्धः पतितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ॥६

याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा—हे महर्षि गणो ! अब मैं वानप्रस्थ आश्रम के विषय में कहता हूँ जो कि एक वानप्रस्थाश्रमी को करना चाहिए। वानप्रस्थाश्रमी को चाहिए कि अपनी भार्या को अर्थात् उसके पोषणादि के समस्त भार को अपने पुत्रों के सुपुर्द कर देवे अथवा उस भार्या को अपने ही साथ में लेकर चले जाना चाहिए। उसे साग्नि अर्थात् अग्नि यजन करने वाला रहना चाहिए। शम दय और क्षमा से युक्त उसे रहना होता है। वानप्रस्थीको साग्निक बिप्रों का, पितरों का देवों का तथा अतिथियों का यजन करना चाहिए।१। अपने भृत्यों को तृप्त करना चाहिए। वानप्रस्थीको जटा औरसोम धारणकर आत्मवान् अपनी आत्माको समझने वाला रहना आवश्यकहै। शांत होकरात्रिकाल

स्नान-सन्ध्या करे और कभी किसी का प्रतिग्रह ग्रहण न करे ।२। निरन्तर वेदादि निगमों का स्वाध्याय करे । समस्त प्राणीमात्र के हित-सम्पादन के कार्य में रति रक्खे । दिन के अथवा मांसके मध्य में स्वार्थ का परिगृह करना चाहिए ।४। बिना किसी वस्तु का आश्रय लेकर भूमि में शयन करे और फल की आकाङ्क्षासे रहित होकर कर्म करना चाहिए । ग्रीष्म ऋतु में पंच अग्नि तपे और वर्षा ऋतु में स्थण्डिल शायी रहे ।५। हेमन्त में गीले वस्त्र धारण करे । सर्वदा क्रोध रहित रहे । समस्तों को भी ऐसा ही रक्खे और आपको भी ऐसा रक्खे ।६।

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि तं निबोधत सत्तमाः ।
वनान्निवृत्य कृत्वेष्टि सर्वं वेदप्रदक्षिणाम् ।७
प्राजापत्यं तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनिः ।
सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।
सर्वायासं परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ।८
अप्रमत्तश्चरेद् भैक्ष्यं सायाह्ने नाभिलक्षितः ।
वाहितैर्भिक्षुकैग्रामे यात्रामात्रलोलुपः ।९
भवेत्परमहंसो वा एकदण्डी यमादिलः ।
सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात् ।१०
योगमभ्यस्य मितभुक्परां सिद्धमवाप्नुयात् ।
दाताऽतिथिप्रियो ज्ञानी गृही श्राद्धेऽपि मुच्यते ।११

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं—अब भिक्षु के धर्म को बताता हूँ—हे सत्तमो ! उसे समझो । वानप्रस्थाश्रम में रहकर वन से निवृत्त होवे । इष्टि करके समस्त वेदों की प्रदक्षिणा करे । इसके अन्त में प्राजापत्य करे और अपनी आत्मा में अग्नि का आरोपण करे । सब भूतों के हित में रत होते हुए शान्ति धारण कर तीन दण्ड धारण करे और कमन्डलु का ग्रहण करे ।७८। समस्त प्रकार के आयास का परित्याग कर भिक्षा का अर्थी होकर ग्राम का आश्रम ग्रहण करना चाहिए । अप्रमत्त होकर भिक्षाचरण करे और सायाह्नमें अभिलक्षित न होवे । वाहित भिक्षुको

के साथ मात्रा का कभी लोलुप न होवे।६। अथवा परमहंस होकर रहे। यमादि धारण कर एक दन्ड धारी रहे। इस तरह से सिद्ध योग वाला होकर अपने देह का जो त्याग करता है वह यहां सिद्धि को एवं अमृतत्व को प्राप्त किया करता है।१०। योग का अभ्यास कर परिमित भोजन करे तो परा सिद्धि को प्राप्त किया करता है। दाता-अतिथियों के प्रिय करने वाला ज्ञानशील गृहस्थ भी श्राद्ध करने पर मुक्ति को प्राप्त किया करता है।११।

६२—नरक में पापियों के फल

नरकान्पातकोद्‌भूतात्पापापस्य कर्मण: क्षयात्।
ब्रह्महा श्वा खरोष्ट्र: स्यान्मूकश्चान्ते भविष्यति।१
स्वर्णचौर: कृमि: कीट: तृणादिगुरुतल्पग:।
क्षयरोगी श्यावदन्त: कुनखी शिपिविष्टक।
ब्रह्महत्याक्रमात्स्युश्च तत्सर्वं वा शिशोर्भवेत्।२
धान्यहर्त्ता त्वनाहारी मूको रागापहारक:।
धान्यहार्य्यतिरिक्ताङ्ग: पिशुन: पूतिनासिक:।३
तैलहारी तैलपायी पूतिवक्त्रस्तु सूचक:।
सायन्ते लक्षण भ्रष्टा दरिद्रा: पुरुषाधमा:।
जायन्ते लक्षणोपेता धनधान्यसमन्विता:।४

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—महा पातकों से प्राप्त नरक के—पापों के कर्म का क्षय होने से ब्रह्म हत्यारा व्यक्ति फिर कुत्ता—गधा और ऊँटकी योनि प्राप्त किया करता है और अन्त में मूक हो जाता है।१। सुवर्ण की चोरी करने वाला व्यक्ति कृमि और कीट की योनि प्राप्त किया करता है। गुरु की शय्या पर करने वाला क्षय का रोगी-श्याव दाँतों वाला कुनखी और शिपि विष्टक होने हैं। ब्रह्महत्या के क्रम से ये सभी हुआ करते हैं अथवा यह सब शिशु के होती है।२। धान्य का हरण करने वाला अनाहारी, मूक और रोगापहारक, धान्यहारी, अतिरिक्त अङ्गों वाले—पिशुन एवं पूतिनासिका वाला होता है।३। तैल हरण

करने वाला, तैल पीने वाला, दुर्गन्ध युक्त मुख वाला, सूचक होता है। ऐसे पुरुष समस्त शुभ लक्षणों से भ्रष्ट-दरिद्र और पुरुषों में अधम होते हैं और जन्म ग्रहण किया करते हैं। शुभ लक्षणों मे उपेत धन-धान्य से समवित हुआ करते हैं।४।

६३-प्रेत शौच वर्णन

प्रेतशौचं प्रवक्ष्यामि मच्छृणुध्व यंतव्रताः।
ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्य्यादुदकं ततः।१
आश्मशानादनुवाह्य इतरैर्ज्ञातिभिर्युतः।
यमसूक्तं तथाजप्यं जपद्भिर्लौकिकाग्निना।
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिथास्त्यावृतार्थवत्।२
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयान्त्यपः।
अपनः सोशुचदद्धमनेन पितृदिङ्मुखाः।३
एव मातामहाचार्यपत्नीनाञ्चोदकक्रियाः।
कामोदकाः सखिपुत्रस्वस्रीयश्वशुरद्विजाः।
नामगोत्रेण ह्युदकं सकृत्सिञ्चन्ति वाग्यताः।४
पाखण्डपतितानांस्तु न कुर्य्यैरुदकक्रिया।
न ब्रह्मचारिणो व्रात्या योषितः कामगास्तथा।५
सुरापाः स्वात्मघातिन्यो न शौचोदकभाजनाः।
ततो न रोदितव्यं हि त्वनित्या जीवसंस्थितिः।६
क्रिया कार्या यथाशक्ति यतो गच्छेद् गृहाम् प्रति।
विदार्यं निम्बपत्राणि निपतो द्वारि वेश्मनः।७

याज्ञवल्क्य मुनिने कहा—हे यत व्रत वन्लो ! अब हम प्रेतके कारण होने वाले आशौच के विषय में आपको बतलाते हैं उसका आप लोग श्रवण करे-जो दो वर्ष से कम हो उसका निखनन करे अर्थात् भूमि में गाड़देवे और फिर उदक क्रिया न करे। श्मशान तक अनुवाहित करके इतर ज्ञातियों के सहित यम सूक्त का जप करना चाहिए। उस प्रकार

से जाप करने वालों के द्वारा वह लौकिक अग्नि से दग्ध नहीं करना चाहिए अर्थात् साधारण आग से उसका दाह न करे। यदि उपेत होतो आहिताग्नि से आवृत अर्थ भाँति करे।१-२। सप्तम अथवा दशम से ज्ञाति के लोग जल का ग्रहण करते हैं। इस प्रकारसे पितृ-पितृ-दिक्की ओर वाले अघ का विस्तार किया करते हैं। इसी विधि से मातामह-आचार्य और पत्नीकी उदक क्रिया होती है। सखा पुत्र-स्वस्रीय (बहिन का पुत्र) श्वसुर और द्विज कामोदक होते है अर्थात्-जल की कामना वाले हैं। वाग्यत (मौन) होकर नाम और गोत्रसे एक बार का सिंचन करते हैं।३-४। पाखाण्ड से जो पतित हो उनकी उदक क्रिया नहीं करनी चाहिए। ब्रह्मचारी-व्रात्य और योषित् उसी प्रकार से आमग नहीं होते हैं अर्थात् उदक क्रिया के योग्य नहीं है।४। सुरा का पान करने वाले अपनी आत्मा का घात करने वाले भी शौचोदक के पात्र नहीं है। उनके लिए रुदन भी करना चाहिए। क्योंकि जीवों की संस्थिति अनित्य होती है।६। यथा शक्ति क्रिया करनी चाहिए और फिर गृहों के प्रति चले जाना चाहिए। जब घर के द्वार पर पहुँचे तो नियत रूप में स्थित होकर निम्ब के पत्रों का विदारण करे।७।

आचम्यायानिमुदकं गोमय गौरसर्षपान्।
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं वनैः।८
प्रवेशनादिकं कर्मं प्रेतसंस्पर्शनादपि।
ईक्षतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात्।९
क्रीतलब्याशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक्।
पिण्डं यज्ञकृता देयं प्रेतायन्न दिनत्रयम्।१०
जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं तु मृण्मये।
वैतानोपासना: कार्य्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदिताः।११
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडं नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतादेशात्दशरात्रमतः परम।१२
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमुच्यते।

उतद्धिवर्ष. उभयोः सूतकं मातुरेव हि।
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिविशुध्यति ।१३
दशद्वादशवर्णानां तथा पञ्चदश व च।
त्रिशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतसूतकम्।१४

आचमन करके इसके अनन्तर अग्नि-उदक-गोमय (गोबर) और गौर सर्षप (सरसों)का प्रवेश करे। समलैभन पत्थर पर करके धीरेपद रखे।८। इस प्रकार से प्रवेशन आदि कर्म करे। प्रेत के संस्पर्श से और देखने वालों की उसी समय शुद्धि होती है और दूसरों की स्नान-समय में शुद्धि हो जाती है।९। खरीद कर लाए हुए तथा कहींसे प्राप्त हुए भोजन को करने वाले वे पृथक्-पृथक् भूमिपर ही शयन करे। यज्ञ करने वाले पुरुष को प्रेतके लिए तीन दिन तक अन्न पिंड देना चाहिए।१०।एक दिन आकाशमें जल तथा मृण्मय पात्र में क्षीर स्थापित करे। श्रुति प्रतिपादित वैतानोंसना की क्रिया करनी चाहिए।११। जिसके दाँत पैदा न हुए हों उसकी जन्म से दाँत उगने तक सद्यः शुद्धि हो जाती है। चूड़ा कर्म होने तक एक निशाकी अशुद्धि रहती है। व्रतादेव होने के पूर्व तक तीन रात्रिका अशौच मृतक का होता है। इससे ऊपर दश रात्रि तक आशौच रहा करता है।१२।तीन रात्रि अथवादश रात्रि शपु से सम्बन्धित हुआ करता है। दो वर्ष से कर्म का दोनों में (जन्म-मरण में) केवल माता को ही सूतक होता है। जन्म मरण के अन्तर में शेप दिनों में विशुद्धि होती है।१३। वर्णों का आशौच ब्राह्मण को दश दिन का—क्षत्रिय को वारह दिन का—वैश्य को पन्द्रह दिन का और शूद्र का तीस दिन का मृतकाशौच होता है।१४।

अहस्त्वदत्तकन्यासु वालेषु च विशोधनम्।
गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ।१५
अनोरसुषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च।
नीरसे राजनि तथा तदहः शुद्धिकारकम्।१६

हतानां नृपगोविप्रैरलक्षं चात्मघातिनाम् ।
विषाद्यैश्च हतानाञ्च नाशौच पृथिवींपतेः ।१७
सत्रिव्रतब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ।
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ।१८
आपद्यपि हतानां च सद्यः शौचं विधीयते ।
कालोऽग्निकर्म मृद्वायुमनो ज्ञानं तपो जपः ।१९
पश्चात्तापो निराहरः सर्वेषां शुद्धिदैतव ।
अकार्यंकारिणां दानं वेगो नद्यास्तु शुद्धिकृत् ।२०

अदत्त कन्याओं में और बालों में विशोधन एकदिन होता है । गुरु अन्ते वासी (शिष्य), अनुचप्न, मातुल, श्रोत्रिय, अनौरस पुत्र, अन्यगता भार्या नीरस राजा में वह दिन ही शुद्धि कारक होता है अर्थात् उसी एक दिन में आशौच की निवृत्ति हो जाती है ।१५-१६। नृप, गौ और विप्र के द्वारा हत औप अलक्ष आत्मघाती तथा विषादि के द्वारा हत हुए का पृथिवी पति का आशौच नहीं होता है।१७। स्त्री-व्रती-ब्रह्मचारी दाता-ब्रह्मवेत्ता का दान में—विवाह में संग्राम में देश के विप्लव के समय में तथा आपत्ति काल में जो हत हो उनका शौच तुरन्त ही हो जाता है । काल अग्नि कर्म-मृत्तिका-वायु-मन ज्ञान-तप-जप-पश्चाताप और निराहार ये सब भी शुद्धि के हेतु होते हैं अर्थात् उन उक्त कर्मो से सभी प्रकार की शुद्धि हो जाया करती हैं । अकार्यो के करने वालों का दान और नदी का वेग शुद्धि करने वाला है ।१८-२०।

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः ।
फलसोमक्षौमवीरुद्दधि क्षीर घृतं जलम् ।
तिलौदनरसक्षारमधुलाजयत हविः ।२१
वस्त्रोपलामवं पुष्पं शाकसृच्चसंपादुकम् ।
एणत्वचैव कौषेयं लवणं मासमेव च ।२२
पिण्याकमूलगन्धांश्च वैश्यवृत्तोन विक्रयेत् ।
धर्मार्थं विक्रयस्तेषां तिलधान्येन संयुतम् ।२३

लवणादि न विक्रीयात् तथा चापद् गतो द्विजः ।
कुर्य्यात् कृष्यादिकं तद्वद्विक्रेया ह्यास्तथा ।२४
बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम् ।
राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्ति विप्रादिकस्य च ।२५

द्विज को यदि निर्वाह नहीं होता है तथा आपत्ति काल उपस्थित हो जावे तो उसे क्षत्रिय के अथवा वैश्य के कर्म से जीवन-निर्वाह कर लेना चाहिए। वैश्य की वृत्ति का आश्रय भी लेवे तो फल-सोम-क्षोम-वीरुद्-दधि-क्षीर-घृत-जल-तिल-ओदन-रस-क्षार-मधु-लासायुत-हवि-शस्त्र-उपलामव पुष्प-शाक-मृद-चर्म-पादुका-एणत्व-कौषेय-लवण मांस-पिण्याक-मूल और गन्धों का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए। इसका विक्रय धर्मार्थ है जो कि तिल धान्य संयुत है आपद्गत होने पर भी द्विज को लवण आदिका विक्रय कभी नही करना चाहिए। कृषि आदि का कार्य ही करना चाहिए। अश्वों का भी विक्रय नहीं करे। तीन दिन तक बुभुक्षित रहकर स्थित हो तो उसे देखकर जो कि वृत्ति की व्यवस्था करे।२१-२५।

६४-पराशरोक्त धर्म कीर्तन

पराशरोऽब्रवीद् व्यासं धर्मं वर्णाश्रमादिकम् ।
कल्पे कल्पे क्षयोत्पतिः क्षीयन्ते न ह्यजादयः ।१
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो यः कश्चिद् वेदकर्त्तृकः ।
वेदाः स्मृताः ब्राह्मणाद्यो धर्मा मन्वादिभिः सदा ।२
दानं कलियुगे धर्मः कर्त्ताञ्च कला त्यजेत् ।
पापकृत्यं तु तत्रैव शाप फलति वर्षतः ।३
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट् कर्माणि दिने दिने ।
सन्ध्यास्नानं जपो होमो देवातिथ्यादिपूजनम् ।४

अपूर्वः सुव्रतो विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा ।
क्षत्रियः परसैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत् ।
वणिक्कृष्यादि वैश्ये स्याद् द्विजभक्तिश्च शूद्रके ।५
अभक्ष्यभक्षणाच्चौर्य्यादगन्यागमनात् पतेत् ।
दिनादर्धं स्नानयोगादिकारी विप्रांश्च भोजयेत् ।
विर्वपेत्पञ्च यज्ञानि क्रूरे निन्दाश्च कारयेत् ।७

सूतजी ने कहा—पराशर मुनि ने व्यास महर्षि से वर्णों के आश्रमों के धर्म आदि कहे थे । कल्प कल्प में क्षय और उत्पत्ति होते हैं किन्तु अजादिक क्षीण नहीं होते हैं श्रुति-स्मृति और सदाचार जो कि वेद कर्त्तृक हैं । मन्वादि से सदा ब्राह्मणादि वेद ही धर्म कहे गये हैं कलियुग में दान धर्म होता है कलियुग में कर्त्ता का त्याग होता है । पाप कृत्य वहाँ पर ही फल देता है और शाप एक वर्ष में फल दिया करता हैं आचार से सभी कुछ की प्राप्ति होती है। ये षट् कर्म प्रतिदिन करने चाहिए । स्नान, जप, होम, देव और अतिथि का पूजन ये छै कर्म हैं सुव्रत वाला विप्र अपूर्व होता है और यति लोग भी उस समय अपूर्व होते हैं । क्षत्रिय लोग परों की सेनाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करें । वैश्य वाणिज्य और कृषि गोपालन आदि कर्म करे । शूद्र में द्विजीवियों की भक्ति और सेवा होनी चाहिए ।५। अभक्ष्य भक्षण करने से चोरी और नारी गमन करने से पतित हो जाता है । यदि आपत्ति काल में द्विज कृषि कर्म करे तो उसे चाहिए कि थके हुए वृषभ को वाहित न करे ।६। दिन के अर्ध भाग में स्नान और योगादि के कर्म करे तथा विप्रों को भोजन करावे पंचयज्ञों का निर्वपन करे तथा क्रूर कर्म की निन्दा करे ।७।

तिलाज्यं न विक्रीणीत शूनायज्ञादद्यान्वितः ।
राज्ञो दत्वा तु षड् भागं देवतानाञ्च विंशतिम् ।
त्रयस्त्रिंशच्च विप्राणां कृषिकर्त्ता न लिप्यते ।८

कर्षकाः क्षत्रविट् शूद्राः खल्वदत्वा तु चौरकाः ।
दिनत्रयेण शुध्येत ब्राह्मणः प्रेतसूतके ।९
क्षत्री दशाहाद्वैश्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रकः ।
याति विप्रो दशाहात्तु क्षत्रो द्वादशकाद्दिनात् ।१०
पंचदशाहाद्वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
एकपिण्डास्तु दायादाः पथभाविनिकेतनाः ।११
जन्मना च पिवत्तौ य भवेषां च सूतकम् ।
चतुर्थे दशरात्रस्य षणिशाः पुंसि पंचमे ।१२
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम् ।
देशान्तरे मृते बाले सद्यः शुद्धिर्यतो मृते ।१३
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृता ।
न तेषामग्निसंस्कारो न पिण्डेनोदकक्रिया ।१४

शूना यज्ञ से अंघान्वित होता हुआ तिल और घृत का विक्रय कभी न करे । राजा को छठवाँ भाग और देवताओं को बीसवाँ भाग देवे । तेतीसवाँ भाग विप्रों को देवे तो कृषि के कर्म करने वाला व्यक्ति कभी भी पाप से लिप्त नहीं होता है ।८। जो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कर्षक हैं और वे दान नहीं करते हैं तो चोर होते हैं । ब्राह्मण प्रेत सूतक में तीन दिन में शुद्ध हो जाता है ।९। क्षत्रिय दश दिन में-वैश्य बारह दिन में और शूद्र एक मास में प्रेत सूतक में शुद्ध हुआ करता है । विप्र दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है । एक पिण्ड वाले दायाद जिनके भात और निकेतन पृथक् हों उनको जन्म और मरण के मृतक सबको होता है । चौथी तक दश रात्रि का, पाँचवीं पीढ़ी में छै रात्रि का, छटवी पीढ़ी में चार दिन का और सातवीं पीढ़ी में तीन दिनमें शुद्धि हो जाती है ।१०-२३। अजात दन्त जो बालक हैं और जो गर्भ से निकले हुए बालक हैं इनका अग्नि संस्कार नहीं होता है, न उनको पिंडदान होता है और न उनके लिए उदक क्रिया ही होती है ।१४।

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ।
यावन्मासान्स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ।१५
आनामकरणात्सद्य आचूडान्तादहर्निशम् ।
आव्रतस्थात्त्रिरात्रेण तदुर्ध्वं दशभिर्दिनैः ।१६
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयो ।
ब्रह्मचर्यविग्निहोत्राम्वाशुद्धिः सङ्गबर्जनात् ।१७
शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासाश्च भृत्यकः ।
अग्निमाश्रोत्रिया राजा सद्यः शौचाः प्रकीर्त्तिताः ।१८
दशाहाच्छुद्धयते माता स्नानात्सूते पिता शुचिः ।
सङ्गात् सूतौ सूतकं स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ।१९
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
पर्वसकल्पितादन्तवर्जनञ्च विधीयते ।२०
मृतेन शुद्धयते सूती मृतकं जातकं त्वसौ ।
योग्रहादौ विपन्नात्मामेकरात्रं तु सूतकम् ।२१

यदि स्त्री का गर्भ गिर जावे या गर्भ का स्राव हो जावे तो जितने मास का उसका गर्भ हो उतने ही दिन तक उसे सूतक होता है ।१५। जब तक नामकरण संस्कार न हो और उसकी मृत्यु हो जावे तो तुरन्त ही सूतक से शुद्धि हो जाती है । जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक दिन और एक रात्रि में शुद्धि होती है ।१६। गर्भ जब स्थिर हो उससे चौथे मास तक तो उसका स्राव कहा जाता है तथा पाँचवें और छठवें मास में गर्भ क्षीण होता है तो उसे गर्भ का पात कहते हैं । ब्रह्मचर्य से अग्निहोत्र से और सङ्ग के बर्जन से अशुद्धि नहीं होती है ।१७। शिल्पी कारु, वैद्य, दासी, दास भृत्य, अग्निमान्, श्रोत्रिय, राजा ये तुरन्त ही शौच वाले बताए गए हैं ।१८। माता दश दिन में शुद्ध होती है और पिता स्नान से शुचि हो जाता है । सूतक वाले के सङ्ग से भी सतक होता है । पिता उपस्पर्शन करके शुचि होता है ।१९। विवाह-उत्सव और यज्ञों में यदि मध्य में मृत सूतक होता है तो पूर्व से जो भी सङ्क-

ल्पित कृत्य है उसका अन्य वर्जन किया जाता है ।२०। यह सूतकी मृत और जातक में शुद्ध होता है । जो ग्रहादि में विपन्नों का केवल एक रात्रि का सूतक होता है ।२१।

अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुध्यति ।
प्रेतशूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।२२
आत्मघातिविषाद्बन्धकृमिदष्ठेन संस्कृतिः ।
गोहतकृमिदष्टञ्च स्पष्ट्वां कृच्छ्रेण शुध्यति ।२३
अदुष्टां पतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत् ।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः ।२४
बालहत्या त्वगमनाद्दतौ च स्त्री तु शूकरी ।
अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रियाः ।२५
औरसः क्षेत्रजः पुत्रः पितृजौ पिण्डदौ पितुः ।
परिवित्तेस्तु कृच्छ्रं स्यात्कन्याया कृच्छ्रमेव च ।२६
अतिकृच्छ्रं चरेद् दाता होता चान्द्रायणं चरेत् ।
कुब्जवामनषन्ढेषु गद्गदेषु जड़ेषु च ।
जात्यन्धवधिरे मूके न दोषः परिवेदने ।२७
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे वा पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नरीणां पतिरन्यो विधीयते ।२८

कोई अनाथ प्रेत हो और उसका वहन श्मशान तक किया जावे तो केवल प्राणायाम करने से ही शुद्धि हो जाया करती है । प्रेत शूद्रके वहन करने से तीन रात्रि में अशुचिता दूर होती है ।२२। आत्मघात करने वाले, विष से, वन्द से, कृमि के द्वारा नष्ठ हो जाने से जो मृत्यु होती है उसका संस्कार नहीं होता है । गौ से हत और कृमि से दंष्ट का स्पर्श करके कृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है ।२२। जो दोषों से रहित अपनी भार्याको यौवनावस्था में परित्यक्त कर देता है । उसको सात जन्म तक स्त्री की योनि प्राप्त हुआ करती है और बारम्बार वह विधवाभी होता है ।२४। बालहत्या और ऋतुकाल में गमन न करने से स्त्री शूकरी

होती है। व्रतकारिणी और भ्रष्ट पानोदक किया अगम्या है।२५।औरस और क्षेत्रज पुत्र पिताके पितृज पिंडदान करने वाले होते हैं। परिवित्ति से और कन्या से जो वह कृच्छ्र होता है ऐसे व्यक्ति को अतिकृच्छ्र व्रत शुद्धि के लिए करना चाहिये। दाता और होताको चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। कुब्ज, वौना, षण्ड (नपुंसक), गद्गद, जड़, जन्मान्ध, बधिर और मूक का परिवेदन करने में कोई दोष नहीं होता है।२६-२८।

श्वादिदष्टस्तु गायत्र्या जपाच्छुद्धो भवेन्नरः।
दाह्यो लोकाग्निना विप्रश्चाण्डालाद्यैर्हतोऽग्निमान् ।२९
क्षीरैः प्रक्षाल्य तस्यास्थि स्वाग्निना मन्त्रतो दहेत् ।३०
प्रवासे तु मृते भूयः कृत्वा कुशमयं दहेत्।
कृष्णाजिने समाश्मीयं षट् शतानि पलाशजाः ।३१
शमीं शिश्ने विनिर्विश्य अरणिं वृषणे क्षिपेत्।
कुण्ड दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते तथोपभृत् ।३२
पार्श्वे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे तु मुषलं दहेत्।
ऊरौ निक्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ।३३
क्षेत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषोः।
कर्णे नेत्रे मुखे घ्राद्य हिरण्यशकलान् क्षिपेत् ।३४
अग्निहोत्रोपकरणाद् ब्रह्मलोकगतिर्भवेत्।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्याज्याहुतिः सकृत ।३५
हंससारसक्रौञ्चानां चक्रवाकञ्च कुक्कुटम्।
मयूरमेषघाती च अहोरात्रेण शुद्धयति ।३६
पक्षिणः सकलान् हत्वा अहोरात्रेण शुध्यति।
सर्वांश्चतुष्पदान्हत्वा शहोरात्रो जपेत् ।३७

श्वा आदि से दष्ट होने वाला पुरुष गायत्री के जप से शुद्ध हो जाता है। चाण्डाल आदि के द्वारा हनन किया हुआ अग्निमान विप्रका दाह लौकिक अग्नि से करना चाहिए। क्षीर से उसकी अस्थियों का

प्रक्षालन कर मन्त्र पूर्वक स्वाग्नि से दाह करे ।२९-३०। यदि किसी की प्रवास में मृत्यु हो जावे तो उसका पुत्तला कुशों से बनाकर फिर उसका दाह करे । कृपया, जिसमें छै सौ पलाशजों की समास्तारण करे । शिश्न मे शमी को और वृषण में अरणिका विनिक्षिप्त करे दक्षिण हस्त में कुन्ड तथा वामहस्त में उपभृत, पार्श्व में उल्लूत और पृष्ठ में मुषल का दाह करे । ऊरुजों में दृषद, (पत्थर) और मुख में तन्डुल, घृत और तिलों का निक्षेप करे ।३१-३३। श्रोत्र में प्रोक्षणी देवे और चक्षुओं में आज्य स्थाली देवे । कान, नेत्र मुख और घ्राण में सुवर्ण के टुकड़े क्षिप्त करने चाहिए।३४। अग्निहोत्र के उपकरण से ब्रह्मलोक की गति वाला होता है । "असौ स्वर्गायलोकाय स्वाहा"—इससे एक बार आहुति देवे ।३५। हंस, सारस, कौञ्च, चक्र, नाक, कुक्कुट, मयूर और मेष के घात करने वाला, पुरुष एक रात्रि मे शुद्ध होता है ।३६। समस्त प्रकार के पक्षियों का वर्णन करने पर एक अहोरात्र में शुद्धि हुआ करती है । ।३७।

६५—नीतिसार कथन

नीतिसारं प्रवक्ष्यामिं अर्थशास्त्रादिसंश्रितम् ।
राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम् ।१
सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः ।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम् ।२
वर्जयेत्क्षुद्रसवादं दुष्टस्य चैव दर्शनम् ।
विरोधं सह मित्रेण संप्रीतिं शत्रुसेविता ।३
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ।
दुष्टानां संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ।४
ब्राह्मणं बालिशं क्षत्रमयोद्धारं विशं जडम् ।
शूद्रमक्षरसयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ।५

कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः ।
कार्य्यं कारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः ।६
कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ।७

सूतजी ने राजा आदि को हितकर, स्वर्गप्रदायक नीतिशास्त्र को वर्णन करते हुए कहा कि सिद्धि की कामना वालों ही को सत्पुरुषों का ही संग करना चाहिए ।१। असत्पुरुषों के साथ संग करने से इस लोक में कहीं भी हित नहीं होता है ।२। क्षुद्र स्वभाव और कर्म वाले पुरुष के साथ सम्वाद करना उचित नहीं है । विरोध रखने वाले के साथ सम्प्रीति और मित्र के साथ विरोध भी नही करना चाहिए ।३। मूर्ख शिष्य को उपदेश देने से और दुष्ट स्त्री का भरण करने से तथा दुष्टोंका सम्प्रयोग करने से पण्डित पुरुष भी सर्वदा दुःखित रहा करता है ।४। बालिश मूर्ख ब्राह्मण को, युद्ध न करने वाले क्षत्रिय को, जड़ वैश्य को तथा अक्षर संयुत शूद्र को दूर से ही त्याग देना चाहिए ।५। समय पर शत्रु के साथ सन्धि और मित्र के साथ भी विग्रह करे किन्तु कार्य और कारण दोनों को भली-भाँति विचारकर ही पण्डित पुरुष काल का क्षेप किया करते हैं ।६। काल बड़ा प्रबल है. यह काल ही समस्त भूतों का पाचन किया करता है और काल ही सबका संहार करता है ।७।

कालेषु चरते वीर्यं काले गर्भं च वर्द्धते ।
कालो जनयते सृष्टिं पुनः कालोऽपि संहरेत् ।८
कालः सूक्ष्मगति नित्यं द्विविधश्चेह भूव्यते ।
स्थूलसंग्रहचारेण सूक्ष्माचारान्तरेण च ।९
नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे बृहस्पतिः ।
सर्वज्ञो येन चेन्द्रोऽभद् दैत्यान् हत्वाप्नुयाद् दिवम् ।१०
राजर्षिब्राह्मणैः कार्य्यं देवविप्रादिपूजनम् ।
अश्वमेधेदि यष्टव्यं महापातनाशनम् ।११

उत्तमैः सह साङ्गत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम् ।
अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ।१२
परदार परार्थं परिहासं परस्त्रिया ।
परवेश्मनि वासञ्च न कुर्वीत कदाचन ।१३
परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यस्तिंहि परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ।१४

काल में ही वीर्य चरण करता है और काल में ही गर्भ की वृद्धि होती है । काल सृष्टि का जनन किया करता है और फिर सृष्टि का संहार भी काल ही कर देता है ।८। यह काल बहुत ही सूक्ष्म गति वाला है और नित्य ही दो प्रकार से प्रतीत हुआ करता है, एक इसका स्थूल संग्रह होता है और दूसरा सूक्ष्म अन्तर होता है ।९। देव गुरु वृहस्पति ने सुरेन्द्र को इस नीति के सार को बतलाया था जिससे इन्द्र सर्वज्ञ हो गया था और समस्त दैत्यों का हनन करके उसने दिवलोक की प्राप्ति की थी ।१०। राजर्षि और ब्राह्मणों के द्वारा देवों तथा विप्रादि का पूजन करना चाहिए । अश्वमेघ का यजन करना चाहिए उत्तम पुरुषों के साथ संगति और पन्डित पुरुषों के साथ सत्कथा तथा जो लोभी अधिक न हों उनके साथ मित्रता करते हुए पुरुष को दुःख नहीं होता । पराई स्त्री, पराया धन, तथा पराए घर में निवास कभी नहीं करना चाहिए । पर पुरुष भी हित सम्पादन करने वाला है और बन्धु भी परम अहित करने वाला पराया बन जाया करता है जिस तरह देह में ही जन्म लेने वाली व्याधि अहित होती है और जंगल में उत्पन्न बूटी औषध का काम किया करती है ।११-१४।

स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ।१५
स भृत्यो यो विधेयस्तु तद्बीजं यत् प्ररोहति ।
सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यस्तु जीवति ।१६

स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य स जीवति ।
गुणधर्मविहीनो यो निष्फलं तस्य जीवनम् ।१७
सा भार्य्या या गृहे दक्षा सा भार्य्या या प्रियंवदा ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ।१८
हित स्नाता सुगन्धा च नित्यञ्च प्रियवादिनी ।
अल्पभक्ताल्पभाषिणी सततं मङ्गलैर्युता ।१६
सततं धर्मविपुला सततं च पतिप्रिया ।
सततं प्रियवक्त्रीं च सततं ऋतुकामिनी ।२०
एतदादिक्रियायुक्ता सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी ।
यस्येदृशा भवेद्भार्या देवेन्द्रो न स मानुषः ।२१

हित चिन्तक बन्धु, पोषणकर्ता पिता, विश्वासी मित्र तथा जीविका उपार्जन जहाँ हो देश है ।१६। वह भृत्य है जो विधेय अर्थात् अज्ञानकारी हो और वही बीज है जो प्ररोहण किया करता है । वही भार्या है जो प्रिय भाषण किया करती है वही पुत्र है जो जीवित रहता है । ।१६। वही पुरुष वास्तव में जीवित रहा करता है जिसमें गुण विद्यमान होते हैं और जिसमें धर्म की भावना रहा करती है । जिसमें न कोई अच्छे गुण भी है और न धर्म ही है उसका जीवित रहना भी इस संसार में निष्फल ही हुआ करता है ।१७। भार्या वस्तुतः वही है जो गृह-कार्यों में दक्ष होती है और सर्वदा प्रिय भाषण करने वाली होती है तथा अपने पति को अपने प्राणों के समान समझती है और पतिव्रत धर्म का पूर्णतया पालन किया करती है ।१८। हित करने वाली-नित्य स्नान करने वाली-सुगन्धित पदार्थों से समन्वित और नित्य ही प्रिय बोलने वाली, अल्प वक्ता, स्वल्प अर्थात् मित भाषण करने वाली तथा निरन्तर मांगलिक पदार्थों से संयुक्त रहने वाली—अनवरत गहुत-सा धर्म का आचरण करने वाली तथा बराबर अपने पति की प्यारी सर्वदा प्रिय एवं मधुर भाषण करने वाली बराबर

और समस्त प्रकार के सौभाग्यों का वर्द्धन करने वाली जिस मानवकी ऐसी भार्या हो वह साक्षात् देवेन्द्र ही है मनुष्य उसे कभी भी नहीं समझना चाहिए।१९-२०।

यस्य भार्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया।
उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा।२२
यस्य भार्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकांक्षिणी।
कुक्रियात्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा।२३
यस्यभार्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी।
अल्पेऽल्पेन तु संतुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया।२४
दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
संसर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।२५
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्।२६
व्याली कण्ठप्रदेशादपि च फणभृतो भीषणा या च रौद्री।
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसंध्याकुला व्याघ्रकल्पा।
क्रोधे चैवोग्रवक्त्र स्फुरदनलशिखा काकजिह्वा कराला।
सेव्या न स्त्री विदग्धा परपरगमना भ्रान्तचित्ताविरक्ता।२७
भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदृष्टे व्याधौ चिकित्साविनिर्वर्त्तिते च।
देहे च वाल्यादिवयोऽन्विते च कालामृतोऽसौ लभते धृतिं कः।२८

जिसकी भार्या विरूप नेत्रोंवाली कश्मला और कलहसे प्यार करने वाली और जिसके मुखमें उत्तरोत्तर वाद-विवाद बना रहता हो वह भार्या मूर्तिमती जरा (वृद्धता) है और जरा जरा नहीं है।२२। जिसकी भार्या किसी अन्य पुरुष में आश्रित रहने वाली और सदा दूसरे के घर की ही आकांक्षा रखती है—जिसकी बुरी क्रियाएँ हों और लज्जा को त्याग देने वाली हो वह भार्या हीं वस्तुतः जरा है अर्थात् वृद्धत्व देने वाली होती है और जो दरअसल जरा है उसे जरा नहीं कहना चाहिए।२३। जिसकी भार्या गुणों की ज्ञाता हो और अपने स्वामी की अल्प में

अल्प में अल्प से ही सन्तोष करने वाली हो वही वास्तव में प्रिया है और प्रिया प्रिया नहीं है ।२४। दुष्टा भार्या अर्थात् अनेक दोषों से भरी हुई स्त्री-शठता करने वाला मित्र-आदेश देने पर ही उत्तर देने वाला भृत्य और जिसमें सदा सर्प का निवास रहता हो ऐसे घर में रहना ये सब बातें निःसन्देह मृत्यु ही के समान होती है ।२५। दुष्टजनों का साथ छोड़ दो और सदा साधु पुरुषों का समागम करो । रातदिन पुण्य कर्म करो तथा नित्य ही सांसारिक समस्त पदार्थों की अनित्यता का ध्यान रक्खो ।२६। कण्ठ प्रदेश से भी व्याली से भीषण और जो रौद्री कृष्णा-व्याकुल अंगों वाली-रुधिर जैसे नेत्रों से सव्याकुल-व्याघ्र के तुल्य क्रोध में उग्र मुख वाली स्फुरदनल शिखा वाली-काक के समान जिह्वा वाली कराल स्त्री चाहे त्रिदग्धाही क्यों न हो जो परपुरमें गमन करने वाली भ्रान्त चित्त से युक्त और रहने वाली विरक्त हो उसका कभी सेवन नहीं करे ।२७। घर में सर्प के आँखों से देख लेने पर और व्याधि के चिकित्सा मे विनिर्वतित होने पर वाल्यादिवय से अन्तिम देहमें काला-मृत कौन पुरुष है जो धैर्य धारण करता है ? ।२८।

६५-नीतिसार कथन (२)

आपदर्थे धनं रक्षेद दारान् रक्षेद्धनै रपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ।१
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्राम जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।२
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे ।
नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्त्तते ।३
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।
त्यजेद् देशमसद्वृतं स्थानं सोपद्रवं त्यजेत् ।४
त्यजेत् कृपणराजानं मित्रं मायामयं त्यजेत् ।५

अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन पुंसाज्ञानेन किं वहु शठांकुलसङ्कुलेन
रूपेणकिं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किव्यसनालराङ्मुखेन।६
अदृष्टपूर्वा वहवः सहाया सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्राः।
अर्थेविहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः।७

सूतजी ने कहा—इस संसार में मनुष्य को आपत्ति काल यदि कभी आ जावे उनके लिए धन की रक्षा करे। तात्पर्य यह है मुसीबत के समय काम देंने को धन अवश्य ही बचा कर सुरक्षित रक्खे। धन के द्वारा स्त्रियों की रक्षा करे अर्थात् दारा की रक्षा करना अधिक महत्व वाला है धन और दारा—इन दोनों से सदा अपनी रक्षा करे। इन दोनों से प्रमुख स्वाप्म संरक्षण होता है।१। यदि किसी एक का विनाश होकर पूरे कुल का संरक्षण होता हो तो उस सम्पूर्ण कुल की सुरक्षा के लिए एक का त्याग कर देना चाहिए और पूरे ग्राम की रक्षा के लिए कुल को त्याग देवे। जनपद की रक्षा हो तो एक ग्राम का कुछ भी ध्यान न करे। इस प्रकार से बड़े की सुरक्षा में छोटे का त्याग बतायर गया है किन्तु अपनी आत्मा का महत्व सबसे अधिक है आत्म-रक्षा के तो सम्पूर्ण पृथ्वी को भी त्याग देना चाहिए।२। दुष्ट चरितों वाले घर से तो नरक का निवास ही अच्छा है।३। बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलता है तो एक से स्थित रहा करता हैं। जब तक अगले दूसरे स्थान को भली-भाँति परीक्षण कर देख न लेवे तब तक पहिले स्थान को नही छोड़े। असत् वृत्त (चरित्र) वाले देश का त्याग कर देवे और जिस जगह के निवास करनेमें उपद्रव हों उसे भी त्याग देवे। जो कंजूस स्वभाव वाला राजा हो उसे छोड़ देवे तथा माया से परि-पूर्ण रहने वाले मित्र का त्याग कर देवे।५। उस धन से क्या लाभ है जो किसी कंजूस के हाथों में पहुंच गया हो वह ज्ञान भी व्यर्थ ही होता है जो बहुत-से शठों से आकुल एवं सकुल रहता हो।। ऐसा रूप लावण्य भी किस प्रयोजन का है जिस सौंदर्यके साथ गुण और पराक्रम

बिल्कुल भी न हो। ऐसा मित्र भी संसार में वेकार ही हैं जो बिपत्ति के समय आने पर विमुख हो जाता हो।६। इस प्रकार से किसीको भी सहायता करने वाले बहुत लोग पहिले नहीं देखे जाते हैं। तात्पर्य यह है कि विरला ही कोई सहायक होता है। प्रायः सभी योग पदासीन पुरुष के ही मित्र हुआ करते हैं। जो धन से रहित अर्थात गरीब हो और किसी उच्च पद से भी च्युत हो ऐसे पुरुष के तो दूनिया में स्वज भी शत्रु बन जाते हैं।७।

आपत्सु मित्रं जानीयात् रणे शूरं रुहः शुचिम्।
भार्याञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्।८
वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः।
सर्वः कार्यवशाज्जनोहिरमते कस्यास्ति को बल्लभः।९
लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाध्यमंजलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्या च यथातथ्येन पण्डितम्।१०
सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः।
इतराः खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिता।११
उत्तम प्रणिपातेन शठं भेदेन योजयेत्।
नीचं स्वल्पप्रदानेन समं तुल्यपराक्रमैः।१२
यस्य यस्य हि यो भावस्तस्य तस्य हि तद्वदम्।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत्।१३
नदीनांच नखीनांच शृगिणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासी नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।१४

सच्चे मित्र की जाँच आपत्ति के समय अपने पर ही होती है। महाविपत्ति कालमें ही मित्र की परीक्षा करें। युद्ध का समय उपस्थित होने पर ही सच्चे शूर का ज्ञान प्राप्त होता है। एकान्त में शुचिता का ज्ञान करे तथा धन-दौलतके वैभव के नष्ट हो जाने पर भार्या की वास्त-

बिकता ज्ञात होती है और दुर्भिक्ष के समय में अतिथि-प्रियता जानी जाती है ।८। वृक्ष के फल क्षीण होने पर पक्षीगण छोड़ जाते हैं । सरोवर के सूख जाने पर पक्षी छोड़ जाते हैं । धनहीनको गणिका प्रेम न कर उसे त्याग देती है, अन्यायी राजा को मन्त्रिगण त्याग जाते हैं । बासी और मलिन फूल को भौंरा त्याग देता है । दावानल से दग्ध जङ्गल को मृग त्याग देते हैं । सभी प्राणी कार्यवश होकर ही रमण करते हैं ।९। जो लालची हो उसे अर्थ से अपने वश में करना चाहिए । जो श्लाघनीय गुणोंसे समन्वित हो उसे हाथ जोड़कर सन्तुष्ट कर लेवे । जो मूर्ख हो उसको उसके से ही आचार और अभिलाषा के अनुवर्त्तनसे सन्तुष्ट करे । जो पण्डित पुरुष हों उसके समक्ष में यथातथ कर सन्तुष्ट करे ।१०। सद्भावना से देवता सत्पुरुष और द्विज सन्तुष्ट हुआ करतेहैं । इतर लोग खाना-पीना देने से सन्तुष्ट होते हैं किन्तु पण्डित लोग मान देने से ही सन्तुष्ट एवं वशीभूत हो जाया करते हैं ।११। जो उत्तम है उसको प्रणिपात के द्वारा और शठ पुरुष को भेदके द्वारा योजित करना चाहिए । जो नीच हो उसें कुछ थोड़ा-बहुत देकर तथा समान को तुल्य पराक्रम के द्वारा योजित करे ।१२। जिस-जिस का जो भाव हो उसी भावको बोलते हुए उसके अन्तः स्थलमें भली-भाँति प्रवेश करके मेधावी पुरुष शीघ्र ही उसे अपने वशीभूत कर लिया करता है ।१३। नदियों, नख रखने वाले जन्तुओं, जिनके सींग हो उनका हाथोंमें हथियार रखने वालों, स्त्रियों और राजकुल के लोगों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए ।१४।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वचनंचापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ।१५

हीनदुर्जनसंसर्गमत्यन्तविरहादरः ।
स्नेहोऽन्यगेहवासश्च नरीसच्छीलनाशनम् ।१६

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीड़ितः ।
केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तरा ।१७
कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः ।
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं ।
को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेणः यातः पुमान् ।१८
सुहृत्स्वजनबन्धुर्न बुद्धिर्यस्य न चात्मानिं ।
यस्मिन् कर्मणि सिद्धेऽपि न दृश्येत फलोदयः ।
विपत्तौ च महद् दुःखं तत् बुधः कथमाचरेत् ।१९
यस्मिन् देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ।२०
धनस्य यस्य राजभ्यो भयं नास्ति न चोरतः ।
मृतं च यन्न मुच्येत समर्जयस्व तद्धनम् ।२१

किसी भी कारण से गृह विनाश, दुश्चरित्र, सन्तोष तथा अपने अपमान को बुद्धिमान किसीको प्रकट नहीं करते ।११। हीन तथा दुर्जन पुरुष के साथ संसर्ग, अत्यन्त विरह आदर, स्नेह के अन्य घरमें निवास-नारी सच्छील का नाश-इन दोषों में किस का कुल है कि जिसमें कोई भी दोष न हो—कौन ऐसा व्यक्ति है जो व्याधि से पीड़ित न हुआ हो—किसने व्यसन की प्राप्ति नहीं की है कौन-२ ऐसा है जिसके पास निरन्तर श्री रही हो ? अर्थात् कोई भी नहीं है ।१६-१७। ऐसा पुरुष है जो धन पाकर गर्व वाला न हुआ है ? इस भूमण्डल में ऐसा कौन है जिसको आपत्तियों ने न घेरा हो ! स्त्रियों ने किसके मन को खण्डित नहीं किया है—राजाओं का प्रिय कौन होता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है । ऐसा कौन है जो इस महाबली काल से गोचर के अन्तर्गत न हुआ है ? कौन-सा याचक गौरव प्राप्त करता है ? कौन पुमान् ऐसा है जो दुर्जनों की बांगुरा में निपतित होकर अर्थात् दुष्टों के साथमें रहकर

क्षेम को प्राप्त हुआ हो—अर्थात् कोई भी नहीं है।८। सुहृत्-स्वजन और जिसका बन्धु नहीं है और जिसके आत्मा में बुद्धि नहीं है जिस कर्म के सिद्ध होने पर भी कोई फलोदय नहीं हैं तथा विहत्ति में महान् दूःख हैं उसे बुध पुरुष कैसे करेगा।१९। जिस देश में कोई भी सम्मान नहीं होता है—किसी प्रकार की प्रीति है और कोई न बान्धव ही हैं। जहाँ न किसी विद्या का ही आगम है उस देश का परित्याग ही कर देना चाहिए।२०। जिस धन का राजाओं के द्वारा लिए जाने का कोई भय नहीं है और न चोरों से डर है तथा मृतक को भी नहीं छोड़ता है उस धन का अर्जन करो।२१।

यदर्जितं प्राणहरैः परिश्रमैः मृतस्य तं वै विभजन्ति रिक्थिनः।
कृतंच यद् दुष्कृतमर्थं लिप्सया तेदेव दोषापहतस्य हेतुकम्।२२

संचितं निहितं द्रव्यं परामृष्य मुहुर्मुहुः।
आखोरिव कदर्यस्य घनं दुःखाय केवलम्।२३
नग्ना व्यसनिनो रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः।
दर्शयन्तीह लोकस्य अदातुः फलमीदृशम्।२४
शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जनाः।
अवस्थेय मदानस्य माभूदेवं भवानपि।२५
सचितं क्रतुशतैर्न युज्यते याचितं गुणवन्ते न दीयते।
तत् कदर्यं परिरक्षितं चोपपार्थिवगृहे प्रयुज्यते।२६
न देवेभ्यो विप्रेभ्यो वन्धुभ्यो नैव चात्मनि।
कदर्यस्य धनम् याति अग्नितस्कररजासु।२७
अतिक्लेशेन येऽप्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च।
अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवंस्ते कदाचन।२८

जो प्राणों का हनन करने वाले घोर तथा महाघोर परिश्रमों के द्वारा अर्जित किया गया है और मृत्यु के पश्चात् दायाद लोग जो भी वारिश हो उसका परस्पर में विभाग कर लिया करते हैं। ऐसे अर्थ के प्राप्त करने की चाह से जो दूष्कृत किया है, वह ही दोषों से अपहृत

प्राणी का योतुक (विवाह का धन) होता है ।२२। सचित किया हुआ और निहित (दाव ढक रक्खा हुआ) तथा बारम्बार परामृत्म द्रव्य आखू की तरह कदर्य्य का धन केवल दु:ख के लिये होता है ।२३। जो इस संसार में नग्न रहा करते हैं, व्यसनों (दु:खों) से युक्त और हाथोंसे कपाल लेकर भिक्षा माँगने वाले पुरुष, यहाँ दान न करने वालेका ऐसा ही फल हुआ करता है ।२४। इस प्रकार के कृपण अर्थात् अभाव वाले पुरुष हमको दान दो—यह कहते हुए याचना करते हैं और सबको शिक्षा भी दे रहे हैं कि दान न देने के कारण हमारी जैसी यह दशा हुआ करती है । आप लोग ऐसे मत होना ।२५। जो धन जोड़-जोड़कर इकट्ठा किया है उसका सैकड़ों क्रतुओं में यदि उपभोग न किया जाता है तो वह धन बुरा धन है जिसको खूब अच्छी तरह रक्षा करके रक्खा है और उसका प्रयोग राजा या चोरों के घर में किया जाता है जो कदर्य्य (नीच) पुरुष है उसके धन का उपयोग देवों के लिए, विप्रों के लिए बन्धुओं के लिए और अपने लिए नहीं होता है । ऐसे जो अर्थहै जिनका अत्यन्त क्लेश के द्वारा धर्म के अतिक्रमण करके अथवा शत्रूको प्रणिपात करके प्राप्त करता है वे आपको कभी भी न होवें ।२६-२८।

विद्याघातो ह्यनभ्यास: श्रीणां घात: कुचैलता ।
व्याधीनां भोजनाज्जीर्ण: शत्रोर्घात: प्रपंचता ।२९

तस्करस्य वधो दण्ड: कुमित्रस्याल्पभाषणम् ।
पृथक्शय्या तु नारीणां ब्राह्मणस्यानिमन्त्रणम् ।३०

दुर्जना: शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहा: स्त्रिय: ।
ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ।३१

जानीयात्प्रेषणं भृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे ।
मित्रतापदि काले च भार्याञ्च विभवक्षये ।३२

स्त्रीणां द्विगुण आहारः प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा ।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ।३३
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन स्त्रियं जयेत् ।
न चेन्धनैर्जयेद्वह्निं न मद्येनं वृषां जयेत् ।३४
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यै र्गन्धविलेपनैः ।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते ।३५

पढ़ी हुई विद्या का घात अभ्यास न करने से होता है । बुरे वस्त्रों के धारण करने से श्री का, किए हुए भोजन के जीर्ण हो जाने से व्याधियों का तथा शत्रू का घात प्रपंचता होती है ।२९। तस्कर का वध दन्ड है कुमित्र का वध अल्प भाषण है-नारियों का दण्ड यही है कि उनको शय्या पृथक् कर देवे । ब्राह्मण का दण्ड उसको निमन्त्रण का न देना ही होता है ।३०। दुर्जन-शिल्पी-दास-दुहै-पटह और स्त्री ये ताड़ित होकर मार्दव (मुलायमी) को प्राप्त हुआ करते हैं ये सत्कार के पात्र नहीं होते हैं।३१। कहीं कार्य करने के लिए भेजने पर भृत्यों के कौशल एवं इनकी कार्य क्षमता का ज्ञान होता है । जब कोई दूःख प्राप्त हो तो वान्धवों की बन्धु भावना का सही ज्ञान हो जाता है । आपत्ति के समय में मित्र की मित्रता का ठीक ज्ञान होता है और वैभव के कमहो जाने पर भार्या की जाँच होती है ।३७। पुरुषों से स्त्रियों का दूगुना आहार होता है और प्रज्ञा चौगुनी होती हैं—व्यवसाय छै गुना होता है तथा काम आठ गुना होता है ।३३। स्वप्न के द्वारा निद्रा पर, काम से स्त्री पर, वह्नि पर अग्नि डालकर और मद्य पान करके तृषाकी कभी विजित करने का प्रयास नहीं करे ।३४। आमिष भोजन, स्निग्ध पदार्थ मद्य-गन्ध युक्त विलेपन-कन्दर वस्त्र-मन को रमण कराने वाले माल्य इनसे स्त्रियों की काम-वासना विजृम्भित (उत्तेजित) होती है ।३५।

ब्रह्मचर्येऽपि वक्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम् ।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ।३६

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ।
योनि क्लिद्यति नारीणां सत्यं हि हि शौनकः ।३७
नद्यश्च नार्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च ।
तौयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कुलानि कुलानिनार्यः।३८
नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम् ।
नारीणांच नदीनांच स्वच्छन्दा ललिता गतिः ।३९
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसा वामलोचना ।४०
न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम् ।
सुखानांच सुतानांच जीवितस्य वरस्य च ।४१
राजन न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन ।
न तपन्डतस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षु नृपदर्शनेन ।४२

ब्रह्मचर्यमें भी प्राप्ति कामदेव की चेष्टाये कहने के योग्य हैं । किसी रमणीक पुरुष को जब स्त्री देख लेती है तो उसको योनि प्राक्लन्न हो जाया करती है ।३६। सुन्दर वेशधारी पुरुष को देखकर वह चाहे भाई हो या अपना पूत्र ही क्यों न हो हे शौनक ! यह मैं बिल्कुल सत्य—२ वताता हूँ कि नारियों को योनि क्लिद्यमान होने लगती हैं ।३७।नदियों का और नारियो का समान ही स्वभाव हुआ करता है । ये स्वतन्त्रता के भाव में गमनादि करने वाली होती हैं । नदियाँ जलों के द्वारा और नारियाँ दोषों के द्वारा कूल (तट) और कुल (वंश) का निरातन किया करती हैं ।३८। नदी तो तट को गिरा देती है और नारी अपने कुलको पतित कर देती है । नदी और नारी को स्वच्छन्द ललित गति हुआ काष्ठ उसमें डालते रहें महोदधि सागर नदियों के पात से कभी तृप्त नहीं होताहै चाहे जितनी नदियाँ उसमें बराबर अपनापात करती रहें । यमराज कभी भी प्राणियों के अन्त से तृप्त नही हुआ करते है चाहे असंख्यों भूत प्राणी मृत्यु के ग्रास बनकर वहाँ उनके पास पहुँचते रहा

करें। इस भाँति वामलोचना नारियाँ पुरुषों के अभिगमन करने से कभी तृप्त नहीं हुआ करती हैं।४०। शिष्ट, इष्ट, प्रियवादी और सुख तथा सुत जीवित एवं धन इनसे कभी भी तृप्ति नहीं होती है।३१। राजा कभी धन के संचय से तृप्त एवं सन्तुष्ट नहीं होता है सागर कभी जल से तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ हैं। यद्यपि उसमें असीमित जल रहा करता हैं। पंडित भाषण से कभी तृप्त नहीं हुआ करते हैं और नेत्र के दर्शन करने से कभी तृप्ति का लाभ नहीं करते हैं।४२।

स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतनाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्।४३
मनोऽनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः स्वलंकृताः।
वासः प्रासादपृष्ठे च स्वर्गः स्याच्छुकर्मणा।४४
न दानेन न मानेन नार्मवेन न सेवया।
न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः।४५
शनैर्विद्या शनैरर्था शनैः पर्वतमारुहत्।
शनैः कामञ्च धर्मञ्च पञ्चैतानि शनैः शनैः।४६
शाश्वतं देवपूजादि विप्रदानञ्च शाश्वतम्।
शाश्वतं सगुणा विद्या सुहृन्मित्रञ्च शाश्वतम्।४७
ये वालभावान्न पठन्ति विद्यां ये यौवनस्या ह्यधमात्मदाराः।
ते शोचनीया इह जीवलोके मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।४८
पठने भोजने चिन्तां न कुर्याच्छास्त्रसेवकः।
सुदूरमपि विद्यार्थी ब्रजेद् गरुडवेगवान्।४९

जिनका निर्वाह अपने कर्म और धर्म के द्वारा उपार्जित धन से होता है, जो शास्त्रों में तथा अपनी पत्नी में सदाचारादि रखने वालेहैं, जिनका समस्त इन्द्रियों पर पूर्णतया नियन्त्रणहैं और जो सर्वदा अतिथियों से प्रीति रखकर उनका सत्कार किया करते हैं, उनका मोक्ष गृह में रहते हुए भी जाता है। मन के अनुकूल प्रमदायें लावण्य से

युक्त तथा वासोऽलङ्कारों से भूषित हों,प्रासाद के ऊपर भाग में निवास हो तो शुभ कर्मो से फलस्वरूप यह भी साक्षात् स्वर्ग हैं ।४३। दान-मान-आर्जव (सरलता) सेवा शास्त्र और शस्त्र से सर्बथा स्त्रियाँ वश में नहीं रहा करती है क्योंकि ये बड़ी विषम होती है ।४५। विद्या-अर्थ-पर्वतारोहण-काम और धर्म ये पाँच ऐसे काम हैं जो शनैः शनैः ही हुआ करते हैं । इन्हें तुरन्त कोई भी नहीं कर सकता है ।४६। देवताओं का पूजन आदि शाश्वत है, विप्रों को दान देना भी शाश्वत कर्म होता है । गुणो से युक्त विद्या-सुभृत् मित्र भी शाश्वत हैं ।४७। जो बाल्या-वस्था में विद्या का अध्ययन नहीं करते हैं और जो यौवन की अवस्था में पहुँच कर धन और अपनी दाराके अभाव वाले हैं वे इस जीव लोक सेचित-करने के योग्य पुरुष होते हैं ।४८। जो शास्त्रों की सेबा करने वाला है पठन और भोजन के विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिए । विद्या के अर्थी को गरुड़ के समान वेग वाला होकर बहुत दूर देश में चले जाना चाहिए ।४९।

ये बालभावे न पठन्ति विद्यां कामातुरा यौवननष्टवित्ता ।
ते बुद्धकाले परिभूयमानाः दंदह्यमानाः शिशिरे यथाब्जम् ।५०
तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।५१
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन तु ।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गत मनः ।५२
अनुक्तमप्युहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञान फला हि बुद्धयः ।
उदीरितार्थःपशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्चवहन्तिदर्शितम्।५३
अर्थाद् भ्रष्टस्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्सत्याद् भ्रष्टो रौरवं वै ब्रजेच्च ।
योगाद्भ्रष्टा सत्यधृति च गच्छेत् राज्याद्भ्रष्टो मृगयार्थं ब्रजेच्च।
।५४

जो बाल्यकाल में पढ़ते नहीं और कामातुर होते हुए यौवन में वित्त को नष्ट करते हैं वे वृद्धावस्था में शिशिर ऋतु में कमलिनी की

भाँति संदृश्यमान होते हैं ।५०। तर्क की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं है । श्रुतियाँ भी विशेष रूप वाली भिन्न-२ हैं । ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जिसका मत भिन्न न हो अर्थात् सभी ऋषियों के मतों में विभिन्नता है । ऐसी दशा में धर्म का तत्व गुहा में छिपा हुआ हो अर्थात क्या धर्म का स्वरूप है और कौन सा धर्म है यह जान लेना बहुत ही कठिन है । अतएव महान पुरुषों ने जो मार्ग अपनाया है और वे जिस गतिविधि से करते गये हैं वही मार्ग हमको भी अपनाना चाहिए ।५१। आकृति-इङ्गित मति चेष्टा-भाषण-नेत्र और मुख के विकारों से अन्तर्गत मन लक्षित होता है ।५२। पण्डित पुरुष बिना कुछ कहने पर भी तात्पर्यकी समझ किया करते हैं । अर्थात् मुख से कही गई है उसे तो एक पशु भी ग्रहण कर लिया करता है जिसमें कुछ भी बुद्धि नहीं होती है । अश्व और हाथी भी देशित आदेश का वहन किया करते हैं ।५२। जो अर्थ से भ्रष्ट हो जाता है वह तीर्थ यात्रा को चला जावे—सत्य से जो भ्रष्ट हो उसे रौरव नरक में जाना होता है—योग से भ्रष्ट सत्य-धृति को ग्रहण करे और राज्य से भ्रष्ट मृगया करने जाता है ।५४।

६६—नीतिसार कथन (३)

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ।१
वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं तथा कापुरुषस्य हस्ते ।
न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ।२
भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरा स्त्रियाः ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ।३
अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तिफलम् शुभम् ।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलम् धनम् ।४

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
सुरूपां सुनितम्बांवानाकुलीनां कदाचन ।५

अर्थेवापि हि किं तेन यस्यानर्थे तु सङ्गतिः ।
कोऽसि नाम शिखाजातं पन्नगस्भ मणि हरेत् ।६

हविर्दु ष्टकुलाद् ग्राह्यं वलादपि सुभाषितम् ।
अमेध्यात्कांचनं ग्राह्यं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।७

श्री सूतजी ने कहा जो ध्रुव अर्थात् परम निश्चित पदार्थों का विषयों का त्याग करके अध्रुवों का सेवन करता है उस पुरुष के त्याग कर देने से ध्रुवों को नष्ट हो जाते हैं और जो अध्रुव हैं वे तो स्वयं ही नष्ट प्रायः होते हैं ।१। बोलने के अङ्ग से या शक्ति से ही पुरुष की विद्या उसी प्रकार की होती है जैसे किसी कायर पुरुष के हाथ में दिया हुआ शस्त्र बेकार होताहै । जिस तरह देखनेके योग्य द्वारा किसी नेत्रान्ध की तुष्टि नहीं करती है । भोजन से योग्य पदार्थों का होना—उन भोज्य पदार्थों के भोजन करने की शक्ति का रहना अर्थात् खाने तथा पाचन की शक्ति का पाना, रमणी के साथ रति क्रिया करने की शक्ति, श्रेष्ठ वरांगना का पाना, वैभव का पाना और दान करने की शक्ति का हृदय विद्यमान रहना इन छैः बातों का इस संसार में प्राप्त करना किसी साधारण और थोड़े तप का फल नहीं है अर्थात् ये सब बातें बहुत बड़ी तपश्चर्या से ही प्राप्त हुआ करती हैं । वेदों का फल अग्निहोत्र होता है । शुभ का फल शील वृत्ति का होना होता है । दारा का फल यही होता है कि वह रति क्रीड़ामें पुत्र समुत्पन्न करे और धन का फल होता है कि दान दे और उससे पूर्ण उपयोग करे ।५। प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि ऐसी कन्या के साथ विवाह-सम्बन्ध करे जो किसी अच्छे कुल में उत्पन्न हुई हो चाहे यह विशेष रूप-लावण्य से हीन भी हों । जो अकुलीना हो वह चाहे कितनी सुन्दर रूपवती और सुन्दर नतिम्बों वाली ही उसके साथ कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए।५।

उस अर्थ से भी क्या लाभ है जिसकी संगति अनर्थमें होती है। किसकी शक्ति है कि सर्प की शिखा से समुत्पन्न मणि को ग्रहण करे।६। दुष्ट कुल से भी हवि का ग्रहण कर लेना चाहिए और बालक के मुख से निकला हुआ भी सुभाषित को प्राप्त कर लेवे अपवित्र स्थान में भी गिरे हुएं सुवर्ण को ले लेवे तथा स्त्री रूपी रत्न को दूष्कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिए।७।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं अमेध्यादपि कांचनम्।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रींरत्न दुष्कुलादपि।८
न राज्ञा सह मित्रभाव: न सर्पो र्निविष: क्वचित्।
न कुलं निर्मलं तत्र स्त्रीरत्नं यत्र जायते।६
कुले नियोजयेद्भक्ति पुत्रं विद्यासु योजयेत्।
व्यसने योजयेच्छत्रुमिष्ट धर्मे नियोजयेत्।१०
स्थानेष्वेव प्रयोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च।
न हि चूडामणि: पादे शोभते वै कदाचन।११
चूडामणि: समुद्रोऽग्निर्घन्टा चाखण्डमम्बर।
अथवा पृथ्वीपालो मूर्ध्नि पादे प्रमादत:।१२
कुसुमस्तबकस्येव द्वै गती तु मनस्विन:।
मूर्ध्नि वा शर्वलोकानां शीर्षत: पतितो वने।१३
कर्णभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्तत्पदे प्रतिबध्यत।
किं मणिर्न हि शोभते ततो भवति योजयितुर्वंचनीयता।१४

विष से भी अमृत के तत्व को प्राप्त कर लेने चाहिए और अमेध्य स्थान से भी सुवर्ण को ग्रहण करने पर नीच पुरुष से भी उत्तम विद्या और द्रष्ट कूल से भी स्त्री रत्न को ले लेवे।८। राजा के साथ मित्रता का भाव नहीं होता है—सर्प कहीं भी विष रहित नहीं हुआ करता है जिस कूलमें स्त्री रत्न समुत्पन्न हुआ है वह कभी भी निर्मल नहीं होता है।८। कूल को भक्ति में नियोजित अरे—पुत्र को विद्या में नियोजित करे—शत्रू को व्लसन में नियोजित करे और इष्ट को धर्म में नियोजित

करे ।१०। भृत्य और आभरणों को स्थानों में अर्थात् समुचित स्थानोंमें ही प्रयुक्त करना चाहिए । मस्तक पर धारण करने पर आभूषण कभी पाद में धारण करने पर शोभा नहीं देता है चूड़ामणि-समुद्र-अग्नि-घटा और अखण्ड अश्वर अथवा पृथिवी पाल मस्तक पर और पादक पर प्रमाद से ही हुआ करते हैं । पुष्पों के स्तवक (गुच्छ)की भाँति मनस्वी पूरुष को दो गति हुआ करती है या तो समस्त लोकों के मस्तक पर यह रहते हैं या शीर्य से पतित होकर वन में ही पतित हो जाते हैं । कान के भूषण से संग्रहण करने के योग्य मणि यदि पैर में बाँध दी जाती है तो क्या मणि वहाँ शोभा नहीं दिया करती है प्रत्युत वहाँ तो उसके योजित करने वालेकी ही वचनीयता (बुराई) होती है ।११-१४।

वाजिवारणलौहानां काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम् ।१५
कदर्थितस्यापि हि धैर्य्यवृत्तेर्न सर्वगुणप्रमापः ।
अधःखलनापि कृतस्य वह्नेर्नाधःशिखा याति कदाचिदेव।१६
न सदश्वः कशाघातं सिंहो न गजगर्जितम् ।
वीरो वा परनिर्दिष्टं न सहेद्भीमनिः स्वनम् ।१७
यदि वा विभवेर्हीनः प्रच्युतो वाशु दतान्नतु ।
खलजनसेवां काङ्क्षयेन्नैव नीचम् ।
न तृण मदनकार्ये सुक्षुधार्त्तोऽत्ति सिंहः पिवति ।
रुधिरसुणं प्रायशः कुजराणाम् ।१८
सकृद् दुष्टञ्च यो मित्रं पुनः सन्धातुमिच्छति ।
स मृत्युमेव गृहणीयाद् गर्भमश्वतरी यथा ।१९
शत्रोरपत्यानि प्रियवदानि नोपेक्षितव्यानि बुधैर्मनुष्यैः ।
शान्येब कालेषुविपत्कराणि विषस्य पात्राणिहिदारुणानि।२०
उपकारंगृहीतेनशत्रुणा शत्रु मुद्धरेत् ।
पादलग्नं करस्थेन कन्टकेनैव कन्टकम् ।२१

अश्व-धारण-लौह-काष्ठ-पाषाण-वस्त्र नारी पुरुष और तोय इनका अन्तर बहुत बड़ी अन्तर होता है ।१५। कदर्थित भी धैर्य वृत्ति वालेका समस्त गुणों का प्रमाप नहीं किया जा सकता है । खल के द्वारा नीचे की ओर की हुई अग्नि की भी शिखा नीचे को नहीं जाया करती है अच्छी जाति का घोड़ा कभी (चाबुक) का आघात सहन नहीं किया करता है और सिंह अपने समक्ष में हाथी की गर्जना नहीं सहा करता है अथवा वीर पुरुष शत्रु के द्वारा निर्दिष्ट भी ध्वनि की कभी नहीं सहता है । यदि भाग्यवश वैभव से रहित होकर शीघ्र ही प्रच्युत हो जावे तो भी स्वाभिमानी पुरुष कभी खलजन की सेवा करना और नीच के पास जाने की इच्छा नहीं किया करता है । अत्यन्त भूख से पीड़ित भी सिंह कभी खाने के कार्य में तृण को ग्रहण नहीं करता है वह प्रायः हाथियों के उष्ण रुधिर का ही पान करके क्षुधा को शान्त करता है जो एकबार दुष्ट मित्र के साथ संधान करने की इच्छा करता है वह अश्वतरी (खच्चरी) के गर्भ की भाँति मृत्यु को ही ग्रहण किया करता है । बुध मनुष्यों के द्वारा शत्रु की सन्तति जो प्रिय बोलने वाली है, कभी उपेक्षित नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय उपस्थित होने पर वही विपत्ति करने वाली और विष का दारुण पास हो जाया करती है । उपकार करने के द्वारा शत्रु को अपने काबू में करके फिर उसी के द्वारा अन्य शत्रु का उद्धार करना चाहिए । जिस तरह पैर में लगे हुए एक काँटे को निकाल कर दूर फेंकने के लिए अन्य काँटे को हाथ में लिया जाया करता है ।१६-२१।

अपकारपरे नित्यं चिन्तयेन्न कदाचन ।
स्वयमेव पतिष्यन्ति कूलजाता इव द्रुमाः ।२२
अनर्था ह्यर्थरूपाश्च अर्थाश्चानर्थरूपिणः ।
भवन्ति ते विनाशाय दैवायत्तस्य वै सदा ।२३
कार्य्यकालोचिताऽपाया मतिः सञ्चायते हि वै ।
सानुकुलेषु दैवेषु पुंसः सर्वत्र जायते ।२४

धनप्रयोगकार्य्येषु तथा विद्यागमेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सदैव हि ।२५
धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संस्थितिम् ।२६
लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं दानशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ।२७
कार्यविच्छ्रोत्रियो राजा नदी साधुश्च पञ्चमः ।
एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ।२८
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य किल शौनक ।
सर्वं सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कश्चित् ।२९
न सर्ववित्कश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि कश्चित्
ज्ञानेन नीचोत्तममध्यमेन मो यं विजानाति स तेन विद्वान् ।३०

पराये अपकार करनेमें कभी चिन्तन नहीं करना चाहिए, जो वृक्ष नदीके तट पर खड़े हुए हैं वे तो स्वयमेव ही एक दिन गिर जायेंगे।२२ भाग्य से उसमें उसके अर्थ अनर्थ स्वरूप और अनर्थ अर्थ स्वरूप विनाश के लिये सदा हो जाया करते हैं। जिस समय में दैव सानुकूल होता है तो उस वक्त कार्य-काल में समुचित पापों से रहित मति समुत्पन्न हो जाती है इसी प्रकार से दैव के अनुकूल होने पर सभी जगह पुरुष को हुआ करता है ।२३-२४। धन के प्रयोग करनेके कार्यों, विद्या के आगम कार्यों, आहार और व्यवहार में मनुष्य को सदा लज्जा के त्याग देने वाला रहना चाहिए ।२५। जिस स्थान पर धन सम्पन्न पुरुष-श्रोत्रिय-राजा नदी पर पाँचवा वैद्य नहीं हो वहाँ कभी भी नहीं रहना चाहिए ।२६। लोकयात्रा भय, लज्जा, दक्षिण और दान शीलता ये पाँच जहाँ पर विद्यमान नहीं हों वहाँ पर तो एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए ।२७। समय का ज्ञाता ज्योतिषी-श्रोत्रिय-राजा-नदी और साधु ये पाँच स्थानमें नहीं हो वहाँ वास नहीं करना चाहिए।२८। हे शौनक! एक ही में ज्ञान की निष्ठा नहीं होती है। सभी बातें सब पुरुष नहीं

जाना करते हैं क्योंकि सर्वज्ञ (सब कुछ का ज्ञाता) कहीं पर भी नहींहै इस भूलोक में कोई भी सबका ज्ञाता नहीं है। और इस भूमण्डल में अत्यन्त मूर्ख कोई नहीं होता है। जो जिसको नीच-मध्यम और उत्तम ज्ञान के द्वारा जानता है उसी से वह विद्वान् होता है।२९-३०।

६७-राजा और भृत्य लक्षण (१)

पार्थिवस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम्।
सर्वेण हि महीपालः सभ्यक् नित्यं परीक्षयेत्।१
राज्य पालयते नित्यं सत्यधर्मपरायणः।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्।२
पुष्पात्पुष्पं विचिन्वीयान्मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारकः।३
दोग्धारः क्षीरभुञ्जाना विकृत तन्न भुञ्जते।
परराष्ट्रं महीपालैर्भोक्तव्ये न दूषयेत्।४
नोधश्छिद्यात्तु यो धन्वाः क्षीरार्थी लभते पयः।
एवं राष्ट्र प्रयोगेण पीड्यमानं न वर्जयेत्।५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत्।
पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्त्तिरायुर्यशो बलम्।६
अभ्यर्च्य विष्णुं धर्मात्मा गोब्राह्मणहिते रतः।
प्रजाः पालयितुं शक्तः पार्थिवो विजितेन्द्रियः।७

श्री सूतजी ने कहा—जब मैं तुम्हारे सामने राजा के भृत्यों के लक्षणों के विषय में बतलाता हूँ। एक महीपाल को नित्य ही इन सबकी भली भाँति परीक्षा करनी चाहिए।१। सत्य और धर्म में तत्पर रहता हुआ राजा नित्य राज्य का पालन करता है शत्रुओं की सेनाओं के ऊपर विजय प्राप्त करके इस भूमि का धर्म पूर्वक पालन करे।२। कुसुम वाटिका से मालाकार एक-एक पुष्प को चुनता है और मूल का कभी अरण्य में अङ्गार कारक की भाँति उच्छेद नहीं करता है।३। दोग्धागण जो क्षीर का उपभोग करते है वे विकृतको कभी नहीं भोगते

कभी नहीं भोगते हैं। महीपालों के द्वारा भी पराए राष्ट्र का उपभोग करना चाहिए किन्तु कभी दूषित नहीं करना चाहिए। जो धेनु के ऊध (ऐन) को नहीं छेदता है वही क्षीर के चाहने वाला दूधको प्राप्त किया करता है। इसी प्रकार से पीड्यमान राष्ट्र को प्रयोग से वर्जित न करे ।५। इस कारण से अपने समस्त प्रयत्नों के द्वारा पृथिवी का अनुलेपन राजा को करना उचित है। पालन करने वाले की भूमि होती है और साथ ही कीर्ति-आयु-यश और बल भी हुआ करते हैं ।६। धर्मात्मा को भगवान् विष्णु की अर्चना करके गौ और ब्राह्मणों के हित-सम्पादन में सर्वदा रति रखने वाला होना चाहिए। अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला राजा ही प्रजा के पालन करने में समर्थ करता है ।७।

ऐश्वर्य्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिञ्चरेत्।
क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायतं धनादिकम् ।८
सत्यं मनोरमाः रामाः सत्यं रम्या विभूतयः।
किन्तु वै वनितापाङ्गभङ्गीलोलं हि जीवितम् ।९
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा अपि तर्पयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवम्भो
लोकौ न चात्महितमाचरतोह कश्चित् ।१०
निःशंकं किं मनुष्याः कुरुत परहिते युक्तमग्रे हितं
यन्मोदध्व कामिनीभिर्मदनशरहता मन्दमन्दातिदृष्ट्या।
मा पापं संकुरुध्वं द्विजहरिपरमः संभजध्वं सदैव
आयुर्निःशेषमेति स्खलित जलघटीभूतमृत्युच्छलेन ।११
मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।१२
एतदर्थं हि विप्रेन्द्रा राज्यमिच्छन्ति भूभृतः।
यदेषां सर्वकार्य्येषु वचो न प्रतिहन्यते ।१३

एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो धनसञ्चयम् ।
रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धन तद् द्विजातये ।१४

यह सांसारिक ऐश्वर्यो अध्रुव (अनिश्चित) हुआ करताहै । इसको प्राप्त करके राजा को धर्म में अपनी मति लगाना चाहिए । जो अपने अधीनता में रहने वाला धनादिक वैभव हैं वह जब समय आ जाता है तो एक ही क्षण में नष्ट हो जाता है ।८। ये मन को रमण करने वाले काम सत्य हैं और ये सुरम्य विभूतियाँ भी सत्य है किन्तु यह मानवीय जीवन वनिता के अपाङ्ग (कटाक्ष) की भङ्गी (वैचित्र्य) की भाँति अत्यन्त चंचल है ।९।यह जरा (वृद्धावस्था) एक व्याघ्रकी भाँति तर्जना करती हुई सामने स्थित रहा करती है और अनेक कार के रोग इस मानव शरीर में शत्रुओं की तरह समुत्पन्न जाया करते हैं । यह मनुष्य की आयु प्रतिक्षण फूटे हुए घड़े से जलकी भाँति परिस्रव करती चली जाया करती है किन्तु बड़ा ही आश्चर्य का विषय है कि लोगों में कोई भी अपने आत्मा के हित का कुछ भी सम्पादन नहीं किया करता।१०। हे मानवो ! आप लोग कैसे निःशङ्क की भाँति हो रहे हो ? दूसरो की भलाईका कार्य अवश्य करोऔर सबसे पहिले अपना आत्म-हित करना चाहिए । तुम लोग जो कामिनियों द्वारा कामदेव के वाणों से हत होते हुए मन्द से भी मन्द दृष्टि से मोद प्राप्त करते हो-वह पाप मत करो । सर्वदा ब्राह्मण और हरिभगवान्में परायण होतेहुए उनका भजन करो । यह आयु निःशेष हो रही है और जल घटी भूत मृत्यु के वहाने में स्वलित हो रही है ।११। सर्वदा पराई स्त्रियों को अपनी माता के समान देखना चाहिए और दूसरे के धनकी मिट्टी के ढेले के समान ही समझना चाहिए । समस्त प्राणिमात्र को अपनी माता के समान देखता है सच्चा पण्डित है ।१२। हे विप्रेन्द्रो ! राजा लोग इसीलिए राज्य की कामना करते हैं कि समस्त कार्यो में इनके वचन का प्रतिघात न होवे ।१३। इसीलिए राजा इस धन का संचय किया करते हैं कि अपनी रक्षा करके वह सम्पूर्ण धन द्विजातियों के हित में लगे ।१४।

ॐकारशब्दो विप्राणा मेन राष्ट्रं प्रवर्द्धते ।
स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिक्त न बध्यते ।१५
असमर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम् ।
किं पुनस्तु महीपालः पुत्रवत्पालः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ।१६
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमान्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ।१७
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
ते चार्थवन्तं पुन राश्रयन्ति अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ।१८
अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः ।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहानो न पश्यति ।१९
यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः ।
इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि ।२०
येनार्जितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवाः ।
जिता तेन सम भूपैश्चतुरब्धिर्बसुन्धरा ।२१

विप्रों का ओंकार शब्दहै जिसके द्वारा राष्ट्रकी प्रवृद्धि हुआ करती है । वह राजा योग से वृद्धिशील होता है और व्याधियों से भी कभी वद्ध नहीं होता है ।१५। असमर्थ मुनिगण ही द्रव्य का संचय किया करते हैं । राजा फिर किस लिए होता है जो कि अपनी प्रजा को पुत्र की भाँति पालन करता है ।१६। इस संसार में धन का बड़ा ही महत्व लोग माना करते हैं जिसके अधीन धन होताहै उसी के लोग मित्र हुआ करते हैं और जिसके अधीन धन है उसी के बाँधवगण साथी रहा करते हैं । जिनके पास धन है वह ही इस लोक में एक सम्भ्रान्त पुरुष माना जाता है और धनी पुरुष को महा पन्डित अर्थात् ज्ञाता समझा करते हैं ।१७। जो धन से विहीन हो जाते हैं उन्हें साँसारिक मित्र छोड़ दिया करते हैं मित्र ही नहीं धनहीन व्यक्तिको उसके पुत्र द्वारा और सुहृज्जन भी त्याग दिया करते हैं और वे सब फिर अर्थ सम्पन्न का आश्रय ले लिया करते हैं । इस लोक में एक मात्र अर्थ ही पुरुष का बन्धु और सभी कुछ है ।१८। जो शास्त्रीय ज्ञान से रहित हैं वह राजा वास्तव

में अन्धा ही होता है। अन्धा तो गुप्तचरों के द्वारा ही देखा करता है क्योंकि जो शास्त्र से हीन होता है वह कभी देखा नहीं करता है।१६। जिस राजा के पुत्र-भृत्य-मन्त्रिगण-पुरोहित और इन्द्रियां प्रस्तुत हैं उसका राज्य अधिक समय तक नहीं टिकता है।२०। जिसने पुत्र-भृत्य और बान्धव इन तीनों को अजितकर लिया है उसने समस्त राजाओं सहित चारों समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण बसुन्धरा को ही जीत लिया है अर्थात् वह समस्त भूमण्डल का अधीश्वर होता।२१।

लघयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च।
स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च।२२
मनस्तापं न कुर्वंति आपदं प्राप्य पार्थिवः।
समबुद्धिः प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समो भवेत्।२३
धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः।
प्रविश्य वदनं राहोः कि नोदेति पुनः शशी।२४
धिक्धिक्शरीरसुखलालितमानवेषु
मा खेदगेद्धनकृशं हि शरीरमेव।
सद्दारका ह्यभनपान्डुसुताः श्रुताः हि
दुःखं विहाय पुनरेव सुख प्रपन्नाः।२५
गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्यं च गणिकागणाः।
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रभेच्छ भूपतिः।२६
कारणेन बिना भृत्ये यस्तु कुप्यति पार्थिवः
स ग्रहणाति विषोन्माद कृष्णसर्पविसर्जितम्।२७
चापलाद्वारयेद् दृष्टि मिथ्यावाक्यञ्च बारयेत्।
मानवे श्रोत्रिये चैव भृत्यवर्गे सदैव हि।२८

जो हेतुओं से युक्त शास्त्रों के समस्त विषयों का लंघन किया करता है वह राजा इस लोक परलोक दोनों से नष्ट हो जाया करता है।२२। राजाको आपत्ति आ जानेपर मनमें ताप नहीं करनी चाहिए। राजा को तो सुख-दुःख में समान सम बुद्धि वाला और प्रसन्न आत्मा

वाला रहना चाहिए ।२३। धीर पुरुष कष्ट प्राप्त करके भी कभी विषाद से युक्त नहीं हुआ करते हैं। क्या चन्द्रमा राहु के मुख में प्रवेश करके भी पुनः समुदित नहीं हुआ करता है ? ।२४। शारीरिक सुख से लालित मनुष्यों के लिए पुनः पुनः धिक्कार है। धन से कृशशरीर पर कभी भी खेद मत करो। आपने भली भाँति श्रवण किया है कि पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि बिना धन वाले होकर वनों में रहे थे और फिर उस सम्पूर्ण दुःख का त्याग कर सुख से सम्पन्न हो गए थे ।२५। गणिकाओं का गण गन्धर्व विद्या और वाद्य शास्त्र देखता है और उनकी रक्षा करता है। राजा को लोक में धनु वेंद और अर्थशास्त्र की रक्षा करनी चाहिए ।२६। जो राजा विना ही किसी कारण के अपने भृत्य पर कुपित होता है वह कृष्ण सर्प द्वारा विसर्जित विषोन्माद को ग्रहण करता है ।२७। अपनी दृष्टि की चपलता से वारित करना चाहिए अर्थात् चंचल दृष्टि कभी न करे। मिथ्या से युक्त वाद्य को भी वारित करे मानव मात्र में श्रोत्रिय में और सदा ही भृत्य वर्ग में चपल-दृष्टि और मिथ्या वचन योग्य नहीं करे ।२८।

लीलां करोति यो राजा भृत्यस्वजनगर्वितः।
शासने सर्वदा क्षिप्रं रिपुभिः परिभूयते ।२९।
हुंकार भृकुटी नैव सदा कुर्वीत पार्थिवः।
विना दोषेण यो भृत्यानराजाऽधर्मेण शास्ति च ।
लीलासुखानि भोग्यानि त्यजेदिह महीपतिः ।३०
सुखप्रवृत्तैः साध्यन्ते शत्रवो विग्रहे स्थितैः ।३१
उद्योगः साहसं धैर्य्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
षड्विधेयस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शङ्कते ।३२
उद्योगेन कृते कार्य्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते ।
दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्त्तव्य पौरुषं सदा ।३३

जो राजा अपने जन और भृत्यों के समुदाय पर अत्यन्त गर्वित

लीला करता है अर्थात् उपभोगों की क्रीड़ा में फँसा रहता है वह राजा शीघ्र ही अपने शासन में सर्वदा शत्रुओं के द्वारा परिभूत हो जाया करता है ।२६। जो पार्थिव सदा हुङ्कार और भृकुटि टेड़ी नहीं करता हैं । दोष के बिना भृत्यों पर धर्म से शासन किया करता है । लीला के सुख और भोग वहाँ त्याग देने चाहिए ।२०। सुख-प्रवृत्त विग्रहमें स्थितों के द्वारा शत्रुगण साध्य हुआ करते हैं ।३३। उद्योग-साहस-धैर्य-बुद्धि-शक्ति-पराक्रम-इन छै का विधेय होता है उसको उत्साह होता है और उससे देव भी शंकित रहा करते हैं।३२। उद्योग के द्वारा कार्य्य के करने पर जिसकी सिद्धि नहीं होवे । इसका प्रमाण दैव होता है । अतएव निश्चय रूप से सदा पौरुष करना चाहिए ।३३।

६८-राजा और भृत्य लक्षण (२)

भृत्या बहुविधाज्ञेय उत्तमाधममध्यमः ।
नियोक्तव्या यथार्हेषु त्रिविधेष्वेव कर्मसु ।१
भृत्ये परीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः ।
तमिमं संप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ।२
तथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिर्भृतकं परीक्षयेद् व्रतेन शीलेन कुलेन कर्मणा।३
कुलशीलगुणोपेतः सत्वधर्मपरायणा ।
रूपबान्सुप्रसन्नश्च कोषाध्यक्षी विधीयते ।४
मूल्यरूपपरीक्षाकृद्भवेद्रत्नपरीक्षकः ।
बलाबलपरिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते ।५
इङ्गिताकारतत्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः ।
अप्रमादी प्रमाथी च प्रतिहारः स उच्यते ।६
मेधावी वाक्पटुः प्राज्ञः सत्यवादो जितेन्द्रियः ।
सर्वशास्त्रसमालोकी ह्येष साधुः स लेखकः ।७

सूतजी ने कहा भृत्य भी बहुत प्रकार के होते हैं उन्हें जान लेना

चाहिए । भृत्य उत्तम, मध्यम और अधम होते हैं। इसलिए इनको तीन तरह से कर्मों में जो जिस कर्मसे योग्य हो उसे वहीं पर नियुक्त करना चाहिए ।१। अब मैं भृत्य के विषयमें उसका परीक्षण बतलाऊँगा। जिस जिस भृत्य के जो गुण होते हैं। उसको मैं अब बताता हूँ जो तब-तब कहे गये हैं ।२। सुवर्ण की चार प्रकार से परीक्षा की जाती है । सुवर्ण का निघर्षण-छेदन-तापन और ताडन ये चार परीक्षण के प्रकार हुआ करते है । इसी प्रकार भृत्य की भी व्रत-शील-कुल और कर्म इन चार रीतियों परीक्षा करनी चाहिए ।६। सो भृत्य कुल ओरे शील के गुणों से युक्त हो तथा सत्य एवं धर्म परायण हो—रूप वाला और सुप्रसन्न हो ऐसे भृत्य के कोष का अध्यक्ष बनानो चाहिए ।४। मूल्य और रूप की परीक्षा करने वाला तथा रत्नों की परीक्षा करने वाला और बल तथा निर्बल के परिज्ञाता को सेनाध्यक्ष किया जाता है । प्रसाद न करने वाला और प्रथमनशील व्यक्ति को प्रतिहार के पद पर नियुक्त करना कहा जाता है ।५। मेधावी बोलने पटु-प्राज्ञ-सत्य बोलने वाला जितेन्द्रिय और समस्त शास्त्रों को देख लेने वाला एवं साधु वृत्ति वाले पुरुषों को लेखक के पद पर नियुक्त करे ।७।

बुद्धिमान्मतिमांश्चैव परिचित्तोपलक्षकः ।
क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ।८
समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञः पण्डितोऽथ जितेन्द्रियः ।
शौर्य्यवीर्य्यगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते ।९
पितृपैतामहो दक्षः शास्त्रज्ञः सत्यवाचकः ।
शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकारः स उच्यते ।१०
आयुर्वेदकृताभ्यासः सर्वेषां प्रियदर्शनः ।
आयु शीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते ।११
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो जपहोमपरायणः ।
आशीर्वादपरो नित्यमेष राजपुरोहितः ।१२

लेखकः पाठकश्चैव गणकः प्रतिबोधकः ।
आलस्ययुक्श्चेद्राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा ।१३
द्विजिह्वमुद्वेगकरं क्रूरमेकान्तदारुणम् ।
खलस्याहेश्च वदनमपकाराय केवलम् ।१४

क्रूर तथा जो भी कहा जावे उसे ठीक वैसा हीं कह देने वाला जो भृत्य हो उसे दूत के कर्म में नियुक्त करना चाहिए ।२। समस्त शास्त्र और स्मृतियों का ज्ञाता पण्डित इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला, शूरता तथा बहादुरी के गुणों से युक्त धर्माध्यक्ष-नियुक्त करना चाहिए ।९। बाप दादाओं से चले आने वाला परम दर्श-शास्त्र का ज्ञाता-सत्य बोलने वाला रसोइया के पद नियुक्त करना चाहिए ।१०। आयुर्वेद शास्त्र में अभ्यास करने वाला, सबको देखने में परम प्रिय लगने वाला और आयु एव शील के गुण से युक्त हो उसे वैद्य नियुक्त करे ।११। वेदों में वेदों के सम्पूर्ण अंग शास्त्रों के तत्वों का ज्ञाता जप एवं होम में परायण रहने वाला और आशीर्वाद देनेमें नित्य तत्पर हो उसे राजा का पुरोहित नियुक्त करे । तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के गुण राज-पुरोहित में होने चाहिए।१२। लेखक पाठक,गणक और प्रतिबोधक यदि आलस्य से युक्त हों तो राजा को चाहिए उसे कर्म से सदा वर्जित कर देवे ।१३। दो जिह्वा वाला हृदय में उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला क्रूरता पूर्ण दारुण खल तथा सर्प का मुख जैसा होता है जो कि सर्वदा केवल अपकार के लिए हुआ करता है ।१४।

दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसो न भयङ्करः ।१५
अकारणाविष्कृतकोपधारिणः खलाद्भयं कस्य न नाम जायते ।
विषं महाहेर्विषमस्य दुर्वचः सदुः सहं सन्निपतेत्सदा मुखे ।१६
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो हन्तात्म न हन्यते ।१७

शूरत्वयुक्ता मृदुमन्दवाक्या जितेन्द्रियाः सत्यपराक्रमाश्च ।
प्रागेव पश्चाद्विपरीतरूपा एते तु भृत्या न हिता भवन्ति।१८
निरालस्यः सुसन्तुष्टाः सुस्वप्नाः प्रतिबोधकाः ।
सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभाः ।१९
क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दकः ।
दाम्भिकः पेटुकश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः ।
अशक्तो भवभीतश्च राज्ञा त्यक्तव्य एव सः ।२०
सुसन्धातानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च ।
दुर्गं प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत् ।२१

जो दुर्जन हैं वह चाहे कितना ही विद्वान् हो उसका तो परिहारही कर देना चाहिए। मणि से विभूषित रहने वाला सर्प क्या भयंकर नहीं होता है ? दुर्जन तो विद्यालंकृत होकर भी परम कृतघ्न ही हुआकरता है ।१५। बिना ही किसी उचित कारण के कोप को प्रकंट करके उसे धारण करने वाले खलापुरुष से किसी को भय उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् ऐसे खल से भी भयभीत होते हैं। महा सर्प बड़ा विषम होता हैं जिसका विष भी परम उग्र होता है और खल के मुख से सदा ऐसे बुरे वचन निकला करते जो सुदुःसह होते हैं. अर्थात् मर्म भैदी और हृदय विदारक होते हैं ।१५। तुल्य अर्थ वाले, समान सामर्थ्य वाले, मर्म (रहस्य) ज्ञाता, व्यवसायी तथा आधे राज्य का हरण करने वाले भृत्य को जो हनन कर देता हैं वह फिर नहीं मारा जाता है ।१७। शूरत्व से युक्त, मृदु और मन्दवचन बोलने वाले, जितेन्द्रिय, सत्य पराक्रम वाले प्रथम ही और पीछे से विपरीत स्वरूप वाले जो भृत्य होते हैं वे हित करने वाले नही हुआ करते हैं ।८। बिना आलस्य वाले, परम सन्तोषी, सुन्दर निद्रा लेने वाले, प्रतिबोधक, सुख और दुःख के समय समान रूप से रहने वालें तथा धैर्यशाली भृत्य संसार में बहुत दुर्लभ हुआ करते है ।१९। शान्ति और सत्य से रहित, क्रूर बुद्धि वाला, निन्दा करने वाला, दम्भ रखने वाला, पेटुक अर्थात् केवल अपने उदर के भरते रहने की,

चिन्ता करने वाला शत्रु-स्पृहा से समन्वित, शक्ति हीन और भय से सर्वदा डरा हुआ जो भृत्य है उसे राजा को त्याग देना चाहिए ।२०। भली भाँति सन्धान किए हुए अन्न और अनेक प्रकार के शास्त्र अपने दुर्ग में भांति करके रखने चाहिए इसके अनन्तर शत्रु का निपातन करे ।२१।

षण्मास वर्षं वा सन्धि कुर्यान्नराधिपः ।
पश्चात्सज्जितमात्मानं पुनः शत्रु निपातयेत् ।२२
मूर्खान्नियोसयेद्यस्तु त्रयोऽप्यते महीपतेः ।
अयशश्चार्थनाशश्च नरके चैव पातनम् ।२३
यत्किञ्चित्कुरुते शुभं वायदिवाऽशुभम् ।
तेन संवर्द्धते राजा सूक्ष्मतो भृत्यकार्यतः ।२४
तस्माद् भूमीश्वरः प्राज्ञ धर्मकामार्थसाधने ।
मियोजयेद्धि सततं गोब्राह्मणहिताय वा ।२५

छै मास अथवा एक वर्ष तक राजा को सन्धि करनी चाहिए । अब देख लेवे कि अब अपने आपको पूर्णतया सुसज्जित कर लिया है तथा शत्रु का निपातन करना चाहिए ।२२। जो राजा मूर्खों को विभिन्न पर नियुक्त कर देता है उसको अयश-अर्थनाश और नरक-पतन अवश्य ही हुआ करते हैं ।२३। राजा जो भी कुछ शुभ या अशुभ कर्म करता है उसमें भृत्यों के कार्य से सूक्ष्मतया राजा बढ़ा करता है इस कारण से भूमीश्वर को धर्म, काम और अर्थ के साधन में प्राज्ञ पुरुषों की ही नियुक्तियाँ करनी चाहिए और निरन्तर यह भी ध्यान रखना चाहिए गौ ब्राह्मणों का हित होता रहे ।२४-२५।

६९-नीतिशास्त्र कथन (१)

गुणवन्तं नियुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत् ।
पन्डितस्य गुणाः सर्वे दोषाश्च केवलाः ।१
सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ।२

पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञं सत्यवादिभिः ।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेन् न तु राज्ये खलैः सह ।३
सावशेषाणि कार्य्याणि कुर्वन्मर्थैश्च युज्यते ।
तस्मात्सर्वाणि कार्य्याणि सावशेषाणि कारयेत् ।४
मधुहेव दुहेद्राष्ट्रं कुसुमञ्च न पातयेत् ।
वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमिं गाञ्चैव पार्थिवः ।५
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट् पदः ।
तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत संचयम् ।६
वल्मीकं मधुजालंज शुक्लपक्षे तु चन्द्रमाः ।
राजद्रव्यंच भैक्ष्यंच्च स्तोक स्तोकं न बर्द्धते ।७

सूतजी बोले—राजा को सर्वदा गुणवान् का ही नियोजन करना उचित है । सद्-असत् के विवेक बुद्धि रखने वाले पण्डित में सभी गुण हुआ करते हैं और मूर्ख में केवल दोष ही रहते हैं ।१। निरन्तर सत्पुरुषों के साथ सङ्गति करे और सत्पुरुषों के साथ अपनी उठक-बैठक रक्खे । सत्पुरुषोंके साथ विवाद और मैत्री भी करनी चाहिए।२।पण्डित वृन्द विनीतजन धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी पुरुषों के साथ बन्धन में स्थित होकर भी अवस्थित रहे और खलों के साथ राज्य में भी कभी नहीं रखना चाहिए क्योंकि खल सङ्ग का परिणाम सर्वदा बुरा ही होता है ।३। समस्त कार्यों को सावशेष करके भी मनुष्य अर्थों से युक्त हुआ करता है । इस कारण से समस्त कार्यों को सावशेष ही करना चाहिए ।४। मधुप (भौरा) की तरह राष्ट्र का दोहन करे और कुसुम का पालन कभी न करे । अर्थात् राष्ट्र से करों के स्वरूप में इस प्रकार से धन का सञ्चय करे जो उसके स्वरूप को कोई दोष न लगे और वह ज्यों का त्यों सुन्दर कुसुम की भाँति सुखी सुशोभित बना रहे । जो वत्स की अपेक्षा रखने वाला है गौ से क्षीर का जिस तरह दोहन किया करता है वैसे ही भूमि का दोहन राजा को करना चाहिए ।५। जिस क्रम से भ्रमर पुष्पों से मधु को चुना करता है उसी भाँति राजा भी प्रजा से वित्त संग्रह कर सञ्चय करे ।६। वल्मीक मधु का जाल

और शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा तथा राजा का द्रव्य और भक्ष्य थोड़ा-२ करके ही बढ़ा करते हैं।७।

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्यम्।
अबन्ध्य दिवसं कुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मसु।८

वनेऽपि दोषाः प्रभावन्ति रागिणां गृहेऽपि पंचेन्द्रियनिगहस्तपः।
अकुत्सिते कर्माणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहे तपोवनम्।९

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते।१०

वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभुक्तस्य मरणं
वरं सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम्।
वरं भ्रान्तावर्ते सभयजलमध्ये प्रविशनं
न तु स्वीये पक्षे तु धनमणु देहीति कथनम्।११

भाग्यक्षयेषु क्षीयन्त नोपभोगेन सम्पदः।
पूर्वार्जिते हि सुकृते न नश्यन्ति कदाचन।१२

विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्यां भूषणं नृपः।
नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम्।१३

एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः।
शूरा सत्यप्रतिज्ञा दिमकरवपुषः केशवेनोपगूढाः।
ते वैदुष्टग्रहस्थाः कृपथ वशगता भैक्ष्यचर्या प्रयाताः।
को वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद्भ्रामयेत्कर्मरेखा१४

अञ्जन का क्षय और वाल्मीक का सञ्चय देखकर दान और अध्ययन कर्मों में दिवस को अबन्ध्य करे।८। जो राग से युक्त चित्त वाले पुरुष हैं वे चाहे वन में भी आकर निवास क्यों न करें वहाँ पर भी उनको दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं और राग से निवृत्ति करके पाँचों इन्द्रियों का निग्रह रूपी तप करते हुए घर में रहते हैं-यह भी एक महती तपश्चर्या ही है। जो सर्वदा अकुत्सित अर्थात् परम प्रशस्त कर्म में प्रवृत्ति रखता है ऐसे निवृत्ति राग वाले पुरुष के लिए गृह ही

तपोवन के तुल्य होता। राग से निवृत्ति और सत्कर्म ही ही मुख्यता लक्षण है। सत्य से धर्म की रक्षा की जाती है और योग से विद्या की सुरक्षा होती है। मार्जन करनेसे पात्र की रक्षा तथा शील वृत्ति से कुल की सुरक्षा हुआ करती है।१०। बिन्ध्य के जङ्गल में निवास करना भूख से मृत्यु का ग्रास बन जाना, सर्पों से घिरे हुए स्थल में शयन करना तथा कूप में निपात करना, भय सहित जल के मध्य में प्रवेश कर जाना अधिक श्रेष्ठ है किन्तु अपने पक्ष वाले लोगों के समक्ष थोड़ा-सा धन मुझे दो-इस तरह भावना करके अपमानित जीवन अच्छा नहीं है।११। भाग्य के नाश होने से ही सम्पदाओं का क्षय हुआ करता है, उपभोग करने से कभी भी सम्पत्ति का नाश नहीं होता है। यदि पूर्व जन्म का अर्जित सुकृत विद्यमान है तो सम्पत्ति का कभी भी नाश नहीं होता है।१२। विप्रों का भूषण केवल विद्या, पृथिवी का भूषण नृप, आकाश को आभरण चन्द्रमा है और शील सबका भूषण है।१३। ये सब चन्द्रमा के समान सुन्दर राजा के पुत्र भीमसेन और अर्जुन आदि अत्यधिक शूरबीर, सत्य प्रतिज्ञा वाले, दिनकर के वपु वाले और साक्षात् केशव भगवान् से उमगूढ़ भीं थे किन्तु दुष्ट ग्रहों के फेर में अवस्थित होकर ऐसे कार्पण्य के वश में स्थित हो गये थे, भिक्षा वृत्ति भी उन्हें करनी पड़ी थी। इसलिए यही ज्ञात होता है कि किस दशा के कौन समर्थ हो सकता है। यह कर्मों की रेखा विधि के वश से अच्छे-अच्छों को भी भ्रमित करा दिया करती भाग्य सर्वोपरि और सबसे प्रबल हुआ करता है। इसके आगे किसी का भी वश नहीं चलता है—यह परम सिद्धान्त है।१४।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतारगहये क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपणिमरो भिक्षाटनं कारितः।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे।१५

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दान मही विप्रमुखस्य मध्ये ।
दत्वा फलं बन्धकमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे ।१६
माता यदि भवेल्लक्ष्मीः पिता साक्षाज्जनार्दनः ।
कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दण्डं विधृतं सदा ॥१७
येन येन यथा यद्वत्पुरा कर्म सुनिश्चितम् ।
तत्तदेवान्प्ररा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मनः ।१८
आत्मना विहितं दुःखात्मना विहितं सुखम् ।
गर्भशैयामुपादाय भुङ्क्तं वै पौर्वदेहिकम् ।१९
न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विविधप्रदेशे ।
न मातृमूर्ध्नि प्रधृस्तथाङ्के त्यक्तु क्षमः कर्मकृत्तं नरो हि ।२०
दुर्गस्त्रिकूटःपरिखा समुद्रो रक्षांसि रक्षासि योधाःपरमा च वृत्तिः
शास्त्रञ्च वै तुशनसा प्रदिष्टं स रावणः कालवशाद्विनष्टः ।२१

जिस कर्म ने ब्रह्मा को एक कुम्हार की भाँति नियमित कर दिया है, जिस कर्म ने विष्णु भगवान् को भी अवतार धारण कर जङ्गल में महान् सङ्कट में डाल दिया है, जिस कर्म ने महान् देव रुद्र को भिक्षुक बना दिया है और जिस कर्म वश में सूर्यदेव नित्य-प्रति गगन में भ्रमण किया करते हैं उस परम प्रवल कर्मके लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है ।१५। राजा बलि के समान महान् श्रेष्ठ दान देने वाला-साक्षात् विष्णु वामन रूप धारण करने वाले वाचक भूमि जैसा परमोत्तम दान और विप्र के मुख में फल देकर भी राजा बलि ने इनके परिणाम में बन्धन को प्राप्त किया था । हे दैव ! यथेष्ट फल देने वाले आपके लिए हमारा नमस्कार है ।१६। यदि माता साक्षात् स्वयं महालक्ष्मी है और पिता साक्षात् भगवान् जनार्दन नहीं हों तो भी यदि बुरी बुद्धि की प्रतिपत्ति हो तो उसको सदा दण्ड धारण करना ही पडता है । बुद्धि की शुद्धता का परम महत्व जीवन में होता है ।१७। जिस-जिस ने जैसा

जो पहिले कर्म किया है वह अनिश्चित है कि वह वैसा ही स्वयं अपने आपके द्वारा कृत कर्म का फल अवश्य ही भोगा करता है। इन कर्मों के फल को कोई शक्ति मिटाने वाली नहीं है।१८। अपने ही द्वारा दुःख प्राप्त करने के कर्म किए जाते हैं और अपनी आत्मा से सुख भी दिया जाता है।१९। किए हुए कर्म को मनुष्य आकाश में, समुद्र के मध्य में पर्वतों के विभिन्न प्रदेश में, माता के मूर्द्धा में तथा अङ्क में रहकर भी त्याग करने में समर्थ नहीं होता है। माता के मस्तक पर ला उसके अंग में रहकर भी कृत कर्म का त्याग नहीं कर सकता है अर्थात् किए हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इससे बचाव कहीं भी नहीं हो सकता है।२०। जिसका दुर्ग त्रिकूट थी और उस दुर्ग की परिखा (खाई) समुद्र जैसी अथाह एवं सुविस्तीर्ण थी, राक्षस महाबली जिसके युद्ध करने वाले योधा और परमा जिसकी वृत्ति था। असुर गुरु उशना के द्वारा जिसने सम्पूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन किया था वह राक्षस राजा रावण भी काल के वश में आकर नष्ट हो गया था।२१।

यस्मिन्वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि।
यन्मुहूर्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा।२२
गच्छन्ति चान्तरिक्षे वा प्रविशन्ति महीतले।
धारयन्ति दिशः सर्वा नादत्तमुपलभ्यते।२३
पुराधीता चया विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम्।
पुरा कृतानि कर्माणि अग्रे धावन्ति धावतः।२४
कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे।
वसिष्ठकृतलग्नेऽपि जानकी दुःखभाजनम्।२५
स्थूलजंघो यदा रामः शब्दगामी च लक्ष्मणः।
घनकेशी यथा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम्।२६
निष्पिण्डकर्मणा पुत्रः पि ा वा पुत्रकर्मणा।
कर्मजन्यशरीरेषु रोगाः शरीरमानसाः।२७

शरा इव पतन्ती विमुक्ता दृढ़धन्विना ।
अर्थो वै शस्त्रगर्भिण्या धिया धीरोऽर्थतोहते ।२८

जिस अवस्था में, जिस समय में, जिस दिन में, जिस रात्रि में,जिस मुहूर्त से और क्षण में जो भी जैसा होने वाला होता है वही होकर रहा करता है ।२१। चाहे अन्तरिक्ष में चले जावें या मही के तल में प्रवेश करें अथवा सभी दिशाओं में कहीं भी चले जावें जो नहीं दिया है वह कही भी नहीं मिल सकता है ।२२। पहले जन्म में जो विद्या का अध्ययन किया हैं और पहिले जो धन का दान दिया है तथा पहिले जन्म में जो कर्म किए है वे सभी आगे दोड़कर चला करते हैं ।२४। सेम्यक् अच्छे नक्षत्र और शुभ ग्रह होने पर भी इस संसार में कर्मो की ही प्रधानता होती है ।२५। स्थूल जाँघों वाले राम शब्दगामी लक्षण घनकेशी सीता ये तीनों ही दुःखों के भाजन हुए थे ।२६। पिंड कर्म से पुत्र नहीं होते हैं । शारीरिक और मानसिक रोग कर्म अन्य शरीरों में हुआ करते हैं ।२७। दृढ़ धंनुषधारी पुरुष के द्वारा छोड़े हुए शरों की भाँति यहाँ आकर ये निपतित होते हैं । इसलिए शास्त्रों के गर्भ वाली बुद्धि से धीर पुरुष अर्थ की चाह किया करता हैं ।२८।

वालो युवा च बुद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ।२९
अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः ।
स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत् फलम् ।३०
प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितु न शक्तः ।
अतो न शोचामि न विस्मयो मेललाटलेखा नपुनःप्रयाति।३१
सर्पः कूपे गजाः स्कन्धे आखुविले च धावति ।
नरः शीघ्रतरादेव कर्मणः किं पलायति ।३२

नाल्पायति हि सद्विद्या दीयमानापि वर्द्धते ।
कूपस्थमिव पानीयं भवत्येव बहूदकम् ।३३
येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गताः श्रियः ।
धर्मार्थी महाल्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात् ।३४
अन्नार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः ।
तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः क्लेशभाजनम् ।।३५

बालक-पूजा और वृद्ध जो भी शुभ तथा अशुभ कर्म करता है उस उस अवस्था में उनका फल जन्म-जन्मान्तर में भोगता है ।२९। इच्छा न करता हुआ भी और विदेश में स्थित होने वाला भी मानव अपने कर्म रूपी पोतके वात द्वारा उनका फल वहाँ पहुँचा दिया जाया करता है ।३०। जो प्राप्त होने के योग्य अर्थ होता उसे मनुष्य अवश्य ही प्राप्त कर लेता है । क्योंकि ललाट में लिखी हुई लेखा को भी बदल नहीं सकता है अर्थात् वह अन्यथा नहीं होती है ।३१। सर्प कुप में, गज स्कन्ध में और चूहा बिल में दौड़ लगाता है । कौन से मनुष्य शीघ्रतर कर्म से पलायन करता है ? ।३२। दूसरों को प्रदान की हुई विद्या कभी भी कम नहीं होती है प्रत्युत वह दूसरों के देने पर अधिक बढ़ती है । कूप में रहने वाले पानी की तरह वह बहूदक होती है ।३३। जो अर्थ धर्म के द्वारा होते हैं वे ही सत्य हुआ करते हैं और धर्म पूर्वक प्राप्त की गई है वह वास्तविक श्री है । इस लोक में धर्म का ही अर्थी पुरुष महान् होता है । अतएव अर्थ के कारण से उसका ही स्मरण रखना चाहिए ।३४। अन्न के चाहने वाला पुरुष अत्यन्त कृपण होता है जिन दुःखों को भोगता है उन्हीं दुःखों को यदि धर्म का अर्थी करे तो फिर किसी भी क्लेश का वह पात्र ही नहीं हो सकता है ।३५।

सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते ।
योऽन्नार्थंरशुचिः शौचान्न मृदा वारिणा शुचिः ।३६
सत्यशौचं मनः शौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

सर्वभूते दया शौचं चलशौचञ्च पञ्चमम् ।३७
यस्य सत्यञ्च शौचञ्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः ।
सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते ।३८
मृत्तिकानां सहस्रेण उदकानां शतेन च ।
न शुद्ध्यति दुराचारी भावोपहतचेतनः ।३९
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।४०
न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति ।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम् ।४१
दरिद्रस्या मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च ।
काले श्रुत्वा हित वाक्यं न कश्चित्परितुष्यते ।४२

समस्त प्रकार के शौचों में अन्न की शुचिताका एक अत्यन्त विशेष स्थान होता है जो अन्नका अर्थी अशुचि हो जावे अर्थात् अनुचित अन्न के सेवन से जो अशुचिता होती है वह जल और मिट्टी से कभी दूर नहीं हो सकती है ।२६। सत्यता के पालन करने से शुचिता होती है, शुद्ध मन के होने से भी शुचिता हुआ करता है और अपनी समस्त प्राणियों पर हृदय में दया का भाव रखने से शुचिता होती है । पाँचवाँ शौच जो होता है वह स्थिर हुआ करता है ।३७। जिस मानव को सत्य और शौच होता है उसको स्वर्ग प्राप्त करना कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है जिसके वचन में सर्वदा सत्य बिराजमान रहता है उसका पुण्य फल अश्वमेध यज्ञ में भी अधिक होता है ।३८। भावनाओं से उपहत चेतना वाला दुराचर ऐसा प्रबल होता है कि उसकी अशुचिता सहस्रों बार मृत्तिका तथा सैकड़ों बार जल में धोने पर भी नष्ट नहीं होती है ।३९। जिसके हाथ, पैर और मन सुसंयत होते हैं उनको विद्या, तप और कीर्त्ति की प्राप्ति होती है और वह तीर्थ के फलको प्राप्त किया करता है ।४०। जो पुरुष सम्मान के पाने पर प्रसन्न नहीं होता है और अप-

मान हो जाने पर कभी कोप नहीं किया करता है। यह एक महान् साधु पुरुष के लक्षण होते हैं।४१। दरिद्र मनुष्य के क्षीर मधुर प्राज्ञ से समय पर हिम वाक्य श्रवण करके कोई परितुष्ट नहीं हुआ करताहै।४२

न मन्त्र बलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेण च ।
अलभ्यं लभ्यते मर्त्ये स्तत्र का परिवेदना ।४३
अयाचितो मया लब्धो मत्प्रेषितैः पुनर्गतः ।
यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना ।४४
एकवृक्षे सदा रात्रौ नानापक्षिसमागमः ।
प्रभातेऽन्यदिशं यान्ति का तत्र परिवेदना ।४५
एकस्वार्थ प्रयताना सर्वेषान्तत्र गामिनाम् ।
यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना ।४६
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक ।
अव्यक्तनिधनान्येव का तत्र परिवेदना ।४७
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।
कुशाग्रेण संस्पृष्टः प्राप्तकायो न जीवति ।४८
लब्धव्या लभते गन्तव्यमेव गच्छति ।
प्राप्त व्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च ।४९

मन्त्र, बल, वीर्य, प्रज्ञा और पौरुष से मनुष्य अलभ्य पदार्थों को प्राप्त नहीं किया करते हैं। इसलिए इस अप्राप्ति के विषय में कुछ भी दुःख नहीं मानना चाहिए।४२।जिसकी मैंने कभी याचना नहीं की थी उसे मैंने प्राप्त कर लिया था और मेरा भेजा हुआ वह फिर मुझसे चला गया है। जहाँ से वह आया था वहीं पर चला गया है अर्थात् जिस प्रदाता ने मुझे दिया था उसी ने उसे पुनः ले लिया है तो इसके लिए दुःख मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए।४४। एक ही वृक्ष पर रात्रि के समय में इधर-उधर से अनेक पक्षियों का समागम हो जाया करता है। प्रातःकाल होने पर वे सभी जो एक साथ

रहे थे विभिन्न दिशाओं में उड़कर चले जाया करते हैं तो इसके लिए कुछ भी परिवेदना नहीं करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि यह सांसारिक संयोग पिता, पुत्र और भाई भतीजे आदि का भी ऐसा ही है।४६। किसी एक ही स्वार्थ के सम्पादन करने के लिए प्रयाण करने वाले सबमें जोकि कर रहे हैं, उनमें कोई एक शीघ्रता से चलकर आगे निकल जाया करता है तो इसमें क्या दुःख की बात है? संसार भी यही आगे-पीछे संसार त्याग करने का क्रम रहा करता है।४३। हे शौनक! ये समस्त भूतों का आदि कारण अव्यक्त है-मध्यम में ये सब व्यक्त स्वरूप हैं वाले होते हैं। इस सबका निधन भी अव्यक्त ही है। इसलिए इस विषय से दुःख मानने की क्या बात है।४७। जिसका समय नहीं आया है वह नहीं मरता, अन्यथा एक कुशा के अग्र भाग से भी मर जाता है और किसी उपाय से वह जीवित नहीं रहा करता हैं मृत्यु का एक नियत समय होता है शेष सब तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं।४८। जो प्राप्त होने वाले होते हैं उन्हीं को मानव प्राप्त किया करता है और जहाँ पर जाना सुनिश्चित होता है वहीं पर जाया करता है। जिसके प्राप्त होने का योग भाग्य में बदा है उन्हीं पदार्थों को मानव प्राप्त किया करता है। दुःख और सुख भी उसी प्रकार से हुआ करते हैं।४६।

तत: प्राप्नोति पुरुष: किं प्रलापं करिष्यति।
आचोद्यमानानि तथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वकाल नातिवर्त्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम्।५०
शीलं नैव चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धि:।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्तिपुरुषस्ययथ ववृक्षा:।५१
तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पद:।
तत्र तत्र स्वयं याति प्रेष्यमाण: स्वकर्मभि:।५२
भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्त्तारमनुष्ठिति।
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।५३

एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
सुकृतं पूर्वकृतं भुङ्क्ष्व मूढ़ किं परितप्यसे ।५४
यथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
एवं पूर्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।५५
नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो विल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ।५६

उसी भाग्य के अनुसार पुरुष किया करता है अतएव प्रताप करना व्यर्थ ही होता हैं जैसे पूर्वसे ही प्रेरित हुए फल और पुष्प स्वतः ही समय पर प्राप्त हुआ करते हैं ।५०। पूर्व जन्म में तपश्चर्या के द्वारा जो भाग्य का निर्माण किया है वह समय आ जाने पर फल दिया ही करता है जैसे अपना काल उपस्थित हो जाने पर वृक्ष फलों की उपज किया करते हैं । भाग्योदय में शील, कुल, विद्या, ज्ञान, गुण और बीज की शुद्धि कारण नहीं बनते है ।५१। जहाँ पर हनन करने वाला है वहाँ पर मृत्यु भी है और जहाँ सम्पदायें हैं वहाँ श्री विद्यमान रहा करती है । वहाँ-वहाँ पर वह स्वयं ही अपने कर्मों के द्वारा प्रेष्यमाण होकर पहुँच जाता हैं ।५२। पहिले किया हुआ कर्म उसके करने वाले के साथ ही रहता है जिस तरह सहस्रों धेनुओं में बछड़ा अपनी माता के ही पास पहुँचा करता है ।५३। इसी प्रकार से पूर्वमें किया हुआ कर्म उसके करने वाले के समीप में पहुँचता हैं और वह कहती है कि हे मूढ़ ! अपने सुकृत फल भोगने में ही परिताप कर रहा हैं ।५४। पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म चाहे वह शुभ हो या अशुकहो सर्वदा उसके करने वाले के साथ ही रहा करता है ।५५। नीच पुरुष दूसरों के सरसों के बराबर छिद्रों को देखा करता है और अपने बेल के फल के बराबर भी अर्थात् बड़े-बड़े दोषों को भी नहीं देखता हैं ।५६।

रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद् द्विज ।
विचार्य्यं खलु पश्यामि तत् सुखं यत्र निवृतिः ।५७
यत्र स्नेहं भयं तत्र दुःखस्य तत्र भाजनम् ।
स्नेहमलानिः दुःखानि तस्मिंत्यक्ते महत्सुखम् ।५८

शरीरमेवायतनः दुःखस्य च सुखस्य च ।
जीवितञ्च शरीरञ्च जात्यैव सह जायते ।५९

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयो ।६०

सुखस्यानन्तरं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्त्तते ।६१

यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात्तच्चदूरतः ।
वर्त्तमानेन वर्त्तेत न स शोकेन बाध्यते ।६२

हे द्विज ! जो पुरुष राग और द्वेष से युक्त होते हैं उनको कहीं भी सुख प्राप्त नहीं हुआ करता है विचार कर मैं भली-भाँति देख रहा हूँ कि सुख वस्तुतः यहीं पर होता है जहाँ निवृत्ति होती है ।५७। जहाँपर स्नेह होता है वहाँ पर भय भी रहता है क्योंकि स्नेह दुःख का आधार हुआ करता है । दुःखोंका मूल स्नेह होता है अतएव उस स्नेह के त्याग कर देने पर महान सुख हो जाता है ।५८। यह शरीर ही दुःख और सुख का आयतन होता है । जीवित और शरीर जाति से ही साथ उत्पन्न होता है ।५९। पराए सभी कुछ का रहना दुःख होता है और सबका अपने अधीनता में रहना सुख होता हैं । संक्षेप स्वरूप से सुख और दुःख का यही लक्षण होता है । इस संसार में मनुष्योंको सुख और दुःख एक चक्र की भाँति परिवर्तित हुआ करते है अर्थात् सुख के बाद दुःख और दुःख के पश्चात् सुख आया ही करता है ।६०। सुख के अनन्तर दुःख और दुःख के अनन्तर सुख आता है । चक्र का परिवर्तन भी इसी तरह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे हुआ करता है ।६१। जो हो गया वह अतिक्रान्त है । जो होने वाला है वह दूर है । जो वर्त्तमान से बरतता है वह शोक से बाधित नहीं होता है ।६२।

६०—नीतिसार कथन (२)

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपः ।
कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपुवस्तथा ।१

शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्वासभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।२
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षायगमनं प्रति ।३
न मातरि न दारेषु न सौन्दर्ये न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसं याद्दङ् मित्रे स्वभावजे ।४
यदीच्छेत्शाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत् ।
द्यूतमर्थप्रयोगच्च परोक्षे वारदर्शनम् ।५
मात्रा स्वस्रा दुहिता वा व विविक्तासने वसेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।६
विपरीतरतिः कामः स्वायत्तेषु न विद्यते ।
यत्रापायो वधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते ।७

श्रीसूतजी ने कहा—इस संसार में कोई भी किसी का मित्र नहीं है और न कोई किसी का शत्रु ही है। यहाँ पर तो कार के वश होकर ही मित्र का शत्रु बना करते हैं ।१। शोक से त्राण करने वाला, भय से सुरक्षा का सम्पादक तथा एवं विश्वास का पात्र 'मित्र' यह दो अक्षरों वाला उत्तम रत्न किसने सृजित किया है ? ।२। जिसने केवल एक ही वार परम प्रीति एवं भक्ति के भाव से, 'हरि'—यह भगवानके दो अक्षर का पुनीत नाम का उच्चारण किया है उसने मोक्ष की प्राप्ति को गमन करने के लिए अपने परिकर को बद्धकर लिया है ।३। स्वभाव से समुत्पन्न मित्र में मनुष्यका जैसा परम सन्तुष्ट विश्वास होता है वैसा विश्वास अपनी माता, पत्नी, सहोदर भाई और पुत्र में भी नहीं हुआ करता है ।४। यदि सर्वदा बनी रहने वाली प्रीति को स्थिर रखने की इच्छा हैं तो वहाँ पर तीन दोषोंका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए, द्यूत क्रीड़ा करना, धन के लेने-देने का प्रयोग और परोक्ष में स्त्रियोंको देखना या उसने सम्भाषण करने का काम ।५। अपनी माता, भगिनी,

पुत्री इसके साथ विविक्त आसन पर कभी निवास नहीं करना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय अत्यन्त बलवान् होता है और यह महान् विद्वान् की भी कर्षित कर लेता है अर्थात् महान पाप कर्म करने की ओर खींच लिया करता है ।६। अपने अधीन रहने वालों में बिपरीत रति वाला काम नहीं होता है । जहाँ अपाय वध दन्ड है वैसा ही अनुवर्तन होता है ।७।

अपि कल्पानिलस्यैव तुरंगस्य महोदधेः ।
शक्यते प्रसरो बोद्धु ं न ह्यरक्तस्यचेतसः ।८
क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जनः ।
तेन शौकन नारीणां सतीत्वमुपजायते ।९
एकं वै सेवते नित्यमन्यं चेतसि रोचते ।
पुरुषाणामलाभेन नारी चैव पतिव्रता ।१०
जननी यानि कुरुते रहस्यं मदनातुरा ।
सुतैस्तानि न चिन्त्यानि शीलविप्रतिपत्तिभिः ।११
पराधीना निद्रा पर हृदयकृत्वांनुसरण ।
सदा हेलाहास्यं नियतमपि शोकेन रहितम् ।
पणे न्यस्तः कायः विटजनखु रेर्दारितगलो ।
बहूत्कण्ठावृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमतः ।१२
अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च ।
नित्यं परोपसेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ।१३
किं चित्रं यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डितः ।
किं चित्रं यदि दण्डनीतिकुशलो विप्रो भवेद्धार्मिकः ।
किं चित्रं यदि रूपयौवनमती योषिन्न साध्वी भवेत् ।
किं चित्रं यदि निर्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्यात्क्वचित् ।१४

कल्पानिल का, तुरंग और महोदधि का प्रसर जाना जा सकता है किन्तु अरक्त चित्त का नहीं जान सकते हैं ।८। हे शौनक ! क्षण मात्र

का समय नहीं प्राप्त होता है, एकान्त स्थल भी कभी नहीं मिलता है और कभी प्रार्थना करने वाला पुरुष भी नहीं प्राप्त हुआ करता है ऐसे ही तीन कारण रहा करते हैं जिसके कारण नारियों से सतीत्व रक्षा हो जाया करती है अन्यथा उक्त कारण यदि हों तो फिर नारियोंके सतीत्व का बचना महा कठिन ही होता है ।९। एक पुरुष को तो वह नित्यप्रति सेवन किया करती है तो भी उसके चित्त में अन्य पुरुष के सेवन करने की रुचि बनी रहा करता है । पुरुषों को प्राप्ति होने से ही नारी पति-व्रता रहा करती है ।१०। माता मदन से, आतुर होकर जिन कर्म कलापों का रहस्य में किया करती है पुत्रों को उन पर चिंतन नहीं करना चाहिए क्योंकि वे शील की विप्रतिपत्ति करने वाले होते हैं।११। निद्रा पराधीन होती हैं, पराए हृदय के कृत्यों का अनुसरण सदा ऐसा हास्य शोक से भी रहित होता है । संसार में गणिका का जीवन ऐसा होता हैं कि उसका शरीर पैसे प्राप्त करने के लिए सदा निरत रहता है और विटजनों के द्वारा उसका गला सदा विदारित रहा करता वह बहुतों की उत्कन्ठा को संतृप्त की वृत्ति वाली और बहुत से लोगों की इच्छा पूर्ण करने वाली मानी गई है ।१२। अग्नि, जल, स्त्रीगण, सर्प और राजकुल ये नित्य परोपसेव्य अर्थात दूसरों के सेवन करने योग्य होते हैं और ये छः-सब प्राणों के हरण करने वाले भी हैं ।१३। इसमें कौन-सी आश्चर्य की बात है कि यदि शब्द शास्त्र में कुशल विप्र पण्डित होता है । यह भी कोई विचित्र बात नहीं है कि दन्ड नीति में कुशल विप्र धार्मिक हो । इसमें भी विचित्रता नहीं है कि रूप-लावण्य से सम्पन्न स्त्री-साध्वी न रहे और यह भी कुछ अद्भुत बात नहीं है कि कोई निर्धन पुरुष कभी कोई पाप कर्म नहीं करता है ।१४।

नात्मछिद्रं परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च ।
गूहे कूर्म इवाङ्गानि परभावं च लक्षयेत् ।१५

पातालतलवासिन्य उच्चप्राकाछादिता: ।
यदि नो चिकुरोद्भेद: स्त्रिय: केनोपलभ्यते ।१६
समधर्मा हि मर्मज्ञ: स्तीक्ष्ण: स्वजनकण्टक: ।
न तथा बाधते शत्रु: कृतवैरो बहि स्थित: ।१७
स पण्डितो यो ह्यनुरञ्जयेद्धै मिष्टेन बालं विनयेन शिष्टम्।
अर्थेन नारी तपसा हि देवान्सर्वांश्च लोकांश्च सुसंग्रहेण ।१८
छलेन मित्रं कलुषेण धर्मं परोपतापेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्यां परुषेण नारी वांछंति वै ये न चपण्डितास्ते।१९
फलार्थी फलिते वृक्षं यश्छिन्द्याद् दुमतिर्नर: ।
निष्फलं तस्य वै कार्यं तन्मूलं दोषताप्नुयात् ।२०
साधनो हि तपस्वी च दरतो वै कृतश्रम: ।
मखपा स्त्री सतीत्येवं विप्र न श्रद्धाम्यहम् ।२१

कभी भी अपने छिद्र अर्थात् अपने आपके दोष या त्रुटि को दूसरों को नहीं देना चाहिए और दूसरे के छिद्र को न देवे । घर में कछुए के अंगों की भाँति परभाव को देखना चाहिए ।१५। पाताल ताल की निवास करने वाली और उच्च प्रकार से छादित स्त्रियों का यदि चिकुरोद्भेद न होतो वे किसीके द्वारा प्राप्तकी जाया करती हैं ? ।१६। वैर करने वाला और वाहिर रहने वाला शत्रु उस प्रकार की बाधा नहीं किया करता है जैसी बाधा करने वाला समान धर्म वाला मर्मका ज्ञाता-तीक्ष्ण अपना जनकण्टक होता है।१७। वही पुरुष वास्तवमें पंडित है जो अपने मीठे भाषण से बालकों का असुर जन किया करताहै और विनय के भाव से शिष्ट पुरुषों को प्रसन्न किया करता है, धन से नारी को, तपश्चर्या से देवों को, समस्त लोगों को सुसंग्रह से अनुरंजन करते हैं उनको ही पन्डित कहते है । जो छल से मित्र को, कलुष से धर्म को, परोपताप से समृद्धि के भाव को, सुख से विद्या को और कठोरता से, नारी को जो चाहते हैं वे पण्डित पुरुष नहीं जा सकते हैं ।१८-१९। फलों की इच्छा रखने वाला मनुष्य यदि फलों से युक्त वृक्षों का छेदन

करता है तो वह मनुष्य दुर्मति ही होता है। ऐसे पुरुषों का कार्य निष्फल ही होता हैं और उसका मूल दोषको प्राप्त होता हैं। हे विप्र! साधन सम्पन्न तपस्वी हो दूर से श्रम करने वाला, मद्यपान करने वाली स्त्री सतीं है, यह मैं कभी श्रद्धा के साथ विश्वास नहीं करता हूँ।२०-२१।

न विश्वेदविश्वस्ते मित्रस्यापिन विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ।२२
सर्वभूतेषु विश्वासः सर्वभूतेषु सात्विकः ।
स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोर्हि लक्षणम् ।२३
यस्मिन्कस्मिन्कृते कार्ये कर्त्तारमनुवर्त्तते ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि धैर्यबुद्धिन्तु कारयेत् ।२४
वृद्धाः स्त्रियो नवं मद्यं शुष्कमांसं त्रिमूलकम् ।
रात्रौं दधि दिवा स्वप्नं विद्वान्षट् परिवर्जयेत् ।२५
विषं गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् ।
विषं कुशिक्षिता विद्या अजीर्णे भोजनं विषम् ।२६
प्रियं दानमकुण्ठस्य नीचस्योच्चासनं प्रियम् ।
प्रियं दानं दरिद्रस्य यूनश्च तरुणी प्रिया ।२७
अत्यम्बुपानं कठिनाशनञ्च धातुक्षयो वेगविधारणञ्च ।
दिवाशयोजागरणञ्चरात्रौषडभिर्नराणानिवसन्तिरोगाः।२८

जो विश्वास का पात्र नहीं है उसमें कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए और जो मित्र है उसको विश्वास का पात्र रहते हुए भी उसका भी पूर्णतया विश्वास नहीं करना चाहिए,क्योंकि कि किसी समयमें वह विश्वस्त मित्र कुपित हो जाता हैं तो फिर भी कुछ गोपनीय बातों को प्रकाशित कर दिया करता है ।२२। समस्त प्राणियों में विश्वास रखना और सब प्राणियों में सात्विक भाव का रखने वाला होना और अपने आपके ही द्वारा गोपनीय रखना, ये एक साधु पुरुष का लक्षण होता है ।२३। जिस किसी कार्य के करने पर कर्त्ता का अनूवर्त्तन करता है सर्वथा वर्तमान भी धैर्य, बुद्धि को करे ।२४। वृद्धा, स्त्री, नवीन मद्य,

शुष्क आमिष, त्रिमूलक, रात्रि दधि और दिन में सोना ये छै कार्य बुद्धिमान् पुरुष को वर्जित कर देने चाहिए ।२५। दरिद्र पुरुष को गोष्ठी करना विष के तुल्य है और वृद्ध पुरुष को तरुणी विष के समान होती है। कल्पित सीखी हुई विद्या विषवत् है और पहिला किया हुआ भोजन जब तक जीर्ण न हो जावे ऐसी दशा में और भोजन का कर लेना भी विष के समान होता है ।२६। कुक्षा रहित को दान प्रिय होता है। दरिद्र को दान प्रिय लगता है। और युवा पुरुष को तरुणी परम प्रिय प्रतीत हुआ करती है ।२७। अधिक जल पीना कठिन वस्तुओं का खाना, धातु क्षय और मल मूत्रादि के वेग को रोकना, दिन में शयन रात्रि में जागरण, इन छै कारणों से मनुष्य के शरीर में रोग निवास किया करते हैं ।२८।

बालातपश्चाप्यतिमैथुनञ्च श्मशानधूमः करतापनञ्च ।
रजस्वलावक्त्रनिरीक्षणञ्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्षयेच्च ।२९
शुष्कं मासं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि ।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ।३०
सद्यः पक्वघृतं द्राक्षा बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ।
उष्णोदकं तरुच्छाया सद्यः प्राणकराणि षट् ।३१
कूपोदकं वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्ण काले च शीतलम् ।३२
सद्यदलकरास्त्रीणि बालाभ्यङ्गसुभोजनम् ।
सद्योबलहरास्त्रीणि अध्वा च मैथुनं ज्वरः ।३३
शुष्कं मांस पयो नित्य भार्यामित्रैः सहैवतु ।
न भोक्तव्यं नृपैः सार्द्धं वियोगं कुरुते क्षणात् ।३४
कुचेलिमं दन्तमलापधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्य भाषिण
सूर्य्योदयेह्यस्तमयेऽपिशायिनंविमुञ्चतिश्रीरपिचक्रपाणि।३५

प्रातः कालीन सूर्य का आतप, अत्यन्त मैतुन, श्मशान भूमि का धुँआ, हाथों का तपाना, रजस्वला स्त्री से मुख को देखना ये कार्य

सुदीर्घ आयु का भी कर्षण किया करते हैं ।२९। शुष्क माँसे वृद्धा स्त्री, बाल सूर्य, तरुण (हाल का ही जमा हुआ) दधि-प्रभात में मैथुन और निद्रा ये कार्य सद्यः प्राणों के हरण करने वाले हुआ करते हैं ।३०। ताज़ा पकाया हुआ घृत, द्राक्ष, बाला, क्षीर, का भोजन, उष्ण जल, वृक्ष की छाया, ये छै पदार्थ तुरन्त ही प्राणोंको प्रदान करने वाले होते हैं ।३१। कुए का जल, वट वृक्ष की छाया, नारियों का पयोधर, ये वस्तुएं शीतकाल में तो उष्ण होते हैं और उष्ण काल में शीतल रहा करते हैं ।३२। तुरन्त ही गल को प्रदान करने वाली तीन वस्तुएं और सुन्दर सुस्वादु भोजन । तुरन्त ही प्राण हरण करने वाली तीन वस्तुयें होती हैं, मार्ग का चलना, मैथुन और ज्वर का शरीर में प्रवेश करना ।३३। शुष्क मांस, पय और नित्य भार्या, मित्रों के साथ भोजन कभी न करे और राजाओं के साथ भोजन करना क्षणमात्र में वियोग किया करता है ।३४। बुरे अर्थात् फटे, पुराने एवं मेले वस्त्र धारण करनेवाले पुरुष को, दाँत में मैल के धारण करने वाले मानव को, बहुत अधिक भोजन करने वाले मनुष्य को, निष्ठुर वाक्य बोलने वाले नर को और सूर्य उदय और अस्त के समय में शयन करने वाले व्यक्ति को चाहे साक्षात् चक्रपाणि ही क्यों न हों श्री छोड़कर चली जाया करतीहै ।३५

नित्यं छेदस्तृणानां धरिणिविलिखनं पादयोश्वापमार्ष्टिः ।
दन्तानामप्यशौच मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम् ।
द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा बिवसनशयनं ग्रासहासातिरेकः ।
स्वाङ्गे पीठे चवाद्य निधनमुपनयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीम् ।३६
शिरः सुधौतं चरणौ सुमार्जितौ वरांगनासेवनमल्प भोजनम् ।
अनग्नशायित्वमपर्व मैथुनं चिरप्रनष्टांश्रितमानयन्ति षट् ।३७
यस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः ।
शिरसा कार्य्यमाणस्य अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते ।३८

दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च ।
रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ।।३९

बालातपः प्रेतधूमः स्त्री वृद्धा तरुणं दधि ।
आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरजः ।।४०

गजाश्वरथधान्यानां गवांचैव रजः शुभम् ।
अशुभंच विजानीयात्खरोष्ट्राजाविकेषु च ।।४१

गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्यांगभवं रजः ।
एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम् ।।४२

तिनकों का तोड़ना दाँतों को अशुचिता, मलिन वस्त्रों का. धारण करना, केशों को रूखा रखना, दोनों सन्धि कालों में निद्रा करना, नग्न होकर शयन करना बड़े-२ ग्रास लेना तथा अत्यन्त हास्य करना अपने अङ्ग पर और पीठ पर वाद्य रखवाये कार्य भगवान् केशव की भी लक्ष्मी का निधन कर दिया करते हैं।३६। भली भाँति धोया हुआ शिर तथा पैर-वराङ्गना का सेवन-अल्प भोजन-नग्न न होकर-शयन करना पर्व दिवसों को छोड़कर मैथुन इनसे दरिद्रा भी धनी होतेहैं।३७।किसी पुष्प को विशेष कर पान्डर के पुष्प को शिर पर धारण करने वाले को अलक्ष्मी का प्रतिहनन हो जाता है।३८। दीपक की पश्चिम छाया शय्या आसन की छाया और रजक का तीर्थ वहाँ पर सर्वदा अलक्ष्मी निवास किया करती है।३९। वालातप, प्रेत धूम वृद्धा स्त्री तरुण दधि और सम्मार्जनी की धूल इन का सेवन कभी नहीं करना चाहिए।४०। हाथी अश्व-रथ और गौओं पद से उठी रज शुभ होती है। गधा-ऊँट बकरी और भेड़ों के द्वारा उथित रज अशुभ जाननी चाहिए।४१। गौओं की रज और पुत्र के अङ्ग से उठी हुई रज महान् प्रशस्त होती है।४२।

अजारजः खररजो यत्तु सम्मार्जनीरजः ।
एतद्रजो महापापं महाकिल्विषकारकम् ॥४३
शूर्पवातो नखाग्राम्बू स्नानवस्त्रमृजोदकम् ।
मार्जनीरेणुः केशाम्बू हन्ति पुण्य पुराकृतम् ॥४४
विप्रयोर्विप्रवन्हयोश्च दम्पत्योः स्वामिनोस्तथा ।
अन्तरेण न गन्तव्यं हयस्य वृषभस्य च ॥४५
स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रु सेवने ।
भोगास्वादेषु विश्वांसं कः प्राज्ञः कर्त्तु मर्हति ॥४६
न विश्वसेदविश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥४७
वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो तश्निनतिष्ठति ।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो स्तिपतितः प्रतिबुध्यते ॥४८
नात्यन्तं मृदुना भाव्यं नात्यन्तं क्रूरकर्मणा ।
मृदनैव मृदु हन्ति दारुणेनैव दारुणम् ॥४९

बकरी तथा गधेके द्वारा उत्थित रज और बुहारी से उठी हुई रज ये महापाप मंय होती हैं ।४३। सूप की हव—नखों के अग्र भाग का जल—स्नान वस्त्र की मृजा का जल—मार्जनी की रेणु और केशों का नकल—ये पूर्व जन्म के लिये हुए कर्म का भी हनन कर देते हैं ।४४। दो विप्रों के मध्य स—विप्र और वह्नि के बीच में—दम्पत्ति के मध्य से—स्वामियों के मध्य से और हय का तथा वृषभ के अन्तर से कभी नहीं जाना चाहिए ।४५। स्त्रियों में, राजा अग्नि, सर्प-में, स्वाध्याय में, शत्रु के सेवन में, भोगों के आस्वाद में, और प्राज्ञ पुरुष विश्वास करने के योग्य होता है ।४६। जो बिश्वास का पात्र व्यक्ति नहीं है उसका तो विश्वास करना ही नहीं चाहिए किन्तु जिसे अपना विश्वस्त समझा जाता है उसमें भी अत्यन्त विश्वास नहीं करना चाहिए । ।४७। बैरी

के साथ सन्धि करके यदि विश्वस्त रहा करता है तो निश्चय ही वह वृक्ष के अग्रभाग पर सोया हुआ होता है। जो पतित होकर ही प्रति बुद्ध हुआ करता है।४८। मानव को इस संसार में अत्यन्त मृदु नहीं होना चाहिए और इस लोक में अत्यधिक क्रूर कर्म करने वाला भी कभी नहीं होनी चाहिए। जो मृदु है उसका मृदु होकर ही हनन करे और जो दारुण प्रकृति का हो उसका हनन दारुण होकर ही करे।४९।

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुना तथा।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ।।५०
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ।।५१
अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति यान्ति च।
मार्जार इव लभ्यते तथा प्रार्थयते नरः ।।५२
पूर्वं पश्चाच्चरन्त्यार्ये सदैव वहुसम्पदः।
विपरीतमनार्य्ये यथेच्छसि तथा चर ।।५३
षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुः कर्णश्च धार्य्यते।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्मात्यैंको न बुध्यते ।।५४
तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ।।५५
एकेनापि सुपुत्रेणाविद्यायुक्तेन धीमता।
कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा ।।५६

अत्यन्त सीधा भी न रहे और न बहुत अधिक कोमल स्वभाववाला क्योंकि ये सर्वदा हानि ही उठाया करते हैं। वन में जाकर देखो जो सीधे वृक्ष होते हैं उनको लोग काम में लाने के लिए काट लिया करते हैं और टेढ़े-मेड़े वृक्ष वहाँ पर ही खड़े रहते हैं।५०। जो फलों से लदे-फदे वृक्ष होते हैं उनकी शाखायें नीचे को झुक जाया करती है अर्थात्

नमनशील होती हैं। इसी प्रकार से गुणों से सम्पन्न पुरुष भी परम विनम्र हुआ करते हैं। जो सूखे हुए वृक्ष होते हैं वे और महामूर्ख न तो भेदन ही किए जाते हैं और न कभी नवा ही करते हैं।५१। दुःखों के प्राप्त करनेमें कभीकोई प्रार्थना नहीं किया करता किन्तु वे विना बुलाये ही जिस तरह आया करते हैं और चले जाते हैं।५२। जो आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष होते हैं उनमें सदैव आगे और पीछे सम्पदायें अत्यधिक मात्रा में विचरण किया करती हैं। जो अनार्य हैं उनसे इसके विपरीत होता है।५३। छं कानों में पहुँचने वाली गुप्त बात विद्यमान हो जाया करती है और उसकी गोपनीयता नहीं रहतीहै। जो बात केवल दो ही अदिमियों में चार कानों तक रहती है उसमें गोपनीयता रहा करतीहै। इस गौ से क्या लाभ है जो न तो दूध ही देती है और न कभी गर्भिणी होती हैं उस भाँति ऐसे पुत्र से भी क्या फल होता है जो न तो विद्वान् है और न धार्मिक ही हो। ऐसे पुत्र का उत्पन्न होना बिल्कुल व्यर्थ ही होता है।५५। चाहे केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हो किन्तु वह ही यदि सुपुत्र है और श्रीमान् तथा विद्या से युक्त है तो उस सिंह के समान पुरुष से समस्त कुल चन्द्रमा के द्वारा आकाश की भाँति सुशोभित हो जाता है।५६।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥५७
एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ॥५८
शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च।
प्राप्त तु षोड़शे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥५९
जायमानो हरेद्दारान्वर्द्धमानो हरेद्धनम्।
म्रियमाणो हरेत्प्राणान्नास्ति पुत्रसमो रिपुः ॥६०
केचिन्मृगमृखा व्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुखा मृगाः।

तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वासः पदे पदे ।।६१
एकः क्षमावतो दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ।।६२
एतदेवानुमुयन्तेत भोगा ही क्षणभङ्गिनः ।
स्निग्धेषु च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुलाः ।।६३

वन में कोई एक ही वृक्ष ही जो सुगन्ध युक्त पुष्पों से परिपूर्ण हो तो उस एक सुवृक्ष से ही सम्पूर्ण बन सुवासित हो जाया करता है जैसे एक सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल प्रख्यात हो जाया करता है ।५७। गुणों से सम्पन्न एक ही पुत्र सबसे श्रेष्ठ है गुण ही सैकड़ों पुत्रों से क्या लाभ है जिसे सहस्राधिक तारागण रहते हुए भी नष्ट करने की क्षमता नहीं रखते हैं ।५८। पुत्र का लालन पाँच वर्ष की अवस्था तक करना चाहिए इसके पश्चात् जब उसे कुछ बुरे-भले का थोड़ा सा ज्ञान हो जाता है । छै वर्ष से दस पन्द्रह वर्ष तक डाटा फटकार से जो सुमार्ग पर लावे । जब सोलहवें वर्ष में पदार्पण करे तो फिर उसके साथ एक मित्र की भाँति व्यवहार करे ।५९। पुत्र उत्पन्न हो हुआ भी पत्नी का हरी किया करता है यदि स्त्री के यौवन की आभा का नाश कर पति-मिलन के अयोग्य बना देता है जब वह बड़ा हो जाता है धन का हरण किया करता है, यदि पुत्र पिता के सामने ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है पिता को महान वेदना होती हैं मानों उसके प्राण ही निकल जाया करते है । ऐसा पुत्र के समान अन्य कोई भी शत्रु नहीं है जिसके लिए लोग अत्यन्त लालायित रहते हैं ।६०। कुछ व्याघ्र मृग के तुल्य मुख वाले होते हैं उनके यथार्थ स्वरूप के पारज्ञान प्राप्त करने में पद–पद पर अविश्वास हुआ करता हैं ।६१। क्षमा धारण करने वाले पुरुष सब प्रकार से अच्छे माने जाते हैं किन्तु उनमें एक ही बड़ा भारी दोष होता है कि जो क्षमा से युक्त पुरुष होता है उसे लोग शक्ति से हीन समझने लग जाया करते हैं ।६२। यही माना जाता है कि सांसारिक

भोग क्षणभंगुर होते हैं तो भी स्निग्धों में विदग्ध पुरुष की बुद्धि अनाकुल होती है ।६३।

ज्येष्ठः पितृसमौ भ्राताः मृते पितरि शौनक ।
सर्वेषां स पिता पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालकः ।।६४
कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते ।
समीपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च ।।६५
बहू नामल्पसाराणां समूवायो हि दारुणः ।
तृणेरावेष्टता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ।।६६
अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रच्छति ।
स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ।।६७
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वारणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।६८
ब्रह्मघ्ने च सुरापे चोरे भग्नेव्रते तथा ।
निष्कृतिविहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ।।६९
नाश्नन्ति पितरनो देवाः क्षुद्रस्य बृषलीपतेः ।
भार्याजितस्य नाश्नन्ति यस्याश्चोपपतिर्गृहे ।।७०

हे शौनक ! पिता के मृत हो जाने पर ज्येष्ठ भाई पिता के ही तुल्य होता है । वह सबका अनुपालन करने वाला हुआ करता है और सबका इसीलिए पिता होता है ।६४। जो भी उससे छोटे होतें हैं उन सबका साथ उसका व्यवहार समान होता है जिस प्रकार से तुल्य उपभोग करने वाले और जीवन बिताने वाले पुत्रों में हुआ करता है ।६५। अत्यन्त शक्ति वाले भी यदि वहुत से एकत्रित होकर एक समुदाय में संघटित हो जाते तो महान् दारुण शक्तिशाली हो जाया करते हैं जैसे एक-एक तिनके से बनी हुई मोटी रस्सी इतनी मजबूत हो जाया करती है कि उसमें फिर हाथी जैसे महान् बलबान् पशु को भी बाँध लेने की शक्ति हो जाया करती है ।६६। दूसरे का धन अपहरण कर

जो फिर उसका दान किया करता है उसका दान देने वाला पुरुष नरक का गामी होता है और वास्तवमें उस दानका दान यही फल भी होताहै ।६७। देवोत्तर सम्पत्तिका अपहरण या विनाश करने से-ब्राह्मण का धन अपहरण करने से और ब्राह्मणों का अतिक्रमण करने से कुलों की अकुलता हो जाती है अर्थात् समस्त कुलों का नाश हो जाया करता है।६८। ब्राह्मण का हनन करने वाले, सुरा का पान करने वाले, चोरी करने वाले और व्रत को भग्न करने वाले पुरुष की सत्पुरुषों ने निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित बताया है किन्तु जो कृतघ्न होता है उसका कोई भी प्रायश्चित नहीं होता है। किये हुए उपकार को न मानने वाला पुरुष कहा जाता है ।६९। क्षुद्र और वृषली के स्वामी के यहाँ देवगण और पितरगण भोजन नहीं किया करते हैं। जो भार्या के द्वारा जीता हुआ हो अर्थात् भार्या का ही जिस पर पूर्ण प्रभाव हो और जिसकी भार्या का कोई उपपति घर में रहता हो उसके यहाँ भी देव-पितर असन्तुष्ट होते हुए भोजन नहीं किया करते हैं ।७०।

अकृतमश्रमनार्यञ्च दीर्घरोषमनार्जवम् ।
चतुरो विद्धि चाण्डालान्जात्या जायेत पंचमः ॥७१
नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया ।
वह्निरल्पोऽप्यसंग्राह्य कुरुते भस्मसाज्जगत् ॥७२
नवे वयसि यः शान्त स शान्त इति मे मतिः ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ॥७३
पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणः श्रियः ।
मदीया इति मत्वा व न हि हर्षयुतो भव ॥७४
चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्तिनाशनम्।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीय स्वस्थे चित्ते धातवःसम्भवन्ति॥७५

ये चार पुरुष स्वाभाव और कर्म के कारण ही चाण्डाल हुआ करते हैं एक वह जो किये हुए उपकार को नहीं माना करता है। दूसरा वह जो अनार्य होता है। अर्थात् जिसमें आर्य होने की श्रेष्ठता का पूर्ण—

तथा अभाव होता है तीसरा वह जिसमें बहुत लम्बे समय तक रोग विद्यमान रहता है अर्थात् जिसका क्रोध हृदय के वहा कर किसी भी प्रकार से निकलता ही नही और चौथा वह है जो सरलता से रहित अर्थात् सदा कुटिल वृत्ति वाला होता है। पाँचवाँ चाण्डाल तो वहीं है जो उस चाण्डाल जाति से समुत्पन्न होता है ।७१। दुष्ट बुद्धि वाला साधारण शत्रु भी अवज्ञा से अर्थात् इस भावना से कि यह मामूली शत्रु हमारा क्या बिगाड़ सकता है कभी भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं होता है। अग्नि का छोटा-सा कण भी उपेक्षा योग्य नही होता है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् को ही भस्मसात् कर दिया करता है अर्थात् उस सामान्य सी अग्नि में भी सब कुछ जला कर राख बना देने की क्षमता विद्यमान रहा करती है ।७२। नई उठती हुई अवस्था में जिससे स्वाभाविक रूप से कभी अशान्ति हुआ ही नहीं करती है जो पुरुष शान्ति से युक्त करता है वहीं वास्तव में शान्त प्रकृति वाला पुरुष होता है ऐसा मेरा विचार है जब उम्र ढल जाती है तो सम्पूर्ण शरीर की धातु क्षीण हो जाया करती हैं उस में तो सभी को शान्ति आ जाया करती है क्योंकि किसी भी तरह की शक्ति रहा ही नहीं करती है ।७३। हे विप्रेन्द्र ! मार्गो की भाँति श्रियों का उप भोग सबके लिए साधारण होता है अर्थात् जिस तरह मार्गों में सभी के चलने का अधिकार होता है वैसे ही श्री के भोगने का भी सब को हक हुआ करता है। यह श्री मेरी ही है ऐसा मानकर कभी भी प्रसन्नता से युक्त मत होओ। ऐसा मान लेना उचित नहीं है क्योंकि श्री में सभी का अधिकार रहा करता है ।४७। यह शरीर धातुओं के वश में रहने वाला और चित्त के अधीन ही हुआ करता है। जब चित्त ही नष्ट हो जाता है तो सम्पूर्ण धातुयें भी नाश को प्राप्त हो जाते है। इस चित्त की सर्वदा रक्षा करनी चाहिए। जब चित्त स्वस्थ रहता है तो धातुयें भी शरीर में उत्पन्न होकर सबल एवं समर्थ होती हैं ।७५।

———

७१—नीतिशास्त्र कथन (३)

कुभार्य्याञ्च कुमित्रञ्च कुराजानं कुपुत्रकम् ।
कुकन्यांच कुदेशं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥१
धर्मः प्रवजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं ।
पृथ्वी बन्ध्यफलाः जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिताब्राह्मणाः ।
मर्त्या स्त्रीदशयाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥२
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशङ्गं कुलक्षयम् ।
परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम् ॥३
कुपुत्रे निर्वृतिर्नास्ति कुभार्य्यायां कुतो रतिः ।
कुमित्रे नास्ति विश्वासः कुराज्ये नास्ति जीवितम् ॥४
परान्नं च परस्वं च परशय्याः परस्त्रियः ।
परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि चरेत् ॥५
आलापात् गात्र संस्पर्शात्ससर्गात्सह भोजनात् ।
आसनाच्छयनाद्यशनात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥६
स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति ।
मार्गो दूर प्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमः ॥७

सूतजी ने कहा—दुष्ट स्वभाव भार्या और कुत्सित मित्र तथा बुरा राजा एवं कुपुत्र बुरी कन्या और बुरे देश को दूर से ही त्याग देना चाहिए ।१। वर्त्तमान कलियुग का प्रभाव बताते हैं—यह युग ऐसा है कि इसमें धर्म तो ऐसा चला गया है कि कहीं भी नाम को भी दिख लाई नहीं देता है, यह भी इस समय में चला गया है अर्थात् तपस्या किसे कहते हैं, यह भी कोई नहीं जानता है । सत्य तो नाम मात्र को भी कलियुग में कहीं है नहीं—सत्यता कोई वस्तु है इसकी सत्ता एवं महता को कोई जानता हीं नहीं है । समस्त भूमि का भोग ऐसा है कि इसमें जैसे उपज होनी चाहिए वह कहीं भी नहीं होती है । मनुष्य प्रायः सभी कपठ का व्यवहार रखने वाले हैं और जो ब्राह्मण लोग हैं वे बहुत

अधिक बलवने हो गये हैं अर्थात् चंचलता से पूर्ण है । कलियुग में मनुष्य स्त्रियों के वश में रहा करते हैं । स्त्रियाँ अधिक चंचल हैं ।१। नीच जाति के मनुष्य उन्नतिशील हो गये हैं । वे मनुष्य परम धान्य एवं भाग्यशाली हैं जो अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके और मर गये हैं ।२। इस कलियुग के समय में उन मृत्यु को प्राप्त होने वाले देश के टुकड़ों में बट जाने वाली भंगता को देख रहे हैं और न कुलों के क्षय को ही देखते हैं । दूसरों में अपने चित्त को रमाने वाली दाराओं को और बुरे व्यसनों में फंसे हुए पुत्रों को भी वे मर जाने के कारण नहीं देख रहे हैं ।३। कुपुत्र में निवृत्ति नहीं होती है और जो कुभार्या है उसमें रति भी कैसे हो सकती है । कुमित्र है विश्वास नहीं होता है और बुरे राज्य में जीवन कैसे रह सकता है ।४। पराया अन्न, पराया धन, दूसरे की शय्या, पराई स्त्री, पराये घर में निवास ये इन्द्र की भी श्री का हरण करने वाले कार्य होते हैं ।५। बात-चीत से, गात्र स्पर्श से, सङ्गति से, साथ में भोजन से, साथ में शयन से, और साथ में गान करने से मनुष्यों के पाप का सङ्क्रमण हुआ करता है । स्त्री अधिक रूप लावण्य के होने से नष्ट हो जाया करती है, क्रोध से तपस्या का नाश होता है । दूर प्रचार से मार्ग और शूद्र के अन्न से श्रेष्ठ द्विज का नाश हो जाता है ।७।

आसनादेकशय्या भोजनात्पङ्क्तिसङ्करात् ।
ततः संक्रमते पापं धटाद्धट इवोदकम् ।।८
लालने बह्वो दोषास्ताडने बहवो गुणाः ।
तस्माच्छिष्यंच पुत्रं च ताडयेन्न तु लालयेत् ।।९
अध्या जरा देहवतां पर्वताना जलं जरा ।
असंभोगंच नारीणां वस्त्राणामातपो जरा ।।१०
अधमाः कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ।।११

मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम् ।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा ॥१२
अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१३
वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णंबुभुक्षिता नाशनिरीक्षणञ्च ।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति।१४

एक ही आसन पर स्थिति करने से एक ही शय्या पर करने से, से, एक साथ ही बैठ कर भोजन करने से और पक्ति के सांकर्य होने से अर्थात मिल जाने से, चट ने, दूसरे घट में जल जाने की भाँति एक से दूसरे में पाप का संक्रमण हुआ करता है ।८। लाड-प्यार करने में बहुत से दोष समुत्पन्न हो जाया करते हैं और ताड़ना करने में अधिक गुण होते हैं । इसलिए अपने शिष्य और पुत्र को सर्वदा ताड़ना ही देनी चाहिए केवल लालन नही करे ।९। देह धारियों के लिए मार्ग का गमन करना वार्धक्य है पर्वतों के लिए जल ही जरा है अर्थात उनकी क्षीणता पहुँचाने वाला होता है-नारियों के साथ सम्भोग न करना ही उनकी वृद्धता को करने वाली जरा है और वस्त्र को आतप में रखना जरा है ।१०। जो अधम श्रेणी के मानव होते हैं वे सदा कलह ही चाहा करते करते हैं-मध्यम श्रेणी के पुरुष सन्धि की इच्छा रखते है तथा उत्तम कोटि के मनुष्य मान के इच्छुक होते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का एक मात्र धन मान ही हुआ करता है ।११। मान ही अर्थका मूल है क्योंकि महान मान की प्राप्ति के लिए अर्थ की इच्छा की जाया करती है । यदि मान हैं तो फिर उसके होने पर अर्थसे क्या आयोजन है, जिसके मान का दर्प ही भ्रष्ट हो गया है उसका धन और आयुसे भी क्या लाभ है अर्थात् फिर तो उनका धन और जीवन दोनों ही इस संसार में व्यर्थ है ।१२। अधम पुरुष ही धन की इच्छा किया करते हैं जो मध्य श्रेणी के लोग हैं वे धन और मान दोनोंकी अभिलाषा रखा करते हैं । किन्तु

महान् पुरुषों का धन तो मान ही हुआ करता है ।१३। धन में भूले भी सिंह कर्णका नमन नहीं किया करते हैं और न कभी अंशका ही निरीक्षण करते हैं । इसी प्रकार से धन हीन पुरुष भी जो अच्छे कुलों में उत्पन्न हुए हैं कभी भी नीच कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते है अर्थात् धन की प्राप्ति के लिए बुरे काम कभी नहीं करते हैं ।१४।

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
नित्यमूर्जितसत्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।१५
वणिक्प्रमादी भृतकश्च मानी भिक्षु विलासी ह्यधनश्चकामी ।
वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न तेषु कर्माणि समारभन्ति ।।१६
दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा ।
परोपकारेषु नरस्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पंच ।।१७
कान्तावियोगः स्वजनापमान ऋणस्य शेषः कुजनस्य सेवा ।
दारिद्रयभावाद्विनुखाश्चमित्रा विनाग्नितापं प्रदहन्तितीव्रा ।।१८
चिन्तासहस्रेषु च तेषु मध्ये चिन्ताश्चतस्रोऽप्यसिधारतुल्याः ।
नीचापमानं क्षुधित कलत्रं भार्य्या विरक्ता सहजोपरोधः ।।१९
वैश्यश्च पुत्रोऽर्थंकरी च विद्या आरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च ।
इष्टा च भार्य्या वशवर्त्तिनीं च दुःखस्यमूलोद्धरणादि पंच ।।२०
कुरङ्गमातंगपतंगभृगा मीना हता पंचभिरेव पंच ।
एकः प्रमाथीस कथंन धात्यो यः सेवतें पंचभिरेव पञ्च ।।२१

वन में सिंह का कभी किसी ने अभिषेक नहीं किया है अर्थात् उसे किसी ने वन के राज्य का राजा नही बनाया है किन्तु अपने पौरुष के कारण ही वन के जीवों का राजा बन गया है ।१५। प्रमादशील वैश्य अर्थात् व्यापार व्यवसाय करने वाला,मान रखने वाला भृतक अर्थात् सेवा वृत्ति करने वाला मानव-विलासशील भिक्षु और विना धन वाला कामी तथा अप्रिय बोलने वाली वराङ्गना कभी अपने कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् ये लोग अपने कर्मों में कभी सफल नहीं हो

सकते है ।१६। दानशील पुरुष का दरिद्री होना अर्थ सम्पन्न पुरुष का कृपण होना, पुत्र आज्ञाकारी न होना दुष्ट पुरुष की सेवा करना और पर के अपकार करने में मृत्युका हो जाना ये पांच दुश्चरित्र हुआ करते हैं ।१७। अपनी कान्ता से विछोह का होना, अपने जनों के द्वारा या अपने ही जनों के मध्य में अपमान का होना, ऋण का शेष बना रहना बुरे पुरुष की सेवा का करना और दारिद्रय के होने के कारण मित्रों से विमुख हो जाना ये पाँच कार्य ऐसे हैं जो विना ही अग्नि के बहुय तीव्र दाह किया करते हैं ।१८। यों तो मनुष्यको सहस्त्रों प्रकार की चिन्ताएँ इस सांसारिक जीवन में रहा करती हैं किन्तु उन सबमें चार चिन्ताएँ खाड़े की धारके अपमान होना,भार्या का भूखा रहना पत्नी का अपने विषय के द्वारा अपमान का होना, भार्याका भूखा रहना पत्नी का अपने विषय में विरक्त रहना और सहज उपरोध का होना ।१९। पुत्र का वशगत होना अर्थोपार्जन करने वाली विद्या का अपने पास रहना रोगों का न होना सज्जन पुरुषों की सङ्गति का रहना भार्या का प्यार और अपने वश में रहना ये पांच कारण ऐसे हैं जो दुःख के मूल का उद्धरण करने वाले होते है ।२०। हरिण, मातङ्ग, पतङ्ग, भृङ्ग, और मीन ये पाँच पाँचों से ही हत होते है । हरिण श्रवणेन्द्रिय के अधीन होकर वाद्य सुनने में ऐसा खो-सा जाता है कि शिकारी उसे मार देता है, मातङ्ग मदो--न्मत्तता से, पतङ्ग दीपक की लौ पर प्रेम करने से, भृङ्ग' पुष्प-राज के आस्वादन से और मीन गन्धाकर्षण से मृत्यु का ग्रास होताहै । उस सब में एक-एक इन्द्रिय का ही आकर्षण मौत के मुँहमें डाल दिया करता है तो जो मानव अपनी सभी इन्द्रियों के अर्थात् पाँचों के अधीन होता है वह क्यों नहीं घातके योग्य होवे अर्थात् अवश्य ही होनी चाहिए ।२१।

अधीरः कर्कशः स्तब्धः कुचेलः स्वयमागतः ।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥२२॥
आयुः कर्मं चरित्रंच विद्या निधनमेव च ।
पंचैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः ॥२३

पर्वतारोहणं तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे ।
पतितस्य समुत्थाने शस्ताः ह्येते गुणाः स्मृताः ॥२४
अभ्रच्छाया खलेप्रीतिः परनारीषु सङ्गतिः ।
पंचैते ह्यस्थिरां भावा योवशानि घनानि च ॥२५
अस्थिरं जीवितं लोके ह्यस्थिरं धनयौबनञ्च ।
अस्थिरं पुत्रदाराद्यं धर्मं कीर्तियंशः स्थिरम् ॥२६
शतं जीवितमत्यल्पं रात्रिस्तद्धं हारिणी ।
व्याधिशोकजरायासैरर्द्धं तदपि निष्फलम् ॥२७
आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्द्धं गतं ।
तस्यार्द्धं स्थितकिंचिदर्द्धमधिकं बालस्य काले हृतम् ।
किंचिद्वन्धुवियोमदुःखमरणैर्भूपालसेवागतं ।
शेषं वारितांरंगगर्भचपलं मानेन किं मानिनाम् ॥२८

जो विप्र धैर्य हीन कर्कश (कठोर) स्तब्ध,-बुरे तथा मलिन वस्त्रों वाला और अपने आप ही बिना आह्वानं के आया हुआ हो—ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण चाहे बृहस्पति के समान ही विद्वान् क्यों न हो कभी पूजा के योग्य नहीं हुआ करते हैं ।२२। आयु, कर्म, चरित्र, विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें देहधारी के जन्म के साथ ही निश्चित हो जाया करती है । विग्रह में पड़े हुए मानव या प्राणी के समुत्थान करने में जो प्रयत्न किया करते हैं उनके गुण बहुत प्रशंसा माने गए ।२४। मेघों की छाया, खल पुरुष में प्रीति करना, पराई नारी के साथ सङ्गति, यौवन और धन का होना ये पाँच भाव स्थिर नहीं होते हैं ।२५। इस लोक में जीवन का रहना अस्थिर है और धन तथा यौवन भी स्थिर नहीं रहने वाला होता है । पुत्र एवं दारा आदिका भी स्थिर होताहै । केवल इस लोक में किया हुआ धर्म कीर्त्ति और यश ही स्थिर नहीं होता है ।२६। सौ वर्ष की मारद को परमायु बताई जाती है किन्तु वह भी विचार किया जावे तो बहुत ही अल्प होती है क्योंकि उस आयुका आधा भाग तो रात्रियों में केवल शयन करनेमें ही नष्ट हो जाया करता

है। बची हुई आधी आयु में व्याधि शोक-वार्धक्यके आयास हुआ करते हैं इन सबके होने के कारण वह भी फल रहित हो जाया करती हैं मानवों की परिमित सौ वर्ष की उम्र में आधी रात्रियों में समाप्त हो जाती है। उस शेष आधी का आधा भाग बाल्यकाल में अज्ञानावस्था है ही नष्ट हो जाया करता हैं। बचा हुआ चौथाई भाग रहा उसनें वन्धुवियोग का दुःख राजा की सेवा आदि में नष्ट हो जाता है. अब बहुत थोड़ा सा भाग रह जाता है-जो कि जल की तरङ्ग से गर्भ समान चञ्चल होता है। इससे भी मानी लोग मान जो किया करते हैं वह निष्फल होता है अर्थात इस बहुत ही स्वल्प जीवन में मान करने से क्या लाभ है।२८।

अहोरात्रोमयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत्।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा ॥२९
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपता न चेत्।
सर्वसत्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम् ॥३०
अहिताविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिसमये वहुभिर्वितर्कितस्य।
उदरभरणमात्रतुष्टबुद्धेः पुरुषपशोः पशोश्च को विशेषः॥३१
शौर्ये तपसि दाने च यस्य न प्रथितं यशः।
विद्यायामार्थलाभे वा मातुरुचार एव सः ॥३२
यज्जीवितं क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञानविक्रयशोभिरभग्नमानैः
तन्नामजीवितमिति प्रवदन्ति तज्ञाः काकोऽपि
जीवति चिरञ्च वलिञ्च भुङ्क्ते ॥३३
किं जीवितेन धनमानविवर्जितेनं
मित्रेण किं भवतीति सशङ्कितेन च।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत मां विषादं काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३४
यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे
दीने दयां न कुरुते न च मित्रकार्ये।

किं तस्य जीवतिफलेन मनुष्यलोके ।
काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिन भुङ्क्ते ॥३५

इस लोक में दिन और रात्रि से स्वरूप में समय निकालकर जरा के रूप में मानव को लाकर डाल दिया करता है ।२६। यदि चलते ठहरते, जागतें–सोते हुए भी समस्त जीवों कें हित के लिए कुछ भी नहीं किया जाता है तो फिर यों ही सम्पूर्ण जीवन को बिता देना एक पशु के ही समान हुआ करता है ।३०। अपने हित और अहित के विचार से शून्य बुद्धि वाले और श्रुति के समय में वहुतों के द्वारा गिर्तकित तथा केवल अपने ही उदर के भरण से तुष्ट वुद्धि वाले पुरुष का जो एक पशु के ही समान होता है ।३१। जिस पुरुष का शूरता-तपश्चर्ता-दानविद्या और अर्थ के लाभ करने में संसार में यश प्रथित नहीं हुआ है उनका जन्म तो केवल अपनी माता के यौवन की छटा को नाश करने के लिए होता है ।३२। सत् जीवन एक क्षणका भी प्रथित होताहै जो कि मानव अभग्नमान विज्ञान विक्रमें औप यश के द्वारा जीवित रहा करते हैं । ज्ञाता पुरुष ऐसे ही जीवन को वास्तविक जीवित कहते हैं और यों तो एक कौआ भी बलि को खाकर बहुत समय तक जीवित रहा करताहै । इसी की भाँति जीवन से क्या लाभ है ।३३। जो जीवन धन और भाग से रहित होता है इससे क्या लाभ है और जो सर्वदा सशङ्कित रहने वाला हो ऐसे मित्र से भी क्या प्रयोजन है । तू सिंह के समान व्रत में रत रह और कभी भी विषाद मत करे । कौए की तरह बलि खाकर जीवन चिरकाल तक रखना किसी भी काम का जीवन नहीं होता है । जो मनुष्य अपने लिए,गुरु,भृत्य वर्ग,दीन-दुःखियों पर दया नहीं किया । करता है और न कभी मित्र के भी किसी कार्य में आता है ऐसे मनुष्य के जीवन से इस मनुष्य लोक में क्या फल हैं अर्थात् ऐसे मानव का जीवन सर्वथा निष्फल ही होता है । यों तो अधिक समय तक एक कौआ भी बलि खाकर अपना जीनन जिया करता है जिसका जीवन किसी भी काम नहीं आता है ।३५।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥३६

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
ये पराधीनकर्माणेः जीवन्तोऽपि च ते मृताः ॥३७

स्वपुरो व कापुरुषः स्वपुरो मूषिकाञ्जलिः ।
असन्तुष्टः कापुरुष स्वल्पकेनापि तुष्याति ॥३८

अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम् ।
वेश्यारागः खले प्रीतिः षडेते बुद्बुदौपमाः ॥३९

वाचा विहितसार्थेन लोको न च सुखायते ।
जीवितं मानमूलं हि माने कुतः सुखम् ॥४०

अवलस्य वल राजा वालस्य रुदितं बलम् ।
वलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करभ्यानृतं वलम् ॥४१

यथां यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथाऽस्यमेधा स्याद्विज्ञानंचास्य रोचते ॥४२

जिसके त्रिवर्गसे शून्य दिवस आते हैं और यों ही चले जाया करते हैं वह मानव लुहार की धौंकनी की भाँति केवल श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं माना जाता है अर्थात् उसका जीवन निष्प्रयोजन ही होता है।३६। स्वाधीन वृत्ति वाले ही का जीवन सर्वदा सफल होता है । जो पराधीन वृत्ति वाला होता है और पराए अधीन कर्मो वाला होता है वह जीवित रहता हुआ भी मृत के ही समान होता है ।३७। अपने पुर वाले कायर पुरुष होते हैं,अपने पुर वाली मूषिकांजलि है । असंतुष्ट का पुरुष थोड़े से ही सन्तोष कर लिया करता है ।३८। मेघों की छाया तृणों से अग्नि का बनाना, नीच पुरुष की सेवा, मार्ग में जल, वैश्या का राग (देह) और खल पुरुष में प्रीति ये छै काम बुलबुले के ही तुल्य क्षण स्थायी हुआ करते हैं ।३९। केवल वाणी से साथ अर्थात् सहयोग से लोगों को सुख नही हुआ करता है । यह जीवन तो मान के मूल वाला होता है । जब वह मान ही म्लान हो जाता है तो फिर

जीवन में सुख कैसे हो सकता है ।४०। जो बलहीन कमजोर पुरुष होते है उनका बल तो राजा ही होता है । वे राजाके पास न्याय की पुकार किया करते हैं । मूर्ख का बल मौन हो जाता है और तस्कर आदमीका बल मिथ्या भाषण एवं झूँठा व्यवसाय हुआ करता है ।१४। 'जैसे-जैसे पुरुष को शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है वैसे-वैसे ही इसकी मेधा की वृद्धि होती है ।४२।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम् ।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लौकसुप्रियः ।।४३
लोभप्रमादविश्वासैः पुरुषो नश्यति त्रिभिः ।
तस्माल्लोभो न कर्त्तव्यः प्रमादो नो न विश्वसेत् ।।४४
तावद्भयस्य भेत्तव्यं यावद्भयमनागतम् ।
उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्यं वै ह्यभीतवत् ।।४५
ऋणशेषञ्चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ।।४६
कृते प्रतिकृत कुर्य्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दोषं समाचरेत् ।।४७
परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं मायामयमरिन्तथा ।।४८
दुर्जनस्य हि सङ्गे न सुजनोऽपि विनश्यति ।
प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कलुषीकृतम् ।।४९

जैसे-जैसे मनुष्य कल्याण से अपनी वृद्धि किया करता है वैसे-वैसे ही वह सब जगह लोक का परम प्रिय होकर सम्बन्ध किया करता है ।४३। इस जगती तल में मनुष्य लोभ, प्रमाद और विश्वास, इन तीनों से नाश को प्राप्त होता है । इसलिए लोभ नहीं करना चाहिए, प्रमाद (लापरवाही) न करे और हर एक का विलाप भी नहीं करना चाहिए ।४४। भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक वह भय अपने से दूर

रहता है और आता नहीं है। जब भय निकट आ ही जाता है और तीव्र रूप धारण कर लेताहै तो फिर एकदम निडर होकर उसके समक्ष स्थित होकर उसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिए ।४५। ऋण का बाकी रह जाना, रोग का कुछ अंश बच जाना और अग्निका कुछ भी थोड़ा सा भाग रह जाना फिर बार-बार बढ़ कर उग्र रूप धारण कर लिया करता है। इसलिए इन तीन चीजों को तो बिल्कुल निःशेष ही करके रहना चाहिए ।४६। जो जैसा भी व्यवहार बुरा-भला करता है उसका जबाव भी वैसे ही व्यवहार से देना चाहिए। यदि कोई हिंसा पूर्ण व्यवहार करें तो उसके साथ प्रतिहिंसा ही करे ।४७। जो समक्ष में तो परम प्रिय भाषण करने वाला हो और पीछे कार्य को नष्ट कर देने वाला रहा करता हो ऐसे माया से परिपूर्ण शत्रु की भाँति मित्र का त्याग ही कर देवे ।४८। दुर्जन पुरुष के सङ्ग से सज्जन पुरुष भी विनष्ट हो जाया करते हैं जिस तरह स्वच्छ जल को भी कीचड़ से मैला कर दिया जाया करता हैं ।४९।

सम्यग्भुङ्क्ते जनः सो हि द्विजायार्थी हि यस्य वै।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विजः पूज्यः प्रयत्नतः ॥५०

तद् भुज्यते यद्द्विजभुज्यशेषं स बुद्धिमान्यो न करोति पापम्।
तत्सौहृदं यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना यः क्रियते स धर्मः ॥५१
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति नैतत्सत्यं यच्छलेनानुबद्धम् ॥५२
ब्राह्मणोऽपि सर्वगात्राणां व्रतानां सत्यमुत्तमम् ॥५३
तन्मगलं यत्र मनः प्रसन्नं तज्जीवनं यन्न परस्य सेवा।
तदर्जितं यत्स्वजनेन मुक्तं तद् गर्जितं यत्समरेरिपूणाम् ॥५४
सा स्त्री या न मदं कुर्यात्स सुखी तृष्णयोज्झितः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुषः स जितेन्द्रियः ॥५५
तत्र मुक्तादरस्नेहो विलुप्तं यत्र सौहृदम्।
तदेवं केवलं श्लाघ्यं यस्यात्मा क्रिमते स्तुतौ ॥५६

जिसका धन द्विजों के लिए होता है वहभी भली भाँति भोग करने का सुख प्राप्त करता है ।५०। जो द्विजों के उपभोग से शेष रहता है वही भोग की वस्तु हुआ करती हैं बुद्धिमान् वही पुरुष है जो कभी पाप कर्म नहीं करता है, सौहृद वास्तव में वही है जो पीठ पींछे किया जावे और धर्म वही है जो बिना किसी दम्भ (कपट या दिखावा) के किया जाया करता है ।५१। उसे सभा या समिति नहीं कहा जा सकता है जिसमें बृद्ध अर्थात् अनुभवशील पुरुष न हों, वृद्ध भी उन्हें नहीं कहना चाहिए जो न्याय सङ्गत धर्म की बातें नहीं कहते हैं। धर्म भी वही होता हैं जिसमें सत्यता विद्यमान है और सत्य वही हैं जो छल कपट से अनुविद्ध न हो ।५२। मनुष्यों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, तेजों में सर्वाधिक सूर्यदेव है, शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों में शिर सर्वोत्तम अङ्ग होता है और व्रतों में सत्य का व्रत ही सबसे उत्तम व्रत है ।५३। मङ्गल कार्य वही है जिनमें मानव का मन प्रसन्नता का अनुभव किया करता है। जीवन वही सार्थक एवं सफल होता है जिसमें दूसरों की सेवा का कार्य किया जावे। कमाई वही है जिसका उपभोग अपने मनुष्यों के द्वारा किया जावे और गर्जना वही सफल है जो संग्राम में शत्रुओं के समक्ष में की जाती है ।५४। स्त्री वह ही सुख प्रदान करने वाली है जो कभी मद नहीं किया करती है। सच्चा सुखी वही मनुष्य होता है जिसे तृष्णा नहीं होती है। मित्र वही होता है जिनमें पूर्ण विश्वास किया जा सकता है और वास्तव में प्रशस्त पुरुष वह ही होता है जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत रक्खा है ।५५। जिसमें सौहृद विलुप्त हो जाता है अर्थात् सौहार्द का भाव ही नहीं रहा करता है वहाँ स्नेह और आदर भी छूट जाता है। प्रशंसा के योग्य वही है जिसकी स्तुति आत्मा के द्वारा की जाया करती है ।५६।

नदीनामग्निहोत्राणां भारतस्य कुलस्य च।
मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलाद्दोषेण हीयते ।।५७

लवणजलान्ता नद्यः स्त्रीभेदान्तच मैथुनम् ।
पशुन्यं जनवार्त्तान्तं वित्तं दुःखकृतान्तकम् ॥५८
राज्यश्रीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्तं ब्रह्मवर्चसम् ।
आचारं घोषवासान्तं कुलस्यान्तं स्त्रियः प्रभोः ॥५९
सर्वेक्षयान्ता निलयाः पतनान्ता समृच्छिताः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥६०
यदीच्छेत्पुनरागन्तुं नातिदूरमनुव्रजत् ।
उवकान्ताग्निवर्त्तत स्निग्धवर्णाच्च पावपात् ॥६१
अनायके न वस्तव्यं न वा च बहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्यं तथा च बालनायके ॥६२
पिता रक्षाति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥६३

नदियों का, अग्निहोत्रों का और भारत के कुल का, मूल का, अन्वेषण नहीं करे क्यों कि मूल से वे सब दोष से हीन होते हैं ।५७। नदियों का अन्त समुद्र में होता है । मैथुन वही है जिसमें स्त्रीका भेदन करके समाप्त हो जाता है । पिशुनता का अन्त वहीं हो जाताहै जबकि लोगों तक वह बात पहुँचा दी जाती है और वित्त का अन्त दुःख करने वाला ही होता है ।५८। ब्राह्मणों के शाप से राज्य श्री का, पाप कर्मसे ब्रह्मवर्चस का अन्त या नाश हो जाता है । गाँव में वास करने से आचार की समाप्ति हो जाती है और स्त्री की प्रभुता जहाँ पर होती है वहाँ कुल का अन्त ही समझ लेना चाहिए ।५९। जितनें भी आवास गृह हैं उन सबका एक दिन क्षय हो कर अन्त होगा । जो जितना भी ऊपर को उठा है उनका अन्त में पतन अवश्य ही होना है । संसार में जिनसे संयोग हुआ है उसका अन्त वियोग में अवश्य ही होगा और जो यह जीवन है उसका अन्त मरण से ही होगा ।६०। यदि पुनः आगमन करने की इच्छा रक्खे तो किसी की विदाई करने के लिए अधिक दूर तक पीछे या साथ नहीं जाना चाहिए । जहाँ भी कोई जलाशय हो वह

से पहुँचा कर वापिस लौट आना चाहिए अथवा स्निग्ध वर्ण वाले वृक्ष से वापिस लौट आवे ।६१। जिस, ग्राम या नगर देश में कोई नायक न हो वहाँ निवास नहीं करे और,जहाँ वहुत से नायक हों वहां पर भी निवास नहीं करना चाहिए । स्त्री जहाँ की प्रमुख नायक हो वहाँ और बालक जिसका नायक हो वहाँ पर भी निवास करना उचित नहीं है ।६२। स्त्री की रक्षा एवं पोषण बचपन में पिता किया करता हैं, यौवन की दशा में स्त्री का पालक एवं रक्षक पति होता है । वृद्धावस्था में स्त्री की सुरक्षा पुत्र किया करता है । स्त्रियों के जीवन में स्वतन्त्र रहकर अपने निर्वाहका कभी कोई अवसर ही नहीं होताहै।६३।

त्यजेद्वन्ध्यामष्टमेऽब्दे नवमे तु मृतप्रजाम् ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यश्चाप्रियवादिनीम् ।।६४
अनार्थेत्वान्मनुष्याणां भिया परिजनस्य च ।
अर्थादपेतमर्यादात्त्रयस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ।।६५
अश्वं क्षान्त गजं मत्तं गावः प्रथमसूतिकाः ।
अनुनके च मन्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ।।६६
अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धु कामातुराणां न भय लज्जा ।
चिन्तातुराणां न सुखेननिद्रा क्षुधातुराणा लवणं न तेजः।६७
कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्वरस्य च ।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ।।६८
सुखं स्वपित्यनृणवान्व्याधिमुक्तश्च यो नरः ।
सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः ।।६९
अम्भसः परिमाणेन उन्नतं कमलं भवेत् ।
स्वस्वामिना वलवता भृत्या भवति गर्वितः ।।७०

जो पत्नी वन्ध्या हो उसकी प्रतीक्षा सात वर्ष तक करे और यदि उसका वन्ध्यात्व स्थिर रहता है तो आठवें वर्ष में उसका त्याग करे दूसरी पत्नी लानी चाहिए । जिससे सन्तान उत्पन्न तो होती हैं वन्ध्या नहीं है किन्तु उत्पन्न होकर मर जाया करती हो तो उस पत्नी को

नवम वर्ष में त्याग देवे । सन्तति भी हों और जीवित भी रहें किन्तु केवल कन्या ही उत्पन्न होती हों उसका त्याग ग्यारहवें वर्ष में कर दूसरी पत्नी लावे जो कभी प्रिय भाषण न कर सर्वदा अप्रिय बोलने वाली पत्नी हो तो उसका त्याग तुरन्त ही कर देना चाहिए ।६४। पतिव्रत धर्म के तीन कारण होते हैं । एक उनको ऐसे पुरुषों का सम्पर्क नहीं होता कि उनमें वे रमणेच्छा को प्रार्थना करें, दूसरा है परिजन के लोगों का भय उनके हृदय में बना रहता है कि कोई जान या देख लेगा तो अपयश हो जावेगा । तीसरा यह कि स्त्रियाँ अर्थ से अपेक्षा मर्यादा वाली हुआ करती है अर्थात् धन से मर्यादा का त्याग कर देने वाली होती हैं । धर्म समझ कर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली तो विरला ही होती है ।६५। थके हुए अश्व को, मन्दोन्मत्त हाथी को और पहिली बार ब्याई हुई गौ को तथा बिना जल के रहने वाले मण्डूकों को मनुष्यों को दूर से ही परिवर्जित कर देना चाहिए ।६६।जो अर्थ से आतुर होते हैं अर्थात् धन के लालची मनुष्य होते हैं उनका न तो कोई बन्धु होता है और न कोई मित्र ही होता है क्योंकि उनकेलिए धन ही परम प्रिय वस्तु होती है । जो काम के वशीभूत मनुष्य हैं उन्हें कोई भी भय और लोक लज्जा नहीं हुआ करती है वे तो एकमद अन्धे से होकर कामवासना की पूर्त्ति करना ठीक समझते हैं । जो चिन्ता से आतुर होते हैं उनको कभी भी सुख और निद्रा नहीं हुआ करते हैं और भूख से पीड़ित मनुष्यों को लवण और तेज नहीं रहता है ।६७। जो बिचारा दरिद्र है उसे सुख की निद्रा कैसे हो सकती है ? दूसरे के द्वारा भेजे हुए दूत और पराई स्त्री में आसक्ति रखने वाले पुरुष तथा दूसरे के धनको हरण करने वाले पुरुष को भी नींद नहीं आया करतीहै ।६८। जो ऋण से मुक्त होता है और व्याधियोंसे रहित होता वह मनुष्य सुख पूर्वक निद्रा का आनन्द प्राप्त किया करता है । जो दाराओं की सङ्गति से रहित होता है वह सावकाश होता हुआ भोगा करता है ।६९। जल के परिणाम के कमल उन्नत हो जाया करता है अर्थात् जल यदि

बढ़ता है तो कमल भी उतना ही बढ़ जाया करता है । अपने बलवान् स्वामी के द्वारा भृत्य गर्व से युक्त हुआ करती है ।७०।

स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ ।
स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेशशोषणकारकौ ।।७१
पदे स्थितस्य मिमा ये ते तस्य रिपुतां गताः ।
भानो पद्मे जले प्रीतिः स्थलोद्धरणशोषणः ।।७२
स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः ।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः ।।७३
आचारःकुलमाख्याति वपुरा ख्याति भाषितज्ञ ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।।७३
वृथा वृष्टिः समुद्रस्य तृप्तस्य भोजनं वृथा ।
वृथा दानं समद्धस्य तीचस्य सुकृतं यथा ।।७५
दूरस्थोऽपि समीपस्थी यो यस्य हृदये स्थितः ।
हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरितः ।।७६
मुख भङ्गः स्वरो दीतो गात्रस्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिन्हानियाचतः ।।७७

अपनी उत्पत्ति के स्थान पर स्थित रहने वाले कमल के वरुण और भास्कर दोनों ही मित्र होते है अर्थात् उसके विकास करने वाले हुआ करते हैं । जब कमल अपने स्थान से च्युत हो जाता है तो ये वरुण–भास्कर दोनो ही उसके क्लेश एवं शोष करने वालें हो जाया करते हैं ।७१।पद पर स्थित के जो मित्र होतेहैं वे ही पचच्युत होने पर शत्रु का स्वरूप धारण कर लिया करते हैं । भानु की जल में रहने पर तो कमल से प्रीति होती है और स्थल पर उसका उद्धारण होते ही वहीं भानु उस कमल को शोषण करने वाला हो जाया करता है ।७२। जो अपने समुचित स्थान पर स्थित रहा करते है वे पूजा के योग्य होते हैं और जो पद पर अवस्थित रहते हैं वे भी पूजे जाया करते है स्थान से भ्रष्ट हो जाने पर केश, दांत और नख कभी पूजित एवं शोभा सम्पन्न नहीं हुआ करतें हैं ।७३। आकार मानव के कुल को प्रकट

कर दिया करता कि यह कैसे कुल में उत्पन्न हुआ है। भाषित शरीर को प्रकट करता अर्थात् भाषण से उसके शरीर के ज्ञान का परिचय हो जाता है। सम्भव स्नेह को व्यक्त कर देता है और शरीर से उसके भोजन का ज्ञान हो जाता हैं कि जैसा भोजन इसे मिलता हैं क्योंकि शारीरिक पुष्टि भोजन से ही हुआ करती है ।७४। समुद्री भाग में वृष्टि का होना निष्फल होता है और जो पहिले से ही तृप्त हैं उनको भोजन खिलाना व्यर्थ हैं। समृद्धि से सम्पन्न पुरुष को दान देना बेकार है जैसे नीच का सुकृत व्यर्थ होता है ।७५। चाहे कितने ही दूरस्थ देश में क्यों न हो यदि हृदय में उनके लिए स्थान है तो वह समीप में ही रहा करता है। जो हृदय से निकल जाता है वह चाहे समीप में ही क्यों न स्थित हो वह दूर ही रहता है ।७६। दीनता से भरा हुआ स्वर पसीने का होना-और भारी भय-ये सब बातें याचना करने वाले पुरुष को होती हैं। ये ही मरणासन्न व्यक्ति के ही लक्षण होते हैं। तात्पर्य यह है कि याचना का काम मृत्यु के समान ही होता है ।७७।

कुब्जस्य कीटघातस्य वातान्निष्कासितस्त च।
शिखरे वसतस्तस्य वरं जन्म न याचितम् ॥७८
जगपतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनताङ्गतः।
कोऽन्योऽधिकतरस्यस्य योऽर्णोर्थी याति न लाघवम् ॥७९
माता शत्रुः पिता वैरी वाला येन न पाठिताः।
सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये वका यथा ॥८०
विद्या नाम नृरूपरूमधिक विद्यात्रिगुप्तं धनं।
विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनातिनाशतका विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः ॥८१
गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्यं लग्नं चैव तु दृश्यते।
अशेष हरणीयं विद्या न ह्रियते परैः ।८२
शौनकाय नीतिसार विष्णुः सर्वतानि च।

कथयामास वै पूर्वं तत्र शुश्राव शङ्करः ।
शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च ॥८३

कुवड़ा-की टघात बात से निष्कासित और शिखरपर निवास करने वाले का जन्म याचना करने वाले के जन्म से कहीं अच्छा होता है । याचनावृत्ति बहुत ही गर्हित होती है ।७८। अखिल ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् विष्णु को भी जब याचना करने के कर्ममें प्रवृत्त हुए तो उनको भी वैसा बनना पड़ा । भगवान् से अधिक अन्य कौन हो सकता है । जो कोई भी हो जब याचना करता है तो सबको ही छोटापन धारण करना ही पड़ता है ।७९। वह माता शत्रु है और वह पिता वैरी है जिसने अपने बालक को लिखा-पढ़ाकर सुशिक्षित नहीं बनाया हैं । जो अशिक्षित होते हैं वे सभा के मध्य में हंसों में बगुलों की भाँति शोभा नहीं दिया करते हैं ।८०। विद्या कुरूप पुरुष का भी एक विशेष रूप सौन्दर्य होती है । विद्या अत्यन्त ही गुप्त धन है । विद्या मानव को साधु बना देने वाली समस्तजनों के विप्र के करने वाली और विद्या गुरुओं की भी गुरु होती है । विद्या बन्धुजन के तुल्य होती है । विद्या आर्त्ति (पीड़ा) का नाश करने वाली है । विद्या परम देवता है । विद्या की पूजा राजाओं के यहाँ होती है । जो ऐसे अनेक अद्भुत चमत्कारों से परिपूर्ण विद्या से हीन होता है वह मनुष्य पशु के समान होता है । ।८१। घर के अन्दर छिपाकर रक्खा हुआ भी धन दिखलाई दे जाता है । घर का सब धन हरण करनेके योग्य होता है अर्थात् लोग ले लिया करते हैं किन्तु विद्या रूपी धन ही ऐसा धन है जिसको दूसरे लोग नहीं ले सकते हैं ।८२। भगवान् विष्णु ने शौनक से कहा था और वहां पर शङ्कर ने इनका श्रवण किया था । उनसे व्यास महर्षि ने सुना था और व्यास से हम लोगों ने श्रवण किया था ।८३।

७२ — तिथियों के व्रत

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि हरिर्यैः सर्वदा भवेत् ।
सर्वमाससर्क्षतिथिषु वारेषु हरिरर्च्चितः ॥१

एकभुक्ते न नक्ते न उपवास फलादिना ।
ददातिघनधान्यादि पुत्रराज्यजयशया ।।२
वैश्वानरः प्रतिपदि कुबेरः पूजितोऽर्थदः ।
उपोष्यब्रह्मा प्रतिपद्यर्च्चितः श्रीस्तथाश्विनीम् ।।३
द्वितीयायाँ यमो लक्ष्मीर्नारायण इहार्थदः ।
तृतीयायां त्रिदेवाँश्च गौरीविघ्नेशशङ्करान् ।।४
चतृर्थ्याञ्च चतुर्व्यू हः पंचम्यामर्चितो हरिः ।
कार्त्तिकेयो रविः षष्ठ्यां सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः ।।५
दुर्गाष्टम्यां नवम्यांच मातरोऽथ दिशोऽर्थदः ।
दशम्यांच यमश्चन्द्र एकादश्यामृषीन्यजेत् ।।६
द्वादश्यांच हरिः कामं त्रयोदश्यां महेश्वरः ।
चदुर्दश्यां पचदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽर्थदाः ।।७
अमावस्या पूजनीयाश्च वारा वै भास्करादयः ।
नक्षत्राणि च योगाश्च पूजिताः सर्वदायका ।।८

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! अब मैं उन व्रतों के विषय में तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ जिन व्रतों के द्वारा भगवान् हरि समस्त पदार्थ प्रदान करने वाले हो जाते हैं । भगवान् हरि, सभी मास-नक्षत्र-तिथि और वारों में पूजित होते हैं ।१। एक ही संशय में रात्रिमें उपवास फल आदि के द्वारा पुत्र-राज्य और जय की आशा से धन-धान्यादि देती है उसकी अभीष्ट की सिद्धि होती है ।२। वैश्वानर और कुबेर प्रतिपदा के दिन पूजित होने पर अर्थ के दाता होते हैं । उपवास करके प्रतिपदा में ब्रह्मा-श्री और अश्विनी को अर्जित करे ।३। द्वितीया (दोज) में यम-लक्ष्मी और नारायण की तथा तृतीया तिथिमें गौरी-विघ्नेश्वर गणपति और शङ्कर इन तीनों देवों की अर्चा करे ।४। चतुर्थी तिथि में चतु-र्व्यूह का यजन करे और पंचमी तिथि में भगवान् हरि का समर्चन करना चाहिए । स्वामी कार्त्तिकेय और भास्कर देव का पूजन षष्ठी तिथि में करे । सप्तमी तिथिमें सूर्यदेव की पूजा करनेसे वह अर्थ प्रदान

किया करते हैं ।५। दुर्गाष्टमी और नवमी तिथि में माताओं का और दिशाओं का पूजन करने से अर्थ प्रदान करने वाले होती है । दशमी तिथि में यम तथा चन्द्रमा का एवं एकादशी तिथियों का यजन करना चाहिए ।६। द्वादशी तिथि के दिन भगवान् हरि करने से कामनाओं की पूर्ति किया करते हैं और त्रयोदशी (तेरह) तिथिमें भगवान् महेश्वरका पूजन करना चाहिए । चतुर्दशी और एकादशी तिथियों में ब्रह्मा का तथा पितारों का पूजन करने से ये अर्थ का प्रदान करते हैं ।७। अमावस्या तिथि में बार और भास्कर आदि-नक्षत्र तथा योग पूजित होकर सब कुछ प्रदान करने वाले हैं ।८।

७३—अनंग त्रयोदशी व्रत

मार्गशीषे सिते पक्षे व्यासानं गत्रयोदशीं ।
मल्लिकाजं दन्तकाष्ठं धत्तूरैः पूजयेच्छिवम् ।।१
अनंगायेति नैवेद्यं मंघु प्राशयाय पोषके ।
योगेश्वरं पूजयेच्च विल्वपत्रैः कदम्बजैः
दन्तकाष्ठञ्चञ्चन्दनादि नैवेद्य शष्कुलीं ददेत् ।।२
माघे नटेश्वरायार्च्य कुन्दमौक्तिकमालया ।
प्लक्षेण दन्तकाष्ठं च नैवेद्य पूरिकामुने ।।३
वीरेश्वरं फाल्गुने तु पूजयेत्तु मरूवकैः ।
शर्कराशाकमन्डांश्च चूतजं दन्तधावनम् ।।४
चैत्रे यजेत्सुरूपाय कर्पूरं प्राशयेदिति ।
दन्तधावनं वटजं नैवेद्य शष्कुली ददेत् ।।५
पूजा च मोदकैः शम्भोर्वैशाखेऽशोकपुष्पकैः ।
महारूपाय नैवेद्य गुड़भक्तं ह्युदुम्बरम् ।।६
दन्तकाष्ठं प्राशयेच्च ददेज्जातीफलं तथा ।
प्रद्युम्नं पूजयेज्ज्येष्ठे चम्पकैर्बिल्वजं ददेत् ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! मार्गशीष मास के शुक्ल पक्ष में अनङ्ग त्रयोदशी के दिन मल्लिका के पुष्प-दन्त काष्ठ और धतूरा के

पुष्पों से भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए ।१। 'अनङ्गाय' इत्यादि मन्त्रके द्वारा नैवेद्योंसे मधुका प्राशन करावे । इसके अनन्तार पौष मास में बिल्व पत्रों के द्वारा कदम्बजसे पूजन करे और दन्त काष्ठ एवं चन्दन आदि नैवेद्य और शष्कुली (पूड़ी) समर्पित करे ।२। माघ के महीना में नरेश्वरके लिए कुन्द तथा मौक्तिककी मालासे अभ्यर्चना करे । हे मुने! प्लक्ष में दन्तकाष्ठ-नैवेद्य एव पूरी को समर्पित करे ।३। फाल्गुन मास में वीरेश्वर का मरूवक के पुष्पोंसे अर्चना करे और शर्करा-शाक तथा मंड एवं आम्र की दन्त धावन समर्पित करना चाहिए।४। चैत्र मासमें सुरूप के लिए यजन करे और कपूर का प्राशन कराये । वढ़ के वृक्ष की दंत-धावन-नैवेद्य तथा शष्कुली समर्पित करना चाहिए।५। वैशाखके महीना में भगवान् शम्भु का अर्चन मोदकों (लड्डुओं) के द्वारा तथा अशोक के पुष्पों से करे । महारूपके लिए नैवेद्य-गुड़-भक्त और गुलरकी दन्तधावन का प्राशन करावे और जातीफल समर्पित करना चाहिए; ज्येष्ठ मास में प्रद्युम्न की पूजा करे तथा चम्पक के पुष्पों से अर्चना करे और बिल्व वृक्ष की दन्ताधावन तथा लवङ्गशन निवेदित करे ।६-७।

लवङ्गाशनमाषाढे उमाभर्द्रेतिशासनः ।
अगुरुं दन्तकाष्ठं च तमपामार्गकैर्यजेत् ।।८
श्रावणे करवीरं च शम्भवे शूलपाणये ।
गन्धासनो घृताद्यैश्च करवीरजशोधनः ।।९
सद्योजातं भाद्रपदे वकुलैः पूपकैर्यजेत् ।
गन्धर्वाशो मदनयजमाश्विने च सुराधिपम् ।।१०
चम्पकैः स्वर्णवाय्यादौ यजेन्मोदकप्रदः ।
खदिरं दन्तकाष्ठं च कार्त्तिके रुद्रमर्चयेत् ।।११
वदर्य्या दन्तकाष्ठं च दशनो दशमाशनः ।
क्षीरशाकप्रदः पद्मै रब्दान्ते शिवमर्चयेत् ।।१२
रतियुक्तमनंगंच स्वर्णमन्डलसंस्थितश्च ।
गन्धाद्यै दशसाहस्रं तिलव्रीह्यादि होमयेत् ।।१३

जागरं गीतवादित्रं प्रभातेऽभ्यर्च्य वेदयेत् ।
द्विजाय शय्यां पात्रं वस्त्रमुपानहौ ॥१४
गान्द्विजं भोजयेद्भक्त्या कृत्कृत्यो भवेन्नरः ।
एतदुद्यापनं सर्वं व्रतेषु ध्येयमादृशम् ।
फलं च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वंभाग्भवेत ॥१५

आषाढ़ मास में 'उमाभद्र'—इसके द्वारा शिव का अर्चन करे और अगुरु अपामार्ग दंन्त काष्ठ से यजन करना चाहिए ।८। श्रावण मास में शूलपाणि शम्भु के लिए करवीर-गन्धासन-घृत आदि के द्वारा यजन करे तथा करवीर की दांतुन समर्पित करे ।६।भाद्रपद मास में सद्योजात का वकुल के पुष्प और पूप (पूआ) से यजन करना चाहिए । यह गन्धर्वाश हैं । मदनज सुराधिप का अर्चन आश्विन में करे । स्पर्श वायु आदि में चम्पक क पुष्पों के द्वारा मोदकों का सम्प्रदान करते हुए पूजन करे तथा खदिर की दांतुन समर्पित करे । कार्तिक मासमें रुद्र का अर्चन करे ।१०-११। वदरी वृक्षकी दन्तकाष्ठ देवे । दषमाशनदशन और क्षीर तथा शाक का प्रदान करने वाले को वर्ष के अन्त मे पद्मों के द्वारा शिवका पूजन करना चाहिए ।१२। स्वर्ण मण्डल में संस्थित रति से युक्त अनङ्ग का गन्धांक्षत आदि के द्वारा यजन करे और दश सहस्र तिल तथा व्रीही आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ।१३। रात्रि में जागरण और गीत वादित्र करके प्रातःकाल अभ्यर्चना करना चाहिए । ब्राह्मण के लिए शय्या-पात्र छत्र वस्त्र और जूते आदि समर्पित करे तथा गौ द्विज को भोजन करादे । तो मनुष्य सफलता की प्राप्ति किया है । समस्त व्रतों का यह इस प्रकार का उद्यापन होता है, इसका फल—श्री से युक्त आरोग्य और सम्पूर्ण पदार्थों का लाभ होता है ।१४—१५।

७४—अखण्ड द्वादशी, अगस्त्यर्घ्य और रम्भा तृतीया

व्रतं कैवल्यशमनखण्डं द्वादशीं वदे ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः ॥१६

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं दद्यान्मासचतुष्टयम् ।
पचंव्रीहियुतं पात्रं विप्रायेदमुदाहरेत् ।।२
सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मयाऽखंडव्रतं कृतम् ।
भगवन्त्वत्प्रसादेन तदखंडमिहास्तुमे ।।३
यथाऽखण्ड जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तमः ।
तथाशिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्त्युत ।।४
सक्तुपात्राणि चैत्रादौ घृतान्वितान् ।
व्रतकृद् व्रतपूर्णन्तु स्त्रीपुत्रस्वर्ग भाग्भवेत् ।।५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब कैवल्यके शमन करने वाले अखंडद्वादशी का व्रत कहता हूँ—मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में गव्य का अशन करके समुपोषित रहे ।१। द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु का पूजन करे । चार मास तक विप्र को पांच व्रीहियोंसे युक्त पात्र देवे और यह कहे कि सात जन्मों में जो मैंने अखण्ड व्रत किया है, हे भगवान् ! वह आपके प्रसाद से यहाँ अब अखण्ड हो जावे ।२-३।जिस तरह यह समस्त जगत् अखण्डहै और पुरुषोंमें उत्तम आपभी अखण्ड है वैसेही ये सम्पूर्ण व्रत भी अखण्ड होवे ।४। चैत्र आदि मासों में सतुआ से पूर्ण और श्रावण आदि महीने में घृत से युक्त पात्र व्रत करने वाले को देवे तभी व्रत पूर्ण होता है और वह फिर-स्त्री पुत्र और स्वर्ग के भोग प्राप्त करने वाला है ।५।

अगस्त्यार्घ्यव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सति भागे त्रिभिदिनैः ।।६
अर्घ्यं दद्यागस्त्य मूर्त्तिं संपूज्य वै मुने ।
काशपुष्पमयी कुम्भे प्रदोषे कृतजागरः ।।७
दध्यक्षताद्यैः सम्पूज्य उपोष्य फलपुष्पकैः ।
पंचवर्णसमायुक्तं हेमजोप्यसमन्वितम् ।।८
सप्तधान्ययुतं पात्रं दधिचन्दनचर्चितम् ।
अगस्त्यः खनमानिति मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् ।।९

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्रः कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥१०
शूद्रस्त्र्यादिरनेनैव त्यजंद्धान्यं फलरसान् ।
दद्या द्विजातये कुम्भं सहरिण्यं सदक्षिणम् ।
भोजयेच्च द्विजान्सप्त वर्षान्कृत्वा तु सर्वभाक् ॥११

श्रीब्रह्माजी ने कहा—अब हम अगस्त्यार्घ्य करके विषय में बतलाते हैं। यह व्रत भुक्तिमुक्ति दोनों को ही प्रदान किया करता हैं। कन्यापर भास्करके अप्राप्त होने पर तीन दिन तक अगस्त्य के लिए अर्घ्य देवे। हे मुने ! प्रदोष कृत जागरण वाला होकर कुम्भमें काश पुण्यमयी मूर्ति का भली भाँति पूजन करके अर्थात् दधि-अक्षत आदि से पूजन कर और फल पुष्पों से उपोषिता होकर पाँच वर्णों से समायुक्त हेम एवं रौप्य से समन्वित सात धान्यों से युक्त युक्ति दधि एवं चन्दनसे चर्चिता पात्रको 'अगस्त्य खलमान'—इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देवे।६-९। हे काश के पुष्प के प्रतीक ! हे अग्नि और मारुत से जन्म ग्रहण करने वाले ! मित्रावरुण के पुत्र ! हे कुम्भयोने ! आपके लिए नमस्कार है।१०। इसके द्वाराशूद्र स्त्री आदि का त्याग कर देना चाहिए। द्विजातिके लिए धान्य-फल-रस-दक्षिणा के सहित कुम्भ और वे हिरण्य के सहित भी हों प्रदान करना चाहिए। ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस प्रकार से सात वर्ष तक करने पर समस्त पदार्थों को प्राप्ति करने वाला मनुष्य होता है।११।

रम्भातृतीयां वक्ष्ये च सौभाग्यश्रीसुतादिदाम् ।
मार्गशीर्षे पक्षे तृतीयायामुपोषितः ॥१२
गौरीं यजेद्बिल्वपत्रैः कुशोदककरस्ततः ।
कादम्बदो गिरिसुतां पौषे मरुवकैर्यजयेत् ॥१३
कर्पूरादः कृशरदो मल्लिकादन्तकाष्ठकः ।
माघे सुभद्रा कह्लारैर्धृताशो मण्डकप्रदः ॥१४

गीतीमय दन्तकाष्ठं फाल्गुने गोमती यजेत् ।
कुन्दैः कृत्वा दन्तकाष्ठं जीवाशः शष्कुलीप्रदः ।१५
विशालाक्षी मदनकैश्चैत्रे कृशरसम्प्रदः ।
दधिप्राशो दन्तकाष्ठं तगरं श्रीमुखीं यजेत् ।
वैशाखे कर्णिकारैश्च अशोकाशो रदप्रदः ।१६

ब्रह्माजी बोले—अब हम रम्भा तृतीय के विषय में बतलाते हैं जो परम सौभाग्य, श्री और सुत आदि प्रदान करने वाली हैं। मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में तृतीय में उपोषित रहे ।१२। कुश और जल हाथ में लेकर बिल्व के दलों के द्वारा गौरी का यजन करे। कदम्ब के दलों एवं पुष्पों से गिरि सुता का यजन करना चाहिए। पौष मास में मरुवकों के द्वारा अभ्यर्चना करे ।१३। कर्पूर और केशर का दान करें तथा मल्लिका की लता लेकर दाँतुन करे। माघ मास में कह्लार के पुष्पों से सुभद्रा का यजन करे। घृत का तथा मण्डकों का प्रदाता होवे ।१४। फाल्गुन मासमें गीतीमय दन्त काष्ठ और गोमती का यजन करे। जीवाशी होकर शष्कुली जा प्रदान कर और कुन्द से दन्त धावन करे ।१५। चैत्र मास में विशालाक्षी का मदनकों से कृशर सम्पति वाला होकर यजन करे और दधि का प्राशन करे तथा तगर की दन्तधावन रक्खे। इस रीति से श्रीमुखी का अर्चन करना चाहिए। वैशाख में कर्णिकारों से अशोकाशन वाला रदप्रद होकर यजन करे ।१६।

ज्येष्ठे नारायणीमर्चेच्छतपत्रैश्च खण्डदः ।
लवङ्गाशो भवेदेव आषाढ़े माधवी यजेत् ।१७
तिलाशो बिल्वत्रैश्च क्षीरान्नवटकप्रदः ।
ओदुम्वरं दन्तकाष्ठं तगर्य्यां श्रावणे श्रियम् ।१८
दन्तकाष्ठं मल्लिकाया क्षीरदो ह्यु त्तमां यजेत् ।
पद्मैर्यजेद्भाद्रपदे शृङ्गदाशो गुड़ादिदः ।१९
राजपुत्रीञ्चाश्वयुजे जवापुष्पैश्च जीरकम् ।
प्राशयेन्निशि नैवेद्यैः कृशरैः कार्त्तिके यजेत् ।२०

जातीपुष्पैः पद्मजाञ्च पञ्चगव्याशनो यजेत् ।
घृतोदनंच वर्षान्ते सपत्नीकान्द्विजान्ययेत् ।२१
उमामहेश्वरं पूज्य प्रदद्याच्च गुडादिकम् ।
वस्त्रच्छत्रसुवर्णाद्यै रात्रौ च कृतजागरः ।
गीतवाद्यैर्ददेत्प्रातर्गवाद्यं सर्वमाप्नुयात् ।२२

ज्येष्ठ मास में नारायणी देवी का शत पात्रों के द्वारा खाँडका दान करते हुए लवङ्ग का अशन करके यजन करना चाहिए । आषाढ़ मास में माधवी देवी का यजन करे ।१७। तिलों का अशन करे क्षैरान्न वटक का प्रदान करे और विल्व पत्रों से पूजन करे गूलर की दन्त धावन । श्रवण में तगरी से श्री का यजन करना चाहिए मल्यिका की दन्त धावन क्षीर का दान करे और उत्तम का पूजन करे । भाद्रपद मास में पद्म पुष्पों के द्वारा यजन करे शृंगद का अशन करे और गुड़ आदि का दान करना चाहिए ।१८-१९। आश्विन मास में राजपुत्री का जवा के पुष्पों से यजन करे रात्रि में जीरकों का अशन करे । नैवेद्य कृशर से कार्त्तिक में जाती के पुष्पों के द्वारा पद्मजा का यजन करे-पञ्ज-गव्य का अशन करे । वर्षा के अन्तमें घृतोदन का सपत्नीक द्विजों को भोजन करावे । उमा महेश्वर का पूजन कर गुड़ादि का दान करे तथा वस्त्र-छत्र और सुवर्णादि से रात्रि में जागरण करे, गीत वाद्यादि करे और प्रातःकाल के समय में गौ आदि का दान, करे तो समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है ।२०-२१-२२।

७५-चतुर्मास्य, मासोपवास व्रत

चातुर्मास्यव्रमान्यूचे एकादश्यां समाचरेत् ।
आषाढ्यां पौर्णमांस्यां वा सर्वेण हरिमर्च्य च ।१
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव ।२
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णं म्रियाम्यहम् ।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ।३

एवमभ्यर्च्य गृह्णीयाद्व्रतार्चनपादिकम् ।
सर्वाघच क्षय याति चकीर्षेद्यो हरेव्रतम् ।४
स्नात्वा यश्चतुर्पी मासम्भेकभक्तेन पूजयेत् ।
विष्णु स याति विष्णोर्वे लोकं मलविवर्जितम् ।५
मद्यमांससुरात्यागी वेदविद्धरिपूजनात् ।
तैलवर्जी विष्णुलोकं विष्णुभावकृच्छ्रपादकृत् ।६
एकरात्रोपवासाच्च देवो वैमानिको भवेत् ।
श्वेतद्वीपं त्रिरात्रात्तु व्रजेत्षष्टान्नकृन्नरः ।७
चान्द्रायणाद्धरेर्धाम लभेन्मुक्तिमयाचिताम् ।
प्राजापत्यं विष्णुलोकं पराक्रव्रतकृद्धरिम् ।८
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिघृताशनः ।
गोमूत्रयावकाहारः पंचगव्यकृताशन ।
शाकमूलफलत्योगी रसवर्जी च विष्णुभाक् ।९

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं चातुर्मास्य व्रतों को बतलाता हूँ । इनकों एकादशी में अथवा आषाढ़ी पूर्णिमा में समस्त उपचारों के द्वारा करना चाहिए । भगवान् हरि से प्रार्थना करे कि हे केशव ! आपके प्रसन्न होने पर मेरा यह व्रत निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त हो जावे ।२। हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि यह व्रत अपूर्ण रहे और मैं मर जाऊँ तो हे जनार्दन ! आपके प्रसाद से यह व्रत सम्पूर्ण हो जावे ।३। सो इस विधि से हरि के व्रत को करने की इच्छा करे तो समस्त अघों का क्षय हो जाता है ।४। जो चार मास तक स्नान करके एक वक्त पूजन करे वह विष्णु की सन्निधि एवं विष्णुलोक की प्राप्ति करे जो कि मल से रहित होता है ।५। वेदों का वेत्ता पुरुष मद्य-मांस और सुरा का त्याग करने वाला हरि का पूजन करे । तैल का त्याग कर देवे और विष्णु के पूजन में कृच्छ्र पाद करे तो वह विष्णुकी प्राप्ति किया करता है ।६। एक रात्रि के उपवास से देवों के विमान में गमन करने वाला होता है । तीन रात्रि के उपवास से षष्ठान्न कृत मानव श्वेत द्वीप को प्राप्त करता है ।७। चान्द्रायण व्रत से हरि के धाम की प्राप्ति किया

करता है और अप्रार्थित मुक्ति को प्राप्त करता है। प्राजापत्य व्रत से विष्णु लोक की प्राप्ति होतीहै। पराक व्रत करने वाला हरि को प्राप्त करता है।८। सक्तु (सत्तुआ) और यावक का भिक्षाशन करने वाला, पय, दधि तथा घृतका अशन करने वाला-गोमूत्र और यावकका आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य का अशन करने वाला शाक,मूल और फलों का त्याग करने वाला और रसों को वर्जित रखने वाला व्रती विष्णु के सान्निध्य की प्राप्त किया करता हैं।९।

व्रतं मासोपवासाख्यं सर्वोत्कृष्टं वदामि ते।
वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्यान्मासोपवासकम् ।१०
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।११
अद्यप्रभृत्यहं विष्णोर्यावदुत्थानकं तव।
अर्चये त्वामनश्नस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु ।१२
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम्।
म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत् ।१३
हरियजेत्त्रिषवणस्नोयो गन्धादिभिर्व्रती।
गात्राभ्यङ्गं गन्धलेप देवतायतने त्यजेत् ।१४
द्वादश्यामथ सम्पूज्य प्रह्लाद द्विजभोजनम्।
ततश्च पारणं कुर्याद्धरेर्मासोपवासकृत् ।१५
दुग्धादिप्राशनं कुर्याद् व्रतस्थो मूर्च्छितोऽन्तरा।
दुग्धाद्यैर्तं व्रतं नरस्रभुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।१६

श्री ब्रह्माजी बोले, इस मासोपवास नामक व्रत को वानप्रस्थ यति और नारी को करना चाहिए।१०। आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें एकादशी के दिन उपोषित होकर इस व्रतको तीन दिनके लिए ग्रहण करना चाहिए।११। भगवान् से व्रतारम्भ करने के पूर्व प्रार्थना करे हे भगवन्! मैं आज से लेकर जब तक आपका उत्थापन हो तब तक के लिए

इस व्रत को ग्रहण करता हूँ। बिना खाये हुई तीस दिन तक मैं आपकी अर्चना करूँगा।१२। हे विष्णो! कार्तिक और आश्विन मासोंके मध्य में शुक्ल पक्षों की द्वादशियों से अन्तराल में यदि मेरी मृत्यु हो जावेतो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे इस व्रत का उस विघ्न से भंग नहीं होना चाहिए। चिरकाल संध्या और स्थान करने वाले व्रती पुरुष को गन्धाक्षत द्वारा श्री हरि का यजन करना चाहिए। व्रती पुरुष को देव के आयतन में गात्रों का अभ्यंग और गन्धका लेपन नहीं करना चाहिए।१४। द्वादशी के दिन में भली-भांति पूजन करके इसके अनन्तर द्विजों को भोजन समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वयं पारण करे जिसने की हरि के मास का उपवास किया हैं।१५। व्रतमें स्थित रहने वाला पुरुष यदि व्रत के कारण अशक्त होकर मध्य में मूच्छित हो जावे तो उसको दुग्ध आदि का प्राशन कर लेना चाहिए। दुग्ध आदि कतिपय पदार्थ ऐसे हैं उनके सेवन करने पर व्रत का नाश नहीं हुआ करता है और वह दुग्धादि के सेवन करने वाला भी व्रती भुक्ति एवं मोक्ष दोनों हीके प्राप्त कर लेने का अधिकारी होता है।१६।

७६-भीष्मपंचक व्रत

व्रतानि कार्त्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत्।
एकभक्तेन नक्तेन मांसं वायाचितेन वा।१
दुग्धशाकफलाद्यैर्वा उपवासेन वा पुनः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो हरिं व्रजेत्।२
सदा हरेर्व्रतं श्रेष्ठं ततः स्याद्दक्षिणायने।
चातुर्मास्ये ततस्तस्मात्कार्त्तिके भीष्मपञ्चकम्।३
ततः श्रेष्ठव्रतं शुक्लस्यैकादश्यां समाचरेत्।
स्नायात्त्रिकालं पित्रादीन्यवाद्यैरर्चयेद्धरिम्।४
यजेन्मौनीघृताद्यैश्च पञ्चगव्येन वारिभिः।
स्नापयित्वाऽथ कर्पूरमुखैश्चैवानुलेपयेत्।५
घृताक्तगुग्गुलैर्धूपं द्विजः पञ्चदिने दहेत्।
नैवेद्यं परमान्नन्तु जपेदष्टोत्तरं शतम्।६

ॐ नमो वासुदेवाय घृतव्रीहितिलादिकम् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहान्तेन तु होमयेत् ।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा–अब मैं कार्तिक मास में होने वाले व्रतों को बतलाता हूँ । सर्वप्रथम स्नान कर भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए । मास पर्यन्त एक समय रात्रि अथवा अयाचित भोजन करे । अथवा दुग्ध शाक और फलादि का सेवन करे या उपवास करे । ऐसी विधि से व्रत करने वाला पुरुष सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर और समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर अन्तमें भगवान् हरि के सन्निध्य में पहुंच जाया करता है ।१-२। हरि का व्रत सदा ही श्रेष्ठ होता है दक्षिणायन में सूर्य होने पर उससे भी अधिक उत्तम होता है । चातुर्मास्य में इससे भी अधिक होता है । और इसमें भी कार्तिक मास भीष्म पञ्चक में उत्तम होता है । इससे भी श्रेष्ठ व्रत कार्त्तिक शुक्ल-पक्ष की एकादशी में होता है । इससे भी श्रेष्ठ व्रत कार्त्तिक शुक्लपक्ष का यवादि के द्वारा यजन करें और श्री हरि का अर्चन करना चाहिए ।३-४। मौन व्रत धारण कर घृत आदि पञ्चगव्य-जय से स्नान करावे और कर्पूर आदि प्रमुख सुगन्धित पदार्थों के द्वारा अनुलेपन करे ।५। द्विज को घृत से अक्त गुग्गुल के द्वारा पाँच दिन तक धूपका दाह करना चाहिए । परमान्न का नैवेद्य समर्पित करे और अष्टोत्तर शत जाप करे ।६। जाप का मन्त्र जपने के पश्चात् 'ॐ नमो वासुदेवाय' इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र से 'स्वाहा' वह अन्त में लगाकर घृत-व्रीहि और तिल आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ।७।

प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ यजेत्पदमैद्वितीयके ।
विल्वपत्रै र्जानुदेशं नाभि गन्धेन चापरे ।८
स्कन्धौ विल्वजवाभिश्च पञ्चमेह्नि शिरोऽर्चयेत् ।
मालत्या भूमिशायी स्याद् गोमयं प्राशयेत्क्रमात् ।९
गोमूत्रं क्षीरदधि च पंचमे पंचगव्यकम् ।
नक्तं कुर्यात्पंचदश्या व्रती स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।१०

एकादशीव्रतं नित्य तत्कुर्य्यात्पक्षयोर्द्वयोः ।
अघौघनरक हन्यात्सर्वंद विष्णुलोकदम् ।११
एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी ।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।१२
दशम्येकादशी तत्र तत्रस्थाश्चासुरादयः ।
द्वादश्यां पारणं कुर्य्यात्सूतके चरेत् ।१३
चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वं मिश्रामुपावसेत् ।
पौर्णमास्याममावास्यां प्रतिपन्मिश्रितां मुने ।१४
द्वितीया तृतीयामिश्रां तृतीयांचायुपावसेत् ।
चतुर्थ्या सङ्गतां नित्य चतुर्थीचानया युताम् ।
पंचमीं षष्ठीसंयुक्तां षष्ठ्या युक्तांच पंचमीम् ।१५

प्रथम दिन से हरि के चरणों का पद्मों के द्वारा यजन करे द्वितीय दिन में विल्व पत्रों के द्वारा जानु भागका यजन करे । तीसरे दिन गन्ध के द्वारा भगवान् की नाभि का समर्चन करे ।८। चतुर्थ दिन में विल्व दल और जल से स्कन्धों का यजन करे और पाँचवें दिन में मालती से शिर का अर्चन करना चाहिए । भूमि में शयन करने वाला होवे और क्रम गोमय का प्राशन करे । गोमूत्र-क्षीर-दधि और पञ्चम में पंच-गव्य और पंचमी में रात्रि को करें । इस प्रकार से करने पर व्रत करने वाला भुक्ति एवं मुक्ति दोनों को प्राप्त करने वाला होता है ।९-१०। दोनों पक्षों में नियम से नित्य ही एकादशी का व्रत करना चाहिए अघों के समूह वाले नरक से निवृत्ति होती है । यह व्रत समस्त पदार्थों का प्रदान करने वाला और विष्णु लोक प्रदान करने वाला होता है।११। एकादशी द्वादशी तथा निशान्त में त्रयोदशी करे । जहाँ पर नित्य ही एकादशी होती हैं वहाँ पर साक्षात् भगवान् हरि सन्निहित रहा करते हैं ।१२। जहाँ पर दशमी और एकादशी हो अर्थात् इसको विद्धा एका-दशी से वहाँ पर असुर स्थित रहा करते हैं । द्वादशी तिथि में पारण करना चाहिए । शूतक और मृतक में करे ।१३। [illegible] चतुर्दशी का उपवास करे । हे मुने ! पूर्णमासी में अमावस्या में पूर्व

मिश्रिता करे तृतीया मिश्रा द्वितीया का और तृतीया का उपवास करे। चतुर्थी से संगताका नित्य और इससे युत चतुर्थीका उपवास करे। षष्ठी से संयुक्त पञ्चमी और षष्ठी से युक्त पञ्चमी का उपवास करें ।१५।

७७–शिवरात्रि व्रत

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये कथाञ्च सर्वकामदम् ।
यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स्म परं व्रतम् ।१
माघाफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ।
तस्यां जगरणाद्रूदः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः ।२
कामयुक्तो हरि पूज्यो द्वादश्यामिव केशवः ।
उपोषितैः पूजितः सन्नरकात्तरतेत्तथा ।३
निषादश्चाम्दुदे राजा पापी सुन्दरसेनकः ।
स कुक्कुरैः समायुक्तो भृगनहन्तु वन गतः ।४
मृगादिकमसंप्राप्य क्षुत्पिपासादितो गिरौ ।
रात्रौ तड़ागतीरेषु निकुञ्जे जाग्रदास्थितः ।५
तत्रान्ति लिग सरक्षञ्छरीञ्चाक्षिपत्ततः ।
पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिगस्यैव न जानतः ।६
तेन धूलिनिरोधाय क्षिप्तं नीरञ्च लिंगके ।
शरः प्रतोदेनैकस्तु प्रच्युतः करपल्लवात् ।७
जाभ्यामवनीं गत्वा लिंगं स्पृष्टवा गृहीतवान् ।
एवं स्नानं स्पर्शनं चपूजनं जागरोऽभवत् ।८

श्री ब्रह्माजी ने कहा–अब हम शिवरात्रि व्रत के विषय में वर्णन करते हैं। उसकी कथा भी कहते हैं। यह व्रत समस्त कामों के प्रदान करने वाला है। भगवती गौरी ने इस व्रत के विषय में भूतेश भगवान् से पूछा था ।१। ईश्वर ने कहा माघ और फाल्गुन मासों के माध्यम से कृष्णपक्ष में चतुर्दशी तिथि मे होता है। उस चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करके भगवान् की पूजा करने रुद्रदेव परम प्रसन्न

होते हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों प्रदान किया करते हैं ।२। काम युक्त केशव श्री हरि द्वादशी की भांति पूजा के योग्य होते हैं । तपोषित होकर मानवों के द्वारा पूजित हरि नरक से तारण किया करते हैं ।३। अम्बुद में निषाद राजा पापी और सुन्दर सेना वाला था वह कूकरों से युक्त होकर मृगों का हनन करने के लिए वन में गया था ।४। उसे वहाँ वन में मृग आदि का कोई भी शिकार नहीं मिला तो भूख और प्यास से पीड़ित होकर पर्वत के रात्रि के समय में तालाब के किनारे पर निकुंज में जागरण करता हुआ ही रहा था। वहाँ पर एक शिव की लिंग (मूर्त्ति) थी। वहाँ पर शरीर की रक्षा करता क्षिप्त हो गया था। लिंग का ज्ञान न करते हुए ही मस्तक पर पत्ते गिर गये ।६। उसने धूलि के हटाने के लिए लिंग पर जल डाल दिया था। प्रसाद के कारण ही उसके हाथ से एक शर च्युत के उसे ग्रहण कर लिया। इस प्रकार से स्नान, स्पर्शन, स्पर्श करके उसे ग्रहण कर लिया था । इस प्रकार से स्नान, स्पर्शन, पूजन और उसका जागरण हो गया ।७-८।

प्रातर्गृहागतो भार्यादत्तान्नं भुक्तवान्स च ।
काले मृतो यमभटैः पाशैर्बद्ध्वा तु नीयते ।९
तदा मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तीकृतः स च ।
कुक्कुरेण सहैवाभूद् गणो सत्पार्श्वगोऽसलः ।१०
एवमज्ञानतः पुण्यं ज्ञान्त्पुण्यमथाक्षयम् ।
त्रयोदश्यां शिवं पुज्य कुर्यात्तु नियमव्रती ।११
प्रातरेव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्हं निशि ।
पूजा दानं तपो होमं करिष्याम्तात्सशक्तितः ।१२
चतुर्दश्यां निराहारी भूत्वा शम्भो परेऽहनि ।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुत्क्तार्तं शरणं मे भवेश्वर ।१३
पञ्चगव्यामृतैः स्नप्य अन्तकाले गुरुं श्रितः ।
ॐ नमो नमः शिवाय गन्धाद्यैः पूजयेद्धरम् ।१४

जब प्रातःकाल हुआ तो वहाँ पर घर आ गया था और भार्या के द्वारा दिया हुआ अन्न उसने खाया था। जब उसके मृत्यु का समय

आया तो यमदूतों के द्वारा पाशों से बांधकर वह ले जाया गया था।६। तब हे पार्वति ? मेरे गणों ने मार्गमें ही यमके दूतों से युक्त करके उन्हें परास्त करा दिया था और उस निषाद राजा को यमदूतों से मुक्त कर दिया था। वह फिर अपने कुत्तों के सर्वदा मेरे ही पास में नवास करने वाला परम शुद्ध गण हो गया था।१०। इस प्रकार से अज्ञान से किये हुए पुण्य का ऐसा अद्भूत पुण्य होता है और यदि ज्ञान पूर्वक इस चतुर्दशी का व्रत एवं पूजन तथा जागरण करे तो उसका तो अक्षय पुण्य होता है '११। व्रती को भगवान् शिव से प्रार्थना करनी चाहिए– हे देव ! मैं चतुर्दशी में रात्रि के समय में जागरण करूँगा, यह प्रार्थना प्रातःकाल में चतुर्दशी के दिन करे। और यह भी निवेदन करे कि मैं अपनी शक्ति के अनुसार, पूजा, दान, तप और होम भी करूँगा।१२। चतुर्दशी के दिन निराहार रहूँगा और हे शम्भो ! मैं फिर दूसरे दिन भोजन करूँगा।१३। पंचगव्य और पंचामृत से स्नान करा कर अन्त-काल में गुरु का आश्रय ग्रहण करे। 'ॐ नमो नमः शिवाय:'– इस मन्त्र से गन्धाक्षतादि पूजोप, चारों के द्वारा हर का पूजन करना चाहिए।१४।

तिलतन्डूलब्रीहींश्च जुहुयात्सघृतं चरुम्।
हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्वा शृणुयात् गीतसत्कथाम्।१५
अर्द्ध रात्रे त्रियामे च चतुर्थे च पुनर्यजेत्।
मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा प्रभाते तत्समापयेत्।१६
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम्।
क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर।१७
यन्मयाद्य कृतं पुण्य यद्रुद्रस्य निवेदितम्।
त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम्।१८
प्रसन्नो भव मे श्रीतन्नगृहं प्रति च गम्यताम्।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः।
भोत्रयेद्ध्यानिष्ठाश्च वस्त्रछत्रादिकं ददेत्।१९

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक ।
यन्मयाश्रद्धया दत्त तेन मे प्रीयतां प्रभुः ।२०
इति समाप्य च व्रतो कुर्य्याद् द्वादशवार्षिकम् ।
कार्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शिव पुरं व्रजेत् ।२१
दादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्य्यादिह जागरम् ।
व्रतीं द्वादश सभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात् ।२२

तिल, तण्डुल, व्रीहि को घृत के सहित चरु बनाकर हवन करे और पूर्णाहुति देकर गीत तथा कथा का श्रवण करे ।१५। अर्द्ध रात्रिमें, तीन प्रहर समाप्त होने पर और चतुर्थ प्रहर में फिर उस महारात्रिमें पूजन करना चाहिए । मूल मन्त्र का जाप करता रहे और प्रातःकाल उसे समाप्त करना चाहिए ।१६। शिव से प्रार्थना करे, हे देव ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह व्रत गिना किसी विघ्न बाधा के अर्चित किया है । हे समस्त जगतों के स्वामिन् ! आप तो इस त्रिलोकी के अधिपति हैं हे हर ! मेरी त्रुटियों को क्षमा कर दीजिए ।१७। हे देव ! मैंने जो आज यह पुण्य कार्य किया है और जो कुछ भी मैंने भगवान् रुद्र को अर्पित किया है । यह सभी कुछ आपकी ही कृपा से मैंने सांग समाप्त किया है ।१८। हे श्रीमान् ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये और अब आप गृह के प्रति गमन करिये । आपके दर्शन मात्र से ही मैं परम पवित्र हो गया हूँ, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । इसके पश्चात् जो शिव के ध्यान में एक निठ हों उनको भोजन करावे और वस्त्र एवं छत्र आदि का दान करे ।१९। हे देवों के भी आदि देव ! आप भूतों के ईश हैं और लोकों के ऊपर अनुग्रह करने वाले । मैंने जो कुछ भी श्रद्धा से समर्पित किया है । उससे प्रभु आप मुझ पर प्रसन्न हों ।२०। इस व्रत को बराबर निरन्तर बारह वर्षतक करे । पुत्र और राज्य-वैभव प्राप्त करके अन्त समय में शिव के पुर में वह गमन किया करता है ।२१। यह बारहों मासों में जागरण करे । व्रत करने वाला पुरुष बारहको भोजन कराकर दीपदान करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है ।२२।

७८—एकादशी माहात्म्य

मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशी नृपः ।१
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।
दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्या समुपोषित ।
तस्याः पुत्रशत नष्ट तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।२
दशम्येकादशो यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
वहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ।३
द्वादशी तु सदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।
एकादशी कलापि स्यादुपोष्या द्वादशी तथा ।४
एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी ।
त्रिमिश्रा सा तिथिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा ।५
एकादशी मुपोष्यैव द्वादशामथवा द्विज ।
त्रिमिश्राञ्चैव कुर्वीत न दशम्या तुतां क्वचित् ।६
रात्रौ जागरणं कुर्वन्पुराणश्रवणं नृपः ।
गदाधरं पूजयाच्च उपोप्यैकादशीद्वयम् ।
रुक्माङ्गदो ययौ मोक्षमन्ये चैकादशाव्रतम् ।७

पितामह ने कहा—मान्धाता नाम वाला एक चक्रवर्ती राजा था। वह एकादशी के दिन उपवास किया करता था। दोनों पक्षों की एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए।२। गान्धारी ने दशमी से मिश्रित एकादशी का उपबास किया था। इसका परिणाम यह हुआकि उसके पुत्र नष्ट हो गये। इसलिए ऐसी एकादशी का वर्णन कर देना चाहिए। दशमी और एकादशी जहाँ पर होती है वहाँ पर हरि सन्निहित होते हैं। जब बहुत से वाक्यों के विरोध से सन्देह हो तो वहाँ पर द्वादशी का ही ग्रहण करना चाहिए। एकादशी की एक कला भी हो तो भी द्वादशी का व्रत करे।३-४। एकादशी द्वादशी और विशेष रूप से त्रयोदशी इस प्रकार त्रिमिश्रा तिथि यदि हो तो उसका ग्रहण करना चाहिए। यह सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाली परम शुभ तिथि हुआ

करती है ।५। हे द्विज ! अथवा एकादशी का उपवास करे या द्वादशी करे । किम्वा विमिश्रत (एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी) तिथि का उपवास करे किन्तु दशमी से युक्त एकादशी का उपवास कभी नहीं करना चाहिए ।६। एकादशी के उपवास को कर रात्रि में जागरण करे और पुराणों का श्रवण करे । इस प्रकार से मास के दोनों पक्षों की एकादशी का उपवास करना चाहिए ।७।

७६. भुक्ति मुक्तिकर पूजा विधि

येनार्चनेम वै लोको जगाम परमां गतिम् ।
तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।१
सामान्यमण्डलं न्यस्य धातारं द्वारदेशतः ।
विधातारं तथा गङ्गां यमुनांच महानदीम् ।२
द्वारश्रियश्च दन्डञ्च प्रचन्ड वास्तुपुरुषम् ।
मध्ये चाधारशक्तिञ्च कूर्मं चानन्तमर्चयेत् ।३
भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्येश्वर्यमेव च ।
अधर्मादींश्च चतुरः कन्दनालंच पङ्कजम् ।४
कर्णिकां केशरं सत्वं राजसन्ताकसं गुणम् ।
सूर्यादिमण्डलान्येव विमलाद्याश्च शक्तयः ।५
दुर्गां गणं सरस्वतीं क्षेत्रपालं कोणकै ।
आसनं मूर्त्तिमभ्यचर्य वासुदेवं बलं स्मरम् ।६
अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथार्चयेत् ।
हृदयादीनि चांगानि शङ्खदीन्यायुधानि च ।७
श्रियं पुष्टिं च गरुड़ं गुरुं परगुरुं यजेत् ।
इन्द्रादीन्दिक्ष्वधोवागभूर्ध्वं ब्रह्मणामर्चयेत् ।८
विश्वक्सेनमथैशान्यां प्रोक्तं पूजनमागमे ।
सकृदभ्यर्चियो देवो येनैवं विधिपूर्वकम् ।९
न तस्यसम्भवो भूयः संसारेऽस्मिन्महात्मनः ।
पुण्डरीकाय सम्पूज्य ब्रह्माणञ्च गदाधरम् ।१०

श्री ब्रह्माजी ने कहा–यह लोक इस अर्चन के द्वारा परम गति को प्राप्त हुआ था। अब मैं उसी अर्चन के विषय में बतलाता हूँ। यह अर्चन परम भक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाला है।१। सामान्य मण्डल का न्यास करके द्वार देश पर, धाता, विधाता, गंगा और महा नदी यमुना का अर्चन करे द्वार पर श्री दण्ड, प्रचण्ड वास्तु, मध्य में आधार शक्ति, कूर्म और अनन्त की अर्चना करे।२-३। भूमि, धर्म, ज्ञान वैराग्य, ऐश्वर्य, चार अधर्म आदि कन्दनाल, पंकज, कर्णिका, केशर, सत्व, राजस एवं तामस मुष्ट, सूर्यादि मण्डक, विमला आदि शक्तियों दुर्गा, गण और सरस्वती का अर्चन करे। कोणमें क्षेत्रपाल आसन मूर्त्ति का अभ्यर्चन करके वासुदेव, बल, स्मर महान् आत्मा वाले अनिरुद्ध और इसके अनन्तर नारायण का अर्चन करना चाहिए। हृष्टा आदि अंगों का तथा शङ्ख आदि आयुधों को यजन करे।४-७। श्री, पुष्टि, गरुड़, गुरु और पर गुरु की अर्चना करे। दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्-पालों का, नीचे के भाग में नाग का और ऊर्ध्व भागमें ब्रह्मा का अर्चन करे।८। ऐशानी दिशा में विश्वक्सेन का पूजन आगम में बताया गया है जिसके द्वारा विधि पूर्वक एक वार समभ्यर्चित्त देव इस प्रकार से किये गये हों उस पूजा करने वाले महात्मा जन्म इस संसार में नहीं होता है। पुण्डरीक के लिए ब्रह्मा और गदाधार का पूजन करना चाहिए।६-१०।

८०. एकादशी व्रत विधान

माघमासे शुक्लपक्षे सूर्य्यर्क्षेण युता पुरा।
एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता।१
आश्चर्य्यन्तु व्रतं कृत्वा पितृणामनृणोऽभवत्।
भीमद्वादशी ख्याता प्राणिनां पुण्यवर्धिनी।२
नक्षत्रेण विनाऽप्येषा ब्रह्महत्यादि नाशयेत्।
विनिहन्ति महापापं कुनृपो विषयं यथा।३
कुपुत्रस्तु कुलं यत्क्तुभार्य्या च पतिं यथा।
अधर्मं च यथा धर्मः कुमन्त्री च यथा नृपम्।४

अज्ञानेन यथा ज्ञानं शौचताशौचतां यथा ।
अश्रद्धया यथा श्राद्धं सत्यंचैवानृतैर्यथा ।५
हिमं यथोष्णमाहन्यादनर्थं चार्थसंचयः ।
यथा प्रकीर्त्तनाद्दानं तपो वै विस्मयाद्यथा ।६
अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा ।
क्रोधेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात् ।७
ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम् ।
तथैव पापनाशाय प्रोक्तेयं द्वादशी शुभा: ।८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—माघ मास शुक्ल पक्ष में सूर्य ऋक्ष (नक्षत्र) से समन्वित एकादशी पहिले समयमें एक भीम ने समुपोषित की थी। अर्थात एक एकादशीका उपवास किया था ।१। बड़ा ही आश्चर्य है कि इस व्रत को वह करके अपने पितृगण के संसार में प्रसिद्ध हो गई है वह तभी से वह भीम द्वादशी, इस नामसे संसार में प्रसिद्ध हो गई है। यह प्राणियों के पुण्य की वृद्धि करने वाली है ।२। नक्षत्र के बिना भी यह ब्रह्म हत्या आदि महा पातकों का नाश कर दिया करती है। जैसे कोई कुत्सित राजा से देश का नाश हो जाता है वैसे ही यह महा पापों का नाश कर दिया करती है ।३। कुपुत्र जिस तरह कुल का नाशक होता है और कुभार्या पति का नाश कर देने वाली होती है तथा अधर्म धर्म का और कुमन्त्री नृप का नाश कर दिया करते हैं ।४। अज्ञान से जैसे ज्ञान का नाश होता है, शौचता अशुचिता को नष्ट कर देती है अश्रद्धा से श्राद्ध का विनाश होता है और मिथ्या से सत्य नष्ट हो जाया करता हैं ।५। हिम उष्णता का नाशक होता है, अर्थ का सञ्चय अनर्थता को नाशक है, प्रकीर्त्तन करने से दान का नाश हो जाता है और विस्मय से तप नष्ट हो जाया करता है ।६। अशिक्षा से पुत्र का नाश होता है। दूर गमन से गौ का नाश होता है, क्रोध से शान्ति का नाश हो जाता है, वृद्धि न करने से वित्तका नाश हो जाता है ।७। ज्ञानसे जैसे अविद्या और निष्काम से जैसे फल नष्ट होता है वैसे ही यह शुभ द्वादशी पापों के नाश करने के लिए कही गई ।८।

न चापि नैमिषं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं प्रभासकम् ।
कालिन्दी यमुना गङ्गान चैव सरस्वती ।९
न चैव सर्वतीर्थानि एकादश्याः समो न हि ।
न दानं जपो होमो न चान्यं सुकृतं क्वचित् ।१०
एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरः ।
ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा ।११
अस्मिन्वराहपुरुष कृत्वा देवन्तु हाटकम् ।
घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने ।१२
सर्वबीजभृतोविन्वाः सितवस्त्रावगुन्ठिते ।
सहिरण्यप्रदीपाद्यैः कृत्वा पुसां प्रयत्नतः ।१३

नैमिषारण्य का परम पावन क्षेत्र, कुरुक्षेत्र का पवित्र धाम,प्रभास क्षेत्र, कालिन्दी, यमुना, गंगा और सरस्वती जैसे अत्यन्त पावन तीर्थ एवं अन्य भी समस्त तीर्थ मिलकर भी इस एकादशी के समान नहींहै। इस एकादशी की समता रखने वाले जप, दान, तप, होम और अन्य कोई भी कहीं सुकृत ऐसा नहीं है ।९-१०। एक और सम्पूर्ण मही मन्डल के दान पुण्य, फल और एक और एकादशी है । इनसे महान् पुण्य वाली यह परम श्रेष्ठ एक एकादशी होती है ।११। इस घट के ऊपर नवीन ताम्रके पात्र में वराह पुरुष देवकी स्वर्ण की मूर्त्ति बनाकर रक्खे ।१३। समस्त बीजों के धारण करने वालें और सितवस्त्र से अवगुणित करे । हिरण्य प्रदीप आदि के सहित प्रदानपूर्वक पूजा करे ।१४।

वराहाय नमः पादौ क्रीड़ाकृति नमः कटिम् ।
नाभि गम्भीरघोषाय उरः श्रीवत्सधारिणे ।१४
बाहु सहस्रशिरसे ग्रीवां सर्वेश्वराय च ।
मुखं सर्वात्मने पूज्यं ललाटं प्रभवाय च ।१५
केशाः शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः ।
विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरणं निशि ।१६

श्रुत्वा पुराद्य देवस्य माहात्म्य प्रतिपादकम् ।
प्रातर्विप्राय दत्वा च याचकायशुभाय तत् ।१७
कनकक्रोडसहितंसन्निवेद्य परिच्छदम् ।
पश्चात् पारणं कुर्यान्नतितृप्तः सकृद्व्रती ।१८
एवं कृत्या नरो विद्वान्न भूयः स्तनपो भवेत् ।
उपोष्यैकादशीं पुण्यां मुच्यते वै ऋणत्रयात् ।
मनोऽभिलषितावाप्तिः कृत्वा सर्वव्रतादिकम् ।१६

'वराहाय नमः'—इससे चरणों का पूजन करो—'क्रीड़ाकृति नमः'—इससे कटि का यजन-गम्भीर घोषाय नमः—से नाभिका—'श्रीवत्स धारिणे नमः'—इससे उरका यजन करे ।१४। 'सहस्र शिरसे नमः—इससे बाहु की-सर्वेश्वराय नमः—इस मन्त्र से ग्रीवा की—'सर्वात्मने नमः'—मन्त्र से मुखकी-'प्रभवाय नमः' इससे ललाट की पूजा करनी चाहिए ।१५। 'शतममुखाय नमः'-इस मन्त्र से चकी देव के केशों का यजन करे। इस प्रकार से विधि पूर्वक अर्चना करके रात्रि में जागरण कर ।१६। देव के माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाले परम शुभ विप्र के लिए कनक की कोड़ के सहित परिच्छद उसको सन्निवेदित कर दान करे। इसके पीछे पारण करे किन्तु सकृत व्रत करने वाला अत्यन्त तृप्तिपूर्वक धारण नहीं करे ।१७-१८। इस प्रकार से व्रत को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष पुनः शरीर को धारण करने वाला नहीं होताहै। इस परम पुण्यमयी एकादशी का उपवास करके मनुष्य तीनों ऋणों से छुटकारा पा जाया करता है। इस सम्पूर्ण व्रत आदि को करके मनुष्य समस्त अभिलाषितों को प्राप्ति किया करता है ।१६।

८१—विविध व्रत कथन

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि यैस्तुष्टः सर्वदो हरिः ।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपोमतम् ।१
नियमास्तु विशेषाः स्युर्व्रताब्दस्य यमादयः ।
नित्यं विषवर्ण स्नाराद्धशाषी जितेन्द्रियः ।२

स्त्रीशूद्रपतितानां तु वर्जयेदभिभाषणम् ।
पवित्राणि च पचैव जहुयाच्चैव शक्तितः ।३
कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्नरः ।
केशानां रक्षणार्थन्तु द्विगुण व्रतमाचरेत् ।४
कांस्य माषं मसूरं च चरणं कोरदूषकम् ।
शाकं मधु परान्न च वर्जयेदुपवासवान् ।५
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।
उपवासेन्न दुष्येत्त दन्तधावन मंजनम् ।६
दन्तकाष्ठं पंचगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतंचरेत् ।
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ।
उपवासः प्रदुष्येत् दिवास्वप्नाक्षमैथुनात् ।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा हे व्यास देव ! अब हम उन व्रतों के विषय में वर्णन करेंगे जिनके करनेसे भगवान् हरि पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सभीकुछ प्रदान किया करते हैं। यह शास्त्रोंमें बताया हुआ नियमहै और यह व्रत एक प्रकार का परम तप माना है ।१। व्रत करने के पूरे वर्ष के लिए धर्मादि कुछ विशेष नियम होते हैं । इसमें नित्य ही दिन में तीन बार स्नान कर संध्यावन्दन त्रिकाल किया करे । भूमि में शयन करे और समस्त इन्द्रियों को जीतकर अपने वश में करे ।२। स्त्री-शूद्र और पतित पुरुषोंके साथ अभिभाषण न करे। पाँचों पवित्रोंका अपनी शक्तिके अनुसार हवन करे ।३। सुकृती पुरुष को इन सम्पूर्ण कृच्छों का संमाचरण करना चाहिए । केशों की रक्षा के लिए द्विगुण व्रत करे ।४। उपवास करने वाले पुरुष कास्य पात्र-मांस (उर्द)-मसूर-चना-कोद्रक-शाक-मधु-पराया अन्न इसका त्याग कर देना चाहिए ।५। पुष्प, अलङ्कार, नवीन वस्त्र, धूप, गन्ध, अनुलेपन, दन्तधावन और अञ्जन ये समस्त पदार्थ उपवास में दूषित करने वाले हैं ।६। दन्तकाष्ठ और पंचगव्य करके प्रातःकाल में व्रत का चरण करे । बार-बार जल-पान करने से और एक बार ताम्बूल के भक्षण करने से, दिन में सोने से और अक्ष मैथुन

से उपवास दूषित हो जाया करता है। अतः ये सभी काम नहीं करे।७।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवने सन्तोषाश्ते यमेवच।८
सर्वंव्रतेष्वय धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमनक्तं निशि भोजनम्।९
गोमूत्रं च दद्या दर्णेङ्गुष्ठन्तु गोमयम्।
क्षीरे सप्तपलं दद्याद् दध्नश्चैव पलत्रयम्।१०
धृममेकपलं दद्यात्पलमेक कुशोकम्।
गायत्रया चैत गन्धेति आप्यायद दधिग्रहः।
तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकृच्छव्रतं चरेत्।११
अग्न्याधानं प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूड़ाकरणमेखमाः।
माङ्गल्यमभियेकं च मलमासे विवर्जयेत्।१२

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियों का निग्रह, देवपूजा, अग्नि में है न सन्तोष और अस्तेय इन समस्त व्रतोंमें सामान्य धर्म दश प्रकार का होता हैं। नक्षत्रों के दर्शन से नक्त होता है। रात्रिमें अनक्त भोजन करे।८-९। गोमूत्र एक पल देवे और आधा अंगूठा के बराबर गोमय देवे। सात पल क्षीर और तीन पल दधि देना चाहिए।१०। घृत एक पल, एक पल कुशोदक देवे। गायत्री से और 'गन्ध' इत्यादि मन्त्र से दधि ग्रह को आव्यापित करे। 'तेजोऽसि–इम मन्त्र ने देवका ब्रह्मकृच्छ व्रत का चरण करना चाहिए।११। अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ-दान व्रत, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूड़ाकरण, मेखला-माँगल्य और अभिषेक ये कार्य मल मास में वर्जित कर देने चाहिए।१२।

दर्शस्दर्शाय चान्तः स्यात्त्रिलाहोभिस्तु सावनः।
रविसंक्रमणांरसौरो नाक्षत्र सप्तविंशतिः।१३
सौरो मासो विवाहाय यज्ञादौ. सावनस्थितिः।

युग्मानिकृतभूतानि षण्मुन्यौर्वसुरन्ध्रयोः ।
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा ।१४
प्रतिप्रदाप्यमावस्या तिथ्योर्युग्म महाफलम् ।
एतद्वाय महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।१५
प्रारब्धतपसां स्त्रीणां रजो हन्याद् व्रतं न हि ।
अन्यैर्दानादिकं कुर्यात्कायिकं स्वयमेव च ।१६
क्रोधात्प्रमादल्लोभाद्वाव्रतभङ्गो भवेद्यदि ।
दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत् ।१७
असामर्थ्ये शरीरस्य पुत्रादोन्कारयेद् व्रतम् ।
व्रतस्य मूच्छितं विप्र जलानि चाबुमायये ।१८

दर्शादर्श का अन्त सावन तीस दिन में होता है । रात्रि के संक्रमण से और मास होता है और नक्षत्रों का सत्ताईस दिन का होता है ।१९। विवाह के लिए सौर मास होता है और यज्ञादि में सावन की स्थिति होती है । छै-सात-आठ और रन्ध्र में युग्मानि कृतभूत होते है । रुद्र से अर्थात् एकादशी से युक्त द्वादशी और चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा तथाप्रति पदा से युक्त अमावस्या-इन तिथियों का युग्म फल वाला होता है । इसका अस्त होना पुराकृत कहा पुण्य का हनन कर देता है ।१४-१५। पहिले जिन स्त्रियों ने व्रत का आरम्भ कर दिया है उनको बाद में जो रजो दर्शन होता है वह व्रत का हनन नहीं करता है । अन्यों के द्वारा और स्वयमेव ही कायिक दानादिक करना चाहिए । क्रोध से प्रमोद से अथवा लोभ से यदि व्रत का भङ्ग होता है जो तीन दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए और शिर का मुण्डन भी न करे ।१६-१७। यदि स्वयं के शरीर की सामर्थ्य न हो तो अपनें पुत्र आदि के द्वारा इस व्रत को कराना चाहिए । व्रत में अवस्थित विप्र यदि मूच्छित हो जावे तो उसे जल पिला देना चाहिए । ऐसा दशा में जलपान से व्रत की मानता नहीं हुआ करती है ।१८।

८२—दष्टोद्धरण पंचमी व्रत

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास शृण्वथ ।
वैश्वानरपरं याति शिखिव्रतमदं स्मृतम् ।
प्रतिपद्येकभक्ताशो समाप्ते कपिलाप्रदः ।१
चैत्रादौ कारयेच्चैव ब्रह्मपूजां यथाविधि ।
गन्धपुष्पार्चनैर्दानं माल्यादिभिर्मनोरमः ।
सहोमैः पूज्ययद्देवं सर्वात्कामानवाप्नुयात् ।२
कार्तिके तु सितेऽष्ठम्यां पुष्पहारेण वत्सरम् ।
पुष्पादिदाता रूपेप्सु रूपं भारो भवेन्नरः ।३
कृष्णपक्षे तृतीयायां श्रावणे श्रीधरे श्रिया ।
व्रती सवस्त्रां शैयांच फलं दद्याद् द्विजातये ।४
शैयां दत्वां प्रार्थयेच्च श्रीधराय: नमः श्रियें ।
उमां शिवें हुताशं च तृतीयायांच पूजयेत् ।५
हविष्यन्नं नैवेद्यं देयं मदनकं तथा ।
चैत्रादौ फलमाप्नोति उमया मे प्रभाषितम् ।६
फाल्गुनादिवृतीयांतां लवणं तु वर्जयेत् ।
समाप्ते शयने दद्याद् गहुचोपस्करान्वितम् ।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यासदेव ! अब मैं प्रतिपदा आदि के व्रतों को वतलाता हूँ । तुम इनका श्रवण करो । यह बिधि व्रत इस नाम से कहा गया है । इसके करने से वैश्वानरके पदको प्राप्त होता है । प्रतिपदा तिथि में एक वक्त अशन करने वाला होवे । व्रत के समाप्त होने पर कपिला गौ का दान करे ।१। चैत्र आदि मास में विधि पूर्वक ब्रह्म पूजा करावे । गन्ध-पुष्प आदि के द्वारा अर्चना से, दान से परम सुन्दर माल्यादि से और होम के द्वारा देव का यजन करे । इससे मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है ।२। कार्तिक मास में सित-पक्ष में अष्टमी तिथि के दिन पुष्पों के हार से यजन करे और वत्सर पर्यन्त पुष्प आदि का दान करने वाला पुरुष रूप लावण्य की इच्छा

रखने वाला मनुष्य रूप को प्राप्त करता है ।३। कृष्ण पक्ष में श्रावण मास की तृतीया में श्री युक्त भगवान् श्रीधर का अर्चन करे और व्रती को वस्त्रों से समन्वित शय्या तथा फल ब्राह्मण को दान देवे ।५। शय्या का दान करके प्रार्थना करे । श्रीधर श्री के लिए नमस्कार है और तृतीया में उमा-शिव और हुताश की पूजा करनी चाहिए ।५। चैत्रादि में हविष्य अन्न नैवेद्य और मदनक का दान करना चाहिए । इसका करने वाला फल की प्राप्ति करता है । यह उमा से मेरा प्रभाषित है ।६। फाल्गुन से आदि लेकर तृतीया के अन्त तक लवण को वर्जित कर देता है और इस व्रत की समाप्ति होने पर शय्या का दान करे तथा समस्त सामान से समन्वित ग्रह का दान करे ।७।

संपूज्य विप्रमथुनं भवानि प्रीयतामिति ।
गौरी लोके वसेन्नित्यं सोभाग्यकरमुत्तमम् ।८
गौरी काली उमा भद्रा दुर्गाः कान्तिः सरस्वती ।
मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मीः शिवाः नारायणी क्रमात् ।
मार्गतृतीयामारभ्यं अवियोगादि वाप्नुयात् ।९
चतुर्थ्यां सितमाधादो निराहारो व्रतान्वितः ।
दत्वा तिलास्तु विप्राय स्वम्भुङ्क्ते तिलोदकम् ।
वर्षद्वयें समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात् ।१०
गः स्वाहा मूलमंत्रोऽय प्रणवेन समौवितः ।
ग्लौं ग्लां हृदये गां गीं गूं ह्रं ह्रीं ह्रीं शिरः शिखा ।
गूं वर्मं गों च नेत्रं गोच आवाहनादिषु ।११
आगच्छोल्काय गंधोल्कः पुष्पोल्कधूपकोल्ककः ।
दीपोल्काय च महोल्काय बलिञ्चाय विसर्जनम् ।१२
सिद्धोल्काय च गायत्री यासोऽङ्गुष्ठादिरीरीत ।
ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय ।
धीमहि तन्नो दंती प्रचोदयात् ।१३

पूजयेत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा ।
गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च ।
अमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे ।१४

विप्र के जोड़े का पूजन करे। इससे गौरीके लोकमें निवास करता है और यह सौभाग्यदाता है ।८। गौरी, काली,उमा,भद्रा दुर्गा कान्ति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इनका क्रम से अर्चन करे। मार्गशीर्ष की तृतीया में इसका आरम्भ करे। इससे अवियोग आदि की प्राप्ति करता है ।९। मात्रादि में सित पक्ष में चतुर्थी तिथि के दिन व्रत से युक्त होकर निराहार रहे। विप्रको तिलों का दान करके स्वयं तिलोदक का भोजन करे। इस व्रत की समाप्ति दो वर्ष में होती है। इसे निर्विघ्ने होकर समाप्त करे ।१०। प्रणव से युक्त 'मस्वासा'–यह इनका मूल मन्त्र होता है । ग्लौं-ग्यां–इसका हृदय में गाँ-गीं-गूं'–उसका शिर में न्यास करे। ह्रूं-ह्रीं-ह्रीं–इसका शिखा में न्यास करे। गूं वर्म है और गीं नेत्र हैं और गीं–यह आवाहन आदि में है।१०।उल्ललिए गन्धोल्क पूष्पोल्कधूपकोल्क आओ, दीपोल्क महोल्क के लिए इसके अनन्तर बलि का विसर्जन करे। सिद्धोक्तके लिए गायत्री तथा अंगुष्टादि ईरितन्यास है.। मन्त्र यह है 'ॐ महाकर्णायविद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्' ।१२-१३। ये गण तिल होमों के द्वारा पूजे जानेचाहिए गणाय गणपतये-कूष्माण्डकाय च स्वाहा-अमोघोल्काय एकदन्ताय,त्रिपुरान्तकारिणे स्वाहा'-इस मन्त्र से होम करे।१४।

ॐ श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः ।
पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्त्तनं गणे ।
हस्तालश्च हसनं सौभाग्यादिफलं भवेत् ।१५
मार्गशीर्षे तथा शुक्लचतुर्थ्यां पूजयेद् गणम् ।
अब्दं प्राप्नोति विद्यां श्रोकीर्त्यायु पुत्रसन्ततिम् ।१६
सोमवारे चतुर्थ्याञ्च समुपोष्याचयेद् गणम् ।
जपज हवत्स्मरन्नित्य स्वर्गं निर्विघ्नतां व्रजेत् ।१७

'ॐ श्यामदन्तविकरालास्या हवैशाय वै नमः-'पद्मदन्ष्ट्राय स्वाहा-इस मन्त्रों से अन्त मुद्रा गण में नर्तन करे। हाथों से ताली बजाकर हास्य करे तो सौभाग्य आदि के फल का भागी होता है।१५। मार्गशीर्ष मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में गण की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त करे तो विद्या, कीर्त्ति, आयु और पुत्र सन्तति को मनुष्य प्राप्त करता है।१६। सोमवार के दिन चतुर्थी तिथि में उपवास करके गण का अर्चन करे। जप, हवन, स्मरण नित्य करता हुआ पुरुष बिना किसी विघ्न, बाधा के स्वर्ग की प्राप्ति करता है।१७। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन यजन करना चाहिए और वह खांड के लड्डू तथा मोदकों से करे। मदन को से यजन करे तो पुत्र आदि को प्राप्त करता है अतएव इन चतुर्थी का मननाख्या है।१८।'ॐ गणपतये नमः-इस मन्त्र से छतुर्थ्यन्त गण का यजन करे। जिस किसी भी मास में हवन करे, जप करे तथा उसका स्मरण करे। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं के फल प्राप्त होते हैं और सब विघ्नों का

व्रजेच्छुक्लचतुर्थ्यां व खण्डलड्डूकमोदकै।
विघ्नार्चनेन सर्वान्वै कस्मान् सौभाग्यमाप्नुयात्।
पुत्रादिकं मदननर्मदाख्या चतुर्थ्यपि।१८
ओं गणपतये नमः चतुर्थ्यन्त यजद् गणम्।
मासे तु यस्मिन्कस्मिश्चिज्हुद्वा जपेत्स्मरेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वविघ्नविनाशनम्।१९
विनायकं मूर्त्तिकाद्य यजेंदेभिश्च नामभिः।
सोऽपि सद् गति माप्नतोस्विर्गमोक्ष सुखानि च।२०
गणपूज्य एकदन्ती वक्रतुन्डश्च त्र्यम्बकः।
नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः।
धूम्रवर्णो बालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः।२१
गणपति हस्तिमुखो द्वादशं वे यजेद् गणम्।
पृथक्सत मेधावी सर्वान्कामानवाप्नुयात्।२२

नाश हो जाता है ।१६। सम्पूर्ण मूर्तियों में आद्य भगवान् विनायक का हम उक्त नामों के द्वारा यजन करना चाहिए । वह पुरुष भी सद्गति को प्राप्त करता है और स्वर्ग निवास के सभी सुखों का उपभोग करता है तथा मोक्ष को प्राप्त किया करता है ।२०। ये दश नाम ये हैं–गणों के परम पूज्य, एकदन्ती, वक्र तुण्ड, त्र्यम्बक, नील ग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्न राजक, धूम्र वर्ण, भाल चन्द्र और दशवां नाम इनका विनायक होता हैं । गणपति, हस्ति मुख ये दो नाम और हैं । इनसे द्वादश गण का यजन करे । चाहे पृथक्-पृथक् इनका यजन करे या समस्तों का एक साथ ही पूजा करे तो मेधावी पुरुष समस्त अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ।२१-२२।

श्रावणे चाश्विने भाद्रे पञ्चभ्यां कार्त्तिके शुभे ।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालोयो मणिभद्रकः ।२३
ऐरावती धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनंजयौ ।
घृताद्यः स्नापिता ह्येते आयुरारोग्यस्वर्गदाः ।२४
अनन्त बासुकि शंख पद्म कम्बलमेव च ।
तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रं च शंखकम् ।२५
कालीयं तक्षकं चापि पिङ्गलं मासिमासि च ।
यजेद्भाद्रसिते नागानष्टौ मुक्त्वा दिवं व्रजेत् ।२६
द्वारस्योभयतो लेख्या श्रावणे तु सिते यजेत् ।
पंचभ्यां पूजयेन्नागानन्ताद्यान्महोरगान् ।२७
क्षीरं सर्पिश्च नैवेद्यं देय सर्वविपापहम् ।
नागा अभयहस्ताश्च दष्टोद्धरथपंचमी ।२८

श्रावण मास में, आश्विन के महीने में, भादों में या शुभ कातिक मास में पञ्चमी तिथि के दिन बासुकि, तक्षक, कालोय, मणि भद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय इनको घृत आदि से स्थापित करके यजन करे तो आयु, आरोग्य और स्वर्ग को प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ।२३-२४। अनन्त, बासुकि, शङ्ख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक,

धृतराष्ट्र, शङ्खक, कालीय, तक्षक और पिंगल नाम का भाद्रपद के सित पक्ष में और प्रत्येक मास-मास में यजन करे तो आठ नागों का मोचन कर मनुष्य दिवलोक को गमन करता है ।२५। गृहके द्वार के दोनों ओर इसका आलेखन करे और श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में यजन करे । अनन्त आदि नागों तथा महान उरगों का पंचमी तिथि में पूजन करना चाहिए ।२७। समस्त प्रकार के विषों के अपहरण करने वाले क्षीर घृत और नैवेद्य का समर्पण करे । समस्त नाग अभय हस्त वाले होते हैं । यह दंष्ट किए हुओं के उद्धरण करने वाली पंचमी होती है ।२७।

८३—सप्तमी आदि के व्रत

एवं भाद्रपादे मासि कार्त्तिकेयं प्रपूजयेत् ।
स्नानदानादिकं सर्वमस्यामक्षयय्यमुच्यते ।
सप्तम्यां प्राशयेच्चापि भोंग्यं विप्रान् रवि यजेत् ।१
ॐ खखोल्कायमृतत्व प्रियसंगमो भव सदा स्वाहा ।
अष्टम्यां पारणं कुर्य्यान्मिपिवे प्राश्य स्वर्गमाक् ।२
सप्तभ्यां नियता स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम् ।
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति ।३
खर्जूरं नारिकेलवा प्राशयेन्मातुलुंगकम् ।
सर्वं भवन्तु सफलां मम कामाः समन्ततः ।४
प्रपूज्यं देवं सप्तभ्या पायसे नाथ भोजयेत् ।
विप्रांश्च दक्षिणां दत्वा स्वयंनाथ पयः पिवेत् ।५
भक्ष्यं चोष्यं तथा लेह्यं ओदनेति प्रकीर्त्तितम् ।
धनपुत्रादिकामस्तु न्यजेदेतदनोदनः ।६
वाय्वाशी विजयेच्छुश्व कुर्याद्विजये सप्तमीम् ।
अद्याश्कंच कामेच्छूरुपवासेत कामदम् ।७
गोधूमप्रापयषष्टिककांस्यपात्रंपाषाणपिष्टमधुमैथुनमद्यमांसम्
अभ्यजनांजनतिलांश्च विवर्जयेद्वयः ।
तस्योपितत् भवति सप्तसु सप्तमीषु ।८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी प्रकार से भाद्रपद मास में स्वामि कार्त्तिकेय का पूजन करना चाहिए। सप्तमी में परमोत्तम भोज्य पदार्थ ब्राह्मणों को खिलावे और रवि का यजन करे।१। इसके यजन का मन्त्र 'ओं खखोल्कायामृतत्यं प्रियसंगमो भव सदा स्वाहा'—यह होता है। फिर अष्टमी के दिन पारणा करे। मरिच का प्राशन करके स्वर्ग के निवास का फल प्राप्त करताहै। इति मरिच सप्तमी।२। सप्तमी तिथि में नियत रूप से स्नान करके भगवान् दिवाकर का पूजन करे और इसके अनन्तर भगवान् मार्त्तण्ड मुझ पर प्रसन्नहों यह कहकर विप्रोंको फल देवे। खजूर अथवा नारियल या मातुलुंग का प्राशन करावे और यह प्रार्थना करे कि मेरे लमस्त काम सभी ओर से सफल होवें।३-४। इति सप्तमी विधानम्। सप्तमी के दिन देव का भली-भाँति पूजन करके विप्रों को पायस (क्षीर) के भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वयं भी पय का पान करे।५। भक्ष्य, चोष्य और लेह्य ओदन यह कहा गया है। धन और पुत्र आदि की कामना रखने वाला इसका त्याग कर देवे और अनोदन रहे।६। इति अनोदनी सप्तमी विधानम्। जो विजय की इच्छा रखने वाला हो वह वायु का अशन करता हुआ विजय सप्तमी को व्रत करे और अर्क का अदन करे। कामेच्छु कामंद का उपवास करे।७। गोधूम (गेहूँ-गाय) (उर्द) यव (जौ-षष्टिक) और काँसे के पात्र-पाषाण शिष्ठ मधु, मैथुन-मदिरा-माँस-अभ्यंजन-अञ्जन और तिल इन सबका त्याग कर देवे तो उसका उपवास सात सप्तमियों में होता है।८।

८४—रोहिणी अष्टमी व्रत

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः।
दूर्वा गौरी गणेशाय भलपुष्पः शिवं यजेत्।१
फलव्रीह्याद्विकिरणैः शम्भवे नमः शिवाय च।
त्व दूर्वेऽमृत जन्मासि ह्यष्टमी सर्वकामभाक्।
अग्निपक्वंसश्नीयान्मुच्यते ब्रह्महत्यया।२

कृष्णाष्टम्यां च रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरेः ।
कार्य्या विद्धापि सप्तम्यां हन्ति पापं त्रिजन्मकम् ।३
उपोषितोर्चयेन्मन्त्रैस्तिथिभान्ते च पारणम् ।
योगाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः ।४
स्नानमन्त्रः । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये ।
यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमोः नमः ।
अर्चनमन्त्र । विश्वाय विश्वेश्वराय ।
विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः ।५
शयनमन्त्रः । सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय ।
सर्वसम्भवाम गोविन्दाय नमो नमः ।
स्थण्डिले पूजयद्दैवं सचन्द्रां रोहिणीस्तथा ।६
शंखे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ।
जानुभ्याभवनी गत्वा चन्द्रावार्घ्यं निवेदयन् ।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भाद्रपद मास से शुक्ल पक्ष की अष्टमी में उपवास करके दूर्वा-गौरी-गणेश और शिव का फल पुष्पों से यजन करे ।१। फल और व्रीहि आदि उपकरणों के द्वारा शम्भु के लिए और शिव के लिए नमस्कार है । हे दूर्वे ! तुम अमृत जन्मा हो । यह अष्टमी समस्त कामनाओं के फल देने वाली है । जो अग्न में पक्व न हो उसका अशन करे तो ब्रह्म हत्या से भी मोचन हो जाया करता है ।२। इति दूर्वाअष्टमी विधानम् । कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जब कि रोहिणी नक्षत्र हो, अर्द्धरात्रि के समय में भगवान् हरि का अर्चन करे । सप्तमी तिथि से विंद्धा अष्टमी तिथि को यजन करे तो तीन जन्मों के पापों का हनन होता है । उपोषित होकर तिथि तथा नक्षत्र के अन्त में मन्त्रों से अर्चना करे और फिर पारणा करे । योग के लिए, योग पति के लिए और गोविन्द के लिए बारम्बार नमस्कार है ।४-५। स्नान का मन्त्र यह है—'यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञ सम्भवाय गोविन्दाय नमोः' । अर्चना का मन्त्र यह है—विश्वाय विश्वेश्वराय विश्व

पतये गोविन्दाय नमो नमः'। शयन का मन्त्र यह है—'सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्व सम्भवास्य गोविन्दाय नमो नमः'। स्थण्डिल में देव का पूजन करे तथा चन्द्र रहित रोहिणी का पूजन करे।६। शङ्ख में जल भरकर पुष्प फल और चन्दन उसमें मिलावे। घुटनों के बल भूमि पर बैठकर चन्द्रदेव के लिए अर्घ्य निवेदित करें।७।

क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केन रोहिण्या सहितो मम।८
श्रियं च वासुदेवाय नन्दाय च बलाय च।
यशोदायै तयो दद्यादर्घ्यं फलसमन्वितम्।९
अनघ वामनं शौरिं वैकुण्ठ पुरुषोत्तमम्।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्।१०
वाराह पुण्डरीकाक्षं नृसिंह दैत्यसूदनम्।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्।११
गोविन्दमच्युतं देवमनन्तमपराजितम्।
अधोक्षजं जगद्बीजं स्वर्गस्थितकारणम्।१२
अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्।
नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम्।१३
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम श्रीपति श्रीधरं हरिम्।१४
यं देवं देवकी देवीं वसुदेवादजीजनत्।
भीमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।
नामान्येतानि संकीर्त्य प्रार्थयेत्पुनः।१५

चन्द्रदेव को अर्घ्य समर्पित करने के समय में प्रार्थना करे। हे क्षीर सागर से जन्म ग्रहण करने वाले देव! आपका समुद्भव अत्रि मुनि के नेत्रों से हुआ है। हे शशके अङ्क वाले देव! आप रोहिणी अपनी भार्या के सहित मेरे इस समर्पित अर्घ्य को ग्रहण करे।८। इसके अनन्तर श्री के लिए, वसुदेव को, नन्द को, बलराम को और यशोदा के लिए फलां

से समन्वित अर्घ्य समर्पित करना चाहिए ।६। अघ से रहित, वामन, शौरि, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह, पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले, नृसिंह, दैत्य सूदन, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द, अच्युत, अनन्त देव, अपराजित, अधोक्षज जगत् के बीज अर्थात् कारण स्वरूप, इस लोक का सृजन, स्थिति और अन्त करने वाले, आदि और निधन से रहित, तीनों लोकों के ईश, त्रिविक्रम, विष्णु, नारायण, चार बाहुओं वाले, चक्र और गदा के धारण करने वाले, पीताम्बर के धारण करने वाले, दिव्य वनमाल से विभूषित, श्रीवत्स का अङ्क धारण करने वाले जगत् के धाम, श्री के स्वामी, श्रीधर, हरि और जिस देव को देवकी ने बसुदेव में समुत्पन्न किया था जो भीम ब्रह्म की गुप्ति के लिए स्थित है उस ब्रह्मात्मा के लिए मेरा नमस्कार है ।१०-१५।

त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ।१६
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् ।
दुर्वृत्तास्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ।
सोऽहं देवार्तिदुर्वृत्तस्त्राहि माँ शोकसागरात् ।१७
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं मसत्यज्ञानसागरे ।
त्राहि मा देवदेवेश त्वामृतोऽन्यो न रक्षिता ।१८
स्वजन्मबासुदेवाय गौब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।
शान्तिं रस्तु शिवाञ्चास्तु धनविख्याति राज्यभाक् ।१९
त्राहि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात् ।

फिर प्रार्थना करे, हे देवकी के नन्दन ! आप श्री के स्वामी हैं और समस्त साँसारिक दुःख एवं पापों के हरण करने वाले हैं । हे विष्णो ! जो आपका एक-एक धार भी स्मरण करता है वह चाहे कैसा भी दूषित आचार एवं चरित्र वाला हो उसको प्रभु इस संसार रूपी सागरसे और मुझको शोकके सागरसे सुरक्षित करें ।१६-१७। दो पुष्कर

(कमल) के समान नेत्रों वाले ! मैं इस अज्ञान के समुद्र में निमग्न हो रहा हूँ। हे देवों के भी देव स्वामिन् ! मेरा त्राण करो। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है।१८। अपना जन्म धारण करके ही आप वासुदेव हुए हैं, आप सर्वदा गौ और ब्राह्मणों का हित सम्पादन करने वाले हैं। आप इस सम्पूर्ण के हित करने वाले हैं, ऐसे गोविन्द कृष्ण आपके लिए बारम्बार प्रणाम हैं। सर्वत्र शान्ति हो, शिव अर्थात् मंगल हो और धन तथा विशेष ख्याति और राज्य को प्राप्ति करने वाला हो।१९।

८५—बुधाष्टमी व्रत

नक्ताशी त्वष्टमी यावद्वर्षान्ते चैव धेनुदः।
पौरन्दरं याति सत् गतिञ्च व्रतेऽच्यत।१
शुक्लाष्टम्यां पौषमासे महारुद्रेति साधु वै।
मत्प्रीतये व्रतकृत शतसाहस्त्रिकं फलम्।२
अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा।
भविष्यति तदा तस्यां व्रतमेत्कथा पुरा।
तस्यां नियमकर्त्तारो न स्युः खंडितसम्पदः।३
तंडुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाङ्गुलिद्वयम्।
भक्तं सद्भक्तिश्रद्धाभ्यां भक्तिकामौ हि मानवः।४
आम्रपत्रपुटे कृत्वा यो भुक्ते कुशवेष्टिते।
कलम्बिकालिकोपेतं काम्यं तस्य फलं भवेत्।५
बुधं पंचोपचारेण पूजयित्वा जलाशये।
शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्करी तंडुलान्विताम्।६
बुं बुधायेति बीजः स्यात्स्वादान्त कमलादिकः।
बाणचापधरं श्याम दले चाङ्गानि मध्यतः।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे अच्युत ! वर्ष पर्यन्त अष्टमी के दिन रात्रि में अशन करे और वर्ष के अन्त में धेनु का दान करे तो इस व्रत से पुरन्दर (इन्द्र) के पद को प्राप्त होता है और उस व्रत करने वाले को

सद्गति हो जाया करती है ।१। पौष मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में महा रुद्र इस साधु व्रत को मेरी प्रीति के लिए करें तो सैकड़ों सहस्रों गुना फल प्राप्त होता है ।२। जब दोनों पक्षों में अष्टमी तिथि बुधवार से संयुक्त होगी उस समय में उस अष्टमी में यह व्रत होता है। यह प्राचीन कथा है। उस अष्टमी में नियमों के करने वाले अभी भी खण्डित सम्पदा वाले नहीं हुआ करते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती है ।३। मुक्ति की कामना रखने वाले मनुष्य की आठ मुट्ठियों के चावलों का भक्त (भात) दो अंगुलियाँ छोड़ते हुए सद्भक्ति और श्रद्धा के साथ आम के पत्तों के पुट में (दोना) में करके कुशा से वेष्टित आसन पर भोजन करना चाहिए। वह कलम्बिकाम्लिका से युक्त हो तो उसका काम्य फल प्राप्त होता है ।४-५। जलाशय में पाँच पूजन के प्रमुख उपचारों के द्वारा बुध का पूजन करे, अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवे जोकि तन्दुलो से अन्वित करती हो ।६। कमला जिसके आदि में और स्वाहा जिसके अन्तमें है ऐसा 'बुंन्बुधाय'—यह बीज होता है। मध्य में बाण और चाप को धारण करने वाला श्वास रूप और दलों में अंग होने चाहिए ।७।

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् ।
पुरे पाटलीपुत्राख्यं वीरो नाम द्विजोत्तमः ।८
रम्भा भार्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः ।
दुहिता विचयनाम्नी धनपालो वृषोऽभवत् ।९
गृहीत्वा कौशिकस्तञ्च ग्रीष्मे गङ्गां व्रताऽरमत् ।१०
गङ्गातः स च उत्थान वनं वभ्राम दुःखितः ।
जलार्थं विजया चागाद् भ्रात्रा सार्द्धं च साप्यगात् ।११
पिपासितो मृणालाक्षीं आगतोऽथ सरोवरम् ।
दिव्यस्त्रीणांच पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ बिस्मितः ।१२
स तां गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षितः ।
स्त्रियोऽब्रुवन्व्रतं कर्त्तुं दास्यमन्नं कुरु व्रत ।१३

पत्यर्थं धनपालार्थं पूजयामासतुर्बुधम् ।
पुटद्वयं गृहीत्वाऽन्नं बुभुजाते प्रदत्तकम् ॥१४

परम पुण्य स्वरूपा बुधाष्टमी की कथा कृतिजनों को श्रवण करनी चाहिए । पाटिलपुत्र (पटना) नाम वाले नगर में वीर नाम धारी एक द्विज था ।८। उसकी पत्नी का नाम रंभा था और उसका कौशिक नाम वाला एक उत्तम पुत्र था । विजया नाम वाली उनकी पुत्री थी और धनपाल वृष था ।९। कौशिक उस धनपाल को लेकर ग्रीष्म ऋतु में गंगा नदी पर चला गया और वहाँ क्रीड़ासक्त हो गया था । वहाँ पर गोपालक चोरोंके द्वारा वह वृषबल पूर्वक अपहरण कर लिया गया था ।१०। वह कौशिक गंगा में जो जल क्रीड़ा कर रहा था वहाँ से उठकर परम दुःखित होता हुआ वनमें भ्रमण करने लगा था। जलजाने के लिए वहाँ विजया आगई थी और भाई के साथ वह भी चली गई ।११। वह प्यासा और मृणाल का इच्छुक वह इसके अनन्तर सरोवर पर आ गया था । वहाँ पर उसने दिव्य देवों की स्त्रियों की पूजार्चना आदि को देखकर अत्यन्त विस्मय किया था । उसने उन स्त्रियोंके पास में पहुँच कर कुछ अन्न की याचना की थी और उनसे निवेदन किया था कि मैं अपनी अनुजा के साथ अत्यन्त भूखा हूँ । उन अर्चन करने वाली स्त्रियों ने उससे कहा था कि तुम भी इस व्रत को करो । हम तुमको अन्नादि देवेंगी ।१२-१३। कन्या ने पतिकी प्राप्ति के लिए और कौशिक ने धनपाल वृष को प्राप्त करने के लिये बुध की पूजा की थी । इसके उपरान्त दो पुट में दिये हुए अन्न को उन दोनों ने खाया था।१४

स्त्रियो गतौ च धनदौ धनपालमपयताम् ।
चौरं दत्तं गृहीत्वाथ प्रदोषे प्राप्तवान् गृहम् ॥१५
वीरञ्च दुःखित नत्वा रात्रौ सुप्तो यथासुखम् ।
कन्याञ्च युवती दृष्ट्वा कस्मै देया सुता मया ॥१६
यमायेत्यब्रवीद दुःखात्सांचाराद् व्रतसत्फलात् ।
स्वर्गं गतौ च पितरौ व्रत राज्याय कौशिकः ॥१७

चक्रे ऽयोध्यामहाराज्यं दत्वा च भगिनीं यमे ।
यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे ।१८
अपश्यन्मातरं स्वां सा पाशयातनया स्थिताम् ।
अथोद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिदं व्रतम् ।।१९
चक्रे च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता ।
व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्गं गत्वावसत्सुखम् ।।२०

इसके पश्चात् स्त्रियाँ और धनद चले गये । उन दोनों ने धनपाल को वहाँ देखा था । चोरों के द्वारा प्रदत्त धनपाल को लेकर वह प्रदोष के समय में अपने घर मे प्राप्त हो गया था ।१५। परम दुःखित वीरको प्रणाम करके रात्रि में सुखपूर्वक सो गया था । कन्या को यौवन की अवस्था में देखकर उसे वड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं इस कन्या को किसे समर्पित करूँ ।१६। आचार से समन्वित इस व्रत के सत्फल से यह दुःख से यम से यह बोला, मेरे माता पिता दोनों स्वर्गवासी होगए और कौशिक ने राज्य की प्राप्ति के लिए व्रत किया था । अयोध्या के महान राज्य को देकर भगिनी को यम को दिया था । वह यम भी विजया से बोला अब तुम मेरे पुर में गृहस्थ धर्म पालन करने वाली हो जाओ ।१७-१८। फिर उस पाशया तन में अपनी माता को वहाँ पर अवस्थित देखा था । इसके अनन्तर उस विजयाने विमुक्तिके प्रदान करने वाले इस व्रत का ज्ञान प्राप्त करके बहुत ही उद्वेग किया था इसके पश्चात् उसने भी इस व्रतको किया था और इससे उसकी माता मुक्त हो गई थी । इस व्रत के परम पुण्य के प्रभाव से वह स्वर्ग लोक में पहुँच कर वहाँ सुख पूर्वक निवास करने लगी थी ।१९-२०।

८६-महानवमी व्रत

अशोककलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां कृते शोकमवाप्नुयुः ।।१
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भवः ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ।।२

शुक्लाष्टम्याश्वयुजे उत्तराषाढया युता ।
सा महानवमीत्युक्ता स्नानदानानि चाक्षयम् ।।३
नवमी केवला चापि दुर्गाञ्चैव तु पूजयेत् ।
महाव्रतं महापुण्या शङ्कराद्यैरनुष्ठितम् ।।४
अयाचितादि षष्ठ्यादौ राजा शत्रुजयाय च ।
जपहोमसमायुक्तः कन्यां वा भौजयेत्सदा ।।५
दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽयं पूजनादिषु ।
दीर्घाकाराभिर्मात्राभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिका ।।६
षड्भिः पदैर्नमः स्वाहावषडादि हृदादिकम् ।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विन्यस्य पूजयेच्छिवाम् ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चैत्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी में पुनर्वसु नक्षत्र हो अशोक वृक्ष की आठ कलिकाओं का जो पुरुष उस दिन पान करतेहैं वे कभी शोक नहीं करते ।१। पान करने के समय में प्रार्थना करे कि हे अशोक ! मैं शोक से अतीव सन्तप्त होकर तुम्हारा पान करता हूँ । अतएव कृपया मुझे सदा शोक से रहित करदो ।२। इति अशोकाष्टमी विध नम् । ब्रह्माजी ने कहा—आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीतिथि में जो कि उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से युक्त हो । वह महा नवमी इस नाम से कही गई है । इस दिनमें जो स्नान एवं दान आदि किए जाते हैं वे सब अक्षत हो जाते हैं ।३। यदि केवल नवमी हो तो भगवती दुर्गा की उस दिन पूजार्चना करनी चाहिए । यह महा व्रत महान् पुण्य-द होता है । इसको शङ्कर आदि ने किया है ।४। षष्ठी आदि में अयाचित आदि का ग्रहण करे । राजा को अपने शत्रुपर जय प्राप्त करनेके लिए इसे करना चाहिए । जप-होमसे समायुक्त होकर सदा कन्याओं को भोजन करावे । पूजन आदि कर्मों में 'दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षिणी, स्वाहा, इस मन्त्र का प्रयोग करे । दीर्घ आकार वाली मात्राओं से नौ देवियों के अन्त में नमः-इस शब्द का प्रयोग करे । छै पदोंके द्वारा नमः-स्वाहा-वषट् आदि

लेकर तथा अंगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठाके अन्त तक विन्यास करे और शिवा का पूजन करे ।६-७।

अष्टम्यां नवगेहानि दारुजान्येकमेक वा ।
तं स्मन्देवी प्रकर्त्तव्या हैमा वा राजतापि वा ॥८
शूले खङ्गे पुस्तके वा पटे वा मण्डले यजेत् ।
कपाल खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनी धनुः ॥६
ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु विभ्रती ।
शक्तिञ्च मुद्गरं शूलं वज्रं खङ्ग तथाङ्कुशम् ॥१०
शरं चक्रं शलाकाञ्च दुर्गामायधजयताम् ।
शेषाः षोडशहस्ता स्युरंजनं डमरुं विनाः ॥११
उग्रचण्डा च चन्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपाति चण्डिका ॥१२
नवमी चोग्रचण्डा च मध्यस्थाग्निप्रभांकृतिः ।
रोचना अरुणा कृष्णा नीला धूम्रा च शुक्लका ।
पीता च पाण्डरा प्रोक्ता आलीढन ररिस्थिताः ॥१३

अष्टमी तिथि के दिन काष्ठ के विनिर्मित नौ गृह तथा एकही गृहमें एक देवी की प्रतिमाका निर्माण करावे वह चाहे सुवर्णमयीहो या चाँदी की होवे ।८। शूल-चंग-पुस्तक में अथवा पट या मण्डल में उसका यजन करे । वह प्रतिमा कपाल खेटक घण्टा दर्पण तर्जनी धन ध्वज डमरू पाश अपने वाम भाग के हस्तोंमें धारण करने वाली होवे । शक्ति मुद्-गर शूल वज्र खंग तथा अंकुश शर चक्र शलाका ये दक्षिण हस्तों में धारण करने वाली समस्त अपने आयुधों से समन्वित दुर्गाका पूजनार्चन करना चाहिए । शेष सोलह हस्त अञ्चन और डमरू के बिना ही होने चाहिए ।६-१०-११। उग्र चण्डा-प्रचण्डा-चण्डोग्रा--चण्डनायिका चण्डा चण्डवती चण्डरूपाति चन्डिका और नवमी उग्र चन्ड़ा हो तथा मध्य में स्थित अग्नि की प्रभा जैसी आकृति वाली होवे । रोचना-अरुणा-कृष्णा-नीला धूम्रा-शुक्लका-पीता और पान्डरा कही गई हैं जो कि आलीढ़ से हरि स्थित होती हैं ।१२-१३।

माहिषोऽथ सखंगाग्रे प्रकचग्रहमुष्टिका ।
जप्त्वा दशाक्षरी विद्यां त्रिशूलञ्चतदा यजेत् ॥१४
लिंगस्थां पूजयेद्वापि पादुकेऽत्र जलेऽपि वा ।
विचित्रां रचयेत्पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ॥१५
पञ्चाब्दं माहिषं शस्तं रात्रिशेषं च घातयेत् ।
विधिवत्कालिकी नीतिः तदुत्थंरुधिरादिकम् ॥१६
नैऋर्त्यां पूतनांकैव वायव्यां पापराक्षसीम् ।
चण्डिकांच तथैशान्यामाग्नेय्यांच विदारिकाम् ॥१७
श्रावणद्वादशीं वक्ष्ये भुक्तमुक्तिप्रदायिनीम् ।

आगे महिष है और रंग के सहित उसके केश अपनी मुट्ठी में ग्रहण करने वाली है । इनकी दश अक्षर वाली विद्या (मन्त्र) का जाप करके इसके अनन्तर उसके त्रिशूलका यजन करना चाहिए ।१४।अथवा लिंगस्था का पूजन करे, पादुका अथवा जल में विचित्रा का पूजन करे और अष्टमी में उपवास करना चाहिए ।१५।पाँच वर्ष वाले माहिष प्रशस्त करे । रात्रि के शेष में लाकर उसका घात करावे । यह विधि पूर्वक कालिकी नीति है । उससे निकले हुए रुधिर आदि का नैऋत्य में और पाप राक्षसी पूतना को वायव्य में तथा चण्डिका को आग्नेयी दिशा में और ऐशानी में विदारिका को करे ।१६-१७।

८७—श्रावण द्वादशी व्रत

एकादशी द्वादशीं च श्रवणेन च संयुता ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता हरिपूजादि चाक्षयम् ॥१
एकभक्तेन नक्तेनं तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन भैक्ष्येण नैवादादशिको भवेत् ॥२
कांस्यं मांसं तथा क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।
व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवास्वप्नथांचनम् ।
शिलापिष्टं मसूरं च द्वादश्यां वर्जयेन्नरः ॥३
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादशी श्रवणान्विता ।

महती द्वादशी ज्ञेया उपवास महाफला ।
सङ्गमे सरितां स्नानं बुधयुक्तामहाफला ॥४
कुम्भे सरत्ने सजले यजेत्स्वर्णे तु वामनम् ।
सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युपान्वितम् ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम श्रावण की द्वादशी के विषयमें वर्णन करते है जो भुक्ति मुक्ति का प्रदान करने वाली होती है । एकादशी हो अथवा द्वादशी तिथि हो किन्तु श्रावण नक्षत्र से संयुत होनी चाहिए । वह तिथि विजया कही गई है । इसमें हरि की पूजा अक्षय पुन्य-फल वाली होती है ।१। एक वक्त अर्थात् एक बार रात्रि के भोजन से तथा अयाचित भोजन से उपवास और भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन से अद्वादशिक नहीं होता हैं । अर्थात् द्वादशी व्रतका नाश करने वाला नहीं होता है ।२। काँसे का पात्र, मांस, क्षौद्र (मधु), लोभ, मिथ्या, भाषण व्यायाम, व्यवाय (मैथुन), दिन में शयन (निद्रा) करना, अंजनन्शिला-पिष्ट (पत्थर से या पाषाण पर पिसे हुए पदार्थ) और मसूर इन सबका द्वादशी में वर्जन कर देना चाहिए ।३। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी जो श्रवण नक्षत्रसे अन्वित हो उसे एक सबसे बड़ी द्वादशी समझना चाहिए । इसके उपवास का महान फल होता है । संगम में सरिताओं का स्नान बुधसे युक्ता हो तो महान फल वाली होती है ।४।रत्नों से परिपूर्ण एवं जल से भरे हुए कुम्भ में स्वर्ग में वामनदेव का यजन करे जो दो श्वेत वस्त्रोंसे समाच्छन्न हों और-छत्र और उपानत् के युग से समन्वित होवे ।५। इसके अनन्तर 'ॐ नमो वासुदेवाय', इस मन्त्रका उच्चारण करके शिर का यजन करें । 'ॐ श्रीधराय' इससे मुख का और 'ॐ नमः कृष्णाय'—इससे कण्ठ की अर्चना करनी चाहिए ।५।

ॐ नमो वासुदेवाय शिरः संपूजयेत्ततः ।
श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै नमः ॥६
नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।
व्यापकाय नमः कुक्षौ केशवायोदरंबुधः ॥७
त्रैलोक्यपतये मेढ्रं जङ्घे सर्वपतये नमः ।
सर्वात्मने नमः शादौ नैवेद्यं घृतपायसम् ॥८

कुम्भांश्च मोदकान्दद्याज्जागरं कारयेन्निशि ।
स्नात्वा पीत्वाऽर्चंतित्वा तु कृतपुष्पांजलिर्बदेत् ॥६
नमो नमस्ते गोविन्द बध श्रवणसञ्ज्ञक ।
अघौघसंक्षय कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१०
प्रीयतां देवदेवेशो विप्रेभ्यः कलशान्ददेत् ।
नद्यास्तोरेऽथवा कुर्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥११

'ॐ' नमः श्रीपत ये"—इससे वक्षः स्थल का और 'ॐ नमः सर्वास्त्र-धारिणे"—भुजाओं का यजन करे 'ॐ तमोव्यापकाय—यह मन्त्र कहकर कुक्षियों का और 'ॐ नमः केशवार्य—इससे बुध को उदर का यजनार्चन करना चाहिए ।१। 'ॐ नमः त्रैलोक्यं पतये, इससे मेंढ़ का, 'ॐ नमः सर्व पतये'—इससे दोनों जाँघों का तथा 'ॐ नमः सर्वात्मने' इससे चरणों का यजन करे । इसके पश्चात् नैवेद्य घृत, पायस, कुम्भो को और मोदकों को समर्पित करे । रात्रि में जागरण करे । स्नान करके पान करके अ जलियों में पु ष्प लेकर प्रार्थना करे ।७-६। हे श्रावण संज्ञा वाले बुध ! गोविन्द ! आपको बारम्वार प्रणाम है । आप मेरे अघों के समूह का क्षय करके समस्त प्रकार के सुखों के प्रदान करने वाले होवें ।१०। हे देवों के देवों के भी स्वामिन्! आप मुझपरप्रसन्नता करें । फिर उन कलशों को विप्रों के लिए दान कर देवे । इस कार्य क्रम का अनुष्ठान किसी नदी के तट पर करें तो सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति होती है ।११।

८८-मदनत्रयोदशी आदि के व्रत

मातदेवत्रयोदश्यां पूजा दमनका विधिः ।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ॥१
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
योऽब्दनेक न भुञ्जोत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ॥२
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्कार्त्तिक्यां भवनं शुभम् ।
सूर्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिदं शुभम् ॥३

अमावस्यां पितृणां च दत्तं जलादि चाक्षयम् ।
नक्ताभ्याशी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक् ।।४
द्वादशर्क्षाणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वै ।
तन्नाम्ना तेऽच्युत तेषु सम्यक्सपूजयेन्नरः ।।५
केशवं मार्गशीर्षे तु इत्यादौ कृतिकादिका ।
घृतहोमश्चतुर्मासं कृसरंच निवेदयेत् ।।६
आषाढ़ादी पायसन्ते विप्रास्तेनैव भोजयेत् ।
पंचगव्यजले स्नानं नैवेद्यं नंक्तमाचरेत् ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव त्रयोदशी के दिन दमनक आदि के द्वारा रति औद प्रीति से समायुक्त होकर करे तो शोक से रहित और महासम्मान से विभूषित हो जाता है ।१। इति मदन त्रयोदशी पूजा विधानम् । शुक्ल और कृष्ण पक्षों की चतुर्दशी तिथि में तथा अष्टमी तिथि के दिन में जो एक वर्ष पर्यन्त भोजन न करे अर्थात उपवास करे एवं भगवान महेश्वर शिवका पूजनकरे तो उसे समस्त भोगोंकी प्राप्ति हुआ करती है । इस चतुर्दश्यष्टमी व्रत विधानम् ।२। कार्तिकी में तीन रात्रि उपवास करके वह सूर्यलोक को जाया करता है । यह परम शुभ धाम व्रत कहलाता है ।३। अमावस्या के दिन पितृगणेश्वर को दिया हुआ जल अक्षय होता है । रात्रि के अभ्यास वाला बार के नाम से वारि में यजन करता हुआ सभी को प्राप्ति करने का श्रेय लाभ किया करता है ।४। हे विप्रर्षे ! प्रतिमास में बारह नक्षत्र होते हैं उनके नामों से भली-भाँति पूजन करना चाहिए ।५। मार्ग शीर्ष कृत्तिका आदि केशव का यजन करे । चार मास तक घृत का होम और कृसर को निवेदित करे ।५। आषाढ़ादि में पायस का होम करे, इसे ही समर्पित करे और (खीर) से हीं विप्रों को भोजन करावे । पञ्चगव्य के जल से स्नान करे नैवेद्यों से रात्रि में समाचरण करना चाहिए ।७।

अवांग्विसर्जनाद् द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ।।८

पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्यं भुञ्जते स्वयम् ।
एवं संवत्सरस्यान्ते विशेषेण प्रपूजयेत् व ॥९

नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धि समुपैति पुण्यम् ।
एश्वर्य्यंवित्तादि सदाऽक्षयं मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव ॥१०
यथाच्युतं त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभतः परत परस्मात् ।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं सदा मया कृत्तं पापहराप्रमेय ॥११

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१२

विसर्जन करने के पूर्व में सब द्रव्य नैवेद्य कहा जाता है। जगत के नाथ भगवान के विसर्जित कर देने पर एक ही क्षणमें वह सब निर्माल्य हो जाता है।८। पंचरात्र के ज्ञाता मुख्य नैवेद्य का स्वयं खाते हैं। इस प्रकार से संवत्सर के अन्त में विशेष रूप से पूजन करना चाहिए ।९। प्रार्थना इस तरह करे, हे अच्युत ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है। मेरे सम्पूर्ण पापों का संक्षय हो जावे और मेरे पुण्य की वृद्धि होवे । मेरा ऐश्वर्य और वित्त आदि सदा अक्षय होवे और इसी भाँति मेरी सन्तति भी अक्षय हो जावे।१०। हे अच्युत देव ! जिस प्रकार से आप परसे भी पर से हैं और पर से पर में अवस्थित आप सदा मेरे वांछित को भी कर देवें। हे अप्रमेय देव आप सदा किए हुए पापों को हरण कर देवें ।११। हे अच्युतानन्त ! हे गोविन्द ! आप प्रसन्न होइए । हे अमेयात्मन् ! जो भी कुछ मेरा अभीष्ट मनोरथ हो जावे। हे पुरुषोत्तम! आप मुझ पर ऐसी ही कृपा कर देवे ।१२।

कुर्य्याद्वै सप्तवर्षाणि आयुः श्रीसद् गति करः ।
उपोष्यैकादशीमब्दमष्टयीञ्च चतुर्दशीम् ॥१३
सप्तमी पूजयेद्विष्णुर्दुर्गा शम्भु रवि क्रमात् ।
तेषां लोकं समाप्नीति सर्वकामश्च निर्मलः ॥१४
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन शाकाद्यैः पूजयन्सर्वदेवताः ।
सर्वः सर्वासु तिथिषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१५

धनदोऽग्निः प्रतिपदि नासत्यो दस्र अर्चितः ।
श्रीर्यमश्च द्वितीयायां पञ्चम्यां पार्वती श्रिया ।।१६
गानाः षष्ठयां कार्त्तिकेयः सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः ।
दुर्गाष्टम्यां मातरञ्च नबम्यामथ तक्षकः ।।१७
दशम्यामिन्द्रो धनद एकादश्यां मुनीश्वराः ।
द्वादश्याञ्च हरिः कामत्रयोदश्याँ महेश्वरः ।
चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽपरे ।।१८

इस व्रत को सात वर्ष तक जो मनुष्य करता है,वह आयु, श्री और सद्गति को प्राप्त किया करता है । एकादशी-अष्टमीं और चतुर्दशी का एक वर्ष तक उपवास करे ।१३। सप्तमी का, दुर्गा शम्भु और क्रम से रवि का पूजन करे । उसके सम्पूर्ण काम पूर्ण होते हैं ।१४। एक वक्त भोजन से जो रात्रि में किया जावे तथा अयाचित भोजन से जो बिना माँगे ही प्राप्ति हो जावे, शाकादि के द्वारा रहकर उपवास करके सब देवताओं का पूजन करने वाले सभी तिथियों में इस व्रत करके सब देवताओं का पूजन करने वाले सभी तिथियों में इस व्रत का पालन करे तो वे भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त किया करते हैं । ।१५।प्रति-पदा तिथि में अग्नि का अर्चन् धन प्रदान करने वाला होता है । नासत्य, शङ्ख, श्री और यम की अर्चना द्वितीया में करे और पंचमी तिथि में श्री से युक्त पार्वती एवं नागों का यजन करना चाहिए । षष्ठी तिथि में स्वामी कार्त्तिकेय का पूजन करे । सप्तमी में भगवान् भुवन भास्कर का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है । दुर्गाष्टमी में मातृ-गण का यजन करे । नवमी के तक्षक का पूजन करे । दशमी तिथि में इन्द्र की अर्चना धन देने वाली है । एकादशी में मुनीश्वरों का यजन करे । द्वादशी में हरि भगवान् का पूजन करना चाहिए। त्रयोदशी में कामदेव का और चतुर्दशी है महेश्वर का एवं पंचदशी में ब्रह्म एवं दूसरे पितरों का यजन करना चाहिए ।१६-१८।

८९-सूर्य वंश कीर्तन

राज्ञां वंशान्प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च ।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै ।।१

ततोऽतिर्विस्वाश्च ततो विवस्वतः सुतः ।
मनुरिक्ष्वाकुः शर्यातिमृ'गो धृष्टः पृषध्रकः ।
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्टः शशक एव च ॥२
मनाराहीदिला कन्या सुद्यम्नोऽस्य सुतोऽभवत् ।
इलायां तु बुधाज्जातो रजोरुद्रपुरूरवाः ।
सुतास्त्रयश्व सुद्यु म्नादुत्कलो विनतो गयः ॥३
अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पुषध्रस्तु मनो सुतः ।
करूषात्क्षत्रिया जाता कारूषा इति विश्रु ताः ॥४
दिष्टपुत्रस्तु नाभागौ वैश्यतामगमत्स च ।
तस्माद्भनन्दनः पुत्रो वत्सप्रीतिर्भनन्दनात् ॥५
ततः पांशुः खनित्रोऽभूद् भूपस्तस्मात्ततः क्षुपः ।
क्षुपाद्विशोऽभत्रत्पुत्रो विशाज्जातो विविंशकः ॥६
विविंशाच्च खनीनेत्रो विभूतिस्यंत्सुतः स्मृतः ।
करन्धमो बिभूतेस्तु तत्तो जायोऽप्यविक्षितः ॥७

श्री हरि ने कहा—अब हम राजाओं के वंशों का हरण वंशों के अनुचरितों का वर्णन करते हैं। भगवान विष्णु की नाभि में समुत्पन्न कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। उन ब्रह्मा के अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापतिने जन्म ग्रहण किया था। इसके पश्चात् अदिति समुत्पन्न हुई और उस अदिति से विवस्वान् हुए थे। विवस्वान् के सुत मनु हुए। इक्ष्वाकु शर्याति, मृग, नेष्ठ, पृष्ठधक, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट और शशक समुत्पन्न हुए।१-२। मनु की इला कन्या और सुद्यु म्न नाम वाला इसका सुद्यु म्न से तीन समुत्पन्न हुए थे जिनके नाम उत्कल, विनत और गय है हुए।३। गोवध से शूद्र पृघ्र मनु का सुत था। कारूप क्षत्रिय हुए थे।४। दिष्ट का सुत नाभाग था जो कि वैश्यता को प्राप्त हो गया था। उससे भनन्दन ने जन्म ग्रहण किया और भनन्दन का वत्स प्रीति नामक हुआ था।५। इससे पाशु, खनित्र भूप हुआ और इसका सुत क्षुप हुआ। क्षुप का सुत विंश हुआ और विश से विविंशक की उत्पत्ति हुई थी।६।

विविसक से खनीनेत्र नामक पुत्र पैदा हुआ तथा खनीनेत्र का पुत्र विभूति नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। विभूति का पुत्र करन्धय और करन्धम अविक्षिलित नाम वाले आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था।।७।

मरुत्तोऽबिक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्ततः स्मृतः।
नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धनः ॥८
राजबर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृतेः सुतः।
नराच्च केवलः पुत्रः केवलान् धुन्धुमानपि ॥९
धुन्धुमातो वेगवांश्च बुधो वेगवतः सुतः।
तृणबिन्दुर्बुधाज्जातः कन्या चैलविला तथा ॥१०
विशालं जनयामास तृणविन्दोस्त्वयम्भुषा।
विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रकः ॥११
धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वात्सृञ्जयस्तथा।
सृञ्जयात्सहनेवोऽभूत्कृशावस्तत्सुतोऽभवत् ॥१२
कृशाश्वात्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमेजयः।
तत्पुत्रश्च सुमन्त्रिश्च एते वैशालका नृपाः ॥१३
शर्यातिस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्य्या च्यवनस्य तु।
अनन्तो नाम शर्यातिरनन्ताद्देवोऽभवत्।
रैवतो रेवतस्यापि रेवताद्रेवती किल ॥१४

अविक्षित का सुत मरुत् और उससे नरिष्यन्त हुआ था। नारिष्यन्त से तम और तम का पुत्र राज वर्द्धन समुत्पन्न हुआ। इससे धृति और सुधृति का सुत नर नर नामधारी हुआ था। नर का पुत्र केवल और इसका पुत्र धुन्धुमान् हुआ। धुन्धुमान् का वेगवान् और वेग-का बुध यथा बुध का पुत्र तृणविन्दु और एक ऐलविला नाम धारिणी कन्या हुई थी।१०। तृण विन्दु से अलम्बुषा ने विशाल को उत्पन्न कियाथा। विशाल से हेमचन्द्र ने जन्म लिया था और हेमचन्द्र से चन्द्रक नाम वाला आत्मज समुत्पन्न हुआ था।११। चन्द्र से धूम्राश्व सृंजय, सृंजय

से सहदेव और सहदेव से कृशाश्व नामक सुत ने जन्म लिया था ।१२। कृशाश्व का पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त से जनमेजय ने उत्पत्ति प्राप्ति की थी। इसका पुत्र सुमन्त्रि हुआ था। ये सब वैशालक नाम विख्यात होने वाले नृप हुए ।१३। शर्याति राजा के एक कन्या हुई थी जो कि च्यवन महर्षि की भार्या हुई थी। शर्याति के एक अनन्त नामक पुत्र हुआ और अनन्त का सुत देवक उत्पन्न हुआ था। रैवत रेवत का पुत्र हुआ था और रैवत से रेवत नाम वाली पुत्री भी पैदा हुई थी ।१४।

धृष्टस्य धाष्टकं क्षत्रं वैश्यकं तद्बभूवह ।
नाभागपुत्रो नेदिष्टो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः ॥१५
अम्बरीषाद्विरूपो भूत्पृषदश्वो विरूपतः ।
रथीनरश्च तत्पुत्रो वामदेवपरायणः ॥१६
इक्ष्वाकोस्तु त्रयः पुत्रा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ।
इक्ष्वाकुतो विकुक्षिस्तु शशादः शषभक्षणात् ॥१७
पुरञ्जयः शशादाच्च ककुत्स्थाख्योऽभवत्सुतः ।
अनेनास्तु ककुत्स्थाच्च पृथुः पुत्रस्त्वनेनसः ॥१८
विश्वरासः पृथोः पुत्र आर्द्रोऽभूद्विश्वराततः ।
युवनाश्वोऽभवच्चार्द्रात् श्रावस्तो युवनाश्वतः ॥१९
बृहदश्वस्तु श्रावस्तात्तत्पुत्रः कवलाश्वकः ।
धुन्धुमारो हि विख्याता दृढश्विश्च ततोऽभवत् ॥२०
चन्द्राश्वः कपिलाश्वश्च हर्य्यश्वश्च दृढाश्वतः ।
हर्य्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूद्धिताश्वश्च निकुम्भतः ॥२१

धृति का धार्ष्टक क्षत्रिय हुआ था जो कि वैश्यक हो गया था ।१५। राजा अम्बरीष से विरूप उत्पन्न हुआ था और विरूप से वृषश्व की समुत्पत्ति हुई थी। उसका पुत्र रथीनर नामक हुआ जो सर्वदा भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण रहा करता था ।१६। इक्ष्वाकु राजा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम विकुक्षि निमि और दन्डक थे।

इक्ष्वाकु से समुत्पन्न विकुक्षि शश का भक्षण करने से शशाड कहलाया गया था ।१७। शशाद से पुरंजय और इसका पुत्र ककुत्स्थ हुआ था । ककुत्स्थ से अनेना और इसका सुत पृथु हुआ था ।१७। पृथु का विश्व-रात हुआ और विश्वरात से आर्द्र सुत की उत्पत्ति हुई थी । आर्द्र से युवनाश्व और युवनाश्व का सुत श्रीवस्त नाम वाला हुआ था ।१९। श्रीवस्त का सुत वृहदश्व और इसका सुत कुवंलाश्वक हुआ । धुन्धुकार परम विख्यात हुआ था और इसके उपरान्त दृढ़ाश्व से चन्द्राश्व कपि-लाश्व और हर्यश्व उत्पन्न हुए थे । हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से अमिताश्व समुत्पन्न हुआ था ।२०-२१।

पूजाश्यश्च हिताश्वाच्च तत्सुतो युवनाश्वकः ।
युवनाश्वाच्च मान्धाता बिन्दुमह्यस्ततुतोऽभवत् ।।२२
मुचुकुन्दोऽम्बरीषश्च पुरुकुत्सत्रयः स ता ।
पञ्चाशत्यकाश्चैव भार्यास्ताः सौभरेर्मुनेः ।।२३
युवनाश्वोऽम्बरीपाच्च हरितो युवनाश्वतः ।
पुरुकुत्सान्नर्मदायां त्रसद्दस्युरभूत्सुतः ।।२४
अनरण्यस्तो जातो हर्य्यश्वऽप्यनरण्यतः ।
तत्पुत्रोऽभूद् वसुमनास्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ।।२५
त्रय्यारुणस्तम्य पुत्रस्तस्य सत्यरतः सुतः ।
वस्त्रिशडकुः समाख्यायो हरिश्चन्द्रोऽभवत्ततः ।।२६
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो हरितो रोहिताश्वतः ।
हरितस्य सुतश्चञ्च श्चञ्चोश्च विजयः सुतः ।।२७
विजयाद्रुरुनो जज्ञे रुरुकात्तु बुकः सुतः ।
वृहाद्बाहुर्नृपाऽभूच्च वाहोस्तु सगरः स्मृतः ।।२८

हिताश्व का सुत पूजाश्व और उसका युवनाशक हुआ । युवनाश्व से मान्धाता उसका सुत विन्दुमह्य हुआ था । इसके मुचुकुन्द अम्बरीष और पुरुकुत्स ये तीन सुत और पचास कन्याएं हुई थीं जो सौभरि मुनि की भार्याएँ थीं ।२२-२३। अम्बरीष से युवनाश्व और युवनाश्वसे

हरित हुआ। पुरुकुत्स से नर्मदा में त्रसदस्यु नामक आत्मज की उत्पत्ति हुई थी।२४।उससे अनरण्य हुआ और अनरण्य से हर्यश्व हुआ। इसका सुत, वसुमना और वसुमना से त्रिधन्वा सुत की उत्पत्ति हुई थी।२५। इसके यहाँ त्र्य्यारुण नामधारी सुत ने जन्म ग्रहण किया था और इसका सुत सत्वरत हुआ था जो कि त्रिशुंकु, इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसका सुत हरिश्चन्द्र था।२६। हरिश्चन्द्र नृपति का सुत रोहिताश्व हुआ था और रोहिताश्व से हरित नामक सुतका जन्म हुआ था। हरित के सुत का नाम चंचु था और चंचु के सुत विजयने जन्म धारण किया था।२७। विजय से रुद्रकसुत पैदा हुआ और रुद्रक से बक नामक सुत की उत्पत्ति हुई थी। वृक से बाहु नृप अवतीर्ण हुआ और बाहुका सुत सगर नामक हुआ था।२८।

षष्टिपुत्रसहस्राणि सुमत्यां सगरोद्भवः।
केशिन्यामेक एबाहो असमञ्जससंज्ञकः ॥२९
तस्यांशुमान्सुतो विद्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत्।
भागीरथो दिलीपाच्च यो गङ्गामानयद्भुसे ॥३०
श्रुतो भगीरथसुतौ नाभागश्च श्रुतात्किल।
नाभागादम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषतः ॥३१
सिन्धुद्वीपस्यायुतायुः ऋतुपर्णस्ततदात्मजः।
ऋतुपर्णात्सर्वकामः सुदासामत्तदात्मजः ॥३२
सुदासस्य च सौदासो नाम्ना मित्रसहः स्मत।
कल्मषपादसंज्ञश्चदमयन्त्यां तदात्मजः ॥३३
अश्वकाख्योऽगवत्पुत्रो ह्यश्वकान्मूलकोऽभवत्।
ततो दशरथो राजा तस्य चैवविलः सुतः ॥३४
तस्य विश्वसहः पुत्रः खट्वाङ्गश्च तदात्मजः।
खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च दीर्घबाहोरजः सुतः ॥३५

राजा सगर से सुमति नामधारिणी भार्या में साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुये थे। केशिनी नामक पत्नी में एक ही असमंजस नाम वाले सुत की उत्पत्ति हुई थी।२९। इस का अंशुमान था। अंशुमान्का सुत परम विद्वान् दिलीप हुआ थां और इस राजा दिलीप का सुत भगीरथ

नाम वाला समुत्पन्न हुआ था जिसने अपनी अत्यन्त उग्र तपस्यासे गंगा का यहाँ भूलोक में आगमन कराया था ।३०। भगीरथ के पुत्र का नाम श्रुत हुआ और श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ था । नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था । अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था ।३१।सिन्धु द्वीपका सुत अयुतासु हुआ और इसका पुत्र ऋतुपर्ण नाम वाला हुआ । ऋतुपर्ण से सर्वकाम समुत्पन्न हुआ और इसका पुत्र सुदास हुआ था ।३२। सुदास का सुत सौदास समुत्पन्न हुआ जो नाम से मित्रसह कहलाता था । इसका पुत्र दमयन्तीमें कल्माष पाद नाम वाला पैदा हुआ ।३३। इसका पुत्र अश्वक नोमधारी था और अश्वकसे मूलक समुत्पन्न हुआ इसके पुत्र का नाम दशरथ था । इसका पुत्र ऐलविल हुआ था । ।३४। ऐलविल का आत्मज विश्वजह हुआ और विश्वसहका पुत्र खटवाङ्ग उत्पन्न हुआ था । खट्वांग से दीर्घवाहु सुत की समुत्पत्ति हुई तथा दीर्घबाहु से अज नृपति ने पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था ।३५।

तस्य पुत्रो दशरथश्चात्वागस्तत्सुताः स्मृताः ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबलाः ॥३६
रामात्कुशलवौ जातौ भरतात्तर्क्षपुष्करौ ।
चित्राङ्गदश्चन्द्रकेतु लक्ष्मणात्संवभूवतुः ॥३७
सुबाहुशूरसेनौ च शत्रुघ्नात्संबभूवतुः ।
कुशस्य चातिथिः पुत्रो निषधो ह्यतिथेः सुतः ॥३८
निषधस्य नलः पुत्रो नलस्य च नभाः स्मृता ।
नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तदात्मजः ॥३९
देवानीकस्तस्य पुत्रा देवानाकादहीनकः ।
अहीतकाद्रुरुर्जज्ञ पानिपात्रो रुरेः सुतः ॥४०
पारियात्रात्दलो जज्ञेः दलपुत्रेश्छलः स्मृतः ।
छलाद्वुक्थस्ततो बुक्थाद्वज्रनाभस्ततो गणः ॥४१
उषिताश्वो गणाज्जज्ञे ततो विश्वसहोऽभवत् ।
हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रः पुष्पकः स्मृतः ॥४२

इन्हीं महाराज अजके प्रतापी दशरथ नृपका जन्म हुआ था जिसके चार पुत्र बताये जाते हैं जिनके नाम श्रीराम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न ये थे ।३६। श्रीरामचन्द्र ने कुश और लव तथा भरत के ताक्ष्र्य और पुष्कर, लक्ष्मण के चित्रांगद और चन्द्र केतु नामधारी दो दो सुत समुत्पन्न हुए थे ।३७। शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नाम वाले दो सुतों की उत्पत्ति हुई थी । कुश का अतिथि और अतिथि का पुत्र निषध हुआ ।३८। निषध का नल, नल का नभा नामक पुत्र हुआ । नभासे पुण्डरीक क्षेमधन्वा हुआ था ।३९। क्षेमधन्वा का दवानीक और इसका सुत अहीं-नक नाम वाला था । अहीनक से रुरूने जन्म लिया था और रुरू का पुत्र पारिपात्र नाम वाला हुआ था ।४०। पारिपात्र का दल तथा दल का पुत्र छल हुआ था । छल से बुक्थ और इसका सुत वज्रनाथ हुआ । तथा वज्रनाथ के गण नामक पुत्र था ।४१। गणसे उषिताश्व हुआ फिर इसका पुत्र विश्वसह उत्पन्न हुआ था इसके युत्र का नाम हिरण्य नाभ और हिरण्य नाभ का आत्मज पुष्पक नाम वाला हुआ था ।४२।

ध्रुवसन्धिरभूत्पुष्पाद् ध्रुवसन्धे सुदर्शनः ।
सुर्शनादग्निवर्णं सद्यवर्णोऽग्निवर्णतः ।४३
शीघ्रस्तु पद्मवर्णात्तु शीघ्रात्पुत्रो मरुस्त्वभूत् ।
मरोः प्रसुश्रतः पुप्ररतस्य चोदावसः सुतः ।४४
उदावसोर्नन्दिवर्द्धनः सुकेतुनन्दिवर्द्धनात् ।
सुकेतोर्देवरातोऽभूद् बृहदुक्थस्ततः सुतः ।।४५
बृहदुक्थान्महावीर्यें सुधृतिस्तस्य चात्मजः ।
सुधृतेर्नृष्टकेतुश्च हर्यश्वो धृष्टकेतुतः ।४६
हर्यश्वात्तु सरुजातो मरोः प्रतीन्धकोऽधवत् ।
प्रतीन्धकात्कृतिरथो देवमीढ़स्तदात्मजः ।४७
विवुधो देवमीढ़ात्तु महाधृतिः तदात्मजः ।
महाधृतेः कृतिरातो महारोमातदात्मजः ।४८

महारोम्णः स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मजः ।
सीरध्वजो ह्रस्वरोम्णः तस्यः सीताभवत्सुता ।४९

पुष्पक के पुत्र का नाम ध्रुव सन्धि और इसके पुत्र का नाम सुदर्शन हुआ था । सुदर्शन से अग्नि वर्ण और इसके पद्म वर्ण हुआ ।४३। पद्म वर्ण पुत्रशीघ्र तथा इसका सुत मरु नाम धारी हुआ । मरु से प्रसश्रुत और इससे उदावसु पुत्र हुआ था ।४४। उदावसु के यहाँ नन्हि वर्द्धन ने जन्म लिया तथा इसका पुत्र सुकेतु सउना पुत्र देवरात एवं इसके यहाँ वृहदुक्थ उत्पन्न हुआ था ।४५।-वृहदुक्थ के पुत्र का नाम महावीर्य था तथा उसका पुत्र रूप में जन्म धारण किया ।४६। हर्यश्वसे मरु हुआ तथा इसके पुत्रका नाम प्रतीन्धक था । प्रतीन्धक से कृति और इसके आत्मज का नाम देवमीढ़ था ।४७।देवमीढ़ से विबुध उत्पन्न हुआ विबुध से महाधृति इसके पुत्र का नाम कृतिरात तथा इसके सुत का नाम महारोमा हुआ था ।४८। महोरोमा के स्वर्ण रोमा और इसके सुत का नाम ह्रस्वरोमा हुआ था । ह्रस्वरोमा से सीरध्वज नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । इसी सीरध्वज की पुत्री का नाम सीता था ।४९।

भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात्तु भानुमान् ।
शतद्युम्नो भानुमतः शतद्युम्नाच्छुचिः स्मृतः ।५०
ऊर्जनामा शुचेः पुत्रः सनद्वाजस्तदात्मजः ।
सनद्वाजात्कुलिर्ज्ञातोऽनञ्जनस्तु कुलेः सतः ।५१
अनञ्जनाच्च कुलजितस्यापि चाधिनेमिकः ।
श्रुतायुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुपार्श्वश्च तदात्मजः ।५२
सुपार्श्वात्सृजयो जातः क्षेमारिः सृंजयात्स्मृतः ।
क्षेमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथः स्मृतः ।५३
सत्यरथो रामरथात्तस्मादुपगुरुः स्मृतः ।
उपगुरोरुपगुप्तःस्वागतश्चोपगुप्ततः ।५४
स्वनरः स्वागताज्जज्ञे सुवर्चास्तस्य चात्मजः ।
सुवर्चसः सुपार्श्वस्तु सुश्रुतश्च सुपार्श्वततः ।५५

जयस्तु सुश्रु ताज्जज्ञे जयात्तु विजयोऽभवत् ।
विजयस्य ऋतः पुत्रः ऋतस्था सुनयः सुतः ।५६
तुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद्धतिः स्मृतः ।
वहुलाश्वो घृतेः वहुलाश्वात्कृतिः स्मृत ।५७
जनकस्य द्वयं वंश उक्तो योगसमाश्रयः ।५८

सीता के भाई का शुभ नाम कुशध्वज था । सीरध्वज से भानुमान् हुआ भानुमान् के पुत्र का नाम शतद्यु म्न था । शतद्यु म्न से शुचि की उत्पत्ति हुई थी ।५०। शुचिका पुत्र अज और इसका पुत्र सनद्वाज था । सनद्वाजसे कुल इसके अनञ्जन हुआ था।५१। अनञ्जनसे कुलजित् तथा इसके पुत्र का नाम अधिनेमिक था । इसके श्रुतायु और श्रुतायु का सुपार्श्व हुआ था ।५२। सुपार्श्व सृजश, से सृंजय से क्षेमारि पुत्र हुआ । क्षेमरि के पुत्र का नाम अनेना इसके रामरथ नामक सुतने जन्म लिया ।५३। रामरथ का पुत्र सत्यरथ था और इसके सुत उपगुरु हुआ था । उपगुरु के उपगुप्त के उपगुप्त स्वागत हुआ था ।५४। स्वागत से स्वनर तथा इस स्वनर से सुवर्चा हुआ । सुवर्चा के शुपार्श्व इसके पुत्र का नाम सुश्रुत था ।५५। सुश्रुत से जय नामक सुत ने जन्म लिया जय से विजय के पुत्र का नाम ऋतु था ऋतु का पुत्र सुनय था ।५६। सुनय से. वीत-हव्य हुआ था । वीतहव्य से धृति हुआ, धृति का पुत्र वहुलाश्व था वहुलाश्व से कृति ने जन्म धारण किया था ।५७। यह जनक का वंश योग समाश्रय कहा गया है ।५८।

६० चन्द्र वंश कीर्तन (१)

सूर्यस्य कथितो वंश सोमबंशंश्रृणुष्व मे ।
नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽत्रे समुद्भवः ।
अत्रेः सोतस्तस्य भार्या तारा सुरगुरोः प्रिया ।१
सोमतारा बुधं जज्ञे बुधपुत्र पुरूरवाः ।
बुधबुत्रादऔर्वश्यां शट् पुत्रास्तु श्रु तात्मकः ।
विश्वावसुः शतायुश्च आयुर्धीमानमावसुः ।।२

अमावसोर्भीमनामा भीमपुत्रश्च कांचनः ।
काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जह्नुश्चाभत्सुहोत्रतः ।३
जह्नोः सुमन्बुरभमत्सुमन्तोरबजापकः ।
बलाकाश्बस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुशः स्मृतः ।४
कुशाश्बः कुशनाभश्चामूर्त्तरथो बसुः कुशात् ।
गाधिः कुशाश्वात्संजज्ञे विश्तामित्रस्तदात्मजः ।५
कन्या सत्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाय सा ।
ऋचीकाज्जमग्निश्च रामस्तस्याभवेंत्सुतः ।६
विश्वामित्राद्देवरातधुच्छन्दादयः सुताः ।
आयुषो नहुषस्मादनेका रजरम्भकौ ।७

श्री हरि ने कहा—आपने कहे हुए सूर्य वंश का तो भली भाँति श्रवणकर लिया है,अब मुझसे सोम वंशका श्रवण करो । भगवान् आदि पुरुष नारायणका पुत्र ब्रह्म हुएथे और फिर उनपरम पितामह ब्रह्माजी से अत्रि का समुद्भव हुआ था । अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई । उसकी भार्या ताराहुई थी जो कि सुरों के गुरु की प्रिया थी ।१। सोमसे तारा ने बुध को समुत्पन्न किया था । इस बुध के पुत्र का नाम पुरूरवा था । उस बुध से उर्वशी में छै पुत्र हुए थे । उनके नाम-श्रुतात्मक विश्वावसु-शतायू-शायु-धीमान् और अवावसु मे थे ।२। अमावसु से भीम नाम वाला पुत्र हुआ था । भीम से कञ्चन-कंचन से सुहोत्र और सुहोत्र से जह्नु की उत्पत्ति हुई थी ।३। इसका पुत्र सुमन्बुका सुत अप-जापक हुआ । उसका पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्व से कुश पैदा हुआ था ।४। कुश से कुशाश्व-कुशनाम अमूर्तरथ और वसु हुए थे । कुशाश्व से गाधि की उत्पत्ति हुई । गाधि नृप के पुत्र विश्वामित्र हुए ।५। एक कन्या सत्यवती नाम वाली थी जिसको ऋचीक द्विज के लिए दे दिया था । ऋचीक से जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्नि से परशुराम का जन्म हुआ था।६। विश्वामित्र से देवराद मधुच्छन्द आदि पुत्र समुत्पन्न हुए थे । आयु का पुत्र नहुष राजा हुआ । इसके पुत्रों का नाम अनेका और रजिरम्भक थे ।६।

क्षत्रवृद्धः क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रश्चाभन्नृपः ।
काश्यकाशगृत्समदाः सुहोत्रादभवस्त्रयः ।८
गृत्समदाच्छौनकोऽभूत्काश्याद्दीर्घतमादता ।
वैद्यो धन्वन्तरिस्मात्केतुमांश्च तदात्मजः ।९
भीमरथः केतुमतो दिवोदासतदात्मजः ।
दिवोदासात्प्रतदनः शत्रु जित्सोऽत्र बिश्रु तः ।१०
ऋतध्वजस्तस्य पुत्रो ह्यलर्कश्च ऋतध्वजात् ।
अलर्कात्पन्ननिर्जज्ञे सुनोतः सन्नलेः सुतः ।११
सत्यकेतुः सुनीतस्य सत्यकेतोर्विभुः सुतः ।
विभोस्तु सुविभुः पुत्रः सुविभोः सकुंतारकः ।१२
सुकमाराद्धृष्टकेतुर्बीतिहोत्रस्तदात्मजः ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभद्भर्गभूमिस्तदात्मजः ।१३
वैष्णवाः स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपाः ।
पञ्चपुत्रशतान्यासन्रजेः शक्रेण संहृताः ।१४

क्षत्र वृद्धसे सुहोत्र नृप हुआ । सुहोत्र के काशगृत और समद ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ।८। गृत्सभद से शौनक हुआ काश्य से दीर्घतमा हुआ । उससे वैद्य धन्वन्तरि हुआ इसका पुत्र केतुमान् हुआ था ।९। केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ और उसका पुत्र द्रिवोदास नाम वाला हुआ था । दिवोदास से प्रतर्दन हुआ जो कि इस मही मण्डल में शत्रुजित् इस नाम से प्रसिद्ध था ।१०। इसका पुत्र ऋतध्वज हुआ और इसका आत्म्ज अलर्क हुआ था । अलर्क से सन्नति ने जन्म प्राप्त किया और सन्नति का सुत सुनीत नामधारी हुआ ।११। सुनीत का पुत्र सत्यकेतु हुआ और इसका पुत्र निभु 'नामधारी हुआ था । विभु के सुविभु और सुविभु का सुत सुकुमारण हुआ था ।१२। सुकुमार में धृष्टकेतु तथा धृष्टकेतु का पुत्र वीतिहोत्र उत्पन्न हुआ बीतिहोत्र का सुतभर्ग और इसके भर्ग भूमि ने जन्म लिया था ।१३। ये काशय समस्त नृप वैष्णव हुए थे और महान आत्मा वाले थे । रजि के पाँच सौ पुत्र थे जो कि इन्द्र के द्वारा संहत किए थे ।१४।

प्रतिक्षत्रः क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मजः ।
विजयः सञ्जयस्यापि विजयस्य कृतः सतः ।१५
कृताद् वृषधनश्चाभूत्सहदेवस्तदात्मजः ।
सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सतोऽप्यदीनतः ।१६
जयत्सेनात्संकृतिश्च क्षत्रधर्मा च सकृतेः ।
यतिर्ययातिः संयातिरयातिर्वै कृतिः क्रमात् ।
नहुषस्य सुता ख्याता ययातेर्नृपतेस्तथा ।१७
यदुञ्च तुर्वसुं चैव देवयानी त्यजायत ।
द्रुह्युञ्चानुं च पूरुच शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ।१८
सहस्रजित्क्रोष्टमना रघुश्चैव यदोः सुतः ।
सहस्रजितः शतजित्तस्माद् है हयहैहयौ ।१९
अनरण्यो हयात्पुत्रो धर्मो हैहयतोऽभवत् ।
धर्मस्य धर्मनेत्रोऽभूत्कुन्तिस्तु धर्मनेत्रतः ।२०
कुन्तेर्बभूव साहजिर्महिष्माश्च तदात्मजः ।
भद्रश्रेण्यस्तस्य पुत्रो भद्रस्रेण्वस्य दुर्दमः ।।२१

क्षय वृद्ध के उत्पन्न हुआ था और उसका संजय उत्पन्न हुआ। संजयका पुत्र विजय हुआ और विजय कृत नामक सुत समुत्पन्न हुआ। ।१५। कृत से वृषधन हुआ और इसका पुत्र सहदेव नाम वाला उत्पन्न हुआ था। सहदेव से अदीन की उत्पत्ति हुई और अदीन से जयत्सेन नामक पुत्र हुआ था ।१६। जयत्सेनसे संकृति नाम वाले सुतकी उत्पत्ति हुई और इसका पुत्र क्षत्रधर्मा नामधारी समुत्पन्न हुआ था। कृति के क्रम से यति-ययाति-संयाति और अयाति उत्पन्न हुए थे। राजा नहुष के पुत्र परम प्रसिद्ध हुए थे ।१७। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया था। वार्षपार्वणी शर्मिष्ठा के द्रुह्यु अनु और रघु ये पुत्र उत्पन्न हुएथे। सहस्रजित्के शतजित् पैदा हुआ और शतजितके हय तथा हैहय से धर्म नाम वाला सुत हुआ। धर्म का पुत्र धर्म नेत्र और इसका सुत कुन्ति मास पैदा हुआ था ।२०। कुन्ति का साहजि... हुआ और उस

का पुत्र महिष्मान् हुआ था। इसके पुत्र का नाम भद्रश्रेण्य था और भद्रश्रेण्य के दुर्दम हुआ ।२१।

धनको दुर्दमाच्चैव कृतवीर्यश्च धातकिः ।
कृताग्निः कृतवर्मा च कृतोगः सुमहाबलाः ।२२
कृतवीर्यादर्जुनोऽभूदर्जुनाच्छूरसेनकः ।
जयध्वजो मधुः शूरो वृषणः पंच सुव्रताः ।२३
जयध्वजात्तालजङ्घो भरतस्तालजङ्घतः ।
वृषणस्य मधुपुत्रा मधोर्वृष्णयादिवंशकः ।२४
क्रोष्टेर्विजनिवान्पुत्रः आहिस्तस्य महात्मनः ।
आहेरुशङ्कुःसंजज्ञे तस्य चित्ररथ सुतः ।२५
शशबिन्दुश्चित्ररथात्पत्न्योर्लक्षं च तस्य ह ।
दशलक्षाच्च पुत्राणां पथुकीर्त्यादयो वरः ।२६
पृथुकीर्त्ति पृथुञ्जयः पृथुदानः पृथुश्रवाः ।
पृथुतवसो उशनास्तमसोऽभवत् ।२७
तत्पुत्रः शितगुर्नाम श्रीरुपमकवचस्ततः ।
रुक्वश्च पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।२८

दुर्दम के धनक कृतवीर्य, धानकि, कृताग्नि, कृतकर्मा और कृतोगय महान बलवान पुत्र हुए थे ।२२। कृतवीर्य से अर्जुन हुआ और अर्जुन से शूरसेवन पुत्र हुआ तथा अन्य जयध्वज मध शूर वृषण ये चार भी हुए थे। ये पाँचों पुत्र बड़े सुन्दर व्रत वाले थे ।२३। जयध्वज से तालजंघ से भरत की उत्पत्ति हुई। वृषण के पुत्रका नाम मधु था और मधु से वष्णि आदि वंश करने वाला हुआ ।२४। क्रोष्टुका निजनिवान् पुत्र हुआ और उस महान आत्मा वाले पुत्र का नाम आहि था। उसका उशंकु था और उशकु का सुत चित्ररथ हुआ था ।२५। चित्ररथ से शशबिन्दु ने जन्म धारण किया था। इसके लक्ष पत्नियाँ थी तथा दशलाख पुत्र हुए थे जो कि पृथुकीर्त्ति आदि परम श्रेष्ठ हुए थे।२६। उनमें पृथुकीर्त्ति-पृथुजय-पृथुदान और पृथुश्रवाये मुख्यतम एवं उत्तम थे। पृथुश्रवा के तम नामक सुत में जन्म लिया था और तम से उशना उत्पन्न हुआ

।२७। उशना का पुत्र शितगु और इससे फिर भी रुक्म कवच पैदा हुआ था। श्रीरुक्म कवचके रुक्भ-पृथुरुक्म-ज्यामध्र-पालित और हरि हुए।२८

श्रीरुक्मकबचस्यैते विदर्भोज्यामघात्तथा ।
भार्यायांचैव शैव्यायां विदर्भात्क्रथकौशिकौ ।२९
रोमपादो रोमपादाद्बभ्रु र्न भ्रोर्धृतिस्तथा ।
कौषिकस्य ऋचि: पुत्र: ततश्चैद्यो नृप: किल ।३०
कुन्ति: किलास्य: पुत्रोऽभूत्कुन्तेर्वृष्णि: सुत: स्मृत: ।
वृष्णेश्च निबृति: पुत्रो दशार्हो निबृतेस्तथा ।३१
दशार्हस्य सुतो व्योमा जीमूतश्च तदात्मज: ।
जीमूताद्विकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत् ।३२
ततो मधुरथो जज्ञे शकनिस्तस्यै: चात्मज: ।
करम्भिक: शकुने: पुत्रस्तस्य ष्टवमत: स्मृत: ।३३
देवक्षत्रो देवमतो देवत्रान्मधु: स्मृत: ।
कुरुवंशो मधो: पुत्रे ह्यनुश्च कुरुवंशत: ।३४
पुत्रहोत्रो हृदनो: पुत्रो हयशुश्च पुत्रहौत्रत: ।
सत्यश्रुत: सुतश्चांशोस्ततो वै सात्वतो नृप: ।३५

ये उपर्युक्त सभी पुत्र रुक्म कवच के हुए थे। ज्यामध का शव्या नाम वाली भार्या में विदर्भ पुत्र हुआ विदर्भ के क्रथ और कौशिक दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ।२९। रोमपाद वभ्रु हुआ और वभ्रु से धृति उत्पन्न हुआ। कौशिक के पुत्र का नाम ऋचि था और इसके बाद चैत नृपति हुआ था ।३०। इसके पुत्र का नास कुन्तिथा तथा कुन्तिके वृष्णि नामक पुत्र ने जन्म लिया। वृत्ति से निवृत्ति की उत्पत्ति हुई तथा निवृति के पुत्र का नाम दशाह हुआ था ।३१। दशार्ह के व्योमा नाम धारी सुत ने जन्म लिया था और व्योमा का आत्मज जीमूत पैदा हुआ था। जीमूत के विकुति ने जन्म ग्रहण किया था और इसके भीम-रथ सुत समुत्पन्न हुआ था ।३२। इसके पश्चाव पैदा हुआ और मधुरथ का पुत्र का शकुनि हुआ। शकुनि का सुत करम्भि था और इसका

पुत्र देवमत कहा गया है।३३। देवमत से देवक्षत्र और देवक्षत्र से मधु उत्पन्न और। कुरुवंश मधुका पुत्र था और कुरुवंश से अनु की उत्पत्ति हुई थी।३४। अनुका पुत्रहोत्र था और पुत्र होत्रसे अंशु पैदा हुआथा। अंश का सुत सत्यश्रुत नाम वाला हुआ और उस सत्यश्रुत से सम्बत नृप की उत्पत्ति हुई थी।३५।

भजिनो भजमानश्च सात्वतादन्धकः सुतः।
महाभोजो वृष्णिदिव्यावन्यो देवावृधोऽभवत्।३६
निमीवृष्णी भजमानादयुताजित्तथैव च।
शतांजच्च सहस्राजिद्बभ्रर्देवी बृहस्पतिः।३७
महाभोजात्तु भोजोऽभूद्वृष्णेश्चैव सुमित्रकः।
स्वधाजित्संज्ञकस्तस्मादनमित्रशिनी तथा।३८
अनमित्रस्य निघ्नोऽभून्निघ्नाच्छत्रजितोऽभवत्।
प्रसेनश्चापरः ख्यातो ह्यनमित्रच्छिविस्तथा।३९
शिवेस्तु वत्यकः पुत्रः सत्यकात्सायकिस्तथा।
सात्यकः सञ्जयः पुत्रः कुलिश्चैव तदात्मजः।
केलेयुगन्तरः पुत्रस्ते शैवेयाः प्रकीर्त्तिताः।४०
अनमित्रावये वृष्णिः श्वफल्कश्चित्रकः सुतः।
श्वफल्काच्चैव गान्दिन्यामक्रूरो वैष्णवोऽभवत्।४१
उपमद्गुरथाकुराह्वेवद्योतस्ततः फुतः।
देववानुपदेवश्च अक्रूरस्य सुतौ स्मृतौ।४२

सात्वत नृपति के भोजन, भजमान और अन्धक ये पुत्र हुए थे। इसके अतिरिक्त महाभोज, वृष्णि, दिव्य और अन्य देवावृध, भजमान के निमि, वृष्णि, अयुताजित्, सहस्राजित्, वभ्रु, देव और बृहस्पति हुए थे।३६-३९। महाभोज नाम वाले से भोज, वृष्णि से सुमित्रक, फिर इससे स्वधाजित् नाम वाला और अनमिव शिनी पैदा हुआ था।३८। अनमिव का पुत्र निघ्न हुआ और निघ्न से शत्रुजित। दूसरा प्रसेन, इस नाम से ख्यात था। अनमित्र से शिवि की उत्पत्ति हुई थी। शिव

को पुत्र सत्यक-सत्यक से सात्यकि उससे संजय और संजय के, पुत्र का नाम कुलि था। कुलि का सुत युगन्तर नाम वाला था। ये सब शैवेय नाम से कहे गये थे।३९-४०। अनमित्र के वंश में वृष्णि श्वफल्क और चित्रक सुत थे। श्वफल्क से उसकी भार्या गान्दिनी में अक्रूर ने जन्म धारण किया था जो कि परम विष्णु के भक्त थे।१४। अक्रूर के पुत्र का नाम उपमद्गु था और उपमद्गु के पुत्र का नाम देवद्योत था। अक्रूर के देववान् और उपदेव दो पुत्र कहे गये हैं।४२।

पृथुर्विपपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचिः स्मृतः।
कुकुरो भजमानस्य तथा कम्बलबर्हिषः।४३
धृष्टस्तु कुकुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरोमकः।
तदात्मजा बिलोमा च विलोम्नस्तुबरू: सुतः।४४
तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुरतः स्मृतः।
तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकस्य तु।४५
देवकश्चोग्रसेनश्च देवकाद्देवकी त्वभूत्।
वृकदवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता।४६
श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ताः।
देवश्चानुपदेवश्च सहदेवासुतौ स्मृतौ।४७
उग्रसेनस्य कंसोऽभूत्सुनामा च वटादयः।
विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभुद्विदुरथात्।४८
विदूरथसुतस्याथ शूरस्यापि समी सुतः।
प्रतिक्षत्रश्च समिनः स्वयम्भोजस्तदात्मजः।४९

चित्र के पृथु और विपृथु दो पुत्र थे। अन्त का पुत्र शुचि था। भजमान पुत्र का नाम कुकुर था और कम्बल वर्हिष था।४३। कुकुर से धृष्ट का और धृष्ट से कापोत रोमक था इसके सुत का नाम विलोमा और विलोमा के तुम्वरु ने जन्म लिया था।४४। इससे फिर दुन्दुभि और इसके आयुक पुत्र और आहुकी नाम वाली कन्या थी। आहुक के देवक और दूसरा सुत उग्रसेन था। देवक से देवकी की उत्पत्ति हुई

वसुदेव ने वृकदेवा, उपदेवा, वहदेवा, सुरक्षिता, श्रीदेवी शान्ति देवी इन सभी के साथ विवाह कर लिया था। सहदेवा के देव और अनुपदेव ये दो पुत्र थे।४५-४७। उग्रसेन नृप के सुत का नाम कंस था और भी सुनाम तथा वटादि थे भजमान से विद्ररथ और विदूरथ से शूर हुआ।४८। विदूरथ के पुत्र शूर के सभी नामक सुत था। सभी का प्रतिक्षत्र और प्रतिक्षत्र का स्वयम्भोज था।४९।

हृदिकश्च स्वयम्भोजजात्कृतवर्मा तदात्मजः।
देवः शतधनुश्चैव शराद्वै देवमीढुष ।५०
दश पुत्रा मारिषायां वसुदेवादयोऽभवन्।
पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्त्तिः श्रुतश्रवाः।५१
राजाधिदेवी शूराच्च पृथा कुन्तेः सुहामदात्।
सा दत्ता कुन्तिना पान्डो स्वां धर्मानिलेन्द्रकः।५२
युधिष्ठिरी भीमपार्थो नकुलः सहदेवकः।
माद्र यां नासत्यदस्राभ्यां कुन्त्यां कर्ण पुराऽभवत्।५३
श्रुतदेव्यां दन्तवक्रो जज्ञे वै युद्धदुर्मदः।
अन्तर्द्धानादयः पञ्च श्रुतकीर्त्याञ्च कैकयात्।५४
राजाधिदेव्यां बिन्दश्च अनुविन्दश्व जज्ञिरे।
श्रतुश्रवा दमघोषात्प्रजत्रे शिशुपालकम्।५५
पौरवी रोहिणी भार्य्या यदिरानकदुन्दुभेः।
देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्यां वलभद्रकः।५६
सारणाद्यां षटश्चैव रेवत्या बलभद्रतः।
निशठश्चोल्मुको जातो देवक्यां षट् च जज्ञिरे।५७

शूर से देव स्वयम्भोज से हृदिक उसका सुत कृतवर्मा हुआ था। शूर से देव शतधनु और देवमीढुष हुए थे।५०। मरिषा में वसुदेव प्रभृतिदस पुत्र थे। पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतकीर्त्ति, श्रुतश्रवा के राजाधिदेवी शूर से और कुन्तिकी पुत्री पृथा थी। कुन्ति के द्वारा पाण्डु से धर्म, वायु और इन्द्र के द्वारा युधिष्ठिर, और अर्जुन तथा नकुल एव सहदेव माद्री में

नासत्य और हस्त से उत्पन्न थे। पहिले कुन्ती से कर्ण उत्पन्न हो चुका था।५१-५३। श्रुत देवी का दन्तवक्र था। अन्तर्धान प्रभृति पाँच कैकय से श्रुति कीर्त्ति में थे।५४। राजाधिदेवी में विन्द और अनुबिन्द ने जन्म ग्रहण किया था। श्रुतश्रवा ने दमघोष से शिशुपाल को जन्म दिया था।५५। आनक दुन्दुभि की पौरवी और रोहिणी तथा मदिरा भार्या थीं। देवरी जिनमें प्रमुख थी जो कि भद्राथी रोहिणी के बलभद्र हुए।५६। बलभद्र से रेवती में सारण और शठहुए। निशठ और उन्मुक आदि छै देवकी से थे।५७।

कीर्त्तिमांश्च सुषेणाश्च उदार्य्यो भद्रसेनकः।
ऋजुदासौ भद्रदेवः कंस एवावधीच्च तान् ।५८
संकर्षणः सप्तमोऽभूदष्टमः कृष्ण एव च।
षोडशस्त्रीसहस्राणि भार्याणाभन्हरेः।५९
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी।
श्रेष्ठा जाम्बवती चाष्टौ जज्ञिरे ताः सुतान्वहून् ।६०
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णाश्च प्रधानाः साम्ब एव च।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुद्मियां महावलः।६१
अनिरुद्धात्सुभद्रायां वज्रो नाम नृहोऽभवत्।
प्रतिवाहुर्वज्रसुतश्चारुस्तस्य सुतोऽभवत् ।६२
वहिनस्तु तुर्वसोर्वंशे वह्नेर्भार्गोऽभूत्सुतः।
भार्गाद्भानुरभूत्पुत्रो शनोः पुत्रः करन्धमः।६३

देवकी के प्रथम पुत्र का नाम कीर्तिमान् और सुषेश; उदार्य, भद्र सेनक् ऋजुदास, भद्रदेव थे। इन सबको राजा कंस ने मार दिया था।५८। सातवाँ पुत्र संकर्षण और आठवें पुत्र साक्षात् श्रीकृष्ण थे। हरि के सोलह हजार भार्यायें थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, चारु हासिनी श्रेष्ठा जाम्वती इस तरह ये आठ पटरानियाँ थीं। इन आठों से अनेक पुत्र हुए।५९-६०। उनमें प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्य ये आधान पुत्र थे। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध की उत्पत्ति थी। अनिरुद्ध ने

वज्रनाभ को समुत्पन्न किया था। वज्रका सुत प्रतिबाहु हुआ था और इनका सुतचारु नाम वाला हुआ था।६१-६२। तुर्वसु के वंश में वह्नि और वह्नि का सुत मार्ग हुआ था। मार्गसे भानुकी उत्पत्ति तथा भानु के पुत्र के रूप में करन्धम ने जन्म प्राप्त किया था।६३।

करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योवणं निवोध मे।
द्रुह्योस्तु तनयः सेतुरारद्धश्च तदात्मजः।
आरद्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत् ।६४
धृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद् दुर्गमश्च घृतस्य तु।
प्रचेता दुर्गमस्यमैव अनोर्वशं शृणुष्व मे।६५
कालञ्जयात्सृञ्जयोऽभूत्सृञ्जयात्तु पुरञ्जयः।६६
सनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशायस्तदात्मजः।
महामना महाशालादुशीनर इति स्मृता।६७
उशीनराच्छिबिर्जज्ञे वृषदर्भः शिवेः सुतः।
महामनोजात्तितिक्षोः पुत्रोऽभूच्च रुषद्रथः।६८
हेमो रुपद्रथाज्जज्ञे सुतपा हेमतोऽभवत्।
बलिः सुतपसो जज्ञे अङ्गबङ्गकलिंगकाः।६९
आध्रः पौन्ड्रश्च बालेया अनपालस्तथांगतः।
अनपालाद्दिविरथस्ततोधर्मरथोऽभवत्।७०

करन्धम का पुत्र मरुत हुआ था। द्रुह्यु का सुतसे तु था और इसका पुत्र आरुद्ध हुआ। आरुद्ध के तनय का नाम गान्धार था और गान्धार से धर्म नामक आत्मज ने ग्रहण किया था।६४। धर्म का पुत्र घृत और घृत का सुत दुर्गम एवं दुर्गम का तनय अचेता था। अब अनु के वंश का श्रवण करो।६५। अनु का पुत्र स्वभानर, स्वभानर का सुत कालञ्जय और कालञ्जय से सृञ्जय से पुरंजय पुत्र था।६६। इस पुरंजय का सुत जनमेजय था और जनमेजय का तनय महाशाल था। महाशाल से महामना हुआ था जिसका उशीनर नाम था।६७। उशीनर से शिवि, शिवि से वृषद्रर्भ, तितिक्षु महामनोज से रुषद्रथ पुत्र

उत्पत्ति हुई थी ।६८। रुषद्रथ से हेम जन्मा और हेम से सुतपा हुआ था । सुतपा से बलि था । अङ्ग-वङ्ग और कलिङ्ग का उत्पन्न हुए । अङ्ग से अन्ध्र, पौन्ड्र, वालेया और अनपाल थे । अनपाल से, विदिरथ और इससे धर्मरत हुआ था ।६६-७०।

रोमपादो धर्मरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मजः ।
पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षतः ।७१
चम्पपुत्रश्च हर्यङ्गस्तस्य भद्ररथः सुतः ।
बृहत्कर्मा सतस्य बृहद्भस्ततोऽभवत् ।७२
बृहन्नगा बृहद्भानुस्तस्य पुत्रो च जयद्रथः ।
जयद्रथस्थ विजयो विजयस्य धृति सतः ।७३
धतेधृ तव्रतः पुत्रः सत्यधर्मा धृतव्रतात् ।
तस्य पुत्रस्त्वधिरथः कर्णस्तस्य सतोऽभवत् ।
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुषवान् शृणुष्व मे ।७४

धर्मरत से रोमपाद नामधारी पुत्र ने जन्म प्राप्त किया था तथा रोमपाद के पुत्र का नाम चतुरंग था । इसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ और पृथुलाक्ष से चम्प ने जन्म धारण किया था।७१। चम्पके तनय का नाम हर्यंग था और इसका पुत्र भद्ररथ था । भद्ररथ के पुत्र का नाम बृहत्कर्मा था फिर इसके वृहद्भानु नामक पुत्र ने जन्म लिया था ।७२। वृहद्भानु के वृहन्मना तथा फिर इसका क्त्र जयद्रथ हुआ था । जयद्रथ का सुत विजय नामधारी था और विजय के यहाँ धृति नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था ।७३। धृति घृतव्रत ने जन्म ग्रहण किया और इसके सत्यधर्मा था । सत्यधर्मा का पुत्र अधिरथ और इसके कर्ण नामक पुत्र था । कर्ण के वृषसेन हुआ पुरु वंश का श्रवण करो ।७४।

९१ चन्द्र वंश कीर्तन (२)

जनमेजय पुरोश्चाभून्मनस्युर्जनमेजयात् ।
तस्य पुत्रश्चाभयदा सम्वश्चाभयदादभूत् ।१

सम्बोर्बहुगतिः पुत्रः सजतिस्तस्य फात्मजः ।
सत्जतिश्च संजातेः रौद्राश्च तदात्मजः ।२
ऋतेयः स्थान्डिलेयुश्च कक्षेयुश्च कृतेयुकः ।
जलेयुः सन्यतेयुश्च रौद्राश्वस्य सुता वराः ।३
रतिनारः ऋतेयोश्च तस्य प्रतिरथः सुतः ।
तस्य मेधातिथिः पुत्रस्तपुत्रश्चैनिलः स्मृतः ।४
ऐनिलस्य तु दुष्यन्तो भरतस्यस्य चात्मजः ।
शकुन्तलायां संजज्ञे वियथो भरताद्भिून् ।५
वितथस्य पुत्रो मन्युर्मन्योश्चैवः नरः स्मृतः ।
नरस्य सङ्कृतिः पुत्रो गर्धो हि सङ्कृतेः सुतः ।६
गधांदमन्य पुत्रो वै शिनिः पुत्रो व्यजायत ।
मन्युपुत्रान्महावोर्य्यादुरुत्रयः सूबोऽभवत् ।७

श्री हरि ने कहा--पुरु का सुत जनमेजय था। और जनमेजय से मनस्यु नाम वाला सुत था। इसका पुत्र अभयद और अभय से सम्बु का जन्म हुआ था।१। सम्बु का पुत्र वहुगति, बहुगति का तन संजाति, संजातिका सुत वत्सजाति और इसका पुत्र रौद्राश्व हुआ था।२। रौद्राश्व के कई पुत्र हुए थे। उनके नाम ऋतेयु,स्थण्डिलेयु कक्षयुथ कृतेयुक, जलेयु, सन्ततेयु ये हैं। ये सब वहुत श्रेष्ठ थे।३। ऋतेयु के पुत्र रतिनार हुआ और इसका सुत प्रतिरथ हुआ था। प्रतिरथ का सुत मेधातिथि और इसका सुत ऐनिल कहा गया थां।४। ऐनिल के सुत का नाम दुष्यन्त और दुष्यन्त का सुत भरत था। राजा भरत से शकुन्तला में वितथ का जन्म हुआ था।५। वितथ का सुत मन्यु, मन्यु का नर, नर का संस्कृति और सङ्कृति का तनय गर्ध थो।६। गर्ध से अमन्यु अमन्यु से शिनि, मन्यु का सुत शिनि से जो कि महान् वीर्य पराक्रम वाला था ऊरुक्षय नामधारी तनय हुआ था।७।

उरुक्षयात्त्रयारुणिर्व्यूहक्षत्रांच्च मन्युपात् ।
सुहोत्रस्तस्य हस्ती च अजमीढद्विनीढ़कौ ।८
हस्तिमतः पुरुमीढ़श्च कण्वोऽभूदजमीढ़तः ।
कण्वान्मेधातिथिर्जज्ञे यतः कान्वायना द्विजाः ।९

अजमीढ़ाद् बृहदिषुस्तत्पुत्रश्च बृहद्धनुः ।
बृहत्कर्मा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथः ।१०
जयद्रथादिश्वजिच्च सेनजिच्च तदात्मजः ।
रुचिराश्वः सेनजितः पृथुसेनस्तदात्मजः ।११
पारस्तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपोऽभवन्नृपः ।
नृपस्य समरः पुत्र. सुकृतिश्च पृणोः मुतः ।१२
विभ्राजः सुकृतेः पुत्रोविभ्रादश्वहोऽभवत् ।
कृत्यां तस्माद् ब्रह्मदत्तो विष्वक्सेनस्तदात्मजः ।१३
यवीनरो द्विमीढस्य घृतितांश्च यवीनरात् ।
धृतमतः सैन्यधृतिर्द्दढनेमिस्तदात्मजः ।१४

उरुक्षत से त्र्यारुणि तथा मन्यु के पुत्र न्यूहक्षत से सुहोत्र हुआ-सुहोत्र का हस्ती अजमीढ़, द्विमीढक सुत हुए थे ।८। हस्ती का सुत सुरुमीढ़ और अजमीढ़ का सुत कण्व हुआ था । कण्व से मेधातिथि ने जन्म लिया । इस कारण से तो काण्बायन द्विज कहे गये थे ।९। अज-मीढ़ से वृहदिषु और इसका सुत वृहद्धनु हुआ । वृहद्धनु का सुत वृह-त्कर्मा और इसका सुत जयद्रथ था ।१०। जयद्रथ से विश्वजित् और सेनजित् सुत थे । सेनाजित्का पुत्र रुचिराश्व और रुचिराश्व का सुत पृथुसेन था ।११। पृथुसेन से पार, पार से द्वीप, से नृप और घृप से समर था । पृथु का सुत सुकृति था ।१२। सुकृति वीर्य से विभ्राज ने शरीर धारण किया । विभ्राज से अश्व था । इससे कृत्या में ब्रह्मदत्त हुआ और इसका आत्मज विष्वक्सेन था ।१३। द्विमीढ़ का सुत यवीनर और यवीनर से धृतिमान् ने जन्म लिया था । धृतिमान् का सुत सत्य-धृति और इसका पुत्र दृढ़नेमि नामधारी हुआ ।१४।

दृढ़नेमेः सुपार्श्वोऽभूत्सु पार्श्वात्सतिस्तथा ।
कृतस्तु सन्नतेः पुत्रः कृतादुग्रायुधोऽभवत् ।१५
उग्रायुधाच्च क्षम्योऽभूत्सु धीरस्तु तदात्मज ।
पुरञ्यः सुधीराच्च तस्य पुत्रो विदूरथः ।१६
अजमीढान्नलिन्याञ्च नीलो नाम नृपोऽभवत् ।
नीलाच्छान्तिरभूत्पुत्रः सुशान्तिस्तस्य चात्मजः ।१७

सुशान्तेश्च पुरुर्जातो ह्यर्कस्तस्य सुतोऽभवत् ।
अर्कस्य चैव हर्य्यश्वो हर्यश्वान्मुकुलोऽभवत् ॥१८
यवीनरो बृहद्भानुः कम्पिल्यः सृजंजयस्तथा ।
पांचालान्मुकुलाज्जज्ञे शरद्वान् वैष्णवो महान् ॥१९
दिवोदासो द्वितीयोस्य अहल्यायां शरद्वतः ।
शतानन्दोऽभवत्पुत्रस्तस्य सत्यधृतिः सुतः ॥२०
कृपः कृपो हत्यधुतेर्वंश्या वीर्यहानितः ।
द्रोणपत्नी कृपी जज्ञे अश्वत्थामानमुत्तमम् ॥२१

दृढ़नेमि का पुत्र सुपार्श्व, उसका सन्नति, सन्नति का कृत और कृत का उग्रायुध था ।१५। उग्रायुध से क्षेम्य और इससे सुधीर की उत्पत्ति हुई सुधीरसे पुरंजय और इनका सुत विदूरथा ।१६। अजमीढ़ ने नील और नील से शान्ति और इसका सुत सुशान्ति नाम वाला था ।१७। सुशान्ति से पुरु, पुरु से अर्क,अर्क से हर्यश्व और हर्यश्व से मुकुली की उत्पत्ति हुई थी ।१८। पाँचाल से यवीनर, वृहद्मानु, कम्पिल्ल तथा सृजष हुए थे । मुकुल से महान् विष्णु का भक्त शरद्वान् था ।१९। इन शरद्वान् के द्वितीय दिवोदास ने अहल्या में जन्म लिया था । इसका पुत्र शतानन्द और शतानन्द् का पुत्र सत्यधृति था ।२०। सत्यधृति के कृप और कृपी उर्वशी से हुए थे । द्रोण की पत्नी कृपी से अश्वत्थामा ने जन्म ग्रहण किया था । जो कि परम उत्तम था ।२१।

दिवोदासान्मित्रयुश्च मित्रयोश्च्यवनोऽभवत् ।
सुदासश्च्यवनाज्जज्ञे सौदासस्तस्य चात्मजः ॥२२
सहदेवस्तस्य पुत्रः सहदेवात्तु सोमकः ।
जन्तुस्तु सोमकाज्जज्ञे पृषतश्चापरो महान् ॥२३
पृषताद् द्रुपदी जज्ञे धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत् ।
धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतु ऋक्षोऽभूदजमीढ़तः ॥२४

ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणादभूत् ।
सुधनुश्च परीक्षिच्च जह्नुश्चैव कुरोः सुताः ॥२५
सुधनुषः सुहोत्रोऽभूच्चयवनोऽभूत्सुहोत्रतः ।
च्यवनात्कृतको जज्ञे अधोपरिचरो वसुः ॥२६
बृहद्रथश्च प्रत्यग्रः सन्याद्याश्च वसीः सुताः ।
ऋषभात्पुष्पवांस्तस्माज्जज्ञे सत्यहितो नृपः ॥२७
सत्यहितात्सुधन्वाऽभूज्जह्नुश्चैव सुधन्वतः ॥२८
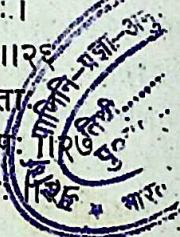
दिवोदास का मित्रयु और मित्रयु को च्यवन हुआ । च्यवन से सुदाम और इसका सौदास था ।२२। सौदास का सहदेव, सहदेव का सौमक का जन्तु और दूसरा महान् पृषत पुत्र था ।२३। पृषत से द्रुपद, द्रुपद का सुत धृष्टद्युम्न था । धृष्टद्युम्न से धृष्टकेतु और अजमीढ़ से ऋक्ष ने जन्म लिया था ।२४। ऋक्ष से संवरण, संवर से कुरु और कुरु के सुधनु और परीक्षित दो सुत हुए थे तीसरा जह्नु भी पुत्र था ।२५। सुधनु का सुहोत्र और सुहोत्र से च्यवन की उत्पत्ति हुई । च्यवन का पुत्र कृतक और इसका उपचरिक वसु था । वसु के बृहद्रथ-प्रत्यग्र और सत्य आदि थे बृहद्रथ से कुशाग्र और कुशाग्र से ऋषभ था ।२६-२७। ऋषभ से पुष्पवान् से सत्यहित और सत्यहित का पुत्र सुधन्वा हुआ और सुधन्वा से जह्नु ने जन्म ग्रहण किया था ।२८।

बृहद्रथाज्जरासन्धः सहदेवस्तदात्मजः ।
सहदेवाच्च सोमापिः सोमापेः श्रुतवान् ततः ॥२९
भीमसेनोग्रसेनौ च श्रुतसेनोऽपराजितः ।
जनमेजयश्चान्योऽभूज्जह्नोस्तु सुरथोऽभवत् ॥३०
विदूरथस्तु सुरथात्सार्वभौमो विदूरथात् ।
जयसेनः सार्वभौमादाबाधातस्तदात्मजः ॥३१
अयुतायुस्तस्य पुत्रस्तस्य चाक्रोधनः सुतः ।
अक्रोधनस्यातिथिश्च ऋक्षोऽभूदतिथेः सुतः ॥३२

वृहद्रथ से जरासन्ध और जरासन्ध से सहदेव, सहदेव का सोमापि और इसके पुत्र का नाम श्रुतवान् था।२९। फिर भीमसेन, उग्रसेन, श्रुतसेन अपराजित और जनमेजय सुत था। जह्नु का सुत सुरथ था।३०। सुरथ से विदूरथ, विदूरथसे सार्वभौम, सार्वभौम से जयसेन और जयसेन से आवाधीत था।३१। इस आवाधीत का पुत्र अयुतायु इसका पुत्र अक्रोधन का अतिथि और अंति कथा सुन ऋक्ष नाम वाला हुआ था।३२।

ऋक्षाच्च भीमसेनोऽभूद्दिलीपो भीमसेनतः।
प्रतीपोऽभूद्दिलीपाच्च देवापिस्तु प्रतीपतः ॥३३
शन्तनुश्चैव वाह्णीकस्त्रयस्ते भ्रातरो नृपः।
वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभद भरिर्भूरिश्रवास्वतः ॥३४
शालश्च शन्तनोर्भीष्मो गङ्गायां धार्मिको महान्।
चित्राङ्गदविचित्रो तु सत्यवत्यान्तु शान्तनोः ॥३५
विचित्रवीर्य्यस्य भार्य्ये तु अम्बिकाम्बालिके तयोः।
धृतराष्ट्रन्तु पाण्डुञ्च तद्दास्यां विदुरं तथा ॥३६
व्यास उत्पादयामास गान्धारी धृतराष्ट्रतः।
शतं दुर्य्योद्यनाद्यं च पाण्डोः पञ्च प्रजज्ञिरे ॥३७
प्रतिबिन्ध्यः श्रुतसोम श्रुतकीर्तिश्च चांजुनात्।
शतानीकः श्रुतकर्मा द्रौपद्यां पञ्च वै क्रमात् ॥३८
यौधेयो च हिडिम्बा च कैशो चैवंसुभद्रिका।
विजयौ वै रेणुमती पञ्चभ्यस्तु सुताः क्रमात् ॥३९
देवको घटोत्कच अभिमन्युश्च सर्वगः।
सुहोत्रो निरमित्रश्च परीक्षिदभिमन्युजः।
जनमेजयोऽस्य ततो भविष्यांश्च नृपान् शृणु ॥४०

ऋक्ष से भीमसेन, भीमसेन से दिलीप, दिलीप से प्रतीप था और प्रतीप से देवापि ने जन्म लिया।३३। शन्तनु और वाह्लीक में तीन भाई थे। वाह्लीक के सोमदत्त और भूरि तथा भूरिश्रया एवं शाल

उत्पन्न हुए थे । शन्तनु नृप से गङ्गा में भीष्म हुए । शन्तनुसे सत्यवती में चित्राङ्गद और विचित्र वीर्य वाले दो पुत्र थे । विचित्र वीर्य की अम्बा और अम्बालिका दो भार्यायें थी जिनके धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति हुई थी उनको एक दासी से विदुर का जन्म था ।३४-३६। महर्षि व्यासदेव ने नियोग से जो कि केवल दर्शन मात्र के स्वरूप वाला था, गान्धारी से धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि सौ पुत्र (कौरव) हुए और पाण्डु से कुन्ती मे केवल पाँच सुत (पाण्डव नामधारी) थे ।३७। उन पाँडवों से अर्जुन से प्रतिरन्ध्य, श्रुत सोम और श्रुतकीर्त्ति सुत द्रौपदी के शतनीक तथा श्रुतकर्मा क्रम के पाँच थे ।३८। देवक, घटोत्कच और सर्वग अभिमन्यु, सुहोत्र और नरमित्र थे । अभिमन्यु से परीक्षित और परीक्षित के जनमेजय हुआ ।३९-४०।

९१—हरि अवतार कथन

वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरि प्रभुः ।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ।।१
मत्स्यादिकस्वरूपेण अबतारं करोत्यजः ।
मत्स्यो भूत्वा हयग्रीव दैत्यं हत्वाजिकण्टकम् ।।२
वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास केशवः ।
मन्दरं धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च ।।३
क्षीरोदमथने वैद्यो देवो धन्वन्तरिर्ह्यभूत् ।
विभ्रत्कमण्डलु पूर्णममृतेन समुत्थितः ।।४
आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं सुश्रुताय स उक्तवान् ।
अमृतं पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरिः ।।५
अवतीर्णो वराहोऽथ हिरण्याक्षं जघान ह ।
पृथिवी धारयामास पालयामास देवताः ।।६
नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपु रिपुम् ।
दैत्यान्जितवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ।।७

श्री ब्रह्माजी नें कहा—इन उपर्युक्त नृपादि के अंशों का पालन भगवान् ने अवतीर्ण होकर किया था। इनमें जो आसुरी वृत्ति वाले दैत्यगण थे उनके लिए हुए अधर्मका नाश किया था और वेदों के द्वारा प्रति पादित धर्म की रक्षाके लिए ही भगवान् ने समय-समय पर अवग्रहण किया था।१। उस अजन्मा प्रभु ने मत्स्य आदि के स्वरूप में अवतार लियाथा। भगवान्ने मत्स्य होकर अर्थात् मत्स्यावतार ग्रहण करके धर्म के कण्टक रूप हयग्रीव दैत्य का हन किया था और वेदों तथा मनु आदि को यहाँ लाकर केशव भगवान् ने पालन किया था। कूर्म का अवतार लेकर प्रभु ने जगत् के हित सम्पादन करने के लिए मन्दराचल को अपने ऊपर धारण किया था।२-३। क्षीरोदधि के मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि वैद्य हो गये थे अर्थात् धन्वन्तरि का अवतार धारण किया। जिस समय समुद्र से उत्थित हुए थे उस समय उनके हाथ में अमृत के परिपूर्ण एक कमण्डलु था।४। उस भगवान् धन्वन्तरि ने आठों अङ्गों से पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र को सुस्रुत को बताया था। मोहिनी एक परम सुन्दरी ललना का स्वरूप धारण कर भगवान् ने वह अमृत देवगणों को पिला दिया था।५। एक वराह का अवतार ग्रहण किया था और वराह रूप में अवतीर्ण होकर महान्वली दुष्ट दैत्य हिरण्याक्ष का वध किया था। इस भूमि को धारण किया था और देवों की सुरक्षा की थी।६। इसके अनन्तर फिर नरसिंह अवतार हुआ था और हिरण्यकशिपु शत्रु को विदारण किया था।७।

ततः परशुरामोऽभूज्जमदग्नेर्जगत्प्रभुः।
त्रिःसप्तकृत्वा पृथिवीं चक्रे निक्षत्रिया हरिः ॥८
कार्त्तवीर्यं जघानाजौ कश्यपाय मही ददौ।
यागं कृत्वा महाबाहुर्महेन्द्रे पर्वते स्थितः ॥९
ततो रामो भविष्णुश्चतुर्धा दुष्टमर्दनः।
पुत्रो दशरथाज्जज्ञे रामश्च भरतोऽनुजः ॥१०
लक्ष्मणश्चाथ शत्रुघ्नो रामभार्य्या च जानकी ॥११

रामश्च पितृसत्याथ मातृभ्यो हितमाचरन् ।
शृङ्गवेरं चित्रकूट दण्डकारण्यमागतः ।।१२
नासां शूर्पणखायाश्च छित्वाथ खरदूषणम् ।
हत्वा स राक्षस सीतापहारिरजनीचरम् ।।१३
रावणं चानुज तस्य लङ्कापुर्य्यां विभीषणम् ।
रक्षोराज्ये च संस्थाप्य सुग्रीवहनुमन्मुखैः ।।१४
आरुह्य पुष्पकं सार्द्धं सीतया पतिभक्तया ।
सुमहापतिव्रतया सोऽयोध्यां स्वपुरीं गतः ।।१५

इसके अनन्तर जगत् के प्रभु ने जमदग्नि से परशुराम का अवतार धारण किया था । हरि ने इस भूमि को इक्कीस बार ऋषियोंसे रहित कर दिया था ।८। युद्ध में कार्त्तवीर्य का हनन किया और भूमि को कश्यप ऋषि को दान दिया था । महेन्द्र पर्वत पर स्थित होकर महाबाहु ने याग किया था ।९। इसके पश्चात् श्रीराम ने चार पुत्रों में दशरथ के सुत रूप में जन्म ग्रहण किया था । उन चारोंके नाम राम-छोटे भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे । श्रीराम की भार्याका नाम जानकी था ।१०-११। श्रीराम के पिता के सत्य वचन की रक्षा के लिए दन्डकारण्य में चित्रकूट पर्वत पर शृंगवेर पुर में आ गये थे ।१२। वहाँ वन में रावण की बहिन शूर्पणखा के नासिका का छेदन कराकर खर-दूषण तथा सीता के अपहरण करने वाले राक्षस रावण का वध किया था । उसके राज्यासन पप रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्कापुर में राज्य देकर सुग्रीव और हनुमान आदि प्रमुख वन्दरों तथा पतिभक्त-सीता के साथ पुष्पक विमान पर समारूढ़ होकर श्रीराम अपनी महा पतिव्रता पत्नी के सहित पुनः अयोध्यापुरी में आ गए थे ।१३-१५।

राज्यञ्चकार देवादीन्पालयामास स प्रजाः ।
धर्मसंरक्षणं चक्रे अश्वमेधाधिका न्क्रतून् ।।१६
सुमहापतिव्रता रेमे रामो यथासुखम् ।
रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम् ।।१७

कर्मणा मनसा वाचा सा गता राघवं विना ।
पतिव्रता तु सा सीता अनसूया यथैव तु ॥१८
पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्यं कथयाम्यहम् ।
कौशिकौ ब्राह्मणः कुष्ठी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा ॥१९
तं तथा व्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्चयत् ।
निर्भर्त्सितापि भर्त्तारं तममन्यत् दैवतम् ॥२०
भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्या शुल्कमादाय चाधिकम् ।
पथि शूले तदा प्रोतमचोर चोरशङ्कया ॥२१
मान्डव्यमतिदुःखार्त्त मन्धकारेऽथ स द्विजः ।
पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः ॥२२

फिर अयोध्यापुरीमें राज्यासनपर समभिषिक्त होकर उन्होंने राज्य का शासन किया था और उस श्रीराम ने देव आदि का तथा अपनी प्रजाका पालन किया था। श्रीराम ने धर्मका पूरी तरह संरक्षण किया था और अश्वमेध आदि यज्ञों को सविधि किया था। रावण के घर में रहकर भी जानकी ने रावण की कर्म-मन और वाणी से भी राघव के बिना स्वीकार नहीं किया था। सीता तो अनुसूया की भाँतिही अत्यन्त उत्तम कोटि की महान् पतिव्रत के पालन करने वाली थीं ।१७-१८। पतिव्रता सीता का माहात्म्य बतलाता हूँ। पुराने समय में प्रतिष्ठान में कौशिक ब्राह्मण कुष्ठी था ।१९। उस व्याधि से युक्त पति की सेवा उसकी भार्या ने देवता की भाँति की थी। अपने स्वामी के द्वारा फटकारे जाने पर भी उस स्वामी को वह देवता ही मानती थी ।२०। स्वामी के द्वारा कहे जाने पर अधिक शुल्क देकर वेश्या की समीप में लाने को काम किया था। उस समय में मार्ग में शूल में प्रोत अचोर को चोर कीं शंका से अत्यन्त दुःखित माडव्य अन्धकार में था। उस कौशिकी द्विज ने अपनी पत्नी के कन्धे पर स्थित होते हुए पद चालित किया था ।२१-२२।

पादावमर्षणात्क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ।
सूर्योदये मृतिस्तस्य येनाह चालितं पदा ॥२३

तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भार्या सूर्य्यो नोदयमेष्यति ।
ततः सूर्य्योदयाभावादभवत्सततं निशा ।।२४
बहून्यब्दप्रमाणानि मतो देवा भयं ययुः ।
ब्राह्मणं शरणं जग्मुस्तामूचे पद्मसम्भवः ।।२५
प्रशाम्यते जेजसैव तपस्ते जस्त्वनेन वै ।
पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ।।२६
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां तथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनुसूयां तपस्विनीम् ।।२७
प्रसादयत वै पत्नी मानोरुदयकाम्यया ।
तै या प्रसादिता गत्या ह्यनसूया पतिव्रता ।।२८
कृत्वादित्योदयं सा च तं भर्त्तारमजीवयत् ।
पतिव्रतानसूयायाः सीताभूदधिका किल ।।२९

पद के अवमर्षण से अत्यन्त क्रुद्ध माण्डव्य ने उस द्विज से कहा था कि जिसने पैर से मुझे चालित किया था वह सूर्योदय होने पर मृत हो जायगा ।२३। यह श्रवण करके उसकी भार्याने कहा सूर्य्य उदित ही नहीं होगा । इससे सूर्योदय के अभाव होने के कारण निरन्तर रात हो गई थी ।२४। इस प्रकार से बहुत से वर्ष व्यतीत होने पर देवोंको बहुत भय हो गया और सब ब्रह्माजी की शरण में पहुँचे । यथा ब्रह्माजी ने कहा ।२५। तप का तेज इस तेज के द्वारा ही प्रशान्त किया जा रहा है । यह पतिव्रता का माहात्म्य है कि भगवान् भुवन भास्करदेव उदित नहीं हो रहे हैं ।२६। सूर्य के उदय न होने से मनुष्यों को बहुत हानि हो रही है इसलिए परम पतिव्रता अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया तपस्विनी को प्रसन्न करो । भानुदेव के उदय होने की कामना तभी पूर्ण हो सकती है । वे सब देवगण पतिव्रता अनुसूयाके पास पहुँचे और उसे प्रसन्न किया था ।२७-२८। उसने आदित्य का उदय करा दिया और द्विज की मृत्यु होने पर उसे भी जीवित कर दिया था । उस पतिव्रता अनसूया से भी अधिक पतिव्रता सीता हुई थी ।२९।

।। इति प्रथम खण्ड समाप्तम् ।।

वेद

ऋग्वेद ४खण्ड-सम्पूर्ण (भा.टी.)
अथर्ववेद २खण्ड-सम्पूर्ण (भा.टी.)
यजुर्वेद-सम्पूर्ण (भा.टी.)
सामवेद-सम्पूर्ण (भा.टी.)

उपनिषद

१०८ उपनिषद ३ खण्ड (भा.टी.)
वृहदारण्यकोपनिषद (भा.टी.)
छान्दोग्योपनिषद (भा.टी.)

गीता

ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता (भा.टी.)
अष्टावक्र गीता (भा.टी.)

दर्शन

वैशेषिक दर्शन (भा.टी.)
न्याय दर्शन (भा.टी.)
सांख्य दर्शन (भा.टी.)
योग दर्शन (भा.टी.)
वेदान्त दर्शन (भा.टी.)
मीमांसा दर्शन (भा.टी.)

रामायण व धर्मशास्त्र

आनन्द रामायण (भा.टी.)
पंचतन्त्र (भा.टी.)
[illegible] (भा.टी.)
विचार सागर (भा.टी.)
२० स्मृतियाँ २ खण्ड (भा.टी.)
मनुस्मृति (भा.टी.)

पुराण

शिव पुराण २ ख[illegible]
विष्णु पुराण २ ख[illegible]
मार्कण्डेय पुराण २ [illegible]
गरुड़ पुराण २ खण्ड [illegible]
देवी भागवत पुराण २ [illegible]
हरिवंश पुराण २ खण्ड [illegible]
ब्रह्माण्ड पुराण २ खण्ड ([illegible]
भविष्य पुराण २ खण्ड (भा. [illegible]
पद्म पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
वामन पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
कालिका पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
कूर्म पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
वाराह पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
मत्स्य पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
गणेश पुराण (भाषा)
सूर्य पुराण (भा. टी.)
आत्म पुराण (भाषा)
कल्कि पुराण (भा. टी.)
देवी भागवत पुराण (भाषा)
गायत्री पुराण (भाषा)
विश्वकर्मा पुराण (भाषा)
श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा (भाषा)
महाभारत साइज १८''x२२'' /८ भाषा
महाभारत साइज २०''x३०'' /१६ भाषा
रामचरित मानस मूल गुटका
अदभुत रामायण (भा. टी.)

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर) बरेली-२४३ ००३ (उ. प्र.)

फोन : (0581) 474242